ाड़ौती बोली और साहित्य

(राजस्थान विश्व-विद्यालय की पीएच. डी. उपाधि के लिये स्वीकृत
एवं
ाहित्य खण्ड' राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा १०००) की राशि से पुरस्कृत)

लेखक
डा. कन्हैयालाल शर्मा
एम. ए., पीएच. डी., साहित्यरत्न
प्राध्यापक, हिन्दी - विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
कोटा (राजस्थान)

प्रकाशक
े साहित्य अकादमी (संगम)

विषय-सूची

बोली–खण्ड

विषय-सूची

बोली-खण्ड

साहित्य-खण्ड

संकेत पत्र

ॅ = हाड़ौती शब्दों में "ऑ" की मात्रा तथा हिन्दी में "ऐ" की मात्रा।

' = कंठतालीय स्पृष्ट ध्वनि

√ = धातु-चिन्ह

- = पदों के बीच समास-चिन्ह और एकपद के साथ प्रत्यय, उपसर्ग आदि को पृथक् दिखाने के लिए चिन्ह।

> = उत्पन्न करता या बनाता है।

< = उत्पन्न हुआ या बना है।

अ० पु० = अन्य पुरुष

उ० पु० = उत्तम पुरुष

उदा० = उदाहरण

एक० = एकवचन

ग्रि० लि० स० = ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया।

ति०, हि० भा० उ० वि० = तिवारी, हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास।

पु० = पुलिंग

फा० = फ़ारसी

बहु व० = बहुवचन

म० पु० = मध्य पुरुष

रा० च० मा० = रामचरित मानस

सं० = संस्कृत

स्त्री० = स्त्रीलिंग

हा० = हाड़ौती

गया है कि हाड़ोती में लिखित साहित्य-जैसी कोई चीज नहीं मिलती और इस सम्बन्ध में जो थोड़ी बहुत उपलब्ध लिखित रूप में हुई भी है तो उसका ऐतिहासिक मूल्य उतना नहीं है जितना प्रचलनात्मक मूल्य है।

इस शोध-प्रबंध का विषय तो नया है ही प्रतिपादन शैली भी मौलिक है। प्रबंध का प्रत्येक अध्याय कुछ न कुछ मौलिक उद्भावनाओं को लेकर चला है। यद्यपि अनुभूति के महत्व की उपेक्षा भी नहीं की गई है किन्तु विषय-विस्तार के भय से प्रतिपादन में परिचयात्मकता ही ध्यान में रखी गई है। फिर भी जो स्थल और उप-विषय गंभीरता की अपेक्षा रखते थे उनको उससे वंचित नहीं रखा गया है। अतएव गंभीरता और परिचयात्मकता का सामंजस्य करके यहां औचित्य का निर्वाह किया गया है।

'हाड़ोती बोली और साहित्य' पर इतने विस्तार से विचार यह पहली बार किया जा रहा है। 'हाड़ोती बोली' पर तनिक विस्तार से विचार तो डा० ग्रियर्सन ने 'भारतीय भाषा सर्वेक्षण' में किया है, पर वह भी दो पृष्ठों में (पृष्ठ २०३ व २०४ में) समाप्त हो गया। इसी पर प्रासंगिक विचार विभिन्न पुस्तकों में मिलता है, जिनके विस्तार को पृष्ठों में न आंका जाकर पंक्तियों से आंकना ही अधिक संगत होगा। डा० डब्ल्यू० एस० एलन ने 'हाड़ोती-बोली' का विस्तृत अध्ययन किया था जो 'एस्पिरेशन इन हाड़ोती नोमीनल' लेख में प्रकट हुआ और एक अन्य लेख 'सम फोनोलोजिकल करेक्टरस्टिक्स आव राजस्थानी' में राजस्थानी ध्वनियों पर विचार किया जिसमें अधिकांशतः हाड़ोती ध्वनियों पर ही विचार हुआ है। साहित्य पर तो विचार लगभग हुआ ही नहीं। दो-एक पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा २–४ लेख हाड़ोतीगीतों पर लिखे गये हैं।

इस शोध प्रबंध के आरंभ में एक हाड़ोती मानचित्र दिया गया है जिसमें डा० ग्रियर्सन द्वारा दिये गये मानचित्र से तनिक हेर-फेर किया गया है। इस हेर-फेर का आधार सन् १९५१ की जनगणना में प्रकाशित आंकड़े तथा स्वयं लेखक के घूम कर सीमा-निर्धारण करने के प्रयास रहे हैं। मानचित्र में उत्तरी तथा दक्षिणी हाड़ोती क्षेत्रों को दिखाने का प्रयास भी सर्वथा मौलिक तथा प्रथम है।

समस्त प्रबन्ध के दो खंड हैं—हाड़ोती बोली खंड और हाड़ोती साहित्य-खंड। प्रथम खंड का प्रथम अध्याय 'प्रवेशक' है इस अध्याय में 'हाड़ोती' शब्द के मूल 'हाड़ा' शब्द पर ऐतिहासिक और भाषा वैज्ञानिक विचार हुआ है। तत्पश्चात् यह निर्णय करने का प्रयास किया गया है कि हाड़ोती शब्द कैसे बना और इसका बोली रूप से प्रचलन कब से आरंभ हुआ। सन् १९५१ की जन-गणना से हाड़ोती भाषी जनसंख्या को देखकर हाड़ोती का सीमा निर्धारण भी हुआ है। डा० ग्रियर्सन ने हाड़ोती

के अंतर्गत 'सोपरी' को माना है, पर यहां उसे हाड़ौती से भिन्न बोली प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'हाड़ौती ध्वनियां' है। इस अध्याय में हाड़ौती ध्वनियों पर ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से विचार हुआ है जिसमें हाड़ौती के स्वर तथा व्यंजन के उच्चारण विचारणीय बने हैं। हाड़ौती में मिलने वाले स्वर-संयोग तथा व्यंजन-संयोग भी इसी अध्याय में दिये गये हैं। अंत में व्यंजन-संयोग तालिका दी है।

तीसरा अध्याय, ध्वनि-शिक्षा और लिपि पर लिखा गया है। ध्वनिशिक्षा में हाड़ौती के 'कक्का' पर विचार हुआ है। हाड़ौती 'कक्का' संगीत और चित्रकलाओं का समन्वित रूप है। उदाहरण रूप में, जब हाड़ौती-भाषी 'ततो तम्बोली तांबो' कहता है, तो इसे गाकर तो कहता ही है, पर शब्दार्थबोध के साथ इससे चित्र भी बनता है कि 'त' की आकृति तम्बोली के ताम्बूल के समान है। लिपि पर विचार करते समय यह बताया है कि यह 'मोड़ी' से विकसित है और उस पर गुजराती लिपि का भी प्रभाव है जो कुछ वर्णों में देखा जा सकता है। हाड़ौती में 'सीधो' मिलता है, जो ध्वनिवर्गीकरण का पर्याय है। इसका आधार 'कातंत्र रूपमाला' रहा है। सीधा और कातंत्रसूत्रों के समानान्तर उद्धरण देकर यह स्पष्ट किया गया है कि शब्द के अत्यधिक प्रयोग से उसमें कितना ध्वनि-परिवर्तन होता है।

चौथा अध्याय हाड़ौती रूप-तत्व का है। इसमें प्रयत्न रहा है कि हाड़ौती बोली की कोई महत्वपूर्ण विशेषता अनुल्लिखित न रह जाये। हाड़ौती पूर्वसर्ग और प्रत्यय क्रमशः 'क' और 'ख' भागों में है। प्रत्यय भाग के कृदन्तों और तद्धितों का वर्गीकरण मौलिक है। 'ग' भाग संज्ञा का 'घ' लिंग का तथा 'ङ' वचन का है। हाड़ौती की लैंगिक प्रक्रिया हिन्दी के समान जटिल है, पर रूप की दृष्टि से उसकी अपनी विशेषता है, जिस पर प्रकाश डाला गया है। हाड़ौती के दो वचनों का प्रयोग विविध शब्दों के साथ किस प्रकार होता है, यह 'वचन' भाग का प्रतिपाद्य विषय है। 'च' व 'छ' भाग 'कारक' तथा 'परसर्ग' के हैं। हाड़ौती कारक-रचना में 'नै' परसर्ग की व्याप्ति रोचक विषय है जिस पर इस अंश में विचार हुआ है। 'ज' भाग सर्वनाम का है। हाड़ौती सर्वनाम का वर्गीकरण तथा उनकी रूप-रचना पर इस अंश में विचार हुआ है। 'झ' अंश में हाड़ौती विशेषणों तथा विशेष्यों का ध्वनि साम्य अंश रोचकता लिए हुए है। 'ञ' भाग हाड़ौती 'क्रियापद' का है। सिद्ध तथा साधित धातुओं का वर्गीकरण डा॰ चटर्जी से लेकर हाड़ौती धातुओं को इन वर्गों में रखा है। इसी अंश में अकर्मक-सकर्मक क्रिया व कर्तृ-कर्म वाच्यों पर विचार हुआ है। हाड़ौती की 'नामधातु' तथा अनुकरणात्मक धातु के अंश रोचक हैं। हाड़ौती काल-रचना में वर्तमान तथा भूत कृदन्तों तथा सहायक क्रिया

'ये' का महत्वपूर्ण स्थान है, जिस पर विस्तार से विचार हुआ है । 'ट' अंश 'प्रत्यय' का है जिसमें वर्गीकृत प्रत्ययों को दिया गया है ।

पांचवां अध्याय हाड़ौती वाक्य-रचना पर है । इसमें हाड़ौती के वाक्यों में शब्द-स्थापना तथा अन्य विचारणीय विषय है । 'शब्द-स्थापन' में हाड़ौती में पाये जाने वाले सभी प्रकार के वाक्य इस दृष्टि से विचार के विषय बने हैं । 'अन्वय' में कर्ता-क्रिया अन्वय, कर्म-क्रिया-अन्वय, विशेषण-विशेष्य अन्वय, सम्बन्ध-कारक परसर्ग तथा भेद्य अन्वय आदि पर विचार हुआ है, जो मौलिक है ।

'हाड़ौती बोली और साहित्य' का द्वितीय खंड 'साहित्य-खंड' है । हाड़ौती साहित्य लिखित साहित्य न होकर लोगों की जिह्वा पर बैठा साहित्य है—लोक साहित्य है । अतः उसका संग्रह करना पड़ा है । संग्रह-कार्य में सबसे अधिक बाधक स्त्रियों की संकोचशील प्रवृत्ति बनी है । अतः किसी स्त्री के किसी गीत को सुनकर लिखना अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ । लोक-गाथाओं के संग्रह में लोगों के अंध-विश्वास अत्यधिक बाधक हुए । 'तेजाजी' को सुनकर इन पंक्तियों के लेखक को विधिवत् नारियल-मिठाई से सर्पविष का पूजन करना पड़ा । ब्राह्मण होने के नाते 'हीरामनजी' को प्राप्त करने में भी मुझे विशेष कठिनाई आई, क्योंकि वक्ताओं या गायकों का ऐसा विश्वास है कि हीरामनजी पर ब्राह्मण की 'छोत' पड़ती है । लोकनाट्यों के संग्रह में मुझे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, उनका अनुमान इन तथ्यों से लग जावेगा । अंता के एक सेठ ने अपनी पत्नी को आजीवन इसलिए छोड़ दिया कि उसने अपने भाई को किसी नाटक की पोथी की प्रतिलिपि सेठ की अनुपस्थिति में कर लेने दी थी । दूसरे, एक ब्राह्मण ने जब सहज उदार प्रवृत्ति के फलस्वरूप 'रामलीला' नाटक की प्रतिलिपि एक अन्य व्यक्ति को कर लेने दी तो लोक में एक घृणा-सूचक छंद ही प्रचलित हो गया—

गरू सांचों छे मांगीलाल ।
दाल बाट्यां में बोयो ख्याल ।

लोकोक्तियों के संग्रह में तो पैंसिल-डायरी ने समय समय पर योग दिया, पर पहेलियों के संग्रह में स्त्रियों की संकोचमयी प्रवृत्ति का फल मुझे भोगना पड़ा । लोक-कथाओं के समुद्र में से तो कुछ ही को सुनकर बटोरने का साहस और समय मेरे पास था ।

प्रथम अध्याय में लोक साहित्य को परिभाषित करके उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है । इसी अध्याय में उसके विभिन्न प्रकारों को भी समझाया गया है ।

दूसरा अध्याय 'लोकगीत' का है । हाड़ौती में अनेक प्रकार के लोकगीत मिलते हैं । विवाह के गीतों में सगाई, बन्धावा, बना, लाड़ी, बीरा, सांजी, बासण, घोड़ी,

सेवरो, कामण, गाळ आदि प्रमुख हैं। जनेऊ के गीत औपचारिक अधिक हैं, पर पुत्र-जन्म के गीतों में औपचारिकताओं के साथ वस्तुस्थिति का भावात्मक चित्रण भी मिलता है। साध, जळवा, टोपी, सांठो आदि इसके प्रमुख गीत हैं। 'हालरा' या लोरियां का मनोवैज्ञानिक आधार है। बालिकाओं के गीतों की सरल तथा निश्छल लघु छंदगत अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक है। दाम्पत्य जीवन के गीतों से दिखाया गया है कि वे यहां के दाम्पत्य जीवन के वास्तविक चित्र हैं। अतः परकीया की अपेक्षा स्वकीया भाव की प्रतिष्ठा इन गीतों में है। भक्ति-विषयक गीतों में विभिन्न कुल-देवता, ग्राम-देवता, तीर्थ-देवता के गीत मिलते हैं। हाड़ौती के सती-थाड़ी के गीत अत्यन्त महत्वपूर्ण, काव्यमय और प्राचीन हैं। 'हाड़ौती गीतों की प्रगतिशीलता' में यह दिखाया गया है कि वे परंपरागत रूढ़िग्रस्त नहीं है, अपितु युग-भावना के साथ चलने वाले है। गीतों में काव्य-तत्व पर विचार रस, अलंकार, भाषा तथा संगीत के आधार पर हुआ है। 'संगीत' के अंतर्गत कुछ गीतों की स्वर-लिपि दी गई है जिससे पाठक हाड़ौती गीतों के संगीत-सौंदर्य को समझ सकें।

तीसरा अध्याय 'लोकगाथा' का है। लोक गाथाओं को दो भागों में बांटा गया है—विशाल आकारी व लघु आकारी। विशाल आकारी गाथाएं तेजाजी, परथीराज की लड़ाई और बगड़ावतों की हीड हैं और लघुआकारी हीरामन जी और रुकमणीजी को व्यावलो है। 'तेजाजी' पर विचार करते समय यह दिखाया गया है कि यह अशिक्षित जनता का 'मानस' है, 'परथीराज की लड़ाई' का स्थान इस क्षेत्र में 'आल्हा-खंड' के समान है, जिसमें युद्धों का सरस वर्णन मिलता है। 'बगड़ावतों की हीड' में अलौकिक कथाओं का चमत्कार है। सभी गाथाओं को वस्तु, नेता और रस के आधार पर देखा गया है। लघुआकारी गाथाएँ सरस और कोमल प्रसंगों पर आधारित हैं। समस्त अध्याय में गाथाओं का साहित्यिक मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

चौथा अध्याय 'लोककथा' का है जिसमें इन्हें वर्गीकृत किया है। धार्मिक व व्रत सम्बन्धी कहानियां, उपदेशात्मक कहानियां, पारिवारिक-सामाजिक कहानियां, हास्यात्मक कहानियां आदि हाड़ौती में मिलती हैं। हाड़ौती लोकगाथाओं के वक्ता और श्रोता पर विचार करने के उपरान्त कहानियों की विविध कथन-शैलियों पर भी विचार हुआ है। हाड़ौती कथाओं का आरंभ भी अनेक प्रकारों से होता है और अंत भी अनेक प्रकार का मिलता है।

पांचवां अध्याय 'लोक-नाट्य' विषयक है। हाड़ौती मे दो प्रकार के लोक नाटक हैं—खेल तथा लीला। खेलों में रंग्याहीर, ढोलामरवण, फूलांदे, सेंवरा आते हैं और लीला मे रामलीला, गोपीचन्द लीला, मोरधजलीला, फैलाद लीला और रुकमणी मंगल आते है। इनमे से अनेक नाटकों के आधार को खोजा गया है। 'मोरधज

लीला, का आधार 'जैमिनीयाश्वमेधपर्व' है– 'फैलाद लीला' का 'भागवत', 'रामलीला' का 'रामचरित्र मानस' आदि । इनमें प्रत्येक के वस्तुतत्व, चरित्र-चित्रण और रस पर भी विचार कर साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है । अध्याय के आरंभ में ही कुछ ऐसी सामान्य बातों को समझाया गया है जिनके बिना हाड़ौती नाटकों को नहीं समझा जा सकता । तानघूमकी, उसताद-परम्परा, अखाड़ा, सल्प, गणेशजी-समरबो आदि ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं । वस्तु, चरित्र, देशकाल व कथोपकथनगत-सामान्य विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है ।

छठे अध्याय में 'हाड़ौती कहावतों' पर विचार हुआ है। हाड़ौती कहावतें कई प्रकार की हैं । कृषिसम्बन्धी, समाज-चित्र-सम्बन्धी, जाति-सम्बन्धी, नारी-सम्बन्धी, धर्म और नीति-सम्बन्धी, ऐतिहासिक, शिक्षा और ज्ञान-सम्बन्धी, मनोवैज्ञानिक और विविध-इनमें से प्रत्येक प्रकार पर विचार हुआ है । इनकी रचना-विधान-गत विशेषताओं को भी इसी अध्याय में दिखाया गया है ।

सातवां अध्याय पहेलियों का है । हाड़ौती में पहेली के लिए 'पयाळी' और 'फारसी' दो शब्द प्रचलित हैं । हाड़ौती 'पयाळी' 'संस्कृत' पहेली और हाड़ौती 'फारसी' फा॰ 'फ़ारसी' के ही विकसित रूप हैं । हाड़ौती पहेलियां प्रकृति-विषयक, कृषि-विषयक, कृषीतर-व्यवसाय सम्बन्धी, गृहस्थी-विषयक आदि हैं । ये बाल, युवक और स्त्री समाज में प्रचलित हैं । इन पहेलियों के रचना-विधान को भली प्रकार समझाया गया है । कभी समानता व कभी विरोध आदि के आधार पर इनका निर्माण होता है । इनमें प्रस्तुत को परिभाषित करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है । इसी अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि इन्हें साहित्य का प्रकार मानना क्यों उचित है, यद्यपि कुछ विद्वान इन्हें काव्य का अंग नहीं मानते हैं ।

आठवां अध्याय 'सिंहावलोकन' है । इस अध्याय में प्रस्तुत विषय के अध्ययन के निष्कर्ष-स्वरूप यह बताने का प्रयत्न किया है कि हाड़ौती बोली और साहित्य समस्त भारत की संस्कृति और सभ्यता का ही एक रूप है । इसलिए इसमें समस्त आसपास के साहित्य और भाषा से पार्थक्य नहीं मिलता, एकता है । विशेष रूप से हाड़ौती साहित्य और भाषा का सम्बन्ध मध्य-देश से है । इसलिए आज भी कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जो किसी प्राचीन में दोनों की एकता की परिचायक हैं । अतः इस साहित्य की रक्षा होनी चाहिये ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को पूज्य डा॰ फतहसिंहजी के चरणों में बैठकर लिखा है उन्हीं के विद्वत्तापूर्ण निर्देश और प्रेरणा के फलस्वरूप यह इस रूप में प्रस्तुत है । डा॰ दशरथ सिंहजी शर्मा का स्नेह संवलित मार्ग-दर्शन मुझे अपने इष्टोत्साह में संभावना

रहा है । चुन्नीलाल भायाणी, डा० बाबूराम सक्सेना तथा डा० मथुरालाल शर्मा ने भी समय-समय पर मेरी अनेक शंकाओं का समाधान ऐसे समय में किया है जब मैं हतोत्साहित हो जाता था । मैं इन सभी विद्वानों का हृदय से आभार स्वीकार करता हूं । डा० एलन की प्रेरणा से ही मेरा छोटा सा हस्तलिखित लेख 'हाड़ौती-बोली' यह रूपाकारता ग्रहण कर सका है । इनके अतिरिक्त मेरे अनेक विद्यार्थियों ने साहित्य-सामग्री-चयन करने आदि में विशेष योग दिया है । वे मेरे हैं इसलिए उन्हें क्या दूं, उन्होंने जो किया, जो दिया उसका प्रतिदान हो नहीं सकता है ।

अंत मे, मैं उन सभी विद्वानों के प्रति आभार-प्रदर्शन करता हूं जिनकी पुस्तकों से मुझे सहायता मिली है ।

—लेखक

भूमिका

आजकल वैज्ञानिक गवेषणाओं के साथ-साथ दर्शन, इतिहास, समाज-शास्त्र राजनीति शास्त्र आदि अनेक विषयों पर धड़ाधड़ गवेषणाएँ हो रही हैं और देश-विदेश के अनेक शिक्षालयों एवं विश्व-विद्यालयों में शोध-प्रबन्ध लिखे जा रहे हैं। परिणामतः अनेक अच्छी कृतियां प्रकाश में आ रही हैं। स्वतत्रता के पश्चात् भारत में भी शोध-कार्य बड़ी तेजी से प्रगति कर रहा है। इस प्रगति का श्रेय भाषा और साहित्य ने भी प्राप्त किया है। देश की प्रमुख भाषाओं में, जिनमें साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक शोध-कार्य ने आशातीत प्रगति की है, हिन्दी का नाम प्रमुख है।

हिन्दी के क्षेत्र में अनेक विश्व-विद्यालयों में कई सौ शोधार्थियों को शोध उपाधियां प्राप्त हो चुकी हैं और कितने ही शोधार्थी शोध-मार्ग पर बड़ी दृढ़ता से चले आ रहे हैं। विश्वास किया जाता है कि उपाधि प्राप्त विद्वानों की संख्या एक दो वर्ष में ही सहस्त्रोपरि हो जावेगी। सबसे अधिक कार्य साहित्य से सम्बन्धित अनेक विषयों पर हुआ है। भाषा-विज्ञान के अनेक शोध-कार्यों ने भी प्रकाशित होकर गौरव प्राप्त कर लिया है किन्तु अभी भाषा के क्षेत्र में अधिकाधिक कार्य की आवश्यकता है। साथ ही हिन्दी क्षेत्र की उन बोलियों पर भी शोध-कार्य होना चाहिये, जिनका हिन्दी से निकट सम्बन्ध है। इस दृष्टि से राजस्थान की अनेक बोलियां विशेष रूप से अव-धेय हैं। राजस्थानी भाषा पर विदेशी विद्वानों की लेखनी से कुछ बहुत अच्छा काम हो चुका है, फिर भी उस कार्य को आगे बढ़ाने की आवश्यकता बनी हुई है। यहां की बोलियां विदेशी लोगों की अपनी बोलियां न होने के कारण, कुछ भूलें भी हो गई हैं जो अपने संशोधन की अपेक्षा रखती हैं। ग्रियर्सन आदि विद्वानों का कार्य सराहनीय होते हुए भी परिचयात्मक ही है। उन्होंने एक मार्ग निर्दिष्ट कर दिया है जिसको सुतल और पक्का बनाने के लिए स्थानीय विद्वानों का प्रयास आवश्यक है।

डा० कन्हैयालाल शर्मा ने भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रयास किया है। इसका मूल्य ग्रन्थ के कुछ शीर्षकों को पढ़कर कदापि नहीं आंका जा सकता, किन्तु अध्ययन और योग्यता की दृष्टि से वह छि[illegible] भी नहीं सकता। लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध "हाड़ोती बोली और साहित्य" को बड़े [illegible] से तैयार किया है। इस कृति ने डा० शर्मा को पी-एच. डी. [illegible] तथा इसका उत्तरार्द्ध राजस्थान [illegible] रुपये से पुरस्कृत किया है बातें [illegible] श्रम सफल और

प्रतिमा प्रकाशित हो गई है । शर्मा जी ने भाषिक साधनों के अभाव को श्रम से पूरा किया है, विद्वानों की दृष्टि में यह बात भी बड़े महत्व की है । विपुल श्रम और अदम्य मनोयोग लेखक की प्रतिभा से दीप्त होकर प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण को समृद्ध बनाने में बड़े सफल सिद्ध हुए हैं ।

"हाड़ौती-बोली और साहित्य" पर अभी तक किसी विद्वान की व्यापक और पैनी दृष्टि नहीं गई थी । जयपुरी, हाड़ौती आदि बोलियों का परिचयात्मक अध्ययन आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक प्रयत्नों में कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर सकता है इसलिए विदेशी विद्वानों के प्रयत्नों को केवल परिचयात्मक महत्व ही दिया जा सकता है । इस प्रबन्ध के लेखक ने न केवल नया प्रयत्न किया है वरन अपने कार्य को एक नई दिशा भी दी ।

यह प्रबंध 'बोली-खण्ड' और 'साहित्य-खण्ड' नाम से दो प्रमुख भागों में विभक्त है । 'प्रवेशक' में 'हाड़ा' शब्द को व्युत्पत्ति के साथ 'हाड़ौती' शब्द की व्युत्पत्ति देकर हाड़ौती प्रदेश का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है और फिर क्षेत्र और सीमाओं के विवेचन के साथ बोली का वर्गीकरण किया गया है । यह हो सकता है कि कुछ विद्वान लेखककृत 'हाड़ा' शब्द की व्युत्पत्ति से सहमत न हों; फिर भी इस कृति में जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये हैं उनका ऐतिहासिक और भाषा-वैज्ञानिक महत्त्व है ।

लेखक ने बोली के ध्वनि-तत्व और रूप-तत्त्व का बड़े विस्तार से विवेचन किया है । मैं 'ध्वनि-शिक्षा और लिपि' को लेखक का मौलिक अध्ययन कहूं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

"रूप-तत्त्व" भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की परम्परागत भूमिका पर प्रस्तुत किया गया है फिर भी उसमें विषय की पकड़ और गवेषणा की गम्भीरता विद्यमान है । इस खण्ड में सभी विवेचनाएं लेखक की पैठ और मीमांसिका बुद्धि का द्योतन करती हैं, किन्तु विशेषण और क्रिया-पद की विवेचनाएँ मेरे ध्यान का विशेष आकर्षण बन गई हैं । इस खण्ड के अध्ययन से मुझे बड़ी मानसिक तृप्ति मिली है, किन्तु शब्द-स्रोत एवं अर्थ विवेचना का अभाव मुझे विशेष रूप से खल रहा है । सामान्यतया इस अभाव की पूर्ति लेखक ने अपनी योग्यता से यत्र-तत्र करदी है, किन्तु इस प्रकार के अध्ययन को इस-जैसी कृति में उचित स्थान न मिलना एक खलने वाला अभाव तो है ही ।

इस प्रबन्ध का दूसरा भाग 'साहित्य-खण्ड' है । लेखक ने इस खण्ड में सम्ब- [illegible] संकलन और व्यवस्थापन में अमोघ श्रम किया है । ऐतिहासिक, [illegible] अनेक विषयों को लोक-जीवन के गहन-गह्वरों से उठाकर

उन्हें लेखक ने जिस रीति, ढंग और श्रम से प्रतिष्ठापित किया है उसमें लेखक की साहित्यिक रुचि एवं गवेषणा-प्रवृत्ति निहित है। उपेक्षित कांच के टुकड़ों में भास्वर रत्न-खण्ड भी मिल सकते हैं, इस काम के लिए एक रत्न-पारखी की दृष्टि चाहिये। डा० कन्हैयालाल शर्मा ने लोक-जीवन से सम्बन्धित साहित्यिक रत्न-खण्डों की परीक्षा करके उनको न केवल अपनी कृति में प्रतिष्ठा दी है वरन लोक-साहित्य के गौरवोद्‌घाटन में एक महत्वपूर्ण योग दिया है।

सम्पूर्ण कृति के आधार पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि "हाड़ौती-बोली और साहित्य" लेखक का एक विद्वतापूर्ण प्रयत्न है। इसमें संकलन, संचयन, व्यवस्थापन और मनन के साथ सूक्ष्म आलोचन की दृष्टि है। मैं कामना करता हूं कि इस कृति के विद्वान लेखक से प्रेरणा लेकर राजस्थान के अन्य उत्साही मनीषी अपने अपने क्षेत्र की भाषा और उसके साहित्य के गवेषण और विवेचन के मार्ग में दृढ़ता से पद-प्रक्षेप करेंगे।

अरुण–कुटीर

१६–८–६५

—सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'

बोली खण्ड

प्रवेशक

'हाड़ा' शब्द की व्युत्पति

'हाड़ौती' शब्द 'हाड़ा' शब्द से बना है। 'हाड़ा' शब्द की व्युत्पत्ति विवादग्रस्त है। अभी तक इस सम्बन्ध मे कोई संतोषजनक मत प्रतिपन्न नहीं हो पाया है। अनेक किंवदन्तियों को लेकर इतिहासकारों ने अपनी-अपनी कल्पनाएं दौड़ाई हैं और उनमें भाषा-वैज्ञानिक व्युत्पत्तियों का आश्रय लेने का प्रयत्न किया गया है। इन मतों की सम्यक् विवेचना और आलोचना करने पर ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है।

किंवतन्तियां : अनेक किंवदन्तियों मे से दो को अधिक आश्रय मिला है। उनमें से एक 'अस्थि' शब्द से सम्बन्ध रखती है और दूसरी 'हिडि' धातु से सम्बन्धित है। अस्थि सम्बन्धी किंवदन्ती यह है—कोई राजा इष्टपाल था, जो युद्ध में घायल होकर जर्जर और संज्ञा-शून्य हो गया था। देवी ने उस पर अनुग्रह करके उसकी जर्जर एवं भग्न अस्थियों को जोड़कर अमृत छिड़क कर पुनर्जीवित कर दिया था।

'हिडि' धातु से सम्बन्धित दूसरी किंवदन्ती यह है कि हाड़ा जाति के पूर्वज अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए तथा उपयुक्त अवसर प्राप्त करने के लिए इधर-उधर घूमते फिरते थे। साहस, बल और आक्रमणों से अपनी जीविका उपार्जन करते थे। एक स्थान पर नियत रूप से न रहकर वे प्रायः घूमते ही रहते थे। उनमें से एक हाड़ा राव देवा ने अपने पराक्रम के बल पर बूंदी का राज्य मीनों से छीन लिया था।

ऐतिहासिक : इन दोनों किंवदन्तियों का उपयोग विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है। पहली किंवदन्ती को लेकर श्री सुखसंपति राय भंडारी 'भारत के देशी राज्य' मे लिखते हैं' 'ई० स० १०२५ मे रामदेव के पूर्वज इस्तिपाल और मुसलमानों के बीच युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में इस्तिपाल बहुत घायल हुए। उनकी तमाम हड्डी-पसली जर्जरित हो गयी। इस समय उनकी कुल देवी ने आकर उन पर अमृत छिड़क दिया, जिससे पुनः जीवित हो गये। इसी समय से उनके वंशज हाड़ा कहलाने लगे'[१] श्री भंडारी ने अपने इतिहास में उक्त किंवदन्ती का उपयोग कर्नल टॉड के आधार पर किया प्रतीत होता है। किन्तु टॉड ने[२] इष्टपाल (Istbpal) शब्द का प्रयोग किया है।

१—भंडारी, भारत के देशी राज्य-बूंदी राज्य का इतिहास, पृष्ठ ११।

२—टॉड, एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ४५४।

इसी को भंडारी ने हिन्दी में इतिहास कर दिया है। इतिहास शब्द सार्थक प्रतीत नहीं होता और न उन्होंने यही स्वीकार किया है कि यह शब्द उन्होंने कर्नल टॉड से लिया है। 'इतिहास' शब्द व्यर्थ प्रतीत होता है और 'हड्डास' का ही अशुद्ध रूप है, जो सार्थक है तथा जिसकी पुष्टि कर्नल टॉड द्वारा प्रयुक्त नाम द्वारा होती है। कर्नल टॉड भी इस किंवदन्ती का आधार गोविन्दराम भाट द्वारा हाड़ा राजवंशावली को बतलाते हैं। जो हो, यह किंवदन्ती कपोलकल्पना से सम्बद्ध है। इसमें सत्य का कितना अंश है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्वर्गीय श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा इसे मनगढ़न्त मानते हैं। वे कहते हैं कि भाटों ने 'हाड़ा' शब्द को हाड़ (हड्डी) से निकला हुआ अनुमान कर हड्डी के संस्कृत रूप अस्थि से अस्थिपाल नाम गढ़न्त कर अस्थिपाल से हाड़ा नाम की उत्पत्ति होना मान लिया है। यदि वास्तव में उस पुरुष का नाम अस्थिपाल होता, तो उसके वंशधर हाड़ा कभी नहीं कहलाते।[1] उनके अनुसार 'हाड़ा' शब्द का सम्बन्ध 'अस्थि' से न होकर 'हरराज' से है। 'हरराज' हाड़ावंश के मूल पुरुष थे जिसका उल्लेख मैनाल के शिलालेख और "नैणसी की ख्यात' में मिलता है। शिलालेख उसका नाम हरराज बताता है और 'नैणसी' हाड़ा।[2] श्री ओझा के मत में ख्यात और शिलालेख का ऐतिहासिक आधार होने से यह अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है। कोटा राज्य के इतिहास लेखक डा० मथुरालाल शर्मा ने[3] भी माणिकराय से छठी पीढ़ी में उत्पन्न हरराज या हाड़ाराव से ही हाड़ावंश की उत्पत्ति मानी है। ठीक वैसे ही हरराज या हाड़ाराव के नाम पर चौहान वंश की एक शाखा हाड़ावंश के नाम से चल पड़ी जैसे सूर्यवंश बाद में रघु के नाम पर रघुवंश कहलाने लग गया था।

भाषा-वैज्ञानिक : इसके अतिरिक्त 'हिंडि' धातु को लेकर जो मत चल रहा है उसमें ऐतिहासिक और भाषा-वैज्ञानिक दोनों मतों का समावेश दीख पड़ता है। चौदहवीं शताब्दी के आस-पास 'हाडी' और 'हाड़ा' शब्दों का प्रयोग परवर्ती अपभ्रंश में और देशभाषाओं में भी घुमक्कड़ या घूमने वालों के लिए प्रयुक्त होता था।[4] ऐसा माना जाता है कि हाड़ा जाति के पूर्वज उपयुक्त अवसर की खोज में इधर-उधर फिरते थे। अतएव उन लोगों को 'हाड़ा' अभिधा प्रदान की गई थी। इस प्रकार की अभिधाएं

१—ओझा, राजपूताने का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ५५५।

२—वही

३—शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ५६।

४—चौहटे चपंतामंणि भड़ो, हाडी भारउ हाथि।

इस पंक्ति में प्रयुक्त 'हाडी' शब्द अर्थ की दृष्टि से बहुत स्पष्ट नहीं है, पर फिर भी कुछ विद्वान इससे 'घूमने' का अर्थ ग्रहण करते हैं।

आज भी परिवारों को मिलती दिखाई पड़ती हैं; जैसे मुसमरिया, किल्लिया, आदि। जो हो, इस मत में ओझाजी का मत भी समाविष्ट हो सकता है क्योंकि वे यह मानते हैं, "हाड़ा नाडौल से मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में आ रहे थे फिर उनका अधिकार बंबावदे पर हुआ। वहां की छोटी शाखा के वंशज देवा (देवीसिंह) ने महाराणा हम्मीर की सहायता से मीनों से बूंदी ली तब से उनकी विशेष उन्नति हुई और उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया"।[1] इससे स्पष्ट है कि बूंदी-विजय से पूर्व हाड़ा-जाति के पूर्वज इधर-उधर घूमते फिरते थे। इस प्रकार इस मत में 'हिडि' धातु और हरराज दोनों का संबंध हाड़ा से बन जाता है और यह बिल्कुल संभव है कि चौहानों की इस शाखा को हाड़ा की अभिधा लोगों द्वारा दी गई जो बाद में उनके द्वारा भी अपना ली गई है। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'हाड़ा' शब्द का प्रयोग वंश-विशेष के लिए ११ वीं शताब्दी के पश्चात् ही हुआ होगा।

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हाड़ा राजपूतों की शक्ति-सम्पन्न शाखा का उदय ११-वीं शताब्दी के आस-पास हुआ। हरराज इस शाखा में एक महान वीर पुरुष थे, जिनके नाम से यह वंश हाड़ा वंश कहलाया। हरराज के वंश के व्यक्ति अपने उपयुक्त अवसर की खोज में घूमते रहते थे और जब बूंदी राज्य की स्थापना हुई तब से इनकी विशेष उन्नति हुई।

'हाड़ौती' शब्द की भाषा-वैज्ञानिक व्युत्पत्ति

'हाड़ा' शब्द की उपलब्धि के उपरान्त 'हाड़ौती' शब्द की व्युत्पत्ति विचारणीय विषय है। जब हम 'हाड़ौती' शब्द पर विचार करते हैं तो 'हाड़ा' और 'हाड़ौती' में सम्बन्ध स्थापन-विषयक अनेक कल्पनाएं आती हैं :

(१) 'हाड़ा+वर्ती' से : यदि हम शिलालेख गत 'हाड़ावटी'[2] शब्द को ही आधार मानकर चलें तो उसकी निर्मिति हाड़ा-वर्ती से दीख पड़ती है। इस यौगिक शब्द का अर्थ होगा—ऐसी भूमि जहां हाड़ा निवास करते हैं या शासक हैं। यदि हम 'हाड़ा-वर्ती' शब्द के 'वर्ती' अंश का विकास-क्रम कल्पना करें तो वह इस प्रकार होगा, वर्ती > वट्टी > वटी। इस प्रकार 'हाड़ावर्ती' शब्द से 'हाड़ावटी' शब्द बना प्रतीत होता है।

(२) 'हाड़ा+वती' से : 'हाड़ावती' शब्द में पाया जाने वाला 'वती' प्रत्यय संस्कृत 'मतुप्' या 'मत्' प्रत्यय से बना है और इस प्रत्यय के स्त्रीलिंग का रूप है। स्थान-वाचक 'मतुप्'[3] प्रत्यय का प्रयोग अमरावती, माहिष्मती आदि शब्दों में मिलता

१—ओझा, राजपूताने का इतिहास, दूसरी जि०, चौथा अध्याय, पृष्ठ ४४२

२—देखिये-प्रस्तुत प्रबन्ध, पृ० ६ पर।

३—तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्, अष्टाध्यायी ५, २, ९४

है। यदा-कदा शिक्षित वर्ग की जिह्वा पर रहने वाले 'हाड़ावती' या 'हाड़ावट्टी' शब्द में अधिक ध्वनि-परिवर्तन की संभावनाएँ नहीं थीं। हाड़ोती ∠ हाड़ाउती ∠ हाड़ावती शब्द का विकास-क्रम अति सरल है। केवल 'व्' अर्द्ध स्वर का सम्प्रसारण होकर अपने से पूर्व स्वर से संधि को प्राप्त होकर 'ओ' ध्वनि में परिणत हो गया, जिसका लिखित रूप 'हाड़ोती' भी मिलता है और जिस पर 'हाड़ावती' के उच्चारण का प्रभाव है। वर्तमान 'हाड़ोती' या 'हाड़ोती' शब्द जन-साधारण की बोली से बना शब्द है। चारणों की भाषा में तो आज भी 'हड्डवटी' या 'हाड़ावटी' रूप ही सुरक्षित है।

(३) 'हाड़ा+आवर्त+ई' से : हाड़ोती शब्द पर दृष्टिपात करने के साथ ही हमारा ध्यान 'आर्यावर्त' शब्द पर भी आता है, जिसमें आर्य+आवर्त शब्दों का यौगिक रूप है (आर्या आवर्तते अत्र)। देश वाचक 'आवर्त' शब्द 'हाड़ा' शब्द से मिलकर 'हाड़ा-आवर्त' या 'हाड़ावर्त' शब्द की सृष्टि कर सकता है, जिसमें इस प्रकार ध्वनि-परिवर्वतन कल्पना किया जा सकता है—हाड़ावर्त 7 हाड़ावत्त 7 हाड़ावत 7 हाड़ाऊत 7 हाड़ोत या हाड़ौत। और जिस प्रकार गुजरात की भाषा गुजराती, बंगाल की बंगाली है, उसकी प्रकार 'हाड़ोत' की भाषा हाड़ोती कहलायी।

(४) 'हाड़ा+ओत्+ई' से : हाड़ोती शब्द 'हाड़ौत्' शब्द से बना प्रतीत होता है। यह 'हाड़ौत्' शब्द अपत्य-वाचक 'ओत्' प्रत्यय को 'हाड़ा' शब्द के साथ जोड़ने से निष्पन्न हुआ है। ओत्, ऊत्, वत् आदि अपत्य-वाचक प्रत्यय सं० पुत्र 7 प्रा० पुत्त 7 अप० उत्त 7 राज० ऊत्, वत्, ओत् से बने हैं और इनका प्रयोग अनेक शब्दों के साथ देखा जाता है;[१] यथा, चूड़ावत, शेखावत आदि। यद्यपि 'हाड़ौत्' शब्द न तो सुनने में आता है और न किसी पुस्तक में ही लिखित रूप में रक्षित है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'हाड़ोती' शब्द के निर्माण में 'हाड़ौत्' शब्द की चेतना ने कार्य किया है, जो समान ध्वनि तथा अर्थवाची शब्दों से उत्पन्न हुई होगी। अतः इस शब्द की कल्पना निराधार और अतर्क-सम्मत नहीं प्रतीत होती है। इसी अर्थ में प्रयुक्त अन्य शब्द लोकभाषा में प्रचलित थे और उन्हीं शब्दों के आधार पर राज्यों तथा बोलियों के नामकरण हो रहे थे; जैसे शेखावाटी, तोरावाटी आदि। इस प्रकार 'हाड़ोती' शब्द का निर्माण किसी 'हाड़ौत्' शब्द के आधार पर हुआ है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त चारों कल्पनाओं में से चौथी कल्पना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है। प्रथम तीन कल्पनाओं के मूल में ऐसे प्रत्ययों का आश्रय खोजा गया है जो संस्कृत के हैं और जो उस समय लोक-भाषा में प्रयुक्त नहीं होते होंगे, जब हाड़ोती

१—नाम वाचक शब्द रै आगै 'ओत, वत' इत्यादि प्रत्यय लगावण सूं अपत्य वाचक बणै है यथा—रामोत, जसवंत सिंहोत, चांपावत, ऊदावत इत्यादि। देखिये—पं० रामकरण शर्मा-मारवाड़ी व्याकरण, पृष्ठ, ११७

प्रदेश का निर्माण हो रहा था। यह काल विक्रम की तेरहवीं शताब्दी था, जब रावदेवा ने बूंदी राज्य की स्थापना की थी। इस समय डिंगल में काव्य रचना हो रही थी और लोक तथा काव्य भाषा प्राकृत और अपभ्रंश की अवस्थाओं को पार कर चुकी थी। अतः इस काल का प्रत्यय-विधान संस्कृत का नहीं हो सकता। देशज 'हाड़ा' शब्द के साथ किसी संस्कृत प्रत्यय की कल्पना उस समय युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होती जब अन्य शब्दों के साथ दूसरे प्रत्ययों की क्रिया स्पष्ट दिखाई देती है। इसलिए 'हाड़ा' शब्द के साथ वर्ती, वटी या आवर्त शब्दों का सम्बन्ध-स्थापन ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के प्रतिकूल प्रतीत होता है।

हाड़ौती प्रदेश का नामकरण

'हाड़ौती' शब्द का प्रयोग प्रदेश-विशेष तथा बोली-विशेष दोनों के लिए होता है। कर्नल टॉड के आधार पर हाड़ावंश का उत्पत्ति-काल ११-वीं शताब्दी से पहले नहीं आता। टॉड के अनुसार 'हाड़ौती' उस देश का नाम है जो हाड़ा (चौहान की एक शाखा) के अधीन है, जिसमें कोटा और बूंदी के राज्यों का समावेश होता है।[1] अतः जब से बूंदी या कोटा राज्य की स्थापना हुई तब से ही हाड़ौती नाम का प्रचलन प्रारंभ हुआ होगा, इससे पूर्व नहीं। डा० मथुरालाल शर्मा 'वंश-भास्कर' के आधार पर आषाढ़ कृष्णा नवमी सम्वत् १२९८ (ई० सन् १२४१) को राव देवा का बूंदी पर अधिकार स्थापित करना मानते हैं।[2] कर्नल टॉड के अनुसार बूंदी-राज्य की स्थापना के साथ ही हाड़ौती प्रदेश का निर्माण हो गया था। यह तो स्वाभाविक है कि हाड़ा राजपूतों द्वारा प्रशासित यह भूभाग तभी से हाड़ौती कहलाने लगा होगा, पर इसका तभी से यह नामकरण हो जाने के पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते। सन् १५७६ में कोटिया भील को मारकर कोटा में माधवसिंह ने अपना राज्य-विस्तार किया था। तब दो स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो गई थी। शासन-सुविधा की दृष्टि से तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने दोनों राज्यों का नाम हाड़ौती रख दिया हो, ऐसी भी संभावना दिखाई पड़ती है।

कोटा संग्रहालय में दो मोहरें रखी हुई हैं। उनमें से एक सन् १८६० की है, जिस पर इस प्रकार लिखा हुआ है—

'मोहर एजेन्सी हाड़ौती सन् १८६०।'

तथा दूसरी मोहर सन् १८२६ की है जिस पर इस प्रकार लिखा है—

'मोहर कचहरी एजेन्ट हाड़ौती अज तरफ गवर्नर जनरल नाजिम आजम मुमालिक महरूमा सरकार दौलत मदार अंग्रेज बहादुर कं० १८२६ सन्' इन दोनों मोहरों से शासन-सुविधा के लिए हाड़ौती शब्द को गढ़ लेने की बात उचित सी प्रतीत होती है।

१—टॉड, एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ४६०।
२—शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ ५६।

कर्नल टॉड का 'एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान' का प्रकाशन सन् १८१२ में हुआ जिसमें कोटा तथा बूंदी के सम्मिलित राज्यों को हाड़ावती या हाड़ौती की संज्ञा दी गई है।[1] यह भी डिंगल मोहर से बाद की रचना है।

'वंश भास्कर' का कवि 'हड्डवती' या हाड़ौती के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखता है—

> हड्डुन भरि विख्यात हुव हड्डवती यह देश।
> चहुवान कुल चक्क को रवि जहं राम नरेश।[2]

सूर्यमल मिश्रण ने इस ग्रंथ का प्रारंभ सम्वत् १८९७ (सन् १८४१) में किया। यह काल भी अंग्रेजी राज्य काल के अन्तर्गत ही आता है। फतमल ने अपने गीत में हाड़ौती शब्द का इस प्रकार प्रयोग किया है—

> फतमल सूं ही है हाड़ौतीरो राव।
> है रे टोडा की नागर बामणी।
> पाणीड़े गई थी रे तळाव।
> लसकर आयो रे हाड़ा राव को।[3]

'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में लेखक ने फतमल को संवत् १६५० से पहले का ही माना है।

'हाड़ोती' शब्द का प्राचीनतम उल्लेख सम्वत् १५१७ (सन् १४६१) के कुंभलगढ़ के शिलालेख में मिलता है—

हाड़ावटी देशतीन् स जित्वा तन्मंडलं चात्मवशीचकार।[4]

यह 'हाड़ावटी' शब्द वर्तमान 'हाड़ोती' शब्द ही है। अतः इतने प्राचीन उल्लेखों से शासन-सुविधा की दृष्टि से हाड़ौती शब्द के प्रयोग की बात निर्मूल सिद्ध हो जाती है और यह स्वीकार करके चलने की प्रेरणा मिलती है कि हाड़ा-राज्य की बूंदी में स्थापना के साथ ही शासन-सुविधा की दृष्टि से किसी नामकरण की आवश्यकता हुई होगी, तभी से पंडितों या चारणों द्वारा दिया गया नाम 'हाड़ावती' या 'हाड़ावटी' का प्रचलन हो गया होगा। इसलिए कर्नल टॉड का यह कथन प्रामाणिक प्रतीत होता है, 'राव देवा ने मीनों से बादू घाटी छीन ली और बूंदी नगर की स्थापना की तथा हाड़ावटी प्रदेश को रूपाकार प्रदान किया।'[5]

१—टॉड, एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ४६०।

२—सूर्यमल मिश्रण, वंश भास्कर, प्रथम भाग, पृष्ठ ४२।

३—माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २२४।

४—ओझा, राजपूताने का इतिहास, दूसरी जिल्द, चौथा भाग, पृष्ठ ५५।

५—टॉड, एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज ऑफ राज०, भाग २, पृ० ४६०।

कुंभलगढ़ के शिलालेख में हाड़ौती शब्द का प्रयोग 'हाड़ावटी' मिलता है। यह प्रयोग हाड़ावती शब्द का डिंगल भाषागत चारणी प्रयोग है, जिसमें ट-वर्गीय ध्वनियों का प्रचुरता से प्रयोग मिलता है। डिंगल राजस्थान की शताब्दियों पूर्व से काव्य-भाषा रही है और राजस्थान में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। बोली और काव्य-भाषा, शिष्ट समाज की भाषा और राज-दरबार की भाषा मे सदैव अंतर रहा है। शिलालेख जन-साधारण की बोलियों में कम लिखे गये हैं। आज के अभिनंदन-पत्रों के समान ही इनको भी विद्वानों द्वारा ही लिखवाया जाता था। अतः राज-दरबार के वातावरण से संपृक्त 'हाड़ावटी' शब्द का शिलालेख में प्रयुक्त होना स्वाभाविक लगता है। जनसाधारण की बोली में तो हाड़ावती शब्द ही चल रहा होगा। वही कालान्तर में हाड़ाउती, हाड़ौती या हाड़ोती रूप धारण कर गया। जहां जन-साधारण की बोली पर डिंगल का प्रभाव है वहां आज भी ऐसे शब्द विद्यमान हैं-शेखावाटी, तोरावाटी आदि।

हाड़ौती शब्द का बोली रूप में प्रयोग

इतना स्पष्ट हो जाने पर कि 'हाड़ौती' शब्द देश-विशेष के लिए प्राचीन काल से प्रयुक्त हो रहा है, इस बात के प्रमाण नहीं मिलते कि बोली रूप में इस शब्द की प्राचीनता उतनी ही है। 'ई' प्रत्यय देशवाचक शब्द के साथ जोड़कर बोली या भाषा-वाचक शब्द बनाया जाता है; यथा, गुजरात 7 गुजराती, महाराष्ट्र 7 महाराष्ट्री, बंगाल बंगाली, पंजाब 7 पंजाबी आदि। हाड़ौती में 'ई' प्रत्यय-स्वर रूप मे पहले से विद्यमान है। अतः भाषावाचक 'ई' प्रत्यय का कार्य इसमे स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देता है। इस प्रकार 'हाड़ौती'+'ई' से 'हाड़ौती' शब्द ही प्राप्त होता है, जो इस भू-भाग की बोली के लिए देशवाचक 'हाड़ौती' शब्द की व्युत्पत्ति के साथ ही प्रयोग मे आने लगा होगा।

'वंश भास्कर' का कवि सूर्यमल मिश्रण बूंदी का निवासी है और उसने अपनी रचना सम्वत् १८६७ (सन् १८४१) मे आरंभ की थी। 'वंश भास्कर' ऐसा काव्य ग्रंथ है जिसमें कवि ने अपनी विशद विद्वता और भावुकता का परिचय दिया है। यह चम्पू काव्य है, जिसमें गद्य-पद्य दोनों प्रयुक्त हुए हैं। भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ बड़ा रोचक है। साधारणतया यह डिंगल ग्रन्थ प्रतीत होता है, पर भली प्रकार अध्ययन करने के उपरान्त ज्ञात होता है कि कवि ने इसमें संस्कृत, प्राकृत, डिंगल, ब्रज-भाषा तथा मरुदेशीय भाषा का प्रयोग किया है। हाड़ौती नरेशों का गुणगान करने वाला यह कवि हाड़ौती बोली को अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं दे सका है। इससे सहज ही शंका उत्पन्न हो जाती है कि हाड़ौती नाम की किसी बोली का नामकरण उस समय तक नहीं हुआ होगा।

'हाड़ौती' का व्यवहार बोलचाल में ही रहा है। साहित्य में इसका प्रयोग होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। दो-चार हस्तलिखित पोथियों के अतिरिक्त, जो कोटा,

बूंदी और झालावाड़ के संग्रहालयों में सुरक्षित है और जिनमें से प्रत्येक ५-७ पृष्ठों से बड़ी नहीं है, इसका साहित्य उपलब्ध नहीं होता। काव्य-भाषा रूप में ब्रजभाषा और डिंगल को राजस्थान में सम्मान प्राप्त रहा है; संस्कृत और प्राकृत में भी यहाँ की साहित्य-निधि सुरक्षित है तथा मध्यदेशीय भाषा में भी पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। अतः इस कवि के लिए स्वाभाविक ही था कि अपने ग्रंथ को ऐसी भाषाओं में लिखता जिन्हें काव्य में स्वीकार किया जा चुका था। हाड़ौती बोली में लिखकर तो नवीनता की धुन में अपनी प्रतिभा को अंधकार के गर्त में ढकेलने का दुस्साहस ही होता। यही कारण है कि हाड़ौती-भाषी कवि अपने काव्य-ग्रन्थ में हाड़ौती बोली का प्रयोग नहीं कर सका।

हाड़ौती बोली शब्द का प्रयोग डा० ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में किया, जो सन् १८६४ से १६२० तक की रचना है। इस ग्रन्थ में उन्होंने भारत-भर की भाषाओं तथा बोलियों का सर्वेक्षण किया और वहां की बोलियों के प्रचलित नामों को अपनाया। इससे पूर्व भारतीय भाषाओं तथा बोलियों पर हार्नली, केलाग, बीम्स आदि विद्वानों ने विचार किया, पर उनका विचार-क्षेत्र पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी तक ही सीमित रहा। इनमें प्रसंगवश राजस्थानी बोलियों पर भी विचार किया है, पर केवल तीन बोलियों—मारवाड़ी, मेवाड़ी और जयपुरी पर ही विचार हुआ है। सन् १८७५ में लिखे गये 'हिन्दी ग्रैमर, में हिन्दी की बोलियों में हाड़ौती का उल्लेख-भर मिलता है, जिसका आधार भारत सरकार की तत्कालीन भाषा-गणना रही है।[1]

हाड़ौती बोली में सबसे प्रथम मुद्रित ग्रन्थ बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेंट' का हाड़ौती अनुवाद है। यह ग्रन्थ आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सन् १८०८ के आस-पास मुद्रित हुआ था। हाड़ौती बोली का स्वतंत्र अस्तित्व और जयपुरी से उसकी भिन्नता इतनी स्पष्ट और प्राचीन है कि तत्कालीन सीरामपुर की मिशनरी ने दोनों बोलियों में 'न्यूटेस्टामेंट' के अनुवाद प्रस्तुत किये हैं।

हाड़ौती भाषी जनसंख्या

सन् १६५१ की जनगणना के अनुसार भारत में ८१५८५६ व्यक्ति हाड़ौती बोली बोलते हैं।[2] इनमें से ८१५१६१ व्यक्ति राजस्थान के निवासी हैं। शेष में से ५५७ मध्यप्रदेश में हैं[3] और शेष १११ व्यक्ति भारत के अन्यान्य प्रान्तों में बिखरे हुए हैं। वस्तुतः हाड़ौती तत्कालीन हाड़ा नरेशों द्वारा प्रशासित भूभाग की भाषा है। अतः

१—के०, हि० ग्रै०, पृष्ठ ६६।

२—सैन्सस ऑफ इण्डिया, पेपर १, १६५४, पृष्ठ १२।

३—वही पृष्ठ ५११।

(छबड़ा) तथा झालावाड़ राज्यों में भी बोली जाती है।[1] आगे इसी का स्पष्टीकरण करते हुए वे एक-एक करके सभी राज्यों को लेकर इसका निश्चित स्थान निर्धारित करते हैं : उत्तर-पश्चिम राज्य के भाग को छोड़कर सारे बूंदी राज्य में, दक्षिणी-पूर्वी तथा दक्षिणी-पश्चिमी भूभाग को छोड़कर समस्त कोटा राज्य में, कोटा के सीमावर्ती शाहबाद और छबड़ा परगना के मध्य में, तनिक कम शुद्ध रूप में सीपरी या स्योपुरी नाम से स्योपुर परगने में, टोंक के छबड़ा परगने में तथा झालावाड़ राज्य के उत्तर में स्थित पाटन परगना में हाड़ौती बोली जाती है।

डा० ग्रियर्सन को हाड़ा राजपूतों को कोटा तथा बूंदी में प्रमुख रूप से बसे होने का भ्रम हाड़ौती नामकरण से हो गया। वस्तुतः हाड़ा राजपूत यहाँ के शताब्दियों से शासक रहे हैं, न कि यहाँ के प्रमुख निवासी हैं।

डा० ग्रियर्सन ने जिस हाड़ौती के क्षेत्र का उल्लेख किया है उसमें से सीपरी या स्योपुरी का क्षेत्र स्योपुर परगना तक नहीं हो सकता। स्योपुरी या सीपरी एक ऐसी बोली है जो हाड़ौती से भिन्न है और बुंदेली के अधिक निकट है। शताब्दियों से स्योपुर परगने के राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक व धार्मिक सम्बन्ध पश्चिम स्थित कोटा जिले से न होकर पूर्व स्थित ग्वालियर राज्य या वर्तमान मध्य-प्रदेश से रहे हैं। अतः स्योपुरी का विकास हाड़ौती से स्वतंत्र हुआ है। इसका अध्ययन हाड़ौती के अंतर्गत नहीं किया जा सकता। दूसरी बात जो इससे भी महत्वपूर्ण है वह यह है कि सन् १९५१ की जनगणना में सीपरी के सम्बन्ध में जो आंकड़े दिये गये हैं उनके अनुसार सीपरी भाषी मध्यप्रदेश में कुल ३१ व्यक्ति हैं, जो मुरैना जिले में रहते हैं। इससे सीपरी का स्वतंत्र बोली रूप से अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाता है। मुरैना जिले की कुल जनसंख्या ६३३५८१ है।

बूंदी जिले का अधिकांश भाग हाड़ौती भाषी है। उसकी तहसीलों में तालेड़ा, पाटन और बूंदी तो लगभग पूरी हाड़ौती-भाषी हैं। बूंदी तहसील के थोड़े से उत्तरी भाग में खेराड़ी बोली जाती है। इन्द्रगढ़ और नैनवा के उत्तरी अर्द्ध भाग क्रमशः खेराड़ी और नागरचाल भाषी हैं। इनके दक्षिणी भागों में हाड़ौती बोली जाती है।

कोटा जिले की सभी तहसीलों में हाड़ौती भाषी जनसंख्या की प्रमुखता नहीं है। शाहबाद तहसील में हाड़ौती भाषी व्यक्ति अत्यल्प रहते हैं, अधिकांश ब्रजभाषी हैं। किशनगंज तहसील का पूर्वी भाग–अंबरगढ़ से पूर्व का भाग–हाड़ौती क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता। इसी प्रकार चेचट और रामगंजमंडी की तहसीलें भी अधिकांश में मालवी क्षेत्र

१—ग्रि०, लि० सं० ई०, पुस्तक भाग २, पृष्ठ २०३।

२—सेन्सस ऑफ इण्डिया, पेपर १, १९५४ पृष्ठ ५१२।

के अन्तर्गत हो आती हैं। लाडपुरा, दीगोद, बड़ोद, इटावा पीपल्दा, मांगरोल, अंता, बारां, अटरू, छीपाबड़ोद, सांगोद व कनवास की तहसीलें प्रायः हाड़ौती भाषी हैं।

वर्तमान झालावाड़ जिले की केवल खानपुर तहसील पूर्णरूपेण हाड़ौती भाषी है। अकलेरा तथा झालरापाटन तहसीलों के उत्तरी भाग हाड़ौती क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। असनावर, बकानी, मनोहरथाना की तहसीलों के अधिकांश दक्षिणी भाग मालवी क्षेत्र के अंतर्गत हैं और पिड़ावा, डग, गंगधार तथा पचपहाड़ तहसीलों में सोंदवाड़ी बोली जाती हैं।

इस सीमा-निर्धारण को तनिक स्पष्ट सीमास्थ गावों को संकेतित करके बनाया जा सकता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि गांव-विशेष तक ही हाड़ौती बोली की कोई सीमा है, उससे आगे व पीछे नहीं तथापि कुछ गांव ऐसे होते हैं जहां एक बोली अपना अस्तित्व खोती सी जान पड़ती है और दूसरी अपना अस्तित्व बनाती सी प्रतीत होती है। अतः यहां सीमा-निर्धारण की दृष्टि से उन प्रमुख बड़े-बड़े गांवों को दिया जा रहा है जो हाड़ौती की सीमा के निकटतम हैं और हाड़ौती प्रदेश में हैं।

हाड़ौती का उत्तर में प्रसार खातोली, इन्द्रगढ़, नैनवा तथा गोठड़ा ग्रामों तक है। पश्चिम में ऊमर, खोनिया व डाबी प्रमुख गांव हैं। दक्षिणी सीमा झालावाड़, असनावर, अकलेरा और छबड़ा के समीप होकर गई हैं और पूर्वी सीमा छबड़ा, मंवरगढ, पीपलदा और खातोली से बनाई गई है। पूर्वोत्तर सीमा तो बहुत दूर तक पारवती नदी द्वारा भी बनाई जाती है। यह नदी हाड़ौती-क्षेत्र को सीपरी-क्षेत्र से पृथक् करती है।

हाड़ौती की सीमाएँ

हाड़ौती के उत्तर में नागर चाल और डांग-भाग बोली जाती है। उत्तर-पूर्व में स्योपुरी या सीपरी मिलती है। पूर्व में बुंदेलखंडी और मालवी बोली जाती है। दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण में मालवी का प्रसार है। दक्षिण-पश्चिम में मालवी और सौंदवाड़ी पाई जाती हैं। पश्चिम में मालवी के अतिरिक्त मेवाड़ी मिलती है और उत्तर-पश्चिमी भाग मेवाड़ी तथा खेराड़ी भाषी है। आरंभ में दिए गए मानचित्र से यह अधिक स्पष्ट हो जावेगा।

हाड़ौती बोली का वर्गीकरण

ऐसा प्रचलित है कि हर बारह कोस पर बोली बदलती है। पर जब हाड़ौती के क्षेत्र पर हम दृष्टिपात करते हैं तब हमें आश्चर्य होता है कि इस क्षेत्र के उत्तरी भाग का निवासी लगभग वही बोली बोलता है जो दक्षिण का निवासी बोलता है। इसी प्रकार पूर्व तथा पश्चिमी सीमाओं के निवासियों की बोलियों में भी उल्लेखनीय अंतर

नहीं है। फिर भी तनिक सा अंतर उत्तर तथा दक्षिण की बोलियों में मिलता है। जिसके आधार पर हम हाड़ौती को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :—

१. उत्तरी हाड़ौती।
२. दक्षिणी हाड़ौती।

उत्तरी तथा दक्षिणी हाड़ौती के बीच की सीमा चम्बल नदी द्वारा बनाई गई है। पर चम्बल के उत्तर का वह भाग, जो तत्कालीन कोटा राज्य का ही अंग था, दक्षिणी हाड़ौती के अंतर्गत ही रहेगा, क्योंकि कोटा राज्य के निर्माण के उपरांत इस भूभाग का प्रेरणा-केन्द्र कोटा रहा है। इस प्रकार वर्तमान बूंदी जिला का वह भाग जो हाड़ौती भाषी है उत्तरी हाड़ौती क्षेत्र में आता है और कोटा जिला का हाड़ौती भाषी क्षेत्र दक्षिणी हाड़ौती-क्षेत्र में आता है।

उत्तरी हाड़ौती और दक्षिणी हाड़ौती का अंतर इस प्रकार है—

(१) उत्तरी हाड़ौती में पुरुषवाचक सर्वनामों में उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष में क्रमशः 'मे' और 'ते' रूप प्रायः सुन पड़ते हैं। ये एकवचन में भी प्रयुक्त होते हैं और बहुवचन में भी, पर इनके साथ क्रिया सदैव बहुवचन की आती है। दक्षिणी हाड़ौती में क्रमशः म्हूं, तू या तूं रूप एकवचनीय हैं और म्हां तथा थां बहुवचन के रूप हैं तथा क्रिया ऐसे शब्दों के अनुरूप लिंग वचन में रहती है। उत्तरी हाड़ौती के उपर्युक्त रूपों के अतिरिक्त दक्षिणी हाड़ौती के रूप भी उत्तरी हाड़ौती क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं।

(२) दक्षिणी हाड़ौती में क्रिया के सामान्य भविष्यत् के रूप गो, गूं, गा आदि को क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ रूप में जोड़ने से सम्पन्न होते हैं, पर उत्तरी हाड़ौती में ये धातु-शब्दों के साथ सी, स्यूं आदि के योग से भी बनते हैं। इस प्रकार दक्षिणी हाड़ौती के 'तू आवेगो 'वाक्य के अतिरिक्त' तू आसी'—प्रकार के वाक्य भी मिलते हैं।

(३) जहां दक्षिणी हाड़ौती में ह्यां, ज्यां, त्यां आदि स्थानवाचक क्रिया-विशेषण प्रायः सुनने को मिलते हैं और स्थान-संकेत-वाचक क्रिया-विशेषण अठीं, उठीं, जठी भी सुने जाते हैं, वहां उत्तरी हाड़ौती में अठे, उठे, कठे, शब्द प्रायः सुनने में आते हैं। शेखावाटी में भी यही स्थान वाचक क्रिया-विशेषण प्रयुक्त होते हैं।

हाड़ौती-ध्वनियां

(क)

हाड़ौती स्वर

हाड़ौती स्वरों के उच्चारण-संकेत निम्नांकित चित्र से दिखलाए जा सकते हैं-[1]

अः हाड़ौती में 'अ' दो प्रकार का पाया जाता है—[2]
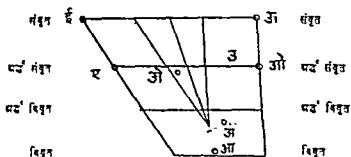
१. अः यह हिन्दी 'अ' के समान है। यह अर्द्धविवृत, ह्रस्व, मध्य स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का मध्य भाग ऊपर की ओर उठता है तथा होंठ कुछ खुल जाते हैं। डा० एलन के अनुसार इसका स्थान चित्र में बिन्दुओं द्वारा दिखाया गया है। साधारणतया यह स्वर व्यंजन के साथ ही प्रयुक्त होता है। स्वतंत्र रूप में तो इसका व्यवहार शब्द के आदि में होता है। शब्द के अंत में इसका व्यवहार नहीं होता है।

उदा०—अरड़्, अचार् अखाड़ो, अमरत्।

१—प्रस्तुत संकेत चित्र डा० एलन के पत्र तथा उनके लेख 'सम फोनोलोजिकल करैक्टरिस्टिक्स ऑफ राजस्थानी' के आधार पर दिया गया है।

२—डा० एलन ने 'वाउल डिस्ट्रीब्यूशन इन हाड़ौती' उपशीर्षक के अंतर्गत 'अ' के विविध उच्चारण-प्रकारों को, जो व्यंजन तथा स्वरों के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न होते हैं, विस्तार से दिया है। देखिये—सम फोनोलोजिकल करैक्टरिस्टिक्स ऑफ राजस्थानी, लेख '[illegible]' पृष्ठ ११-१२।

२. :ऐः यह अर्द्ध-संवृत, दीर्घ, [1] अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का मध्य-भाग कुछ ऊपर उठता है। होंठ 'ए' के उच्चारण की अपेक्षा कुछ बंद रहते हैं। स्वतंत्र रूप से इसका व्यवहार नहीं मिलता है।

उदा०—गै, भैर्, गरै (गई), दै (दई)।

:आः हाड़ौती का 'आ' मूल स्वर 'आ' के निकट है। यह विवृत, दीर्घ, मध्य-स्वर है। इसके उच्चारण में होंठ खुले रहते हैं तथा जीभ नीचे की ओर दब जाती है, किन्तु उसका पिछला भाग तनिक ऊपर की ओर उठता है। व्यंजन-रहित 'आ' केवल शब्द के आदि में मिलता है।

उदा०—आग्, आतर् (अतर), आंगण् (आंगन), आड्।

:ईः हाड़ौती का 'ई' मूलस्वर 'ई' के निकट है। यह संवृत, दीर्घ, अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में होंठ फैलते हैं तथा जीभ का अग्र भाग ऊपर उठकर कठोर तालु के निकट पहुँचता है। यह शब्द में सर्वत्र प्रयुक्त होता है।

उदा०—ईडुणी (ईंडी), ईंट्, सांई, (स्वामी), भाई, कोपनी (कोपीन)।

:उः हाड़ौती का 'उ' संवृत, ह्रस्व, पश्चस्वर है। मूल स्वर 'ऊ' से तनिक मध्य की ओर झुका हुआ है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग ऊंचा उठता है और होंठ गोल हो जाते हैं, किन्तु मूल स्वर 'ऊ' से कम गोल हो पाते हैं। स्वतंत्र रूप से इसका व्यवहार शब्द के आदि में पाया जाता है, किन्तु किसी भी रूप में इसका व्यवहार शब्द के अंत में नहीं मिलता है।

उदा०—उंदाड़े (उस दिन), सुज् (सूज), तुरत् (तुरंत)।

:ऊः हाड़ौती के 'ऊ' का उच्चारण मूल स्वर 'ऊ' के समान होता है। यह संवृत, दीर्घ, पश्च-स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग काफी ऊपर उठ जाता है तथा कठोर तालु की ओर बढ़ता है। इसमें होंठ काफी मिलकर गोलाकार

१—डा० डब्ल्यू. एस. एलन ने हाड़ौती स्वरों को शिथिल (Lax) और कठोर (Tense) प्रकारों में भी विभक्त किया है। अ तथा उ शिथिल स्वर है तथा ऐ आ, ई, ऊ, ए तथा ओ कठोर स्वर है। यद्यपि शिथिल स्वर ह्रस्व तथा कठोर स्वर दीर्घ होते हैं, पर हाड़ौती में दीर्घ स्वर से तात्पर्य विलम्बित सुर या लय से समझना चाहिये। ह्रस्व स्वर का उच्चारण अपेक्षाकृत लघु रूप में होता है।

देखिये—'एस्पिरेशन इन द हाड़ौती नोमिनल' लेख, 'स्टडीज इन लिंग्विस्टिक एनेलिसिस' पृष्ठ ८७।

रूप धारण किये रहते हैं। स्वतंत्र रूप में इसका व्यवहार शब्द के आदि तथा अंत मे होता है, मध्य में नहीं। किन्तु व्यंजन के साथ यह शब्द में सर्वत्र पाया जाता है।

उदा०—ऊंदरो (चूहा), ऊंट्, गऊं (गेहूं), बाऊं (बायां)।

:ए: हाड़ौती का 'ए' मूल स्वर 'ए' से तनिक विवृत है। यह अर्द्ध-संवृत, दीर्घ, अग्रस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का अग्र भाग काफी उठकर कठोरतालु को छूने का प्रयत्न करता है। होठ 'ई' की अपेक्षा कुछ अधिक खुल कर अंडाकृत बन जाते हैं। स्वतंत्र रूप से 'ए' का व्यवहार केवल शब्द के आदि मे पाया जाता है और व्यंजन के साथ भी केवल आदि तथा मध्य में ही मिलता है, शब्द के अंत में नहीं मिलता।

उदा०—एक्, एड़ी, एकलो (अकेला), नेव्‌री।

:ओ: हाड़ौती का 'ओ' मूल स्वर 'ओ' के समान है। यह अर्द्ध-संवृत, दीर्घ, पश्च-स्वर है। इसमें जीभ का पिछला भाग कोमल तालु की ओर उठता है। होठ 'ऊ' की अपेक्षा कुछ अधिक खुलकर गोलाकार बन जाते हैं। व्यंजन-रहित 'ओ' का व्यवहार केवल शब्द के आदि तथा अंत मे होता है। यह व्यंजन के साथ शब्द में सर्वत्र पाया जाता है।

उदा०—ओखद (औषध), घोड़ो, कालो, कंदोई (हलवाई)।

अनुनासिक-स्वर

हाड़ौती मे मिलने वाले प्रत्येक स्वर का अनुनासिक रूप देखने में आता है। अनुनासिक स्वर को निरनुनासिक स्वर से सर्वथा भिन्न मानना चाहिए, क्योंकि इसके कारण शब्द-भेद, अर्थ-भेद अथवा दोनो ही हो सकते हैं।[1] ऐसे स्वरो के उच्चारणों में वायु का कुछ अंश नासिका-विवर से भी निकलने लगता है। स्वर का उच्चारण तो यथापूर्व ही होता है, पर साथ ही कोमलतालु और कौआ कुछ नीचे झुक जाते हैं। ऐसे स्वरो के उदाहरण निम्न शब्दों मे देखे जा सकते हैं—

:अं: भंवरो (भ्रमर), अंगोठो (अंगुष्ठ), संकरयांत् (संक्रान्ति)।

:ऐं: रेंग्‌बो (रेंगना), कैंकड़ो (केकड़ा), गैंद् (गेंद)।

:आं: आंगण् (आंगन), आंचल (अंचल), डांग्‌रो (पशु)।

:ईं: सींग् (सींग; ईंट्, ज्वांईं (जामाता)।

:उं: उंठी (उधर), उंदाड़े (उस दिन)।

:ऊं: ऊंठ्, (उच्छिष्ट), ऊंद्‌रो (चूहा), रूंखड़ो (वृक्ष)।

:एं: सें, थें तुम), फेंप्‌णू (नाक का कीचड़)।

:ओं: पोंव् (पावों), लूणयों (नवनीत)।

१—हि०, मो० भा० शा०, पृष्ठ ११।

स्वर-संयोग

हाड़ोती में स्वर-संयोग के अनेक प्रकार देखने को मिलते हैं, जिन्हें अकारादि क्रम से नीचे दिया जाता है—

अअ : कमअमग्
अई : नई (नवादित)
अऊ : गऊ (गाय)
आई : सगाई (वाग्दान)
आऊ : सकताऊ, सरताऊ (सेक, शर्त के आधार पर।)
आओ : आओ (आओ)
उई : सुई (सुई)
एई : एई (येही)
ओई : कंदोई (हलवाई)

हाड़ोती में दो से अधिक संयुक्त-स्वरों से बने शब्द नहीं मिलते।

(ख)

व्यंजन

हाड़ोती में ३६ व्यंजन [1] मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. स्पर्श-व्यंजन

(अ) क-वर्गीय व्यंजन

:क: यह अल्पप्राण, अघोष, कंठ्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसके उच्चारण में जिह्वा का पिछला भाग कोमल-तालु का स्पर्श करता है, किन्तु जब इसके बाद ई, ए स्वर आते हैं तब यह स्पर्श थोड़ा आगे होता है। इन दोनों अवस्थाओं में यह व्यंजन कंठ्य वर्ण है अर्थात् ए के पूर्व अग्र-कंठ्य एवं ई के पूर्व कोमल-तालुजात स्पर्श वर्ण हैं। यह नियम सभी क-वर्गीय ध्वनियों के सम्बन्ध में लागू होता है।

उदा०—कान्, कोस्, लड़की।

:ख: यह महाप्राण, अघोष, कंठ्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसका उच्चारण 'क्' के समान ही होता है, किन्तु इसमें महाप्राणता विद्यमान है।

उदा०—खीलो, खांदो, खद्।

हाड़ौती - व्यंजन - वर्गीकरण - तालिका

	स्पर्श				स्पर्श-संघर्षी				अस्पर्श							
	अघोष		सघोष		अघोष		सघोष		सघोष							अघोष
									अनुनासिक		पार्श्विक					
	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्पप्राण	महाप्राण	अल्प-प्राण	महा-प्राण	अल्प-प्राण	महा-प्राण	उत्क्षिप्त	लुंठित	अर्द्धस्वर	संघर्षी
द्वयोष्ठ्य	प्	फ्	ब्	भ्					म्	म्ह्					व्	
दन्त्योष्ठ्य															व़्	
दन्त्य	त्	थ्	द्	ध्					न्	न्ह्	ल्	ल्ह्				
वर्त्स्य														र्		स्
मूर्द्धन्य	ट्	ठ्	ड्	ढ्					ण्		ळ्		ड़् (ण़्, ऴ्)			
तालव्य					च्	छ्	ज्	झ्							य्	
कंठ्य	क्	ख्	ग्	घ्					ङ्							
स्वर-यंत्रमुखी																ह्

:ग: यह अल्पप्राण, सघोष, कंठ्य, स्पर्श-व्यंजन है। उच्चारण में 'क्' के समान है, पर यह सघोष है।

उदा०—माग्, गागर्, फागण, सगद् (स्वयं ही)।

:घ: यह महाप्राण, सघोष, कंठ्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसका उच्चारण उपर्युक्त व्यंजनों के समान ही है। इसकी महाप्राणता इसे अल्पप्राण 'ग्' से पृथक् करती है। इसका व्यवहार शब्द के आदि में पाया जाता है।

उदा०—घड़ी, घड़ो, घास्, घर्।

(आ) ट-वर्गीय व्यंजन

:ट्: यह अल्पप्राण, अघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसके उच्चारण के लिए जीभ की नोक को उलट कर कठोर तालु को स्पर्श किया जाता है।

उदा०—टांग् (पैर), खटीक्, खाट्, माटी (पति)।

:ठ्: ट-वर्ग का यह दूसरा व्यंजन है। यह महाप्राण, अघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है। इसका उच्चारण 'ट्' के समान है, किन्तु यह महाप्राण व्यंजन है।

उदा०—ठीटोडी, ठूंठ्, गांठ्, ठाम।

:ड्: ट-वर्ग का यह तीसरा व्यंजन है। यह अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है। इसका भी उच्चारण 'ट्' के समान है, किन्तु यह सघोष व्यंजन है।

उदा०—डाढ् (दाढ़), डांडो, ढांडो (पशु), डाकण्।

:ढ्: ट-वर्ग का यह चौथा व्यंजन है। यह महाप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, स्पर्श व्यंजन है। इसका भी उच्चारण ट-वर्गीय व्यंजनों के समान होता है, किन्तु यह महाप्राण सघोष व्यंजन है। इसका व्यवहार शब्द के आदि में ही मिलता है।

उदा०—ढोल्, ढोक्बो, ढीट्, ढांकणो।

(इ त-वर्गीय व्यंजन

:त्: त-वर्ग का यह प्रथम व्यंजन है। यह अल्पप्राण, अघोष, दंत्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक दांतों को स्पर्श करती है।

उदा०—तार्, पेर्, तुरत्, हतां (विद्यमानता)।

:थ्: त-वर्ग का यह दूसरा व्यंजन है। यह महाप्राण, अघोष, दंत्य, स्पर्श व्यंजन है। इसका उच्चारण 'त्' के समान किया जाता है, किन्तु यह महाप्राण व्यंजन है।

उदा०—थूणी (स्थूणा), थूंक्, माथणी, माथो, (मस्तक)।

:द्: त-वर्ग का यह तीसरा व्यंजन है। यह अल्पप्राण, सघोष, दंत्य, स्पर्श व्यंजन है। इसका उच्चारण 'त्' के समान होता है, किन्तु यह सघोष व्यंजन है।

उदा०—दूंद (दुग्ध), दूर, दान्, सबद्, चांदणी।

:घ्: यह त-वर्ग का चौथा व्यंजन है। यह महाप्राण, सघोष, दंत्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसका उच्चारण त-वर्गीय व्यंजनों के समान होता है, किन्तु यह महाप्राण, सघोष व्यंजन है। इसका व्यवहार केवल शब्द के आदि में पाया जाता है।

उदा०—धन्वर् (धन्वन्तरि), धतूरो (धतूरा), धूजो (ध्रुव)।

(ई) प-वर्गीय व्यंजन

:प: यह प-वर्ग का प्रथम व्यंजन है। यह अल्पप्राण, अघोष, द्वयोष्ठ्य स्पर्श-व्यंजन है। इसके उच्चारण में दोनों होठ मिलकर वायु को अवरुद्ध कर देते हैं फिर सहसा छोड़ दी जाती है। इसमें जीभ की सहायता नहीं ली जाती है।

उदा०—पान्, प्राप्णू, सांप्, कपूर् पीप्।

:फः यह प वर्ग का दूसरा व्यंजन है। यह महाप्राण, अघोष, द्वयोष्ठ्य स्पर्श व्यंजन है। इसका उच्चारण 'प्' के समान होता है, किन्तु यह महाप्राण है। इसका व्यवहार प्रायः शब्द के आदि मे मिलता है। शब्द के मध्य तथा अन्त मे यह बहुत कम मिलता है।

उदा०—फ्याळी (पहेली), फलांग् (छलाग), फांस्, (पाश) आफ्रो (अफारा)।

:ब्: यह प-वर्ग का तीसरा व्यंजन है। यह अल्पप्राण, सघोष, द्वयोष्ठ्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसका उच्चारण भी 'प्' के समान होता है, किन्तु यह सघोष व्यंजन है।

उदा०—काब्रो, वाक्रो, गाब्लो (मध्य का), बारा (बारह)।

:भ्: यह प-वर्ग का चौथा व्यंजन है। यह महाप्राण, सघोष, द्वयोष्ठ्य, स्पर्श-व्यंजन है। इसका उच्चारण भी उपर्युक्त प-वर्गीय व्यंजनों के समान होता है, किन्तु यह महाप्राण और सघोष व्यंजन है। इसका व्यवहार शब्द के आदि में ही प्रायः मिलता है।

उदा०—भीक्, भीतर्, भैंस्, भोजाई, भाई।

२. स्पर्श-संघर्षी व्यंजन[1]

च-वर्गीय व्यंजन

:च्: यह च-वर्ग का प्रथम व्यंजन है। यह अल्पप्राण, अघोष, तालव्य, स्पर्श-संघर्षी-व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ के अगले भाग को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर-तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है।

१—डा० एलन चवर्गीय व्यंजनों को स्पर्श-श्रेणी में रखते हैं। देखिये, 'एस्पिरेशन इन दी हाड़ौती नोमिनल' लेख, पृष्ठ ८२ पर। हाड़ौती के ये व्यंजन हिन्दी के चवर्गीय व्यंजनों के समान स्पर्श-संघर्षी हैं। इनके उच्चारण जीभ मसूड़ों के निकट कठोरतालु को रगड़ के साथ देर तक छूकर करती है। देखिये—तिवारी, हि० भा० उ० वि०, उत्तर पीठिका, २७।

उदा०—चांच्, चाच्, मांच्, कूंची, पच् (पथ्य)।

:छ्: यह च-वर्ग का दूसरा व्यंजन है। यह महाप्राण, अघोष, तालव्य, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। इसका उच्चारण 'स्' के समान होता है, किन्तु यह महाप्राण व्यंजन है।

उदा०—छीणी (छैनी), छंदपाळ, छग्डो, मोछळी, तुळछी (तुलसी)।

:ज्: यह च-वर्ग का तीसरा व्यंजन है। यह अल्पप्राण, सघोष, तालव्य, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। इसका उच्चारण भी 'स्' के समान होता है, किन्तु यह सघोष व्यंजन है।

उदा०—जोसुती (ज्योतिषी), काजळ, जुर् (ज्वर), बणज् (वाणिज्य)।

:झ्: यह च-वर्ग का चौथा व्यंजन है। यह महाप्राण, सघोष, तालव्य, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। इसका उच्चारण भी अन्य च-वर्गीय व्यंजनों के समान होता है, किन्तु यह महाप्राण, सघोष व्यंजन है। इसका व्यवहार शब्द के आदि में पाया जाता है।

उदा०—झाडी, झोळो, झांई।

३. अनुनासिक व्यंजन

:ङ्: यह अल्पप्राण, सघोष, कंठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। इसके उच्चारण में क-वर्गीय व्यंजनो के समान–जिह्वा का पिछला भाग कोमलतालु का स्पर्श करता है, पर साथ ही कुछ हवा नाक-मार्ग से भी निकल जाती है और गूंज उत्पन्न करती है। कोमल तालु के नीचे झुक जाने के कारण अन्य क-वर्गीय व्यंजनों की अपेक्षा जीभ उसका कुछ पिछला भाग छूती है। इस व्यंजन का स्वतंत्र व्यवहार नहीं मिलता और न शब्द के आदि मे प्रयुक्त होता है।[२]

उदा०—जङ्ग, चङ्ग, नङ्ग, घड़ङ्ग।

:ण्: यह अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, अनुनासिक व्यंजन है। इसके उच्चारण में मूर्द्धन्य व्यंजनों–ट-वर्गीय व्यंजनों के समान जीभ की नोक को उलट कर कठोर तालु का तो स्पर्श होता ही है, साथ ही लिप्त वायु का कुछ अंश नासिका-विवर के द्वार से भी निकलना होता है। हाड़ौती में इस अनुनासिक व्यंजन का प्राधान्य है। इसका व्यवहार शब्द के आदि मे नहीं होता है।

उदा०—सणगार् (शृंगार), कामण् (जादू), ऊणों (ऊन)।

२—डा० एलन इस व्यंजन को हाड़ौती व्यंजनों में स्थान नहीं देते। देखिये, एसिरेशन इन दी हाड़ौती नौमीनल, लेख 'स्टडीज इन लिंग्विस्टिक एनेलिसिस' पुस्तक, पृष्ठ ८२।

:न्: यह अल्पप्राण, सघोष, दन्त्य, अनुनासिक व्यंजन है। इसके उच्चारण में दंत्य स्पर्शों के समान जीभ की नोक दांतों की पंक्ति को छूती है और कुछ हवा नासिका-मार्ग से भी बाहर निकलती है।

उदा—नींद, दून् (दोना), पान्, बीनती (विनती)।

:न्ह्: यह महाप्राण, सघोष, दन्त्य, अनुनासिक व्यंजन है। यद्यपि यह संस्कृत में मूल ध्वनि नहीं है, किन्तु आधुनिक विद्वानों ने इसे भ् (ब्+ह्) के समान हो मूल ध्वनि मान लिया गया है। इसका व्यवहार शब्द के आदि में ही होता है।

उदा०—न्हाबो (स्नान), न्हाळ्बो (देखना)।

:म्: यह अल्पप्राण सघोष, द्वयोष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। इसका उच्चारण प-वर्गीय ध्वनियों के 'ब्' के समान होता है, किन्तु इसके उच्चारण में अनुनासिक व्यंजनों के समान कुछ हवा हलक के नाक के छिद्रों में नासिका-विवर में गूंज उत्पन्न करती है।

उदा०—माथो, मांबसी, छोमासो, सोरम्।

:म्ह्: यह महाप्राण, सघोष, द्वयोष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। इसका उच्चारण 'म्' के समान ही होता है, किन्तु यह महाप्राण है। इसे भी 'न्ह्' के समान मूल व्यंजन ही माना जाना चाहिए। यह व्यंजन शब्द के आदि में प्रयुक्त होता है।

उदा०—म्हारो, म्हाराज्।

४. पार्श्विक

:ल यह अल्पप्राण, सघोष, पार्श्विक, दन्त्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक दांतों को अच्छी तरह छूती है, किन्तु साथ ही जीभ के दाहिने-बायें जगह छूट जाती है जिसके कारण वायु पार्श्व से बहिर्गत होती है।

उदा०—लाज्, डालो, मील्।

:ल्ह्: यह महाप्राण, सघोष, पार्श्विक, दन्त्य व्यजन है। इसके भी उच्चारण में जीभ की नोक दांतो को अच्छी तरह छूती है, किन्तु साथ ही जीभ के दाहिने-बायें जगह छूट जाती है जिसमे होकर हवा झोंक से बाहर निकलती है। यह शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होता है।

उदा०—ल्होड्यो, ल्हीक् (लिक्षा)।

५. लुंठित

:र्: यह अल्पप्राण, सघोष, लुंठित, वर्त्स्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक शीघ्रता से मसूड़ों को कई बार छूती है। इसका उच्चारण अधिक कष्ट-साध्य होने के कारण बच्चे इसके स्थान पर 'ल्' का प्रयोग करते हैं।

उदा०—राम्, रण् (ऋण), बारा (बारह)।

६. उत्क्षिप्त

/ड़/ यह अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त, मूर्द्धन्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक को उलट कर नीचे के भाग से कठोर तालु को झटके के साथ छूकर किया जाता है। इसका व्यवहार शब्द के प्रारंभ में नहीं पाया जाता है।

उदा—कोड़ी, पैड़् (प्रतिष्ठा), साड़ा (सार्द्ध)।

/ळ/ यह अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त, पार्श्विक, मूर्द्धन्य व्यंजन है। इसके उच्चारण मे जीभ की नोक तनिक सी उलट कर 'ड़्' के उच्चारण की भांति कोमल तालु को झटके के साथ थोड़ी देर छूकर हट जाती है और स्पर्शकाल में 'ल्' के समान जीभ के दायें-बायें छूटी जगह से हवा निकलती है। इसका व्यवहार शब्द के आदि नहीं मिलता है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं पाई जाती है।

उदा०—चाळीस (चालीस), रूपाळी (रूपवती), गळो।

७. संघर्षी

/स/ यह वर्त्स्य, अघोष, ऊष्म, संघर्षीय व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक मसूढ़ों के मध्य भाग को रगड़ के साथ छूती है, किन्तु निर्गत वायु का पूर्ण रूप से अवरोध न होने से तथा जीभ के ऊपर उठने के कारण वायु संघर्ष ध्वनि करती हुई निकल जाती है।

उदा०—कपासँ, पनसार्, स्याम, करसो (कृषक)।

हाड़ौती में उक्त प्रकार के अतिरिक्त इसका उच्चारण दाँतों के मध्य-भाग को जीभ की नोक से छूकर भी उपर्युक्त प्रयत्न के साथ किया जाता है, किन्तु ऐसा उच्चारण बहुत कम सुनने में आता है।

/ह/ यह स्वरयंत्र मुखी, सघोष, संघर्षी व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ तालु तथा होठों की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती है। निर्गत वायु को भीतर से फेंककर मुख-द्वार के खुले रहते हुए स्वर-यंत्र के मुख पर संघर्ष उत्पन्न करके इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। हाड़ौती में यह ध्वनि स्वतंत्र रूप से शब्द के अंत में नहीं पाई जाती है तथा शब्द के आदि की ओर बढ़ती दिखाई देती है।

उदा०—हाडो, हीरो (भूना), हीड़्।

८. अर्द्धस्वर

/य/ यह तालव्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जाकर किया जाता है। सर्वनामों तथा स्थानवाचक क्रिया विशेषणों को छोड़कर हाड़ौती में 'य्' का प्रयोग शब्द के आदि में नहीं मिलता।

उदा०—जोबन्, रोहणी (रोहिणी), ज्याल् (निमाज), या (यह)।

/व/ यह द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। इसके उच्चारण में दोनों होंठ एक दूसरे को ऐसे छोटे पर स्पर्श करते हैं, किन्तु 'ब्' के समान मिल नहीं जाते और

बहिर्गत वायु के लिए मध्य में अवकाश छोड़ देते हैं। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालु की ओर 'उ' के उच्चारण-स्थान की अपेक्षा और ऊंचा उठता है, किन्तु कोमल तालु का स्पर्श नहीं कर पाता। संस्कृत शब्दों के आदि का 'व्' हाड़ौती मे 'ब्' में बदल गया।

उदा०—रावळो, न्याव्, कंवर्, तळाव्।

व्: हाड़ौती में द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर 'व्' का उच्चारण भी होता है। अंग्रेजी 'V' से मिलता-जुलता इसका उच्चारण है, किन्तु 'V' के समान नीचे के होठ को दांतों से दबा कर यह नहीं बोला जाता, अपितु इस प्रकार का आभास या प्रयत्न पाया जाता है। नीचे का होठ दांतों के बीच में बढ़ता-बढ़ता रुक कर उच्चारण के पश्चात् लौट आता है। जहां हिन्दी में 'व्' के ठीक पश्चात् 'ह्' पाया जाता है वहां हाड़ौती में 'व्' का प्रयोग मिलता है।

उदा०—वाने, वां, ल्वारी (लुहारी)।

व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में आदि, मध्य और अन्त्य व्यंजन-संयोग मिलते हैं—

आदि-व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में आदि-व्यंजन संयोग प्रायः एक ही प्रकार का मिलता है। यह संयोग पूर्व व्यंजन के साथ अर्द्धस्वर के मेल से ही घटित होता है। इसके निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

क् + य् — क्यारी
क् + व् — क्वांरो, क्वांड़्
ख् + य् — ख्याणो, ख्याल्
ख् + व् — ख्वासीणु
ग् + य् — ग्यारा, ग्यावण्
ग् + व् — ग्वाड़ो (मकान), ग्वाळो
घ् + य् — घ्यार्
घ् + व् — घ्वांळ्यो (मजदूर)
छ् + य् — छ्याच्, छ्याळो (चीत्कार)
छ् + व् — छ्वांरो (खजूर)
ज् + य् — ज्यार् (ज्वार)
ज् + व् — ज्वांई, ज्वान्
द् + य् — द्यां (आंखें)
द् + व् — द्वासणा (तिमाहे के पैर)

६. उत्क्षिप्त

ड़ः यह अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त, मूर्द्धन्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक को उलट कर नीचे के भाग से कठोर तालु को झटके के साथ छूकर किया जाता है। इसका व्यवहार शब्द के प्रारंभ में नहीं पाया जाता है।

उदा०—कोड़ी, पेड़् (प्रतिष्ठा), साड़ा (सार्द्ध)।

ळ्: यह अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त, पार्श्विक, मूर्द्धन्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक तनिक सी उलट कर 'ड़्' के उच्चारण की भांति कोमल तालु को झटके के साथ थोड़ी देर छूकर हट जाती है और स्पर्शकाल में 'ल्' के समान जीभ के दायें-बायें छूटी जगह से हवा निकलती है। इसका व्यवहार शब्द के आदि नहीं मिलता है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं पाई जाती है।

उदा०—चाळीस (चालीस), रूपाळी (रूपवती), गळो।

७. संघर्षी

स: यह वर्त्स्य, अघोष, ऊष्म, संघर्षीय व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक मसूड़े के मध्य भाग को रगड़ के साथ छूती है, किन्तु निर्गत वायु का पूर्ण रूप से अवरोध न होने से तथा जीभ के ऊपर उठने के कारण वायु संघर्ष ध्वनि करती हुई निकल जाती है।

उदा०—कवारी, प्रसदार, स्याम्, करसो (कृषक)।

हाड़ौती में उक्त प्रकार के अतिरिक्त इसका उच्चारण दाँतों के मध्य-भाग को जीभ की नोक से छूकर भी उपर्युक्त प्रयत्न के साथ किया जाता है, किन्तु ऐसा उच्चारण बहुत कम सुनने में आता है।

ह्: यह स्वरयंत्र मुखी, अघोष, संघर्षी व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ तालु तथा होठों की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती है। निर्गत वायु को भीतर से फेंककर मुख-द्वार के खुले रहते हुए स्वर-यंत्र के मुख पर संघर्ष उत्पन्न करके इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। हाड़ौती में यह ध्वनि स्वतंत्र रूप से शब्द के अंत में नहीं पाई जाती है तथा शब्द के आदि की ओर बढ़ती दिखाई देती है।

उदा०—हांको, हीदो (झूला), हीड्।

८. अर्द्धस्वर

य्: यह तालव्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जाकर किया जाता है। सर्वनामों तथा स्थानवाचक क्रिया-विशेषणों को छोड़कर हाड़ौती में 'य्' का प्रयोग शब्द के आदि में नहीं मिलता।

उदा०—कोमल्, दोयती (दोहित्री), ब्याण् (विमान), या (यह)।

व: यह द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। इसके उच्चारण में दोनों होठ एक दूसरे को दोनों छोरों पर स्पर्श करते हैं, किन्तु 'ब्' के समान मिल नहीं जाते और

बहिर्गत वायु के लिए मध्य में अवकाश छोड़ देते हैं। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालु की ओर 'उ' के उच्चारण-स्थान की अपेक्षा और ऊंचा उठता है, किन्तु कोमल तालु का स्पर्श नहीं कर पाता। संस्कृत शब्दों के आदि का 'व्' हाड़ौती में 'व़्' में बदल गया।

उदा०—रावळो, व्याव्, कंवर्, तळाव्।

व्ः हाड़ौती में द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर 'व्' का उच्चारण भी होता है। अंग्रेजी 'V' से मिलता-जुलता इसका उच्चारण है, किन्तु 'V' के समान नीचे के होठ को दांतों से दबा कर यह नहीं बोला जाता, अपितु इस प्रकार का आभास या प्रयत्न पाया जाता है। नीचे का होठ दांतों के बीच मे बढ़ता-बढ़ता रुक कर उच्चारण के पश्चात् लौट जाता है। जहां हिन्दी में 'व्' के ठीक पश्चात् 'ह्' पाया जाता है वहां हाड़ौती में 'व़्' का प्रयोग मिलता है।

उदा०—व़ानै, व़ां, ल्व़ारी (लुहारी)।

व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में आदि, मध्य और अन्त्य व्यंजन-संयोग मिलते हैं—

आदि-व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में आदि-व्यंजन संयोग प्रायः एक ही प्रकार का मिलता है। यह संयोग पूर्व व्यंजन के साथ अर्द्धस्वर के मेल से ही घटित होता है। इसके निम्नलिखित रूप मिलते है—

क् + य्	—	क्यारी
क् + व्	—	क्वांरो, क्वांड़्
ख् + य्	—	ख्याणो, ख्याल्
ख् + व्	—	ख्वासीगू
ग् + य्	—	ग्यारा, ग्यावण्
ग् + व्	—	ग्वाड़ी (मकान), ग्वाळी
घ् + य्	—	घ्यार्
घ् + व्	—	घ्वांळ्यो (मजदूर)
छ् + य्	—	छ्याच्, छ्याळी (चोरकार)
छ् + व्	—	छ्वांरो (खजूर)
ज् + य्	—	ज्यार् (ज्वार)
ज् + व्	—	ज्वांई, ज्वान्
ड् + य्	—	ड्यां (मांखें)
ड् + व्	—	ड्वासुणा (तिमाहे के पैर)

६. उत्क्षिप्त

/ड़/ यह अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त, मूर्धन्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक को ऊपर कर नीचे के भाग से कठोर तालु को झटके के साथ छूकर किया जाता है। इसका व्यवहार शब्द के प्रारंभ में नहीं पाया जाता है।

उदा—कोड़ी, पैड़ (दि[illegible]), गाड़ा (गाड़ी)।

/ळ/ यह अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त, पार्श्विक, मूर्धन्य व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक तनिक सी ऊपर कर 'ड़' के उच्चारण की भांति कोमल तालु को झटके के साथ थोड़ी देर छूकर हट जाती है और दरमियान में 'ल्' के समान जीभ के दायें-बायें खुली जगह से हवा निकलती है। इसका व्यवहार शब्द के आदि नहीं मिलता है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं पाई जाती है।

उदा०—पाळीत (पालीत), काळी (कालती), गळो।

७. संघर्षी

/स/ यह वर्त्स्य, अघोष, ऊष्म, संघर्षी व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक मसूढ़ों के मध्य भाग को दृढ़ता के साथ छूती है, किन्तु निर्गत वायु का पूर्ण रूप से अवरोध न होने से तथा जीभ के ऊपर उठने के कारण वायु संघर्ष ध्वनि करती हुई निकल जाती है।

उदा०—सपारी, पनसार, दरार, फरसो (फरसा)।

हाड़ौती में उक्त प्रकार के अतिरिक्त इसका उच्चारण दाँतों के मध्य-भाग को जीभ की नोक से छूकर भी उपर्युक्त प्रयत्न के साथ किया जाता है, किन्तु ऐसा उच्चारण बहुत कम सुनने में आता है।

/ह्/ यह स्वरयंत्र मुखी, सघोष, संघर्षी व्यंजन है। इसके उच्चारण में जीभ तालु तथा होठों की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती है। निर्गत वायु को भीतर से फेंककर मुख-द्वार के खुले रहते हुए स्वर-यंत्र के मुख पर संघर्ष उत्पन्न करके इस ध्वनि का उच्चारण किया जाता है। हाड़ौती में यह ध्वनि स्वतंत्र रूप से शब्द के अंत में नहीं पाई जाती है तथा शब्द के आदि की ओर बढ़ती दिखाई देती है।

उदा०—हांको, हीदो (झूला), हीड्।

८. अर्द्धस्वर

/य/ यह तालव्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। इसके उच्चारण में जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जाकर किया जाता है। सर्वनामों तथा स्थानवाचक क्रिया-विशेषणों को छोड़कर हाड़ौती में 'य' का प्रयोग शब्द के आदि में नहीं मिलता।

उदा०—कोयल, दोयती (दोहिती), स्याण (सिमान), या (यह)।

/व/ यह द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर है। इसके उच्चारण में दोनों होठ एक दूसरे को दोनों छोरों पर स्पर्श करते हैं, किन्तु 'ब' के समान मिल नहीं जाते और

बहिर्गत वायु के लिए मध्य में अवकाश छोड़ देते हैं। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालु की ओर 'उ' के उच्चारण-स्थान की अपेक्षा और ऊंचा उठता है, किन्तु कोमल तालु का स्पर्श नहीं कर पाता। संस्कृत शब्दों के आदि का 'व्' हाड़ौती में 'ब्' में बदल गया।

उदा०—रावळो, ब्याव्, कंवर्, तळाव्।

व्: हाड़ौती में द्वयोष्ठ्य, सघोष, अर्द्धस्वर 'व्' का उच्चारण भी होता है। अंग्रेजी 'V' से मिलता-जुलता इसका उच्चारण है, किन्तु 'V' के समान नीचे के होठ को दांतों से दबा कर यह नहीं बोला जाता, अपितु इस प्रकार का आभास या प्रयत्न पाया जाता है। नीचे का होठ दांतों के बीच में बढ़ता-बढ़ता रुक कर उच्चारण के पश्चात् लौट जाता है। जहां हिन्दी में 'व्' के ठीक पश्चात् 'ह्' पाया जाता है वहां हाड़ौती में 'व्' का प्रयोग मिलता है।

उदा०—*व्ानै, व्ां, ल्व्ारी (लुहारी)।*

व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में आदि, मध्य और अन्त्य व्यंजन-संयोग मिलते हैं—

आदि-व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में आदि-व्यंजन संयोग प्रायः एक ही प्रकार का मिलता है। यह संयोग पूर्व व्यंजन के साथ अर्द्धस्वर के मेल से ही घटित होता है। इसके निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

क् + य्	—	क्यारी
क् + व्	—	क्वांरो, क्वांड़्
ख् + य्	—	ख्याणो, ख्याल्
ख् + व्	—	ख्वासीण्
ग् + य्	—	ग्यारा, ग्याबण्
ग् + व्	—	ग्वाड़ो (मकान), ग्वाळो
च् + य्	—	च्यार्
च् + व्	—	च्वांळ्यो (मजदूर)
छ् + य्	—	छ्याच्, छ्याळी (चोरकार)
छ् + व्	—	छ्वांरो (खजूर)
ज् + य्	—	ज्यार् (ज्वार)
ज् + व्	—	ज्वांई, ज्वान्
ड् + य्	—	ड्यां (आंखें)
ड् + व्	—	ड्वासण (तिमाहे के पैर)

त् + य् — त्यारी
त् + व् — त्वाड़ी (तिवाड़ी), त्वाणो (तिवाणा)
थ् + य् — थ्यावल् (थैली)
थ् + व् — थ्वार्
द् + य् — द्याड़ी
द् + व् — द्वाळी (दिया), द्वाणए (विधवा)
ध् + य् — ध्यान्
ध् + व् — ध्वाबो
न् + य् — न्याव् (न्याय), न्याल् (निहाल)
न् + व् — न्वायो (उफण)
प् + य् — प्यारी
प् + व् — प्वायो
फ् + य् — फ्याळी
फ् + व् — फ्वारो
ब् + य् — ब्याळू, ब्याए
ब् + व् — ब्वारो
भ् + व् — भ्वाजी
म् + य् — म्यान्
म् + व् — म्वो (महुआ)
र् + य् — र्यो
र् + व् — र्वाएबो
ल् + य् — ल्यो
ल् + व् — ल्वारो (बछड़ा), ल्वातए (पुत्रवती)
स् + य् — स्याळी
स् + व् — स्वाळ्यो, स्वागए (सुहागिन)
ह् + य् — ह्यो (हृदय)
ह् + व् — ह्वांळो (बर्फ), ह्वालो (जमींदारी)

मध्य-व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में मध्य-व्यंजन-संयोग के अनेक प्रकार मिलते हैं जिन्हें इस प्रकार बांटा जा सकता है—

स्पर्श + अन्य व्यंजन

:क:	क् + क्	—	चक्कर्, मक्का, धक्को, नक्की
	क् + ख्	—	लक्खण्
	क् + च्	—	देक्चो
	क् + ट्	—	नक्टी, छोक्टी, छाक्टी
	क् + ठ्	—	एक्ठो
	क् + ड्	—	टुक्ड़ो
	क् + ण्	—	चमक्णी, चोक्णू
	क् + त्	—	मुक्तो, छक्तळो
	क् + द्	—	नक्दी
	क् + ब्	—	भड़क्बो, धूंक्बो
	क् + म्	—	चक्मक्
	क् + य्	—	बक्यो (बिका)
	क् + र्	—	डोक्री, बक्री (बिक्री), ठोक्री
	क् + ल्	—	अक्लोतो
	क् + व्	—	पक्वान्
	क् + स्	—	बक्सीस्
:ख:	ख् + ड्	—	बारख्ड़ी, लाख्डी, राख्ड़ी
	ख् + ण्	—	दख्णा
	ख् + ब्	—	दीख्बो, लख्बो
:ग:	ग् + ग्	—	लग्गो
	ग् + ज्	—	मग्जी (झालर)
	ग् + ट्	—	ठग्टी
	ग् + ड्	—	फाग्ड़ी
	ग् + ण्	—	अलग्णी (कपड़े रखने की लकड़ी)
	ग् + त्	—	भोग्ता
	ग् + द्	—	चग्दो (घाव), जग्दीस्
	ग् + प्	—	सग्पण्
	ग् + ब्	—	जाग्बो
	ग् + म्	—	तग्मू (तमगा)
	ग् + य्	—	मांग्यो
	ग् + ल्	—	काग्लो, आग्लो
	ग् + ळ्	—	आंग्ळी, पांग्ळो

:च:[1] च् + क् — बच्को, हच्की, याच्की

च् + च् — बच्चो, लुच्चो

च् + छ् — मच्छी

च् + ड़् — खीच्ड़ी

च् + ण् — फाच्णू (उस्तरा), छाच्णी (चासनी)

च् + त् — बांच्तां

च् + प् — बच्पण्

च् + ब् — बांच्बो, खांच्बो

च् + म् — पच्मण्यू

च् + य् — पांच्यो

च् + र् — काच्रो

च् + ल् — चोच्लो, बीच्लो, फाच्लो

च् + ळ् — कांच्ळी, नच्ळो

:छ्: छ् + ड़् — रींछ्ड़ो

छ् + म — लछ्मण्यो

छ् + ळ् — मांछ्ळी

:ज्: ज् + ज् — बज्जो (बार)

ज् + ण् — दाज्णी

ज् + त् — बाज्तां

ज् + प् — राज्पाट्

ज् + म् — लाज्मी, हाज्मू

ज् + य् — लाज्यो, मोज्यो (मोइुद्दीन)

ज् + र् — बाज्रो, जोज्रो (जर्जर)

ज् + ळ् — बीज्ळी

:ट्: ट् + क् — मट्को, सट्को, बट्को (टुकड़ा)

ट् + ट — फुट्टो (साधरण), छुट्टी

ट् + ठ् — मट्ठो (धीमा)

ट् + ड़् — कोट्ड़ी

ट् + ण् — काट्णी

ट् + ब् — पाट्बो

ट् + य् — टाट्यां (बर्रे), मोट्यार् (युवक)

ट् + म् — माट्माब्

१—स्पर्श-संघर्षी चवर्गीय व्यंजन शब्दों के साथ सुभीते की दृष्टि से रख लिये हैं।

:ड्:	ड्+क्	—	रांड्का
	ड्+ब्	—	रांड्बेर् (विधवा)
	ड्+म्	—	रांड्मारी
	ड्+य्	—	रांड्या
:ड़्:	ड़्+क्	—	तड़्को, भड़्को
	ड़्+घ्	—	फड़्घो
	ड़्+छ्	—	कड़्छू
	ड़्+ज्	—	भड़्जी
	ड़्+ब्	—	दड़्बो (मुर्गा बन्द करने का स्थान)
	ड़्+य्	—	ग्वाड़्यां
:त्:	त्+क्	—	दुत्कारो
	त्+ड़्	—	पात्ड़ो
	त्+त्	—	पत्तो
	त्+न्	—	कत्नो
	त्+य्	—	पांत्यो (जेवनार), बात्यो, मार्त्यो,
	त्+र्	—	चत्राळोद्
	त्+ल्	—	मत्लबी
	त्+ळ्	—	मात्ळोक् (मर्त्यलोक)
	त्+व्	—	कोत्वाळी
:थ्:	थ्+ळ्	—	बाथ्ळो
:द्:	द्+द्	—	गद्दो, मद्दो
	द्+म्	—	आद्मी
	द्+र्	—	बांद्री, ऊंद्रो
	द्+ळ्	—	बाद्ळी
:प्:	प्+क्	—	छाप्को (चाबुक), आप्को (गुस्सा)
	प्+ट्	—	चप्टो, भाप्टो
	प्+ड़्	—	माप्ड़ो, भूंप्ड़ी, काप्ड़ो
	प्+ण्	—	आप्णूं
	प्+त्	—	हांप्तो, सप्ताजी
	प्+न्	—	सप्नू
	प्+प्	—	सप्पो, कुप्पो
	प्+ड़्	—	थाप्ड़ो
	प्+ड्	—	बोप्डो (विकटा), रप्टो (रपटा)
	प्+र्	—	छोरो-छाप्रो (बच्चा)

	प् + स्	—	लाप्सी, धूप्सो
:फ्:	फ् + र्	—	फाफ्रो
:ब्:	ब् + क्	—	डाब्को (मध), भब्को
	ब् + ड़्	—	खोब्ड़ो, झोब्ड़ो
	ब् + ब्	—	डब्बो, भब्बो
	ब् + य्	—	दब्यारी
	ब् + र्	—	काब्रो, ठोब्रो
	ब् + ल्	—	टूब्ली

अनुनासिक + अन्य व्यंजन

:ङ्:	ङ् + ग्	—	भङ्गी, नङ्ग-धड़ङ्ग, तङ्गी (कमी)
:ण्:	ण् + म्	—	पच्याण्मैं, नच्याण्मैं
:न्:	न् + क्	—	जन्को, मन्कू
	न् + ख्	—	तन्खा
	न् + च्	—	पन्चायत्
	न् + ज्	—	मन्जूर्
	न् + ट्	—	सन्टर् (लगातार)
	न् + ड्	—	मन्डार्, पन्डो
	न् + त्	—	सतन्तर्
	न् + द्	—	मन्दर्, मन्दर्सो
	न् + न्	—	पन्नो
	न् + य्	—	मन्याम, पून्यू
	न् + र्	—	पुन्रथ् (पुण्यार्थ)
	न् + व्	—	धन्वों
	न् + स्	—	मुन्सो, फान्सो
:म्:	म् + क्	—	झम्कार्यो
	म् + ग्	—	होम्गारी
	म् + च्	—	सम्चार्, खोम्चो, पोम्चो, चम्चो
	म् + छ्	—	गम्छो
	म् + ट्	—	टम्टी
	म् + ड्	—	डम्डमो
	म् + ड़्	—	तूम्ड़ो
	म् + त्	—	चम्ती, लम्तोड़्

म् + द् — जम्दूत्, उम्दा
म् + प् — कम्पू (ठगना), चम्पो
म् + फ् — जम्फर्
म् + ब् — लम्बो
म् + म — परम्मार्, चम्मार्
म् + य् — सम्यूं (दशहरे का मेला)
म् + र् — मम्रत्
म् + ल् — माम्ली
म् + ळ् — काम्ळी

लुण्ठित + अन्य व्यंजन

:र्: र् + क् — चर्की (चर्खा)
र् + ख् — चर्खी, पर्खी
र् + ग् — मुर्गी
र् + घ् — मर्घी, पर्घी
र् + छ् — बर्छी
र् + ज् — दर्जी, मर्जी
र् + ड् — खर्ड़ो, कर्ड़ो (सख्त), बोर्ड़ी
र् + ण् — घार्णी, बार्णूं (द्वार)
र् + त् — पर्ता (जाति), सर्ताऊ (शर्त पर)
र् + थ् — सर्थी
र् + द् — सर्दी (ठंडा), पर्दो (पर्दा)
र् + प् — कर्पण, सुर्पी
र् + ब् — पार्बती
र् + म — धर्माबो
र् + र् — गुर्रो, मुर्रो (घोड़े का कूल)
र् + ल् — मुर्लाट् (मुझली)
र् + ळ् — बार्ळो (बाहर को), मर्ळाबो
र् + व् — दर्वा
र् + स् — दर्सण

पार्श्विक + अन्य व्यंजन

:ल्: ल् + क् — हल्कारो, दल्कार् (दुत्कार)
ल् + ग् — बैल्गाड़ी, रेल्गाड़ी ।

ल् + ख् — बोल्खाम्
ल् + घ् — तल्घट् (बिखरना)
ल् + झ् — उल्झाड़् (उलझना)
ल् + ट् — छोल्टी (छिलका), पल्टो
ल् + ड् — डाल्डो
ल् + ढ् — फूल्ढो, डाल्ढी
ल् + त् — पल्तो, धाल्ती-फाल्ती
ल् + द् — छोल्दारी (तम्बू)
ल् + न् — पाल्नी
ल् + फ् — गल्फो (एक सब्जी), सल्फो (सुल्फा)
ल् + ब् — हाल्बो, चाल्बो
ल् + भ् — कुल्भी (एक जाति)
ल् + य् — गैल्यो (पागल)
ल् + र् — हाल्रो
ल् + ल् — दल्लगो
ल् + ळ् — धल्ळाबो
ल् + व् — फैल्वान्
ल् +स् — फाल्सो (एक फल)

:ळ्: ळ् + क् — कळ्कळ्नो
ळ् + ग् — माळ्गऊं
ळ् + ज् — काळ्ज्यो
ळ् + त — पाळ्तो
ळ् + द — बाळ्दो
ळ् + य् — काळ्यो, फाळ्यो, मांछळ्या
ळ् + स् — पळ्सो, फाळ्सो (घड़े का ढक्कन)

अर्द्धस्वर+अन्य व्यंजन

:य: य् + क् — पाय्को, जाय्को
य् + फ् — काय्फळ् जाय्फळ्,
य् + र् — गोय्रो
य् + ल् — मोय्लो, थांय्लो, माय्लो
:व्: व् + ग् — जाव्गो
व् + ट — नाव्टो (नाई), नांवटो (मजाक)

व् + ड़् — सेव्ड़ो, जेव्ड़ो
व् + ण् — पोव्णी (मिट्टी का तवा)
व् + त् — जीव्तो
व् + ल् — पाव्ली, साव्ली
व् + ळ् — छांव्ळी, बाव्ळी
व् + स् — मांव्सी

उष्म (स्) + अन्य व्यंजन

:स्: स् + क् — मस्कोड़्यो (मजाकिया)
स् + ट् — घास्टा त्वाड़ी (एक उपगोत्र), डुस्टी
स् + त् — कुस्ती, पस्तावो
स् + द् — तस्दीक्
स् + न् — बस्नू, कस्नू (नाम)
स् + ब् — नस्बत् (रिश्वत)
स् + म् — चस्मू, मास्मान्
स् + य् — हुस्याव् (हिसाब), गणेस्यो (गणेश)
स् + र् — सास्रो, तीस्रो
स् + ल् — फैंस्लो (फासला)
स् + ळ् — फांस्ळी
स् + व् — बेबस्वासी
स् + स् — सुस्सो, पुस्सो

अन्त्य-व्यंजन-संयोग

हाड़ौती में निम्नलिखित अंत्य-व्यंजन-संयोग मिलते हैं—

ग् + ग् — जग्ग् (यज्ञ), मुग्ग् (मूर्ख)
ड् + क् — डड्क्, मसड्क्
ड् + ख् — सड्ख्
ड् + ग् — रड्ग्, नंगधड्ग्
त् + त् — कत्त्
न् + थ् — पन्थ्
न् + ज् — गन्ज् (ढेर)
न् + ठ् — सन्ठ्
ठ् + ड् — ठण्ड्, डण्ड्

न + ग
न + द
न + न
न + ग्
ग् + ग्
म + म
ह् + ग्
ग् + ग्
ग् + '

प्राप्त सामग्री के ।
मिलते हैं । यह संयुक्त-।
में अन्तिम व्यंजन प्रायः घट

क् +
ख् +
क् +
ग् +
ग् +
ट् +
ड् +
ड् +
ण् +
त् +
द् '

इस व्यंजन-शिक्षा में मनोवैज्ञानिक पद्धति का निर्वाह मिलता है। प्रारंभिक कक्षाओं में अध्ययन के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए चित्रमयी पुस्तकों से शिक्षा देने की पद्धति आज प्रचलित है। इसीलिए बच्चे 'क कबूतर वाले' से अपनी व्यंजन-शिक्षा प्रारंभ करते हैं और कबूतर के चित्र के साथ 'क'–रूप में बनी रेखाएं इस चित्र-द्वारा सहज ही स्मरण रह जाती हैं।

इससे एक भिन्न पद्धति भी है, जिसे वर्णमाला याद करते समय बच्चों द्वारा अपनाया जाता है। यह पद्धति गाकर याद करने की है। इसे ही पहाड़ों को याद करते समय छोटे-छोटे बालक अपनाते हैं। वे 'एक दुवा दो' और 'दो दुवा चार' को गाकर याद करते हैं और इस प्रकार रूखे पहाड़े सरलता से याद कर लेते हैं। इस पद्धति के अपनाने से उनके कोमल मस्तिष्क पर अधिक बोझ नहीं पड़ता है।

अतः यह स्पष्ट है कि नीरस अक्षर-ज्ञान को सरलता के साथ हृदयंगम करने के लिए चित्रकला और संगीत-कला का आश्रय आज भी लिया जाता है। हाड़ौती का 'कक्का' इन दोनों का समन्वित रूप है। उसे गाकर भी याद किया जाता है और प्रत्येक अक्षर के साथ ऐसा सार्थक चित्र भी जुड़ा हुआ है, जो उस व्यंजन की आकृति के अनुरूप होता है तथा चित्रगत वस्तु उसके आसपास की बिखरी हुई वस्तुओं में से होती है। यह 'कक्का' उस समय अति मनोवैज्ञानिक रहा होगा, जब मुद्रण-यंत्रों के अभाव में पुस्तकें के दर्शन जन-साधारण को दुर्लभ थे।

उपर्युक्त वर्णमाला पर दृष्टिपात करने के उपरांत अधिकांश व्यंजनों को चित्र-द्वारा समझाये जाने की पद्धति का स्पष्ट बोध हो जाता है। कुछ व्यंजनों के चित्रेतर संकेत भी मिलते हैं, पर ऐसे संकेत भी प्रायः किसी चित्रमय व्यंजन की ओर होते हैं। ज्ञात के सहारे अज्ञात को हृदयंगम करना सरल हो जाता है। इस दृष्टि से ऐसे संकेत भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

हाड़ौती 'कक्का' से संकेतित चित्रों को देखने से इसका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा।

'सीदो' या ध्वनि-वर्गीकरण

हाड़ौती के प्रत्येक विद्यार्थी को साक्षर बनने के लिए 'कक्का' तथा 'सीदा' अवश्य पढ़ना पड़ता था। 'सीदो' या 'सीधा' उसी प्रकार का शब्द है जिस प्रकार का 'कक्का' है। जिस प्रकार आद्यक्षर 'कक्का' व्यंजन-माला को ग्रहण करने की प्रवृत्ति का द्योतक है उसी प्रकार आद्यक्षर 'सीदो' समस्त अक्षरों का व्याकरणिक विश्लेषण है। शर्ववर्मा के द्वारा संस्कृत-शिक्षा को सुगम बनाने की प्रक्रिया का परिणाम 'सीदो' है।

हाड़ौती का 'सीदा' 'कातंत्र रूपमाला' से लिया गया है।[१] पाणिनि का व्याकरण पंडितों में सम्मानित रहा, पर जन साधारण में वह ग्राह्य नहीं हो सका। वह

१—देखिये, कातंत्र रूपमाला व्याकरण, पृष्ठ १।

ध्वनि-शिक्षा और लिपि

कक्को या व्यंजन-माला :

हाड़ौती की कोई स्वतंत्र वर्णमाला नहीं है। हाड़ौती-क्षेत्र में विद्यार्थी को वही सीखना पड़ता है जो हिन्दी-क्षेत्र के विद्यार्थी को सीखना पड़ता है। स्वर और व्यंजनों की संख्या भी लगभग वही है, यद्यपि व्यवहार में कम ही स्वर तथा व्यंजन आते हैं। प्राचीन पद्धति में शिक्षा प्राप्त करने वाला विद्यार्थी 'बारखड़ी' (द्वादशाक्षरी) सीखता है। वस्तुतः ये द्वादश या बारह स्वर हैं जिनका विविध व्यंजनों के साथ प्रयोग करना ही 'बारखड़ी' कहलाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यंजन के रूप इस प्रकार मिलते हैं—

(१) क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः ;

(२) ख, खा, खि, खी, खु, खू, खे, खै, खो, खौ, खं, खः आदि।

प्राचीन परंपरागत 'बारखड़ी' के इन रूपों से स्वरों की संख्या निश्चित हो जाती है। हाड़ौती की 'बारखड़ी' के बारह स्वर इस प्रकार हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। ये स्वर प्राचीन काल में इस क्षेत्र में व्यवहार में आते होंगे, पर आधुनिक काल में इनमें से इ, ऐ, औ तथा अः के प्रयोग हाड़ौती बोलचाल में नहीं सुनाये पड़ते हैं।

हाड़ौती में व्यंजन-शिक्षा की, जिसे यहां 'कक्को' कहा जाता है, बड़ी रोचक पद्धति प्रचलित है। 'क' इस पद्धति का आद्यक्षर होने के नाते व्यंजन-माला का पर्याय बन गया है। हाड़ौती में एक मुहावरा भी प्रचलित है, जो व्यक्ति की निरक्षरता को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है—'जाणै तो कक्को ई नैं' अर्थात् नितांत निरक्षर है। यह 'कक्का' या व्यंजन-शिक्षा इस प्रकार है।

कक्को र केवड़ियो, खक्खा खूनै खोर्‌यो। गग्गा गोरी गाय। घग्गो घट्टल्यो। नन्या बाळो दुबालो। चड़ा चड़ा की चांचोड़ी। छज्या छज्या पोटालो। जज्जायां की घीसोड़ो। नन्यां खांडो चंदरमा। कुटका मेडो खुटकड़ो। टट्टो घीर घलावणो। ड्ड्डा डावड़ गांठोड़ी, ढड्डा पूंछड़ फूंफोड़ी। राणा थारी तीन रींगटो। तत्तो तम्बोळी तांबो। तांत मार्‌यो थांबो। दद्दो दुवाळ्यां दीवट को, दद्दो धन्नक छोड़्यां जाय। आगै नन्यो भागतो जाय। पा पा फाटकड़ो। फप्पो फैलांत को। बब्बो बाड़ी बेंगण्यां। बब्बो मूंछ कटार को। मम्मा मात मागलो। यायो जाडा पेट को। ररों राव राणोली। लल्लो लाव ल्वांळ्यो (लल्लो लाव लळांकी सी)। वाटलां की बींटो को। ससो लंगोटो। सस्सो फलारो। हाहा हींडोली। कड़यां कटको मोरड़ो। ज्यार बींद्यां मोरड़ो।

इस व्यंजन-शिक्षा में मनोवैज्ञानिक पद्धति का निर्वाह मिलता है। प्रारंभिक कक्षाओं में अध्ययन के प्रति रुचि जागृत करने के लिए चित्रमयी पुस्तकों से शिक्षा देने की पद्धति आज प्रचलित है। इसीलिए बच्चे 'क कबूतर वाले' से अपनी व्यंजन-शिक्षा प्रारंभ करते हैं और कबूतर के चित्र के साथ 'क'—रूप में बनी रेखाएं इस चित्र-द्वारा सहज ही स्मरण रह जाती हैं।

इससे एक भिन्न पद्धति भी है, जिसे वर्णमाला याद करते समय बच्चों द्वारा अपनाया जाता है। यह पद्धति गाकर याद करने की है। इसे ही पहाड़ों को याद करते समय छोटे-छोटे बालक अपनाते हैं। वे 'एक दुवा दो' और 'दो दुवा चार' को गाकर याद करते हैं और इस प्रकार रूखे पहाड़े सरलता से याद कर लेते हैं। इस पद्धति के अपनाने से उनके कोमल मस्तिष्क पर अधिक बोझ नहीं पड़ता है।

अतः यह स्पष्ट है कि नीरस अक्षर-ज्ञान को सरलता के साथ हृदयंगम करने के लिए चित्रकला और संगीत-कला का आश्रय आज भी लिया जाता है। हाड़ौती का 'कक्का' इन दोनों का समन्वित रूप है। उसे गाकर भी याद किया जाता है और प्रत्येक अक्षर के साथ ऐसा सार्थक चित्र भी जुड़ा हुआ है, जो उस व्यंजन की आकृति के अनुरूप होता है तथा चित्रगत वस्तु उसके आसपास की बिखरी हुई वस्तुओं में से होती है। यह 'कक्का' उस समय अति मनोवैज्ञानिक रहा होगा, जब मुद्रण-यंत्रों के अभाव में पुस्तकों के दर्शन जन-साधारण को दुर्लभ थे।

उपर्युक्त वर्णमाला पर दृष्टिपात करने के उपरांत अधिकांश व्यंजनों को चित्र-द्वारा समझाये जाने की पद्धति का स्पष्ट बोध हो जाता है। कुछ व्यंजनों के विशेषर संकेत भी मिलते हैं, पर ऐसे संकेत भी प्रायः किसी चित्रमय व्यंजन की ओर होते हैं। ज्ञात के सहारे अज्ञात को हृदयंगम करना सरल हो जाता है। इस दृष्टि से ऐसे संकेत भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

हाड़ौती 'कक्का' से संकेतित चित्रों को देखने से इसका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा।

'सीदो' या ध्वनि-वर्गीकरण

हाड़ौती के प्रत्येक विद्यार्थी को साक्षर बनने के लिए 'कक्का' तथा 'सीदा' अवश्य पढ़ना पड़ता था। 'सीदो' या 'सीधा' उसी प्रकार का शब्द है जिस प्रकार का 'कक्का' है। जिस प्रकार आद्यक्षर 'कक्का' व्यंजन-माला को ग्रहण करने की प्रवृत्ति का द्योतक है उसी प्रकार आद्यक्षर 'सीदो' समस्त अक्षरों का व्याकरणिक विश्लेषण है। शर्ववर्मा के द्वारा संस्कृत-शिक्षा को सुगम बनाने की प्रक्रिया का परिणाम 'सीदो' है।

हाड़ौती का 'सीदा' 'कातंत्र रूपमाला' से लिया गया है।[१] पाणिनि का व्याकरण पंडितों में सम्मानित रहा, पर जन साधारण में वह ग्राह्य नहीं हो सका। वह

१—देखिये, कातंत्र रूपमाला व्याकरणम्, पृष्ठ १।

दुरूह था, विशाल था। पाणिनि के आधार पर अनेक व्याकरण-ग्रन्थ रचे गये। 'शर्ववर्मा के ऐन्द्र व्याकरण के आधार पर कातन्त्र व्याकरण की रचना संभवतः ईसा की पहिली शताब्दी में की थी।' [१] इसकी रचना 'बाल-बोधार्थ' हुई थी। राजस्थान जैन मत के प्रचार का क्षेत्र होने के फलस्वरूप इस व्याकरण का प्रचार जन-जन में हो गया था, पर कालान्तर विद्यार्थी इसे बिना समझे 'तोता-रटन' प्रणाली से घोटने लगे।

नीचे हाड़ौती का 'सीदो' और उसका 'कातंत्र रूपमाला'-गत शुद्धरूप दिया जा रहा है—

हाड़ौतीसीदो	कातंत्र रूपमाला-गत शुद्धरूप
सीदो बरणा। समामुनाया	सिद्धो वर्ण समाम्नायः
चतु चतु दासा। दऊ सँवारा	तत्र चतुर्दशादौ स्वराः
दसे समाना	दश समानाः
तेहू दुग्या बराणो। नगीन बरणो।	तेषां द्वौ द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ
पूरबो हसवा	पूर्वो ह्रस्वः
पारो दुरगा	परो दीर्घः
सारो बरणा। बंज्यो नामी।	स्वरोऽवर्णवर्जो नामि
इकरावन में संत कराणी	एकारादीनि संध्यक्षराणि
(?)	नित्यं संध्यक्षराणि दीर्घाणि
कादीनाऊ, बंज्यो नामी	कादीनी व्यंजनानि
ते बरगा पंचा पंचा	ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च
बरणांनामो परतम दतय्यो, संसो मायथा।	वर्गाणां प्रथम द्वितीयाः शषसाश्च घोषाः
गोस पतोरणी	घोषवन्तोऽन्ये
मान ना सका। नन्या नू मामा	अनुनासिका ङञणनमाः
उस्ताद रै लब्दा (अनना संता जेरे लवा)	अन्तस्था यरलवाः
उकमन संखो साहा (उकमण संपोसाहा)	ऊष्माणः शषसहाः
आयती विसर्जनीया (आयती विसारजुनिया)	अः इति जिह्वामूलीयः
कायती जिह्वामूलीय	क इति जिह्वामूलीयः
पायती पद्मानीया	प इत्युपध्मानीयः
आयो आयो रतन सवारो	अं इत्यनुस्वारः

उपर्युक्त हाड़ौती 'सीदो' ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें ह्रस्व 'इ' का प्रयोग हाड़ौतीतर प्रभाव का द्योतक है। 'बंज्योनामी' 'व्यंजनानि' का विकृत रूप है जो मूल से इतना दूर जा पड़ा है कि दोनों में किसी संबंध को स्थापित

१—सक्सेना, संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका, पृष्ठ १५।

करना सहसा दुरुह है। कहीं-कहीं यह विकृति मूल से बहुत दूर तक नहीं पहुंची है; यथा, पूरबो हुसवा∠पूर्वो ह्रस्वः और पारोदुरणा∠परोदीर्घः।

लिपि

हाड़ौती लिपि देवनागरी लिपि से मिलती है। हां, इसके कुछ अक्षरों की बनावट में देवनागरी लिपि से अंतर मिलता है; यथा, हिन्दी के 'क' तथा 'ख' हाड़ौती में 'ꣳ' तथा 'ष'रूप में मिलते हैं। 'ꣳ' गुजराती से मिलता है। इसी प्रकार 'ꣴ' की बनावट भी हिन्दी 'ल' से भिन्न है।

यह लिपि 'बाण्यां-बाटी' के नाम से हाड़ौती-क्षेत्र में अभिहित है। इसकी विशेषता यह होती है कि पहले एक आड़ी रेखा खींच दी जाती है और फिर उसके नीचे सहारे-सहारे अक्षर लिखे जाते हैं। इस लिपि में संयुक्ताक्षर प्रायः नहीं बनाये जाते। संयुक्ताक्षरता गोप्या, मोत्या आदि शब्दों में मिलती है जिनको इस प्रकार लिखा जाता है गोप), मोत)। इस लिपि में ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं के अंतर की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है, पर प्रायः दीर्घ मात्राओं का ही प्रयोग मिलता है। मात्राओं के लिए 'काना-मात' (कर्ण तथा मात्रा) शब्द प्रचलित है। इसको पढ़ने वाले प्रायः अटकल से इसे पढ़ जाते है, क्योंकि अनेक अवस्थाओं में तो 'काना-मात' लगाये भी नहीं जाते हैं। एक लकीर के सहारे अनेक अक्षरों को लिखे जाने के फलस्वरूप पढ़ने के लिए अभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आजकल इसका स्थान देवनागरी लिपि ग्रहण करती जा रही है। इस 'बाण्यां-बाटी' या महाजनी लिपि के अक्षर 'मुड़िया' कहलाते हैं। यह एक तरह 'शार्ट-हैंड' का काम देती है।

बालचंद मोदी के अनुसार मोतीलाल मेनारिया[1] ने इन मुड़िया अक्षरों के आविष्कर्ता मुगल सम्राट् अकबर के अर्थ-सचिव राजा टोडरमल को माना है। इसकी पुष्टि में टोडरमल का बनाया हुआ एक दोहा दिया गया है—

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यंजन व्यवहार।
ताते जग के हित सुगम, मुड़िया कियो प्रचार।

परन्तु ओझाजी ने मोड़ी लिपि के सम्बन्ध में लिखा है—'इसकी उत्पत्ति के विषय में पूना की तरफ से कोई-कोई ब्राह्मण ऐसा प्रसिद्ध करते हैं कि हेमाडपत अर्थात् प्रसिद्ध हेमाद्रि पंडित ने इसको लंका से लाकर महाराष्ट्र में प्रचलित किया। परन्तु इस कथन में कुछ भी सत्यता नहीं पाई जाती, क्योंकि प्रसिद्ध शिवाजी के पहले इसके प्रचार का कोई पता नहीं चलता। शिवाजी ने जब अपना राज्य स्थापित किया तब नागरी को अपने राज्य की लिपि बनाया, परन्तु उसके प्रत्येक अक्षर के ऊपर सिर की लकीर

१—मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २०।

बनाने के कारण कुछ कम त्वरा से यह लिखी जाती थी। इसलिए उससे त्वरा से लिखी जाने के और बनाने के विचार से शिवाजी के चिटनीस (मंत्री), सरिश्तेदार बालाजी आवाजी ने इसके अक्षरों को मोड़ (तोड़-मरोड़) कर नई लिपि तैयार की। जिससे इसको 'मोड़ी' कहते हैं। पेशवाओं के प्रबन्ध में चिटनकर नामक पुरुष ने उसमें कुछ और फेरफार कर अक्षरों को अधिक गोलाई दी। यह लिपि सिर के स्थान पे लम्बी लकीर खींचकर लिखी जाती है। इसमें 'इ' तथा 'ई' और 'उ' तथा 'ऊ' की मात्राओं में ह्रस्व दीर्घ का भेद नहीं है और न हलंत व्यंजन है।'[1]

हाड़ौती लिपि शैली की दृष्टि से मोड़ी लिपि से प्रभावित है, पर वर्णों की बनावट स्पष्ट रूप से नागरी और गुजराती से प्रभावित है; जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। कुछ हाड़ौती के वर्णों की बनावट गुजराती के अनुसार है। हाड़ौती के ज, ए, झ, स गुजराती के अनुसार જ, એ, ઝ, સ, रूप में पाये जाते हैं। गुजराती का ख तो प से बना है और 'ह' तथा 'भ' जैसे शैली की नागरी लिपि से लिये गये हैं।[1] और हाड़ौती वर्ण नागरी लिपि से लिये जाते हैं।

१—ओझा, भारतीय प्राचीन लिपि माला, पृष्ठ १३१–३२।

व्यंजन	कक्का में प्रयुक्त शब्द-समूह तथा उसका शुद्ध रूप	शब्द-समूह का अर्थ	व्यंजनाकृति तथा संकेतित चित्र
क	कक्कोर केवळियो (कक्का कपिलो)	क की आकृति कपि के समान	ঙ
ख	खक्का खुतै चीरयो (खक्का खुर ने चीरा)	ख चिरे खुर के समान	प
ग	गग्गा गोरी गाय (गग्गा गोरी पाय)	ग गाय के पैर समान के	ग

व्यंजन	कक्का में प्रयुक्त शब्द-समूह तथा उसका शुद्ध रूप	शब्द-समूह का अर्थ	व्यंजनाकृति तथा संकेतित चित्र
घ	घग्गो घड़ल्यो (घग्गा घट लो)	घ घड़े के समान	घ
ङ	(ङ) नग्यावाळो ढ्वाळ्यो (ङ ङ्ङा वाला दीपालय)	ङ दीपाधार के समान	ङ
च	चड़ा चड़ा की चांचोड़ी (चच्चा चड़ा की चंचु)	च चिड़ी की चोंच के समान	च
छ	छग्गा बग्गा पोटाळो (छच्छा बग पोट)	छ पोट (गठरी) के समान	छ

व्यंजन	कक्षा में प्रयुक्त शब्द-समूह तथा उसके शुद्ध रूप	शब्द-समूह का अर्थ	व्यंजनाकृति तथा संकेतित चित्र
ज	जज्यो जेर यावन्यू	?	ज ?
झ	झज्जायां की घींसोड़ी (झज्जा की घींसोड़ी)	झ घींसोड़ी (बच्चों के खेलने की) स्लेजवत् लकड़ी के समान)	झ
ञ	(ञ) नन्यो खांडो चंदरमा (ञञ्जा खंडित चंद्रमा)	ञ खंडित चन्द्रमा के समान	
ट	(ट) टुटका मेड़ो गुटकड़ी	?	ट ?
ठ	ठट्टो घीर पलावणू (ठट्टा घीर पलावणू)	ठ घी रखने का पात्र	ठ

व्यंजन	कक्का में प्रयुक्त शब्द-समूह तथा उसका शुद्ध रूप	शब्द-समूह का अर्थ	व्यंजनाकृति तथा संकेतित चित्र
ड	डड्डा डावड गांठोड़ी (डड्डा ट-वत् ग्रंथिल)	ड ट के समान गांठ या घुमाव वाला	ड ट संकेत से स्पष्ट
ढ	ढड्ढा पूंछड़ फूंचोड़ी (ढड्ढा पूंछ पोंछी हुई)	ढ ट-वत् पूंछ सहित, पर पूंछ कटी सी	ढ ट संकेत से स्पष्ट
ण (ण)	राणा थारी तीन रींगटी (ण णणा थारी तीन रींगटी)	ण तेरी तीन रेखाएं	ण
त	तनो तम्बोळो तांबो (तता तम्बोली ताम्बूल)	त तम्बोली का ताम्बूल	ठ

व्यंजन	कक्का में प्रयुक्त शब्द-समूह तथा उसका शुद्ध रूप	शब्द-समूह का अर्थ	व्यंजनाकृति तथा संकेतित चित्र
थ	तांत मारचो थांबो (थत्था भारी स्तम्भ)	थ भारी स्तम्भ के समान	थ
द	दद्दो द्वाळ्यां दीवटको (दद्दो दीपावली दीपवर्त्तिका)	द दीपावली की दीपवर्त्तिका (दीपक)	द
ध	(ध) दद्दो धन्नक छोड़्या जाय (धद्धा धनुप छोड़ा जावे)	ध छूटते हुए धनुप के समान	ध
न	आगै नन्यो भाग्यो जाय (नन्ना आगे भगा जावे)	न आगे दौड़ता सा	न संकेत स्पष्ट है। चित्र नहीं बनता

व्यंजन	कक्का में प्रयुक्त शब्द-समूह तथा उसका शुद्ध रूप	शब्द-समूह का अर्थ	व्यंजनाकृत तथा संकेतित चित्र
म	मम्मा मात आगळो (मम्मा माथा अग्रिम)	म आगे व्यंजन भ के माथा बांधने पर प्राप्त	म भ संकेत से स्पष्ट
य	आयो जाडां पेट को (यय्या जाडा पेट को)	य मोटे पेट वाला	य
र	ररों राव राखोली (रर्‌रो राव राखोली)	र राजा की रक्षिका (तलवार)	र
ल	लल्लो लाव ख्वाल्यो (लल्ला ... या	ल	

(ख)

हाड़ौती-प्रत्यय

हाड़ौती में दो प्रकार के प्रत्यय पाये जाते हैं-(क) कृदन्त प्रत्यय और (ख) तद्धित प्रत्यय।

(क) कृदन्त प्रत्यय

हाड़ौती में कृदन्त प्रत्यय निम्न प्रकार के मिलते हैं—

१. भाववाचक
२. जातिवाचक
३. कर्तृवाचक
४. विशेषण-वाचक
५. विधान-वाचक

१. भाववाचक कृदन्त

नीचे दिये गये प्रत्ययों को धातुओं के पीछे जोड़ने से भाववाचक संज्ञाएं बनती हैं-

-अक— व्यंजनान्त धातुओं के साथ, व्यापार के अर्थ में--
बैठक् (√बैठ्), उठक् (√उठ्)

-अण्—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, व्यापार व भाव के अर्थ मे—
चलण् (√चल्), मलण् (√मल्), मरण् (√मर्)

-अत्-अती—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, भाव के अर्थ में—
चलत्, चलती (√चल्), फरत्, फरती (√फर्), मरत्, मरती (√मर्)
कुछ धातुओं से केवल 'ती' अंत संज्ञाएं बनती हैं:--
गणती (√गण्)

-अन्त्—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, अभ्यास के अर्थ में--
घोकन्त् (√घोक्), खोदन्त् (√खोद्), रटन्त् (√रट्)

-आई—स्वरांत तथा व्यंजनान्त धातुओं के साथ, १-व्यापार के अर्थ में तथा २-क्रिया के दामों के अर्थ में--
दुवाई (√दो), प्याई (√पी), छुड़ाई (√छुड़्), भराई (√भर्)
ओकारान्त धातुओं में 'ओ' का 'व्' हो जाता है, यथा—
दुवाई (√दो)

–आट्—स्वरान्त और व्यंजनान्त धातुओं के साथ, भाव के अर्थ में—
घबराट् (√घबरा), भन्नाट् (√मन्मन्), खड़खड़ाट् (√खड़खड़्)

–आण–व्यंजनान्त धातुओं के साथ, गति, स्थिति के अर्थ में—
उठाण् (√उठ्), मलाण् (√मल्), पकाण् (√पक्)

–आप्—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, व्यापार के अर्थ में—
मलाप् (√मल्)

–आव्,–आवो—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, व्यापार या भाव के अर्थ में—
कटाव् (√काट्), पकाव् (√पक्); भराव् (√भर्), सकाव् (√सेक्), बचाव्
बचावो (√बच्), छुड़ावो (√छुड़्)

–आवट्—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, दशा के अर्थ में—
सजावट् (√सज्), लखावट् (√लख्), बणावट् (√बण्)

–आवण—स्वरान्त तथा व्यंजनान्त धातुओं के साथ, भाव के अर्थ में—
मसावण् (√मसा), लगावण् (√लग्), ठगावण् (√ठग्)
'-आमणो' तथा '-आवणो' इसी प्रत्यय के रूपान्तर हैं।

–ई— व्यंजनान्त धातुओं के साथ, व्यापार के अर्थ में—
हंसी (√हंस्), धमकी (√धमक्)

–ओ— व्यंजनान्त धातुओं के साथ, दशा या अवस्था के अर्थ में—
घेरो (√घेर्), फेरो (√फेर्), झटको (√झटक्)

–यणो, वणो—स्वरांत धातुओं के साथ, व्यापार व भाव के अर्थ में—
धोवणो (√धो), रोवणो (√रो), चरड़ावणो (√चरड़ा), सोवणो (√सो)

२. जातिवाचक कृदन्त

नीचे दिये गये प्रत्ययों को धातुओं के साथ जोड़ने से जातिवाचक शब्द बनते हैं–

–अण —यह प्रत्यय भाववाचक संज्ञा प्रत्यय के समान ही प्रयुक्त होता है।[1]
मसण् (√मस्)

–अणु—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, करण के अर्थ में—
झाड़णु (√झाड़्), बेलणु (√बेल्)

–को—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, वस्तु के अर्थ में—
बट्को (√बट्), छल्को (√छल्), चलुको (√चलुचल्)

१—प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृष्ठ ४१

३. कर्तृवाचक कृदन्त

नीचे दिये गये प्रत्ययों को धातुओं के साथ जोड़ने से कर्तृवाचक शब्द बनते हैं:—

-अक्कड़—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, अभ्यासी के अर्थ में—
मुलक्कड़ (√भूल्), कुदक्कड़ (√कूद्)
इसके योग से उपान्त्य स्वर दीर्घ से ह्रस्व हो जाता है।

-आऊ—स्वरान्त और व्यंजनान्त धातुओं के साथ, अभ्यासी के अर्थ में—
खाऊ (√खा), उड़ाऊ (उड़)

-आक्—व्यंजनान्त धातुओं के साथ, अधिकारी के अर्थ में—
तैराक् (√तैर्), बैठाक् (√बैठ्)

-यो— व्यंजनान्त धातुओं के साथ, व्यवसायी के अर्थ में—
जड़्यो (√जड़्), परख्यो (√परख्)

४. विशेषणवाचक कृदन्त

नीचे लिखे प्रत्ययों को धातुओं के साथ जोड़ने से विशेषण शब्द बनते हैं—

-आऊ—स्वरान्त और व्यंजनान्त धातुओं के साथ, योग्यता के अर्थ में—
थकाऊ (√थक्), चलाऊ (चल्)

-तान्— व्यंजनान्त धातुओं के साथ, दशा के अर्थ में—
चलतान् (√चल्), उठतान् (√उठ्)

-वां— व्यंजनान्त धातुओं के साथ, क्रमिकता के अर्थ में—
रपट्वां (√रपट्), उतर्वां (√उतर्)

५. विधानवाचक कृदन्त

हाड़ौती में-आई,-बो,-तो,-यो विधान वाचक प्रत्यय हैं जिन पर क्रियापद के अध्याय में विचार किया गया है।

(ख) तद्धित प्रत्यय

हाड़ौती में तद्धित प्रत्यय निम्न प्रकार के मिलते हैं—

१. भाववाचक
२. जातिवाचक
३. कर्तृवाचक
४. विशेषण वाचक
५. क्रिया-विशेषण वाचक

१. भाववाचक तद्धित

नीचे दिये गये प्रत्यय विभिन्न शब्दों के पीछे जोड़ने से भाववाचक संज्ञाएं बनती हैं—

-आई—(१) विशेषणों के साथ, धर्म के अर्थ में—
ठंडाई (ठंडू), गोळाई (गोळ्), गरमाई (गरम्)
(२) जाति वाचक संज्ञाओं के साथ, उपर्युक्त अर्थ में—
पंडताई (पंडत्), ठकराई (ठाकर्)

-आको,-आटो,-आड़ो—अनुकरणवाचक शब्दों के साथ, ध्वनि के अर्थ में—
धमाको (धम), धरड़ाटो (धरड़), भगवाड़ो (भग-भग)

-आळु,-आलू—भाववाचक संज्ञाओं के साथ, अर्थ-वान के अर्थ में—
मकराळु (मकर्), कुरमालू (कुलम)

-वाळी—क्रियार्थक संज्ञा के साथ, योग्यता के अर्थ में—
लेवाळी (लेबा), देवाळी (देबा)

-आस्—विशेषणों के साथ, गुण के अर्थ में—
फीकास् (फीका), धोळास् (धोळा), मठ्यास् (मीठा)

-ई—जातिवाचक संज्ञा के साथ, व्यापार के अर्थ में—
करसाणी (करसाण्), दलाली (दलाल्)
उर्दू से आगत इस प्रत्यय से भी उपर्युक्त अर्थ का बोध होता है—
नवाबी (नवाब्), सा'बी (सा'ब्)

-कारो—ध्वनि-वाचक शब्दों के साथ, व्यापार के अर्थ में—
हुंकारो (हुं), फणकारो (फ-फ)

-गरी—जाति-वाचक संज्ञा के साथ, प्रवृत्ति के अर्थ में—
दादागरी (दादा), बाबूगरी (बाबू)

-ता—विशेषण के साथ, गुण के अर्थ में—
जोग्ता (जोग्)

-णी,-णो—जाति-वाचक संज्ञा के साथ, जनित वस्तु के अर्थ में—
चांदणी, चांदणो (चांद्)

-पो,-पण—जाति-वाचक संज्ञा के साथ, अवस्था के अर्थ में—
बुढ़ापो (बूढा), बचपण् (बच्चा), सगपण् (सगा)

-बन्दी—उर्दू प्रत्यय, भाववाचक संज्ञा के साथ, कर्म के अर्थ में—
जमाबन्दी (जमा)

२. जातिवाचक तद्धित

-आळू—जाति-वाचक संज्ञाओं के साथ, आधार-स्थान के अर्थ में—

सराळू (सर्)

-आयत्—जाति-वाचक संज्ञाओं के साथ, समूह या अधिकारी के अर्थ में—

पंचायत् (पंच्), बंटायत् (बांट्), टीकायत् (टीका)

-ई—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ—

१. देशवासियों के अर्थ में—

बंगाली (बंगाल्), गुजराती (गुजरात्)

२. तत्स्थानीय बोली के अर्थ में—

गुजराती (गुजरात्), मेवाड़ी (मेवाड़्)

३. तद्वस्तु-व्यापारी के अर्थ में—

तेली (तेल्), तंमोळी (तंमोळ्)

-एरो— जातिवाचक संज्ञाओं के साथ—

१. गृह के अर्थ में—

मामेरो (मामा), नानेरो (नाना)

२. व्यवसायी के अर्थ में—

कंसेरो (कांसा), लुटेरो (लूट्), चतेरो (चतराम्), लखेरो (लाख्)

-एलो—विशेषणों के साथ—

१. द्रव्य की इकाई के अर्थ में—

अधेलो (आधा)

२. स्थिति के अर्थ में—

अकेलो (एक्)

-ओळो—जाति-वाचक संज्ञा के साथ,

१. ऊनता के अर्थ में—

खटोळो (खाट्)

२. तन्निर्मित वस्तु के अर्थ में—

पंडोळो (पांड्), गंडोळो (गार्)

-खान्—उर्दू प्रत्यय, जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, स्थान के अर्थ में—

दवाखान् (दवा), छापाखान् (छापो), डांड्खान् (डांड्)

-टो—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ,

१. ऊनता के अर्थ में—

करमटो (करम्)

२. हीनता व तिरस्कार के अर्थ में—
तेल्टो (तेली), बाम्टो (बाम्णू)

–ड़ो—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ—

१. घृणा के अर्थ में—
चामड़ो (चाम्), खाल्ड़ो (खाल्)

२. प्रेम के अर्थ में—
मुख्ड़ो (मुख्), पाल्ड़ी (पांख्)

३. तुच्छता के अर्थ में—
टुख्ड़ो (टुख्), ट्रक्ड़ो (ट्रक्), टांग्ड़ो (टांग्)

–दान,-दानी—उर्दू प्रत्यय, जाति-वाचक संज्ञाओं के साथ, तत्पात्र के अर्थ में—
कलम्दान् (कलम्), सुर्मादानी (सुर्मा)

–यो—जाति-वाचक संज्ञा के साथ, ऊनता के अर्थ में—
चमार्यो (चमार्), ल्वार्यो (ल्वार्), बामण्यो (बामण्)

–लो,-ली,-ळी—जातिवाचक संज्ञा के साथ—

१. 'वाला' के अर्थ में—
रीट्लो (रीट्), चांयूलो (चांयू), टीक्ली (टीका)

२. इकाई के अर्थ में—
पाव्ली (पाव्)

३. ऊनता के अर्थ में—
छाव्ळो (छांव्), टक्ळी (टका)

३. कर्तृवाचक-तद्धित

–आर,-आरो,-आरी—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, व्यवसायी के अर्थ में—
सुनार् (सूना), लखारो (लाख्), पुजारी (पूजा), हत्यारो (हत्या)

–एड़ी—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, अभ्यासी के अर्थ में—
गंजेड़ी (गांजा), भंगेड़ी (भांग्)

–ओरो—भाववाचक संज्ञाओं के साथ, अभ्यासी के अर्थ में—
चटोरो (चाट्), ठगोरो (ठगी)

–दार्—उर्दू प्रत्यय, भाववाचक संज्ञाओं के साथ, व्यवसायी के अर्थ में—
पेसदार् (पेस्), रोजदार् (रोज्)

–खोर्—उर्दू प्रत्यय, जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, अभ्यासी के अर्थ में—
चुगल्खोर् (चुगली), नमक्खोर (नमक्)

-गर्— उर्दू प्रत्यय, भाववाचक तथा जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, 'वाला' अर्थ में—
जादूगर्, (जादू), सकलीगर् (सकली)

-गारी -गाळी—भाववाचक संज्ञाओं के साथ, अभ्यासिनी के अर्थ में—
कामणगारी (कामण्), छंदगाळो (छंद)

-ची,-चो—उर्दू प्रत्यय, जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, व्यवसायी के अर्थ में—
तोप्ची (तोप्), मसाल्ची (मसाल्), तबल्चो (तबला)

-दार्—उर्दू-प्रत्यय, जातिवाचक तथा भाववाचक संज्ञाओं के साथ, 'वाला' के अर्थ में—
ठेकादार् (ठेका), उजड्दार् (उजड्)

-नवीस—उर्दू प्रत्यय, भाववाचक संज्ञाओं के साथ, लेखक के अर्थ में—
नकल्नवीस् (नकल्), जमाखरच्नवीस् (जमाखरच्)

-मन्द् या-बन्द्—उर्दू प्रत्यय, भाववाचक संज्ञाओं के साथ, 'वाला' के अर्थ में—
अकल्मन्द (अक्कल्), जुर्रत्बन्द (जुर्रत) जरूरत

-वाळो,-हाळो—भाववाचक तथा जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, अधिकारी तथा व्यवसायी के अर्थ में—
भैंस्वाळो (भैंस्), गाडीहाळो (गाड़ी), टोपीवाळो (टोपी)

४. विशेषण वाचक तद्धित

-आळो—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, युक्तता के अर्थ में—
मूंछ्याळो (मूंछ्), दूंदाळो (दूंद), सूंडाळो (सूंड्)

-ई—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, गुण के अर्थ में—
देसी (देस्),दागी (दाग्)

-ईलो—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, युक्तता के अर्थ में—
छबीलो (छबी), रंगीलो (रंग्)

-ऊ—भाववाचक संज्ञाओं के साथ, प्रकृतियुक्त के अर्थ में—
झगडू (झगड़ा), मरडू (मरड़्)

-एल—भाववाचक संज्ञाओं के साथ, प्रकृतियुक्त के अर्थ में—
टंटेल् (टंटा), दुरसेल् (दुरसा)

-ओनी—जातिवाचक संज्ञाओं के साथ, तुलना के अर्थ में—
जीरोनी (जीरा), सीसोनी (सीसा)

-वड़ो—संख्यावाचक विशेषणों के साथ, धर्ममयता के अर्थ में—
अकेवड़ो (एक्), दोवड़ो (दो), तेवड़ो (तीन्)

(ग)

संज्ञा

हाड़ौती संज्ञाओं (प्रातिपदिकशब्दों) का अंत स्वर या व्यंजन दोनों में पाया जाता है। नीचे विभिन्न स्वरान्त व व्यंजनान्त संज्ञाएं दी जा रही हैं—

स्वरान्त संज्ञाएं

अै: सं (संकेत), पै (प्रतिष्ठा), नरणै (निरन्न)
आ: रादत्या, छाया
ई: जंवाई, धोवती, फाणी, नाई, कंदोई
ऊः नाऊ (नाई), लाडू, साडू, ब्यालू (संध्या का भोजन)
ए: पांडे, मे,' बे'
ओ: घोड़ो, टोपो, सोपो, तांबो, नरोगो, संगाड़ो

व्यंजनान्त संज्ञाएं

क्: नाक्, चाक्, फांक्, मांक्, भीक् (भिक्षा)
ख्: मांख्, दाख्, रूंख्
ग्: साग्, नाग्, लूंग्, फलांग्,
घ्: नाघ्, सांघ्, खांघ्, मरघ्, वांघ्, पघ् (पथ्य)
छ्: साछ् (विशेषता), रीछ्, मूंछ्,
ज्: राज्, नाज्, बीज्, बेज् (छेद), मपज् (उगज)
ट्: माट्, पेट्, पाट्, ऊंट्, खाट्,
ठ्: सेठ् जेठ्, गांठ्, मूंठ्, ऊंठ् (उच्छिष्ट)
ड्: डंड्, मंड्, भांड्, हाड्, रांड्, रूंड्, सोड्, मूंड्
ड़्: बड़्, राड़् (लड़ाई), मोड़्
ण्: सेण्, पराण्, लूण्, गरेण्, पण्, बामण्
त्: मात्, भात्, बरात्, परात्, गत्, रात्, छोत् (छूत), परान्त्
थ्: नथ्, माथ्
द्: खाद्, मैद्, सद् (सिद्धि), मोगद्, पाद्
न्: दन्, मन्, धन्, पान्, ऊन्, जोबन्
प्: सांप्, नाप्, मूंप्, (सौंफ), पीप् (मवाद)

ब् : बड़ब् (ज्वार का पौधा), दोब्, डाब् (दर्भ)

भ् : लोभ्, जीभ्

म् : नाम्, काम्, राम्, सोरम्, कुटम् (कुटुम्ब)

य् : बाय् (वायु), गाय्

र् : बर्, सपातर्, जुर् (ज्वर), पोसर्, गागर्, जंतर् सरागार्

ळ्: मांचळ्, सांकळ्, झुगळ्, खाळ्, धंद्याळ्, साळ्

व् : तळाव्, न्याव्, नाव्

स्: रास् (राशि), ऊमस् (ऊष्म) रांगस्, कोस् (क्रोश), फांस् (पाश), मावस् (अमावस्या), तस् (तृष्णा)

उपर्युक्त जातिवाचक संज्ञाओं के उदाहरणों के अतिरिक्त व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को भी कुछ प्रत्ययों से तनिक भिन्न अर्थ प्रदान किया जाता है, नीचे-'या' अथवा-'यो' प्रत्यय जोड़कर बने कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के रूप दिये जा रहे हैं—

परमू :		परम्यो, परम्या
खानू :	(कन्हैया)	खान्यो, खान्या
बसनू	(विष्णु)	बसन्यो, बसन्या

(घ)
लिंग

हाड़ौती में दो लिंग पाये जाते हैं—पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। संसार की सभी सजीव और निर्जीव वस्तुएं इन्हीं दोनों लिंगों में से किसी एक में रखी जाती हैं, इसलिए हर किसी शब्द को देखकर यह कहना कठिन प्रतीत होता है कि अमुक शब्द अमुक लिंग होना चाहिये, यह समस्या अनेक रूपों में मिलती है।

(क) पर्यायवाची शब्दों के लिंग की असमानता—

हाड़ौती में पर्यायवाची शब्दों में लिंग समान नहीं मिलते—

'पथ' के पर्यायवाची—

गेलो, रस्तो—पुल्लिंग

गैली, डगर्, बाट्, सड़क्—स्त्रीलिंग

'पुस्तक' के पर्यायवाची—

गरन्थ् (पु०), पोथी, किताब् (स्त्री०)

'ज्वर' के पर्यायवाची—

ताप्, जुर् (पु०), बुखार् (स्त्री०)

'कुल' के पर्यायवाची—

मंदर्‌यो, मस्‌कूल् (पु०); पाठ्‌साला, चट्‌साला (स्त्री०)

'तन' के पर्यायवाची—

दे' (स्त्री०); डील्, सरीर (पु०)

(ख) अनेक दीर्घाकारी वस्तुएं पुल्लिग में और लघ्वाकारी स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती हैं; यथा—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
गैलो, रस्तो	गैली, गडार्, बाट्
गरंथ्	पोथी
मंदर्‌यो	पाठ्‌साला

पर अनेक वस्तुओं में इसके विपरीत भी मिलता है—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
बीड़्यो	कलम्
भेलो	भेली
कांकड़ो	कांकड़ी

(ग) एक ही शब्द दो अर्थों में दो लिंगों में प्रयुक्त होता है, यथा—चांद (चंद्रमा) (पु०); चांद (गाफ सिर) (स्त्री०)

(घ) संस्कृत के अनेक शब्दों का हाड़ौती में लिंग परिवर्तित हो गया है—

संस्कृत	हाड़ौती
दारा (पु०)	दारी (स्त्री०)
अग्नि (पु०)	आग् (स्त्री०)
देवता (स्त्री०)	देवतो (पु०)
आत्मा (पु०)	आत्मा (स्त्री०)
रत्न (पुन०)	रतन् (पु०)

(ङ) विदेशी शब्दों में भी यह लिंग-परिवर्तन मिलता है। ये शब्द हिन्दी में होकर हाड़ौती में आये हैं। अतः उनका वही लिंग हाड़ौती में मिलता है, जो हिन्दी में है—

हिन्दी	हाड़ौती
कलम (स्त्री०)	कलम् (स्त्री०)
कागज (पु०)	कागद् (पु०)
अदालत (स्त्री०)	अदालत् (स्त्री०)
रेल (स्त्री०)	रैल् (स्त्री०)

(च) प्राणिवाचक संज्ञा शब्दों का लिंग उनके प्राकृतिक लिंग के अनुसार होता है; यथा—घोड़्, ग्हार् पुल्लिग है और घोड़्डी, ग्हार्डी स्त्रीलिंग है।

कुछ ऐसे संज्ञा शब्द हैं जो हाड़ौती में या तो केवल पुलिंग में प्रयुक्त होते हैं; यथा-कागलो (कौवा), नोळ्यो (नकुल), मंगर् (मगर), ढींक् (गिद्ध), परत्यो (परीहा) आदि।

या केवल स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त होते हैं—लूंगा (लोमड़ी), माकड़ी (मकड़ी), कांवळी (चील), सारस् (सारस), जूं (यूका), ल्हीक् (लिखा)

संज्ञा-शब्दों के वाक्यगत रूप के आधार पर उनके लिंगों को इस प्रकार समझा जा सकता है—

(क) संज्ञा से मेल करने वाले विकारी विशेषणों से लिंग-बोध होता है; यथा-काळो सांप्, धोळी गाय् ।

इनमें 'काळो' और 'धोळी' क्रमशः पुलिंग और स्त्रीलिंग है, जो अपने व्यंजनान्त विशेष्यों 'सांप्' और 'गाय्' के पुलिंग और स्त्रीलिंग का निर्देश करते हैं।

विशेषणों का रूप निश्चित-सा है—सप्रत्यय विशेषण पुलिंग एकवचन में ओकारान्त और स्त्रीलिंग एक वचन में ईकारान्त अपने अविकारी रूप में मिलते हैं।

(ख) संज्ञा से मेल करने वाले कृदन्तों से लिंग-बोध होता है; यथा—भागती छोरी (भागती लड़की) और मर्यो मनख् (मरा मनुष्य) में भागती (स्त्री०) और मर्यो (पु०) से मेल रखने वाली संज्ञाएं क्रमशः छोरी और मनख् स्त्रीलिंग और पुलिंग में है।

(ग) संज्ञा से मेल करने वाले कुछ क्रिया-रूपों से लिंग-बोध होता है; यथा—१—घोड़ो आयो, २—घोड़ा ने घांस् खाई ।

इन वाक्यों में 'घोड़ो' और 'घांस्' क्रमशः पुलिंग और स्त्रीलिंग है; क्योंकि उनसे मेल खाने वाली क्रिया में 'आयो' और 'खाई' क्रमशः पुलिंग और स्त्रीलिंग है।

पर हाड़ौती में जब स्त्रीलिंग संज्ञाओं को आदरसूचक रूप में प्रयोग किया जाता है तब क्रियापद स्त्रीलिंग सूचक न होकर पुलिंग बहुवचन सूचक बन जाता है। यथा—सीताजी डूंगरां में ग्या (सीताजी वन में गई)।

(घ) सम्बन्ध कारक के परसर्ग से परगामी संज्ञा-शब्द के लिंग का बोध होता है; यथा, १—रामा की बल्ली, २—रामा को कुत्तो।

इन वाक्यांशों में परसर्ग 'की' और 'को' क्रमशः स्त्रीलिंग और पुलिंग का बोध कराते हैं जिनसे सम्बद्ध संज्ञाएं 'बल्ली' और 'कुत्तो' के क्रमशः स्त्रीलिंग और पुलिंग होने का बोध होता है।

(ङ) कुछ सर्वनामों के अविकारी एकवचन रूपों से तत्सम्बन्धी संज्ञा का लिंग बोध होता है; यथा, १—ऊ (सांप्) आयो, २—वा (लूंगा) आई, ३—ज्या (बड़ी) बा बैठी छी, ४—ज्यो (तेली) ताल् आया छो आदि।

इन वाक्यों में ऊ, ज्यो पुलिंग है और वा, ज्या स्त्रीलिंग है जो सम्बन्धित संज्ञाओं के पुलिंग और स्त्रीलिंग होने की ओर संकेत करते हैं।

ऐसे सर्वनामों के अविकारी एकवचन के रूप इस प्रकार हैं—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
अन्य पुरुष सर्वनाम	ऊ	वा
निश्चयवाचक सर्वनाम	ऊ, यो	वा, या
सम्बन्धवाचक सर्वनाम	ज्यो	ज्या
नित्यसम्बन्धी सर्वनाम	ऊ	वा

(च) प्राणिवाचक संज्ञा शब्द के अन्तर्गत भाव से भी अनेक शब्दों का लिंग-बोध उनके प्राकृतिक लिंग के आधार पर होता है; यथा—

पुल्लिंग शब्द—बलाव्, आदमी, न्हार्, घोड़ो आदि।
स्त्रीलिंग शब्द—बल्ली, लुगाई, न्हार्ड़ी, घोड़ी आदि।

(छ) स्त्री-प्रत्ययों से स्त्रीलिंग शब्दों का लिंग बोध होता है। ये स्त्री-प्रत्यय -'ई',-'आणी',-'अण' आदि हैं; यथा—

जूती, पंडताणी, बलाण् आदि।

रूप के आधार पर लिंग-निर्णय

(क) पुल्लिंग-शब्द

१. ओकारान्त संज्ञा शब्द; यथा—
   घोड़ो, छोरो, गोलो आदि
२. कर्तृवाचक -'ई' प्रत्ययान्त शब्द; यथा—
   तेली, तमोळी आदि।
३. भाववाचक -पण, -आव्, तथा -आण् प्रत्ययान्त शब्द; यथा—
   बचपण, कटाव्, मलाण् आदि
४. -आकड़्,-आऊ,-आक्,-कार्,-खोर्,-गर्, -वान्—कर्तृवाचक प्रत्ययान्त शब्द; यथा—
   भुलक्कड़्, खाऊ, तैराक्, पेसकार्, चुगल्खोर, सकलीगर, गाडीवान्।
५. ऊकारान्त भाववाचक संज्ञा शब्द; यथा—
   नजराणू, घराणू आदि।
६. -'बो' प्रत्ययान्त भाववाचक शब्द; यथा—
   चालबो, बोलबो आदि।

(ख) स्त्रीलिंग-शब्द

१. आकारान्त संज्ञा शब्द; यथा—
   माळा, सीता आदि।

२. ईकारान्त संज्ञा शब्द; यथा—
मायली, भोजाई आदि ।
'कर्तृवाचक' -'ई' प्रत्ययान्त तथा कुछ अन्य शब्द इस श्रेणी में नहीं आते
यथा—तेली, धो आदि ।
३. 'त्' अन्त्य संज्ञा शब्द; यथा—
रात्, जात्, बरात्, छत् आदि ।
पर खेत्, दांत्, सूत् आदि शब्द पुल्लिग हैं ।
४. -आट्, -आवट् भाववाचक प्रत्ययान्त शब्द; यथा—
घबराट्, भन्नाट्, बणावट् आदि ।
हाड़ौती में विभिन्न पुल्लिग संज्ञा-शब्दों से स्त्रीलिंग शब्द इस प्रकार बनते हैं—

(क) ओकारान्त संज्ञा शब्दों से

१. -'ई' प्रत्यय द्वारा; यथा—
बांदरो—बांदरी (बंदरी), ग्वाळ्यो—ग्वाळी
२. -'आणी' प्रत्यय द्वारा; यथा—
बाण्यो (बनिया)—बण्याणी,
३. -'अण' प्रत्यय द्वारा; यथा—
मोग्यो—मोगण, धोब्यो—धोबण्
४. -'हेली' प्रत्यय द्वारा; यथा—
साळो—साळाहेली ।

(ख) ईकारान्त संज्ञा शब्दों से

१. -'अण्' प्रत्यय द्वारा; यथा—
माळी—मालण्, तेली—तेलण्, खाती—खातण्,
२. -'णी' प्रत्यय द्वारा; यथा—
हाती (हाथी)—हतणी (हथिनी)
३. -'आण्' प्रत्यय द्वारा; यथा—
बनाई—बनाण्, नाई—नाण्
४. -'अण्' प्रत्यय द्वारा; यथा—
हंदोई (हलवाई)—हंदोवण
५. -'याणी' प्रत्यय द्वारा; यथा—
मुंसी (मुंशी)—मुंसाणी या मुंस्याणी,

(ग) एकारान्त संज्ञा शब्दों से

१. -'अण्' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   चोबे—चोबण्
२. -'आणी' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   दुबे-दुबाणी

(घ) व्यंजनान्त संज्ञा शब्दों से

१. -'आई' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   तळाव्—तळाई, लोग्—लुगाई
२. -'ई' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   छत्तर् (छत्र) – छतरी, रागस् (राक्षस)—रांगसी, सुनार—सुनारी,
   ल्वार् (लुहार)—ल्वारी
३. -'अण्' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   हवास् (एक जाति विशेष)—हवासण , पटेल्—पटेलण्
४. -'आणी' या -'याणी' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   सेठ (सेठ)—सेठाणी, जेठ्—जठ्याणी, नोकर्—नोकराणी
५. -'णी' प्रत्यय द्वारा; यथा—
   ठग्—ठगणी, ऊंट्—ऊंटणी, मंगर—मंगरणी

कुछ शब्दों के स्त्रीलिंग स्त्रीलिंग-संज्ञा-शब्दों की सहायता से बनते हैं; यथा—
   स्वाळराजो—स्वाळराणी

हाड़ौती में कुछ शब्दों में पुरुष-प्रत्यय भी मिलते हैं; जिनसे स्त्रीलिंग शब्दों से पुल्लिंग शब्द बनाये जाते हैं—

-'ओई' प्रत्यय द्वारा; यथा—
वैण् (बहिन)—बैणोई (भगनी-पति)
-'वो' प्रत्यय द्वारा; यथा—
रांड् (विधवा)—रंड्वो (विधुर)

अनेक शब्द किसी प्रत्यय से न बनकर स्वतंत्र रूप से पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं; यथा—

भाई—बैण्, मां—बाप्, फ्वा (फूफी)—फूगो, साहू—बड्सासू आदि ।

(ङ)

वचन

हाड़ौती में दो वचन पाये जाते हैं—

१. एक वचन

२. बहुवचन।

हाड़ौती में एक वचन से बहुवचन निम्न प्रकार से बनाये जाते हैं—

१. पुल्लिग व्यंजनान्त तथा ऐकारान्त एकवचन शब्दों के बहुवचन में प्र
कोई परिवर्तन नही होता है—

एकवचन	बहुवचन
दन्	दन्
सांप्	सांप्
नाच्	नाच्
मनख्	मनख्
दै	दै

२. पुल्लिग ईकारान्त व ऊकारान्त शब्दों के बहुवचन रूपो मे भी कोई परि
वर्तन नही मिलता है—

एकवचन	बहुवचन
नाई	नाई
लाडू	लाडू
गऊं (गेहूं)	गऊं

३. पुल्लिग एकारान्त शब्दो के बहुवचन के रूपो में प्रत्यय 'ए' के स्थान पर
'या' हो जाता है—

एकवचन	बहुवचन
चोबे	चोब्या
दुबे	दुब्या

४. पुल्लिग ओकारान्त एकवचन शब्दों के बहुवचन मे प्रत्यय–'ओ' के स्थान
पर–'आ' हो जाता है—

एकवचन	बहुवचन
छोरो	छोरा
छोकरो	छोकरा
मोड्यो	मोड्या

५. स्त्रीलिंग व्यंजनान्त तथा ग्रैकारान्त शब्दों के बहुवचन बनाने में शब्दान्त मे–'ग्रा' प्रत्यय लगता है ग्रौर 'ग्रै' का लोप हो जाता है—

एकवचन	बहुवचन
रात्	राता
जाग्	जागां
बरात्	बराता
पै	पां

ऐसे शब्दों में–'यां' भी लगता है—

एकवचन	बहुवचन
मालण्	माल्ण्यां
नाण्	नाण्या
मूंछ्	मूंछ्यां

६. स्त्रीलिंग ईकारान्त व ऊकारान्त शब्दो के बहुवचन में 'ई' व 'ऊ' के स्थान पर-'या' तथा-'वा' क्रमशः जोड़े जाते हैं—

एकवचन	बहुवचन
छोरी	छोर्या
डोकरी	डोकर्यां
पंडताणी	पंडताण्यां
बू	ब्वां

बहुवचन बनाने के उपर्युक्त नियम कर्ताकारक के ग्रविकारी रूपो के सम्बन्ध में है। ग्रन्य कारकों में बहुवचन में–'ग्रां' प्रत्यय लगता है।

उपर्युक्त प्रत्ययो के ग्रतिरिक्त–'होग्ण्' शब्द भी बहुवचन बनाने मे प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाग्रों के साथ होता है; यथा—

कसन्या-होग्ण्, गोप्या-होग्ण्

कारक

हरियाणी में संज्ञा के दो कारक-रूप मिलते हैं—

१—अविकृत कारक।

२—विकृत कारक।

(१) अविकृत कारक का प्रयोग इस प्रकार मिलता है–

(क) कर्ता रूप में, यथा–

छोरो आयो (लड़का आया), मंगतू मांगणी आवै सै (मंगत मांगनी आता है)।

(ख) अप्राणिवाचक मुख्य कर्म रूप में; यथा–

छोरा नै गाई रोटी दी (लड़के ने गाय को रोटी दी)

ओकारान्त संज्ञा शब्दों को छोड़कर शेष संज्ञाओं के विभक्ति-रहित एकवचन रूप सभी कारकों में अविकृत रूप में प्रयुक्त होते हैं।

(२) विकृत कारक का प्रयोग इस प्रकार मिलता है–

(क) परसर्ग–सहित

नै (कर्ताकारक) के साथ; यथा––

एकवचन–छोरा नै पाटी फोड़ी (लड़के ने स्लेट तोड़ी)

बहुवचन–छोरां नै घंटी बजाई (लड़कों ने घंटी बजाई)

ईं, नै (कर्मकारक) के साथ; यथा—

एकवचन–बैलू ईं बांद दो (बैल को बांध दो)

बैलू नै चारो नीरो (बैल को घास डालो)

बहुवचन—छोरयांईं ललाओ (लड़कियों को लिवाओ)

कलमां नै लाओ (कलमों को लाओ)

सूं, सैं (करणकारक) के साथ; यथा—

एकवचन—हात् सूं (सैं) काम करो (हाथ से काम करो)

बहुवचन—बातां सूं (सैं) काम न चालै (बातों से काम नहीं चलता)

नै, ईं, बेईं (सम्प्रदान कारक) के साथ; यथा—

एकवचन—गाई नै (ईं बेईं) रोटी दी (गाय को रोटी दो)

बहुवचन—बांदरां नै (ईं) उछलबो आवै सै (बंदरों को उछलना आता है

मूं, सै (अपादान) के साथ; यथा—

एकवचन—रूंख् मूं (सै) छोरो गर्यो (पेड़ से लड़का गिरा)

बहुवचन—वांका मूंडा सूं (सै) थूंक् पड़े छै (उनके मुखों से थूंक गिरता है)

को, की, का (सम्बन्धकारक) के साथ; यथा—

एकवचन—गाय् को खुर (गाय का खुर)

बहुवचन—बैलां का जोत (बैलो के जोत)

में, पै, नै (अधिकरण के) साथ; यथा—

एकवचन—घर् मे (पै, नै) रैणी पड़े छै (घर पर रहना पड़ता है)

बहुवचन—खेतां में (पै, नै) चड़्यां—चुड़्क्यां नुकसान् करै छै (खेतो मे पक्षी नुकसान पहुँचाते है)

(ख) परसर्ग-सहित

(१) अधिकरण कारक से अधिकृत शब्दों में; यथा—

म्हंई गोद्यां ले लै (मुझे गोद में ले ले)

ऊ बारणै ऊबो छै (वह द्वार पर खड़ा है)

(२) करणकारण से अधिकृत संज्ञा शब्दों में; यथा—

छोरो तसायां मर्‍यो (लड़का प्यासा मरा)

ऊ भूखां मर्‍यो (वह भूखों मरा)

हाड़ौती मे संज्ञा शब्द दो प्रकार के मिलते हैं—पुल्लिग और स्त्रीलिंग। कारक रचना की दृष्टि से दोनों के रूपों में भिन्नता है। इनके अविकारी तथा विकारी[1] रूप इस प्रकार मिलते हैं—

(क) पुल्लिंग संज्ञा-शब्द

औकारान्त-दे

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	दे	दे
विकारी रूप	दे	दां

१—'अविकारी' और 'विकारी' शब्द क्रमशः अंग्रेजी के 'डाइरेक्ट' तथा 'ओब्लीक' शब्दो के अनुवाद हैं। विकारी शब्द परसर्ग के योग के पूर्व विकार-ग्रस्त या रूपांतरयुक्त होते हैं, पर हाड़ौती मे एकवचन के रूपो मे यह विकार ओकारान्त शब्दो को छोड़कर नहीं मिलता है। फिर भी सुभीते की दृष्टि से उन्हें भी विकारी श्रेणी में रखा गया है, वस्तुतः वे हैं तो अविकारी ही।

ईकारान्त-तेली

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	तेली	तेली
विकारी रूप	तेली	तेल्यां

कंदोई, जंवाई, भाई, माली, साथी, धोबी आदि इसी श्रेणी के हैं।

ऊकारान्त-लाडू

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	लाडू	लाडू
विकारी रूप	लाडू	लाडूवां

साडू, मालू, स्यालू, गऊ आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं।

एकारान्त—(क) पांडे

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	पांडे	पांडे
विकारी रूप	पांडे	पांड्यां

दुबे, चोबे इसी श्रेणी के शब्द हैं।

(ख) बे-घड़े

अविकारी रूप	बे
विकारी रूप	बे

मे' प्रभृति एकाक्षरी शब्द इस कोटि में आते हैं। इनके रूप दोनों वचनों में एक मिलते हैं।

ओकारान्त-घोड़ो[1]

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	घोड़ो	घोड़ा
विकारी रूप	घोड़ा	घोड़ां

१—राजस्थानी बोलियों पर लिखी गई व्याकरण पुस्तकों मे ओकारान्त 'घोड़ो' शब्द को प्रातिपदिक रूप में स्वीकार किया गया है (पं० रामकरण शर्मा, मारवाड़ी व्याकरण, पृष्ठ ३०) और हिन्दी व्याकरणों में आकारान्त 'घोड़ा' शब्द को प्रातिपदिक रूप में स्वीकार किया गया है (कामताप्रसाद) गुरु, हिंदी-व्याकरण, पृष्ठ ३११,२), पर उक्त दोनों रूपों से कर्ता कारक, पुल्लिंग, एकवचन शब्द या अन्य किसी रूप का बोध होता है। घोड़ो, घोड़ा आदि रूपों के मूल में वक्ता की चेतना किसी ऐसे प्रातिपदिक की होनी चाहिए जो इन रूपों का निर्माण करता हो, यह प्रातिपदिक शब्द 'घोड़्' शब्द हो सकता है। अतः परम्परागत प्रातिपदिक शब्द 'घोड़ो' के स्थान पर 'घोड़्' शब्द भी प्रातिपदिक रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

छोरो (लड़का), बोळो (चमार), गोलो (गुलाम) आदि संज्ञा-शब्द इस श्रेणी में आते हैं ।

व्यंजनान्त-ऊंट्

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	ऊंट्	ऊंट्
विकारी रूप	ऊंट्	ऊंटा

राज्, नाज्, बीज्, पेट्, सेठ्, गुड्, पान्, कुटम, खुर् आदि शब्द इसी श्रेणी में आते हैं ।

(ख) स्त्रीलिंग संज्ञा-शब्द

आकारान्त-छाया

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	छाया	छाया
विकारी रूप	छाया	छायां

माया, सीता आदि शब्द इसी श्रेणी के है ।

ईकारान्त-लुगाई (स्त्री)

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	लुगाई	लुगायां
विकारी रूप	लुगाई	लुगायां

बांई (बाहु), दाई (धाय), कोराणी, दोराणी, कुत्ती ववांड़ी, डाळी आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं ।

ऊकारान्त (क) बू

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	बू	ब्वां
विकारी रूप	बू	ब्वां

ररयाळू, गऊ आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं ।

(ख) चरमूं

अविकारी रूप	चरमूं
विकारी रूप	चरमूं

चररमूं प्रभृति शब्द इसी श्रेणी के हैं, इन रूपों में वचन-भेद नहीं पाया जाता ।

व्यंजनान्त (क) बात

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	बात्	बातां
विकारी रूप	बात्	बातां

कतांग्, बांण्, गाठ्, परात्, मग्, कड़व्, रोब् आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं।

(ख) सांकळ् (शृंखला)

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	सांकळ्	सांकळ्यां
विकारी रूप	सांकळ्	सांकळ्यां

कांच्, मांग्, गांठ्, छंदपाळ्, रात्, फौज् आदि शब्द इस श्रेणी के हैं।

कुछ शब्दों के रूप विकल्प से दोनों प्रकार के मिलते हैं, वे हैं—

नाक्, बरात् आदि

कारक-प्रत्यय

हाड़ौती में संज्ञा शब्दों के अविकारी और विकारी रूपों में प्रत्ययों के प्रयोग मिलते हैं।

(क) अविकारी संज्ञा प्रत्यय

(१) एक वचन रूपों में—

हाड़ौती संज्ञाएं बिना प्रत्यय के प्रयुक्त होती हैं—

(२) बहुवचन रूपों में—

हाड़ौती में आकारान्त पुल्लिग, ईकारान्त व ऊकारान्त स्त्रीलिंग और व्यंजनान्त स्त्रीलिंग शब्दों के अतिरिक्त सभी संज्ञा-शब्द मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनमें निम्न-लिखित प्रत्यय मिलते हैं—

(क) ओकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं में–'आ'; यथा—

घोड़ा, छोरा

(यहां-'ओ' का लोप हो गया है)

(ख) ईकारान्त व ऊकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में क्रमशः-'यां' व-'वां', यथा—

नन्द्यां व व्वां

ये प्रत्यय वस्तुतः–'आ' प्रत्यय ही हैं, जो स्वरांत संज्ञाओं से संधि होकर बने है।[1]

१—हाड़ौती में ये संधियां इस प्रकार मिलती हैं—

(क) ई + आ = या

(ख) ए + आ = या

(ग) ऊ + आ = वा

(घ) ओ + आ = वा

(ङ) औ + आ = आ

(ग) व्यंजनान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में-'आं' या-'यां'; यथा—

बातां, आंख्यां ।

यहां भी-'यां' प्रत्यय 'आं' प्रत्यय का ही रूप समझा जाना चाहिए, जो हाड़ौती ईकारान्त-बहुल स्त्रीलिंग संज्ञा-शब्दों के 'ई' स्वर की चेतना से संधि होकर प्राप्त हुआ।

(ख) विकारी संज्ञा प्रत्यय

(१) एक वचन रूपों में—

हाड़ौती में ओकारान्त पुल्लिंग संज्ञा-शब्दों के अतिरिक्त संज्ञा-शब्द अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं। ऐसी संज्ञाओं—ओकारान्त संज्ञाओं में -'आ' प्रत्यय प्रयुक्त होता है; यथा—

घोड़ा नै, छोरा नै ।

(२) बहुवचन रूपों में—

हाड़ौती के सभी संज्ञा शब्दों में-'आं' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है; यथा—

छोरां नै, ऊंटां पै ।

ईकारान्त, ऊकारान्त और व्यंजनान्त शब्दों के साथ प्रयुक्त क्रमशः-'यां'-'वां' तथा-'यां' प्रत्यय-'आं' प्रत्यय के ही रूप हैं।

(ग) अन्य कारक-प्रत्यय

सम्बोधन कारक के बहुवचन रूप में विकारी बहुवचन रूप के साथ-'ओ' या-'वो' प्रत्यय प्रयुक्त होता है; यथा, छोराओ, छोरानुओ, लुगायानुओ। एक वचन में एक वचन के विकारी रूप मिलते हैं। इस कारक में शब्द के पूर्व 'हे' आदि सम्बोधन-बोधक अव्यय प्रयुक्त होता है।

(घ) परसर्ग

हाड़ौती मे विभिन्न परसर्गों का प्रयोग इस प्रकार मिलता है—

कर्ताकारक-नै

(क) कर्ता कारक के अविकारी रूप मे कोई परसर्ग नहीं मिलता है; यथा—

रामो आयो (राम आया)

(ख) विकारी रूप मे 'नै' का प्रयोग होता है। यह परसर्ग भूतकाल या भूतकालिक कृदन्तों मे बने कालो के साथ प्रयुक्त होता है; यथा—

राजा की बेटी नै की (राजा की पुत्री ने कहा)

राजा नै देसां देसां मैं ढूं'डी फेरा दी (राजा ने अनेक देशो मे ढिंढोरा पिटवा दिया)

कुमार नै दो सो रप्यां को सूदो खरीद्यो (कुमार ने दो सौ रुपये का सौदा खरीदा)

कर्मकारक व संप्रदान कारक—नै, ईं

(क) हाड़ौती भाषा में 'नै' कर्मकारक का प्रमुख परसर्ग है; यथा—

राजा का नोकर् बाबाजी नै पकड़्बा भाग्या (राजा के नौकर साधु को पकड़ने दौड़े), पूंच् नै मुफ्त् मैं ई ले जा (पूंछी को मुफ्त में ही ले जा)

जिस वाक्य में कर्ता कारक 'नै' परसर्ग-युक्त मिलता है, उसमें इन कारकों में 'नै' परसर्ग का प्रयोग न होकर 'ईं' परसर्ग का प्रयोग मिलता है; यथा—

दैत् नै रूंखड़ा ईं उलाड़्यो (दैत्य ने वृक्ष को उखाड़ा)

'ईं' परसर्ग 'नै' परसर्ग के स्थान पर सर्वत्र प्रयुक्त होता है; यथा—

राजा का नोकर् बाबाजी पकड़्बा भाग्या या पूंच् ईं मुफ्त् में ईं ले जा।

यह परसर्ग ईकारान्त संज्ञा-शब्द के साथ मिलकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठता है; जैसे—बाबाजीं।

'कै तांईं' परसर्ग का प्रयोग प्रायः कुछ धातु-रूपों के साथ मिलता है। वे हैं—

दे, पकड़, मेल् आदि; यथा—

ऊंकै तांईं दे (उसको दे)।

'बेईं' परसर्ग का प्रयोग भी सम्प्रदान में इन्हीं धातु-रूपों के साथ मिलता है। यथा—

कुत्ता बेईं रोटी दे

करणकारक और अपादान कारक-सूं, सै

(क) हाड़ौती में इन दोनों कारकों में सूं, सै परसर्ग मिलते हैं; यथा—

करण में—बानी सूं हात् मत् धोबो (राख से हाथ मत धोओ) वा डरावणी सकल् सूं ऊंकै पास् आई (वह भयावनी आकृति से उसके पास आई)।

अपादान में—ठोर् ठोर् सूं राद् पड़ री छी (जगह-जगह से मवाद गिर रही थी', राजा राणी घर् सूं नकळ् ग्या (राजा रानी घर से निकल गये)

(ख) अपादान कारक में इन परसर्गों के पूर्व अधिकरण कारक के परसर्ग भी आते हैं; यथा—

ऊ रूंख पै सूं गर् पड़्यो (वह वृक्ष पर से गिर पड़ा), चोर् घर मैं सूं माल् काडर् लेग्यो (चोर घर में से सामान निकाल कर ले गया)

(ग) 'सूं' परसर्ग का प्रयोग हाड़ौती ग्रामों में अधिक मिलता है। नगरों या ... से प्रभावित क्षेत्रों में 'सै' परसर्ग प्रायः प्रयोग में आता है।

सम्बन्ध कारक—कै, का, की, को, रै, रा, री, रो, णो, णा, णी, णो

(क) सम्बन्ध कारक परसर्गों के तीन वर्ग हैं—

(१) 'क्'-युक्त वर्ग
(२) 'र्'-युक्त वर्ग
(३) 'ण्'-युक्त वर्ग

इनमें से दूसरे और तीसरे प्रकार के परसर्ग केवल सर्वनामों में प्रयुक्त होते हैं, संज्ञाओं के साथ प्रथम वर्ग के परसर्ग मिलते हैं।

(ख) सम्बन्ध कारक के परसर्ग भेदक और भेद्य के अनुसार होते हैं। भेदक के अनुसार उनका प्रयोग 'क' के अनुसार होता है। भेद्य के लिंग, वचन और कभी-कभी कारक का बोध इन परसर्गों से इस प्रकार होता है—

१. ओकारान्त परसर्ग—भेद्य पुल्लिंग, एक वचन और अविकारी कर्त्ता।
२. आकारान्त परसर्ग—भेद्य पुल्लिंग, एकवचन या बहुवचन, अविकारी कर्त्ता के अतिरिक्त कारकरूप।
३. ईकारान्त परसर्ग—भेद्य स्त्रीलिंग, सभी वचन और कारक।
४. ऐकारान्त परसर्ग—भेद्य अविकारी रूप में

यथा: यथा—

(१) राजा को बेटो चाल्यो (राजा का पुत्र चला)
(२) राजा का बेटा नै ब्याव् करल्यो (राजा के पुत्र ने विवाह कर लिया)
(३) म्हारी छोरी पीह्र् गी (मेरी पुत्री पीहर गई)
(४) थारै कोट् कोई नै (तेरे कोट नहीं है)

(ग) 'र्' युक्त परसर्ग मध्यम और उत्तम पुरुषों के भेदक के साथ एक वचन में प्रयुक्त होते हैं; यथा—

थारी गाय् (तेरी गाय), म्हारो घर् (मेरा घर)

(घ) 'ण्'-युक्त परसर्ग निजवाचक सर्वनाम के साथ प्रयुक्त होते हैं; यथा—

आप्णो गांव् (अपना गांव), आपणी खेती (अपनी खेती)

अधिकरण कारक—मैं, पै, मै (लै)

(क) इस कारक में सबसे अधिक प्रयुक्त परसर्ग 'मैं' है। 'पै' का प्रयोग कम देखने में आता है। 'मैं' के अर्थ में 'मनै' 'माह्नै' और 'पै' के अर्थ में 'कै उपर्' भी प्रयुक्त होते हैं; यथा—

चोर घर् मैं घुस्ग्या (चोर घर में घुस गये), घड़ा कै माह्नै मांख्यी छी (घड़े में मक्खी थी), ऊ क्वा का डाण्डा पै (कै उपर्) बैठ्यो छो (वह कुएं की मेंड पर बैठा था)।

(क) उत्तम पुरुष सर्वनाम

इस सर्वनाम के निम्नलिखित रूप दक्षिणी तथा उत्तरी हाड़ौती में पाये जाते हैं—

दक्षिणी हाड़ौती

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (अविकारी)	म्हूं	म्हां
(विकारी)	म्हनै	म्हांनै
करण	म्हंसूं–नै	म्हां सूं–सै
सम्बन्ध	म्हारो	म्हांरो

उत्तरी हाड़ौती

उत्तरी हाड़ौती में उत्तम पुरुष एकवचन में 'मैं' या 'म्हे' सर्वनाम का प्रयोग भी होता है, पर उसके साथ बहुवचन क्रिया आती है; यथा—

मैं गया छा (मैं गया था)

इस रूप के अतिरिक्त दोनों क्षेत्रों के रूपों में समानता है।

(ख) मध्यम पुरुष

दक्षिणी हाड़ौती

मध्यम पुरुष सर्वनाम के दक्षिणी हाड़ौती में ये रूप मिलते हैं—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (अविकारी)	तू, थू	थां
(विकारी)	तनै, थनै	थांनै
करण	तैंनै–सूं	थांनै–सूं
सम्बन्ध	थारो	थांरो

यथा—म्हनै रोटी खाई (मैंने रोटी खाई), म्हारो छोरो गयो (मेरा पुत्र चला गया), थैं नै थारा काका को घर ली (तुमको चल जाने के लिये कहा था)।

उत्तरी हाड़ौती

उत्तरी हाड़ौती में मध्यम पुरुष एकवचन में कर्ताकारक में 'तै' और 'थै' भी पाये जाते हैं और इनके साथ बहुवचन क्रिया आती है, यथा—

तै (थै) कठै सूं आया (तुम कहाँ से आये)

शेष रूप दक्षिणी हाड़ौती के समान ही मिलते हैं।

उपर्युक्त दोनों सर्वनामों के अविकारी रूप एकवचन में ऊकारान्त और बहुवचन में 'ओकारान्त' होते हैं, विकारी रूपों में 'अ' या 'अं' मध्यम एकवचन में तथा 'आ'

प्रत्यय बहुवचन में परसर्ग से पूर्व जुड़ते हैं। सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप-म्हारो, थारो-शेष विकारी रूपों से भिन्न हैं। इनमें 'आ' प्रत्यय मिलता है।

२–निश्चय वाचक सर्वनाम

हाड़ौती में इस सर्वनाम के दो रूप मिलते हैं—

क—निकटवर्ती

ख—दूरवर्ती

(क) निकटवर्ती–यो

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	यो (पु०)	ये
		या (स्त्री०)	,,
	(विकारी)	ईंनै	यांनै
करण		ईंसै-सूं	यांसै-सूं

उपर्युक्त रूपों में कर्ताकारक एकवचन के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के रूप ध्यान देने योग्य हैं, ये क्रमशः ओकारान्त और आकारान्त हैं; बहुवचन में दोनों लिंगों में 'ये' मिलता है। विकारी रूप एकवचन में 'ईं' तथा बहुवचन में 'यां' है; यथा—

या कुण छै (यह कौन है), ईंका भाग मैं रोबो लख्यो छै (इसके भाग में रोना लिखा है)।

(ख) दूरवर्ती–ऊ

हाड़ौती के अन्य पुरुष सर्वनामों का काम भी इन्हीं सर्वनामों से लिया जाता है। इनके रूपान्तर ये हैं—

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	ऊ (पु०)	वे
		वा (स्त्री०)	
	(विकारी)	ऊंनै	वांनै
करण		ऊंसै-सूं	वांसै-सूं

उपर्युक्त रूपों में अविकारी रूप के एकवचन पुल्लिंग में 'ऊ' मिलता है और स्त्रीलिंग में 'वा' तथा बहुवचन 'वे' रूप है। विकारी रूपों में एकवचन में 'ऊं' मिलता है और बहुवचन में 'वां' पाया जाता है; यथा—

ऊंसै ऊ तो दी (उसने वह तो दिया), वांका बैल् म्हारा खेत में चलीग्या (उनके बैल मेरे खेत में चले गये)।

३–अनिश्चय वाचक सर्वनाम–कोई

हाड़ौती मे 'कोई' अनिश्चय वाचक सर्वनाम का प्रयोग सभी सजीव तथा निर्जीव पदार्थों के लिए मिलता है। इसके किसी रूप से लिंग-भेद प्रकट नहीं होता। इसके रूप इस प्रकार हैं—

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी	कोई	कोई
	(विकारी)	कोई नै	कोयां नै
करण		कोई सै सूं	कोयां सै सूं

'कोई' सर्वनाम के रूप ईकारान्त पुंलिंग संज्ञा शब्दो के समान पाये जाते हैं; यथा—

कोई आवै (कोई आता है), कोयां से केबा सूं काई होवै (किसी से कहने से क्या होता है)।

४–सम्बन्ध वाचक सर्वनाम–ज्यो

हाड़ौती मे इस सर्वनाम के रूप इस प्रकार मिलते हैं—

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	ज्यो (पु०)	जे
		ज्या (स्त्री०)	,,
	(विकारी)	जीं नै	ज्यांनै
करण		जी सै–सूं	ज्यां सै–सूं

सम्बन्ध–वाचक सर्वनामो के रूप निकटवर्ती निश्चय वाचक सर्वनामो के समान मिलते हैं।

इसका प्रयोग प्रायः नित्य सम्बन्धी सर्वनाम के साथ मिलता है।

५–नित्य सम्बन्धी सर्वनाम–ऊ, सो

हाड़ौती में नित्य सम्बन्धी सर्वनामो में अधिकांशतः दूरवर्ती निश्चय–वाचक सर्वनामो का व्यवहार होता है, जिन पर पहले विचार हो चुका है।[1] यहां पर 'सो' पर विचार कर लेना पर्याप्त होगा। इसका प्रयोग वैसे ही बोलचाल में कम मिलता है और इसके विकृत रूप तो और भी कम मिलते हैं।

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	सो	सो
	(विकारी)	तो नै	त्यां नै
करण		ती सै–सूं	त्यांसै–सूं

१—देखिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृष्ठ ६८

प्रत्यय बहुवचन में परसर्ग से पूर्व जुड़ते हैं। सम्बन्ध कारक के एकवचन के रूप
म्हारो-थेर विकारी रूपों से भिन्न हैं। इनमें 'मा' प्रत्यय मिलता है।

२—निश्चय वाचक सर्वनाम

हाड़ौती में इस सर्वनाम के दो रूप मिलते हैं—

क—निकटवर्त्ती

ख—दूरवर्ती

(क) निकटवर्त्ती—यो

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (अविकारी)	यो (पु०)	ये
	या (स्त्री०)	"
(विकारी)	ईं ने	यां ने
करण	ईं से—सूं	यां से—सूं

उपर्युक्त रूपों में कर्ताकारक एकवचन के पुलिंग और स्त्रीलिंग के रूप ध्यान देने योग्य हैं, ये क्रमशः ओकारान्त और आकारान्त हैं; बहुवचन में दोनों लिंगों में [illegible] जाता है। विकारी रूप एकवचन में 'ईं' तथा बहुवचन में 'या' है, यथा—

या कुण छै (यह कौन है), ईंका भाग में ठोवो लख्यो छै (इसके भाग्य में [illegible] है)।

(ख) दूरवर्ती—ऊ

हाड़ौती के अन्य पुरुष सर्वनामों का काम भी इन्हीं सर्वनामों से [illegible]
अन्तर से है—

३–अनिश्चय वाचक सर्वनाम–कोई

हाड़ौती में 'कोई' अनिश्चय वाचक सर्वनाम का प्रयोग सभी सजीव तथा निर्जीव पदार्थों के लिए मिलता है। इसके किसी रूप से लिंग-भेद प्रकट नहीं होता। इसके रूप इस प्रकार हैं—

	कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी	कोई	कोई
	(विकारी)	कोई नै	कोयां नै
करण		कोई से सूं	कोयां से सूं

'कोई' सर्वनाम के रूप ईकारान्त पुल्लिंग संज्ञा शब्दों के समान पाये जाते हैं; यथा—

कोई आवै (कोई आता है), कोयां से खेबा सूं काई होवै (किसी से कहने से क्या होता है)।

४–सम्बन्ध वाचक सर्वनाम–ज्यो

हाड़ौती में इस सर्वनाम के रूप इस प्रकार मिलते हैं—

	कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	ज्यो (पु०)	जे
		ज्या (स्त्री०)	,,
	(विकारी)	जीं नै	ज्यांनै
करण		जीं से–सूं	ज्यां से–सूं

सम्बन्ध–वाचक सर्वनामों के रूप निकटवर्ती निश्चय वाचक सर्वनामों के समान मिलते हैं।

इसका प्रयोग प्रायः नित्य सम्बन्धी सर्वनाम के साथ मिलता है।

५–नित्य सम्बन्धी सर्वनाम–ऊ, सो

हाड़ौती मे नित्य सम्बन्धी सर्वनामों में अधिकांशतः दूरवर्ती निश्चय–वाचक सर्वनामों का व्यवहार होता है, जिन पर पहले विचार हो चुका है।[1] यहां पर 'सो' पर विचार कर लेना पर्याप्त होगा। इसका प्रयोग वैसे ही बोलचाल मे कम मिलता है और इसके विकृत रूप तो और भी कम मिलते हैं।

	कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	(अविकारी)	सो	सो
	(विकारी)	तीं नै	त्यां नै
करण		तीं सै–सूं	त्यांसै–सूं

१—देखिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृष्ठ ६८

प्रत्यय बहुवचन में परसर्ग से पूर्व जुड़ते हैं। सम्बन्ध कारक के एकवचन धारी-शेष विकारी रूपों से भिन्न हैं। इनमें 'मा' प्रत्यय मिलता है।

२–निश्चय वाचक सर्वनाम

हाड़ौती में इस सर्वनाम के दो रूप मिलते हैं—

क—निकटवर्ती

ख—दूरवर्ती

(क) निकटवर्ती–यो

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (अविकारी)	यो (पु०)	ये
	या (स्त्री०)	,,
(विकारी)	ईं नै	यांनै
करण	ईं सै–सूं	यांसै–सूं

उपर्युक्त रूपों में कर्ताकारक एकवचन के पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के रूप देने योग्य हैं, ये क्रमशः ओकारान्त और आकारान्त हैं; बहुवचन में दोनों लिंग मिलता है। विकारी रूप एकवचन में 'ईं' तथा बहुवचन में 'यां' है; यथा—

या कुण छै (यह कौन है), ईंका माग मैं रोबो लख्यो छै (इसके भाग लिखा है)।

(ख) दूरवर्ती–ऊ

हाड़ौती के अन्य पुरुष सर्वनामों का काम भी इन्हीं सर्वनामों से लिया जा इनके रूपान्तर ये हैं—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता (अविकारी)	ऊ (पु०)	वै
	वा (स्त्री०)	
(विकारी)	ऊनै	वांनै
करण	ऊंसै–सूं	वांसै–सूं

उपर्युक्त रूपों के अविकारी रूप के एकवचन पुल्लिंग में 'ऊ' मिलता है स्त्रीलिंग में 'वा' तथा बहुवचन 'वै' रूप है। विकारी रूपों में एकवचन में 'ऊं' और बहुवचन में 'वां' पाया जाता है; यथा—

ऊंकै छी छो छी (उसके [illegible] लिया), [illegible] मैं [illegible]

(उनके [illegible] मैं [illegible] के बचे [illegible]

इसके रूप इस प्रकार मिलते हैं—

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	आप्	आप्
	(विकारी)	आपनै	आपनै
करण		आपसे–सूं	आपसे–सूं
सम्बन्ध		आपणो–णी–णा	आपणो-णी-णा

अविकारी और विकारी रूपों में 'आप्' प्रयुक्त होता है। विकारी आपणो, आपणी आदि में अविकारी 'आप' का ही प्रयोग है, जिनमें णो, णी परसर्ग हैं। णो, णा आदि परसर्गों का प्रयोग सम्बन्ध कारक में केवल इस सर्वनामके साथ होता है।

८–आदरसूचक सर्वनाम–आप्

आदरसूचक 'आप्' शब्द का व्यवहार अन्य पुरुष और मध्यम पुरुष दोनों में होता है। हाड़ौती के इस सर्वनाम में आदरार्थकता पाई जाती है इसलिए दोनों लिंगों में एकवचन में भी क्रिया पुल्लिंग बहुवचन में प्रयुक्त होती है। इसके रूप इस प्रकार मिलते हैं—

कारक		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	(अविकारी)	आप्	आप्
	(विकारी)	आपनै	आपनै
सम्बन्ध		आपको का–की	आपको-का-की

इसका अविकारी तथा विकारी रूप दोनों वचनों में 'आप्' ही है। आदरसूचक 'आप्' के साथ सम्बन्धकारक परसर्ग निजवाचक 'आप' से भिन्न को, का आदि मिलते हैं।

उदाहरण—*यो आपको काम छै (यह आपका काम है), म्हनै आपसै की ने (मैंने आपसे कहा न)।*

सर्वनामजात विशेषण

कुछ ऐसे विशेषण हैं जो सर्वनामों से बनते हैं। ऐसे विशेषण दोनों की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं—

१. मूल सार्वनामिक विशेषण—ऐसे सर्वनाम बिना किसी रूपांतर के संज्ञा के साथ प्रयुक्त होते हैं; यथा—

ऊ छोरो (वह लड़का), कोई मनख् (कोई मनुष्य) आदि।

२. यौगिक सार्वनामिक विशेषण—ऐसे सर्वनाम मूल सर्वनामों में 'सूं', 'क', आदि प्रत्यय लगाने से संपादित होते हैं; यथा—

अतना दन् (इतने दिन), अतरोक् चून (इतना आटा)

सर्वनामजात विशेषणों का एक अन्य वर्गीकरण इस प्रकार सम्भव है—

परिमाणवाचक	गुणवाचक
अतनूँ, अतरोक्	अस्यो
उतनूँ, उतरोक्	उस्यो या वस्यो
जतनूँ, जतरोक्	जस्यो
कतनूँ, कतरोक्	कस्यो

यौगिक सार्वनामिक विशेषण ऊकारान्त या ओकारान्त होते हैं और उनके रू ओकारान्त गुणवाचक विशेषणों के समान मिलते हैं। अतरोक्, उतरोक् आदि भी रूपों की दृष्टि से ओकारान्त समझे जाने चाहिए, इनमें रूपात्मक विकार अन्त्य 'क्' के पूर्व के 'ओ' स्वर में होता है; यथा—

अतरोक् घी (इतना घी), अतरीक् दाळ् (इतनी दाल)।

(झ)

विशेषण

हाड़ौती विशेषणों पर विशेष विस्तार से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि रूप-रचना की दृष्टि से इनकी वे ही विशेषताएं है जो संज्ञाओं या विशेष्यों मे मिलती है। लिंग, वचन और कारक की दृष्टि से इनके रूप विशेष्य के समान होते हैं।

हाड़ौती में तीन प्रकार के विशेषण पाये जाते है—१ सार्वनामिक, २—गुणवाचक और ३—संख्यावाचक। सार्वनामिक विशेषणो पर 'सर्वनाम' अध्याय में विचार हो चुका है। यहां शेष दो प्रकारों पर विचार होगा।

गुणवाचक विशेषण

हाड़ौती मे गुणवाचक विशेषण दो प्रकार के हैं—

१. सप्रत्यय

२. अप्रत्यय

१. सप्रत्यय गुणवाचक विशेषण

(क) इन विशेषणो के अविकारी एकवचन के रूप पुंल्लिग में ओकारान्त और स्त्रीलिंग मे ईकारान्त होते हैं; यथा—

पुंल्लिग — काळो कागळो

स्त्रीलिंग — राती कुत्ती

(ख) अविकारी बहुवचन के रूप पुंल्लिग मे आकारान्त तथा स्त्रीलिंग मे एकवचन के समान ईकारान्त होते हैं; यथा—

पुंल्लिग — धोळा भाटा (श्वेत पत्थर)

स्त्रीलिंग — छोकी बातां (अच्छी बातें)

(ग) विकारी रूपों में पुंल्लिग में आकारान्तता और स्त्रीलिंग में ईकारान्तता पाई जाती है; यथा—

पुंल्लिग — बड़ा छोरा ईं मोटा सोटा सूं मार्‌यो (बड़े लड़के को मोटे डंडे से मारा)।

स्त्रीलिंग — छोटी लुगाई की पीळी कांचळी मे गोटो लाग्‌यो छै (छोटी स्त्री की पीली कंचुकी मे गोटा लग रहा है।

अतिशयावस्था

ऐसे विशेषण शब्दों के प्रभाव में हाड़ौती में विशेषण-शब्द के साथ घणां सूं घणो, सब बीचै, सबसै या सबमैं शब्दों का व्यवहार होता है; यथा—

(१) म्हूं' थैं पै घणां सूं घणूं रोस आवै छै (मुझे तुझ पर अत्यधिक क्रोध आता है)।

२. यो छोरो सब बीचै भलो छै (यह बालक सबसे भला है)।

३. यो छोरो सबमैं (मैं) भलो छै (यह बालक सबसे भला है)।

संख्यावाचक विशेषण

हाड़ौती में एक से सौ तक संख्या प्रचलित है। सामान्य जनपद ग्रामीण प्रायः बीस तक गिनती जानता है और जिस प्रकार संख्याओं में दहाई-पद्धति पर दस से आगे गिना जाता है, उसी प्रकार हाड़ौती में 'बीसी'-पद्धति प्रचलित है। यहां बीसी या बीस दहाइयों की स्थानापन्न है। इस प्रकार यदि एक ग्रामीण को नब्बे कहना होगा तो वह कहेगा च्यार् बीसी अर् दस्। पर कभी-कभी ऐसे वाक्यांश भी सुने जाते है—दस ऊपर सो (एक सौ दस), दो बीसी अर् सो (एक सौ चालीस)। पहाड़े बोलते समय एक सौ के ऊपर की गिनती का एक विचित्र रूप सामने आता है। वह है 'पलोपन सो' या 'बोलर सो' (क्रमशः १०५ तथा ११२)।

हाड़ौती की संख्याएं इस प्रकार हैं—

प्रथम दशक—एक्, दो, तीन्, च्यार्, पांच्, छै, सात्, आठ्, नो और दस।

द्वितीय दशक—ग्यारा, बारा, तेरा, चौदा, पंदरा, सोळा, सतरा, अठारा, उगणीस् और बीस्।

तृतीय दशक—इक्कीस् या उक्कीस, बाईस्, तेबीस्, चोबीस्, पच्चीस, छब्बीस्, सत्ताईस्, अट्ठाईस, उगणीस्, और तीस्।

चतुर्थ दशक—इक्तीस् या अगतीस्, बत्तीस्, तेंतीस्, चोंतीस्, पैंतीस, छतीस्, सेंतीस्, अड़तीस्, उगणचाळीस्, चाळीस्।

पंचम दशक—इकताळीस, बंयाळीस्, तंयाळीस्, चंवाळीस्, पैंताळीस, छयाळीस्, सेंताळीस्, अड़ताळीस्, उगणचास्, पचास् या पच्चास्।

षष्ठ दशक—इक्यावन्, बावन् तरेपन् या तेपन्, चोप्पन्, पचपन्, छप्पन्, सत्तावन्, अट्ठावन्, उगणसट् और स्याट्।

सप्तम दशक—इकसट्, बासट्, तरेसट् या तेसट् चोसट् या चोंसट्, पैंसट्, छासट् सड़सट्, अड़सट्, उगणंतर् और सत्तर्।

अष्टम दशक—इगणत्तर्, बैतर्, तेतर्, चोंतर्, पचेत्तर्, छींतर्, सतत्तर्, अठत्तर् गुणयासी और अस्सी।

नवम दशक—इक्यासी, ब्यांसी, त्यांसी, चोरासी, पंच्यासी, छ्यांसी, सत्यासी, अट्ठ्यासी, नीवासी या न्यासी और नब्बे।

दशम दशक—इक्याणूँ, बाणूँ, तराणूँ, चोराणूँ, पच्याणूँ, छन्नूँ, सत्याणूँ अट्ठ्याणूँ, नव्याणूँ और सो।

इन संख्या-वाचक विशेषणों में लिंग, वचन व कारक के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं होता है; यथा—

पांच मनख्यां ने मार्‌यो (पांच मनुष्यों ने मारा), म्हनै आठ् रोट्यां खाई (मैंने आठ रोटियां खाई)।

क्रमवाचक संख्या

हाड़ोती में प्रारंभिक चार 'अंकों' के उपरांत क्रमवाचक संख्याओं का निर्माण समान रूप से होता है। संख्याओं के पीछे 'वूं' या 'वों' प्रत्यय जोड़कर अविकारी पुल्लिंग एकवचन के रूप सम्पन्न होते हैं; यथा—

पांचवूं या पांचवों, ग्यारवूं या ग्यारवों।

शेष पुल्लिंग विकारी रूपों में 'वां' का प्रयोग मिलता है; यथा—

पांचवां दन् से (पांचवें दिन से), बारवां मनख् नै (बारहवें व्यक्ति को)।

स्त्रीलिंग रूपों में 'वी' प्रत्यय मिलता है; यथा—

सातवी छोरी (सातवी लड़की)

इन प्रत्ययों के जोड़ने से पूर्व अन्त्य दीर्घ स्वर का या तो ह्रस्ववत् उच्चारण होता है या उसका लोप हो जाता है; यथा— अस्यासूवों, ग्यारवूं, नव्याणमेवूं।

हाड़ोती में 'एक' से पैलो, पैली क्रमवाचक संख्याएं बनती हैं। कभी-कभी एक्वूं या एकवी भी सुना जाता है। पैलो और पैली विशेषणों में रूपात्मक परिवर्तन सप्रत्यय गुणवाचक विशेषणों के समान होते हैं।

हाड़ोती में 'दो' और 'तीन' से क्रमशः दूसरो या दूजो और तीसरो या तीजो क्रमवाचक संख्याएं बनती है। दूजो' और 'तीजो' के प्रयोग में पहले या दो को छोड़कर निर्दिष्ट के भाव पर अधिक बल मिलता है, जबकि दूसरो और तीसरो में सामान्य क्रम का बोध होता है; यथा—'तीजा छोरा ई' लाओ' (दो को छोड़कर तीसरे लड़के को लाओ), तीसरा छोरा ई' लाओ (क्रम से बैठे) तीसरे लड़के को लाओ।

इन क्रमवाचक विशेषणों के रूपों का निर्माण सप्रत्यय गुणवाचक विशेषणों के के समान ही होता है।

अपूर्ण संख्याएं

हाड़ौती में अनेक अपूर्ण संख्याओं का व्यवहार होता है। ये अपूर्ण संख्याएं चतुर्थांश, अर्द्ध व पौन से या इनके योग से बनती हैं। वाक्य-रचना में ऐसी संख्याओं के साथ विशेष्य आता है। छह से नीचे की आधे के योग से बनी मिश्रात्मक संख्याओं के लिए निश्चित शब्दों का व्यवहार होता है, पर सामान्य व्यवहार में तो तीन से नीचे तक के शब्द आते हैं। शेष ऐसे शब्द पहाड़ों में ही काम में आते हैं। छह के बाद वाली संख्याओं का निर्माण सवा, साड़ा और पौरण के योग से होता है, पर बड़ी संख्याओं में, जहां बीसी या सो का प्रयोग होता है, तीन से नीचे की संख्याएं इनके स्थान पर विकल्प से प्रयुक्त होती हैं, यथा—साड़ा बाईस् या दो बीसी अर् ढाई।

हाड़ौती की अपूर्ण संख्याएं ये हैं—

एकोन अपूर्ण संख्याएं—पाव (१।४), आदो (१।२), पोण् या पूण् (३।४) एकोत्तर-षट् पर्यन्त अपूर्ण संख्याएं–सवा (१$\frac{1}{4}$), डो'ड् (१$\frac{1}{2}$), ढाई (२$\frac{1}{2}$), हूंटो (३$\frac{1}{2}$), ढूंचो (४$\frac{1}{2}$) और फूंचो ५$\frac{1}{2}$।

षडोत्तर अपूर्ण संख्याएं—इन संख्याओं का निर्माण सवा, साड़ा और पोरण शब्दों के योग से होता है, जो क्रमशः पाव-अधिक, आधा अधिक और पाव-कम का बोध कराती हैं।

इनमें से व्यंजनान्त संख्याओं तथा ढाई के रूप में लिंग, वचन, कारक के अनुसार परिवर्तित नहीं होते हैं; यथा—पाव् रोटी, डोड् हात्, पूण् पांती। पर जब परिवर्तन होता है, तब इनके अर्थ बदल जाते हैं; यथा—डोडी बात् (टेढ़ी बात)

शेष संख्याओं में से दय्यो, हूंटो, ढूंचो और फूंचो का प्रयोग स्त्रीलिंग में नहीं मिलता। पुल्लिंग में इनके रूप सप्रत्यय गुणवाचक विशेषणों के पुल्लिंग रूपों के समान चलते हैं। हूंटो, ढूंचो और फूंचो को समूहवाची अपूर्ण संख्या वाचक विशेषण कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि पहाड़ों के अतिरिक्त इनका प्रयोग देखने में नहीं आता।

सवायो, आदो के रूप विभिन्न लिंग, वचन और कारक के अनुसार सप्रत्यय गुणवाचक विशेषणों के समान बदलते रहते हैं।

ऋणात्मक संख्यावाचक

हाड़ौती में ऋणात्मक संख्यावाचक शब्द 'कम्' या 'ग्यो' शब्द के संयोग से बनता है, यथा—

(१) दस् कम् बीस् (बीस् में से दस कम)
(२) दस् मे सै च्यार ग्या तो (दस में से चार कम किये तो)

समूहवाची संख्याएं

हाड़ौती में कुछ शब्द संख्या-समूह अर्थ में प्रयुक्त होते हैं—

जोड़ो — दो के लिए

गंडो — चार के लिए

पचोळ् — पांच के लिए

जोड़ो—इस शब्द का व्यवहार अनेक रूपों में होता है—स्त्री पुरुष के युग्म के लिए, जूतों के लिए, शादी के थान के लिए आदि, पर सबमें मूल रूप से दो समान वस्तुओं (आवश्यक नहीं कि वे स्त्री-पुरुष हों) की सहकारिता का भाव निहित है ।

गंडो—इस शब्द का व्यवहार केवल कौड़ियों के गिनने में होता है । इसमें चार के समुदाय का भाव निहित है ।

पचोळ्—इस शब्द का व्यवहार अनेक वस्तुएं गिनने में होता है; जैसे फल दाने आदि ।

हाड़ौती में पढ़े-लिखे व्यक्तियों में 'दर्जन' तथा 'कोड़ी' से भी गिनना आरंभ हो गया है, पर अभी ये शब्द शुद्ध हाड़ौती क्षेत्र तक नहीं पहुंच पाये हैं ।

उपर्युक्त शब्दों में 'जोड़ो' के रूप ओकारान्त पुल्लिंग संज्ञा शब्दों के समान पुल्लिंग में तथा ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के समान स्त्रीलिंग में मिलते हैं ।

'गंडो' शब्द केवल पुल्लिंग में प्रयुक्त होता है, इसके स्त्रीलिंग-रूप नहीं मिलते । ये रूप पुल्लिंग में जोड़ो के समान ही मिलते है ।

'पचोळ्' शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है और इसके रूप स्त्रीलिंग व्यंजनान्त संज्ञा शब्दों के समान मिलते हैं ।

गुणात्मक संख्याएं

हाड़ौती में गुणात्मक संख्या में दुगुना के भाव को ही एक शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है, वह है 'दूणो' । शेष गुणात्मक संख्याओं में तीन या त, चो, पंच, छै आदि पूर्ण संख्यावाची शब्दों का प्रयोग करके काम चलाया जाता है; यथा—तगणूं, चोगणूं, पंचगणूं आदि ।

निश्चित संख्यावाचक विशेषण

हाड़ौती में निश्चित भाव प्रकट करने के लिए संख्याओं में 'ऊं' या 'यूं' जोड़ा जाता है; यथा—च्यारूं, तीनूं या तीन्यूं ।

अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

हाड़ौती में अनिश्चित भाव को प्रकट करने के लिए कोई निश्चित प्रत्यय होता है, अपितु दो संख्याओं के संयोग से अनिश्चित भाव को प्रकट किया

ग् : गळ् (गिरना), गर् (गिरना), गा् (गाना), गुंथ् (बांधना, गूंथना), गाज् (गर्जन करना), गरव् (गर्व करना)

घ् : घट् (कम होना), घस् (घिसना), घुळ मिलना घुग् (घिरना), घोर् (गर्जन करना)

च् : चो (चूना), चाब् (चबाना), चर् (चरना), चाल् (चलना), चुग् (चुगना), चूम (चूमना), चोप् (दिखना), चूक् (चूकना), चोर् (चोरना), चाळ्[1] (छानना)

छ् : छा (ढंकना), छूट् (छूटना), छेड् (छेड़ करना), छीज् (क्षीण होना), छँट् (बिखरना), छड् (चढ़ना), छुप् (छीनना)

ज् : जग् (जगना), जाण् (जानना), जग् मैरा (करना), जीत् (जीतना), जी (जीवित रहना), जा (जाना), जोत् (जोतना), जमा (उगाही लेना), जुड़ (जुड़ना), जर् (पचना), जीम (खाना), जम (जमना)

झ् : झर् (झरना), झांक् (देखना), झळ् (झलना), झाटक् (पीना), झड़् (गिरना)

ट् : टांच् (टंकण करना), टूट् (टूटना), टूट् (प्रसन्न होना), टूंक् (रोकना), टल् (टलना), टोळ् (साफ करना)

ठ : ठग् (ठगना), ठेर् (ठहरना), ठोर् (सोते समय घर्-घर् करना), ठल् (मर जाना)

ड् : डस् (काटना), डूब् (डूबना), डोल् (फिरना), डर् (डरना)

ढ् : ढब् (रुकना), ढांक् (ढंकना), ढोक् (प्रणाम करना), ढळ (गिरना), ढो (भार ले चलना), ढोळ (गिराना)

त् : तण् (छाना), ताप् (गरम करना), ता (गरम करना), तैं (पशुओं का गर्भपात होना), तुल् (तुलना), तुज् (छोड़ना), तर् (तैरना), तळ् (पकाना)

थ् : थक् (थकना), थरप् (स्थापित करना), थाप् (थापना), थूंक (थूंकना), थम (रुकना)

द् : दूख् (दर्द करना), दाज् (जलना), देख् (देखना), दे (देना), दो (दुहना), दळ् (मोटा पीसना), दगळ् (जल्दी जल्दी खाना)

ध् : धंस् (घुसना), धर् (धरना), धूज् (कांपना), धो (धोना), धार् (अनुकूल होना), धाप् (तृप्त होना), धाप् (अनुमान लगाना)

न् : नट् (अस्वीकार करना), नाठ् (नष्ट होना), नाच् (नाचना), न्हा (स्नान करना), नाच् (नृत्य करना), नोत् (निमंत्रित करना), नपट् (निवृत्त होना), नैज् या न्याज् (गाय-भैंस के पैरों को दुहने से पूर्व बांधना), नरख् (ध्यान से देखना), नतर् (साफ होना), नतर् (धीरे-धीरे धरातलीय द्रव का बहना), नंगळ् (निगलना), नकळ् (निकलना), नंब् (निर्वाह होना),

प् : पद् (खेल में हार कर दौड़ना), पींज् (रुई धुनना), पच् (पचना), पो (पिरोना, रोटी बनाना), पी (पीना), पीट् (पीटना), पोस् (पालना करना), पूर् (पूरना), पीस् (पीसना), पड़् (गिरना), पक् (पकना), परण् (विवाह करना), पळ् (पलना), पजोख् (परीक्षा करना), पलाण् (घोड़े पर चढ़ना), पछोट् (वस्तु को भूमि पर दे मारना), पकड़् (पकड़ना), पखार्, पखाळ् (धोना), पघळ् (पिघलना), पा (पाना), पसर् (फैलना), परुस् (परोसना), पावस् (गाय-भैंस के स्तनों में दूध उतरना), पलट् (पलटना), पोत् (पोतना)

फ् : फड् (पड़ना), फूल् (फूलना), फूट् (फूटना), फदक् (कूदना), फळ् (फलना), फड़क् (स्पंदित होना), फाट् (फटना), फैल् (फैलना), फेर् (पहिनना), फूंछ् (पोंछना)

ब् : बळ् (जलना), बंट् (मरोड़ना), बंद् (बंधना), बकर् (बोलना), बढ् (बढ़ना), बस् (निवास करना), बरज् (मना करना), बरस् (बरसना) बास् (दुर्गन्धयुक्त होना), बूझ् (पूछना), बूज् (बंद करना), बर (वरण करना), बोल् (बोलना), बो (बोना), बरत् (काम में लेना), बै (बहना), बा' (उठाना), बलो बिलोना), बोध् (निर्धारित करना), बरळा (रोना), बावड़् (लौटना), ब्वार् (झाड़ू लगाना), बगड़् (बिगड़ना), बढ् (बिढ़ना), बछड़् बिछुड़ना), बीत् (समाप्त होना), बीकर् (प्रति प्रसन्न होना), बीसर् (भूल जाना), बलम् (कहीं जाकर रम जाना), बेच् (बिकना), बैठ् (बैठना), ब्याप् (अनुभव होना), बलर् (फैलना)

भ् : भर् (भरना). भज् (भक्ति करना), भा (अच्छा लगना), भरमा (भ्रम में डालना), भूल् (भूलना), भोग् (भोगना), भीज् (भीगना), भींच् (संकोच करना), भींट् (छूना)

म् : मठ् (मसलना), मांग् (मांगना), मंड् (रचना), मंज् (मंजना), मंतर् (अनुकूल बनाना), मथ् (मथना), मान् (स्वीकार करना), मर् (मरना), मल् (मिलना), मूंड् (सिर साफ करना), मो (मोहित करना), मा (समाना), मुड् (मुड़ना), मसळ् (मलना)

र् : रंज् (तृप्त होना), रंग् (रंगना), रंद (उबल जाना, परेशान होना), रख् (रखना), रो (रोना), रम् (रमना), रुस् (अप्रसन्न होना), रच् (प्रारम्भ होना), रांग् (रंगना), रेंग् (धीरे-धीरे सरकना), रट् (पुन: पुन: बोलना), रूंग् (वस्तु-क्रय में थोड़ा-थोड़ा और मांगना), रुक् (रुकना), रम् (जमना)

ल् : ले (लेना), लाग् (लगना), लाज् (लजाना), लट् (क्षीण होना), लूट् (लूटना), लपट् (लिपटना), लग् (पेट का सिकुड़ना), ल्हग् (मित्र होना), लख् (लिखना), लोट् (लेटना), ल्होड् (ल्होड़ना), लुड़क् (लुड़कना), लड़ा (प्रेम करना), लोप् (मग्न करना), लूंच् (बाल नोचना), लीप् (लीपना), लद् (लदना)

स् : संवर् (स्मरण करना), सो (सोना), सूख् (सूखना), सूग् (सूखना), सोच् (सोचना), सूंघ् (सूंघना), स्वा (अनुकूल अनुभूति होना), सुण् (सुनना), सोर् (सोधन करना), से (सेवा करना), सीज् (पकना), संवळ् (सम्भलना), संवर् (स्मरण करना), सांवर् (एकत्र करना, सहेजना), सूंप् (देना), सु- (सिकुड़ना), सटा (झोंकना), सक् (सकना), सो (शोभित होना)

ह् : हंग् (टट्टी जाना), हर् (हरण करना), हल् (लालच वश बार-बार आन हट् (हटना), हंस् (हंसना), हाल् (हिलना), हेड् (खोलना), हं (हिनहिनाना), हो (होना)

साधित धातुएं

हाड़ौती में साधित धातुएं हैं—अकर्मक से सकर्मक बनी धातुएं, नाम धातु अनुकरणात्मक धातुएं तथा प्रेरणार्थक धातुएं।

(क) अकर्मक से सकर्मक बनी धातुएं

हाड़ौती में अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की धातुएं मिलती हैं। प्राय सिद्ध धातुएं अकर्मक होती हैं, किन्तु अनेक अकर्मक क्रियाएं साधित धातुओं के अन्तर्ग भी आते हैं।

हाड़ौती में अकर्मक धातु से सकर्मक धातु बनाने के लिये-'आ' प्रत्यय क उपयोग होता है जो अकर्मक धातु के अन्त में जोड़ा जाता है। कभी-कभी इसके अभाव में भी अकर्मक धातुओं से सकर्मक धातुएं बनती हैं—

(१) (क) यदि अकर्मक धातु व्यंजनान्त हो तो सकर्मक बनाने के लिये धातु के अन्त मे-'आ' लगता है; यथा—

उठा (उठ्), छपा (छप्), दबा (दब्)

(ख) दो व्यंजन वाली अकर्मक धातु के आदि स्वर को, यदि दीर्घ हो तो, ह्रस्व कर देते हैं, यथा—

इन धातुओं का निर्माण संज्ञा शब्दों में-'आ' प्रत्यय लगाने से होता है। यदि संज्ञा शब्द स्वरांत है तो स्वर का लोप हो जाता है तथा आदि स्वर दीर्घ से ह्रस्व हो जाता है।

इन धातुओं के रूप आकारांत धातुओं के समान ही मिलते हैं।

(घ) अनुकरणात्मक धातुएं

हाड़ौती बोली में अनुकरणात्मक धातुओं की प्रचुरता है। इन धातुओं में अनुकरण का आधार ध्वनि ही रहता है। यह अनुकरण अनेक क्षेत्रों से किया जाता है—

पशु-ध्वनियों से— रेंक् (भैंस का बोलना, घींघा (सूकर का बोलना), टर्रा (मेंढक का बोलना), भूंक् (कुत्ते का बोलना)

पक्षी-ध्वनियों से— कूक् (कोयल का बोलना), कोका (मोर का बोलना,

मानव-ध्वनियों से— सीसा (बच्चे को टट्टी फिराते समय 'सी-सी' करना), छींक् (छींकना), सणक् (नाक साफ करना), दुत्कार् (कुत्ते को दुत् कहना), डीडा (रोना)

प्राकृत व्यापारों से— भरड़ा (पेड़ के गिरने की ध्वनि), सर्रा (पवन चलने की ध्वनि), छनकना (छनछन्-ध्वनि)

हाड़ौती में अनुकरणात्मक धातुएं निम्न प्रकार से बनती हैं—

(१) आधार-ध्वनि के-'क्' या -'कार्' जोड़कर—

(क) 'क्'-युक्त धातुएं—दबक् (बैठना), रेंक् (भैंस का बोलना), हूकू (कै करना) आदि।

(ख) -'कार्' युक्त धातुएं—दुत्कार् (फटकारना), दल्कार् (भगाना) आदि।

(२) आधार-ध्वनि के अनुकरण को दुहरा कर—

तड़तड़ा (तड़तड़ करना), चप्चपा (चप-चप करना), कट्कटा (कटकटाना) आदि।

(३) आधार-ध्वनि के साधारण अनुकरण द्वारा—

चर्रा (फटना), टर्रा (मेंढक का बोलना) आदि

(४) आधार-ध्वनि के अनुकरण को दुहराने में समकक्ष शब्द का उपयोग करके-

भुसभुसा (कमसत करना), चर्रा-मर्रा (जूतियों का चलते समय शब्द करना)

(छ) प्रेरणार्थक धातुएं

हाड़ौती में सिद्ध धातुओं से प्रेरणार्थक धातुएं निम्न प्रकार से बनती हैं—

(१) जिस धातु के प्रथम अक्षर में ह्रस्व स्वर हो उसके प्रेरणार्थक रूप में उस स्वर में कोई परिवर्तन नहीं होता; यथा—

साधारण धातु	प्रेरणार्थक धातु
कर्	करा, करवा
परस्	परसा, परस्वा
उठ्	उठा, उठ्वा

(२) आ, आ, ई तथा ऊ स्वर जिस धातु के प्रथम अक्षर मे हो, ऐसी धातुओं के ये स्वर क्रमशः अ, अ, अ तथा उ में परिवर्तित हो जाते हैं; यथा—

साधारण धातु	प्रेरणार्थक धातु
पाक्	पका, पक्वा
सेंच्	संचा, संच्वा
मीच्	मंचा, मंच्वा
घूर्	घुरा, घुर्वा

(३) 'ए' तथा 'ओ' स्वर जिस धातु के प्रथम अक्षर में होते हैं ऐसी धातुओं के ये स्वर कभी तो पूर्ववत् बने रहते हैं अथवा क्रमशः 'अ' और 'उ' मे बदल जाते हैं और कहीं-कहीं दोनों रूप भी देखने मे आते हैं; यथा—

साधारण धातु	प्रेरणार्थक धातु
मेळ्	मळा, मळवा
बेच्	बका, बक्वा
ओट्	ओटा, ओट्वा
ढोळ्	ढुळा, ढुळ्वा
ढोक्	ढुका, ढुक्वा

(४) कुछ धातुओं में-'आ' प्रत्यय विकल्प से लगाया जाता है; यथा—

धो	ध्वा, धपा

-'वा' प्रत्यय वाली प्रेरणार्थक धातुएं द्विगुणित हैं, क्योंकि दूसरे प्रकार में जहां दो व्यक्ति होते हैं वहां इसमें कम से कम तीन व्यक्ति अवश्य होते हैं।

हाड़ौती प्रेरणार्थक धातुओं में-'आ' तथा-'वा' प्रत्यय लगता है। स्वरांत धातुओं में इन प्रत्ययों के लगाने पर अन्त्य स्वर का लोप हो जाता है; यथा—

पी-'वा, ता, टी-टुवा

कभी-कभी '-ता' प्रत्यय भी धातु में लगता है। जैसे पी (पीना) से 'पता' प्रेरणार्थक धातु बनती है।

वाच्य

हाड़ौती में कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य रूप में क्रिया मिलती है, पर कर्मवाच्य रूप क्रिया रूप कम मिलते हैं। अधिकांश में कर्तरि प्रयोग ही सुने जाते हैं।

हाड़ौती में कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य '√जा' धातु के रूपों के संयोग से बनते हैं, किसी स्वतंत्र प्रत्यय का प्रयोग नहीं मिलता है।

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
रामा ने गाई बांधी	गाई रामा सूं बांधी गी
म्हूंने रोटी खीमी	म्हूंसे रोटी जीमी गी

पर ऐसे प्रयोग भी सुने जाते हैं—

> ऊंने गाय बंधी (उससे गाय बंधी),
>
> लुगायां से घर् बने छे (स्त्रियों से घर बनता है)

काल

हाड़ौती क्रिया रूपों में १७ काल व्यक्त करने की क्षमता है। इनमें से कुछ काल तो साधारण या मूलकाल हैं, जो धातु के साथ प्रत्ययों के संयोग से निर्मित होते हैं और कुछ संयुक्त काल हैं जो मुख्य क्रिया के रूपों तथा सहायक क्रिया के रूपों के योग से सम्पन्न होते हैं। वे इस प्रकार हैं—

(क) साधारण या मूलकाल

(१) वर्तमान निश्चयार्थ	—	ऊ चाले
(२) भूत निश्चयार्थ	—	ऊ चाल्यो
(३) भविष्य निश्चयार्थ	—	ऊ चालेगो, ऊ चालूंगो
(४) वर्तमान संभावनार्थ	—	ज्यो ऊ चाले
(५) भूत संभावनार्थ	—	ऊ चालतो
(६) वर्तमान आज्ञार्थ	—	ऊ चाले
(७) भविष्य आज्ञार्थ	—	तू चालजे

(ख) संयुक्त काल

(१) वर्तमान कालिक कृदंत + सहायक क्रिया

(८) भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ — ऊ चाल्तो होवैगो।
(९) वर्तमान अपूर्ण संभावनार्थ — ज्यो ऊ चाल्तो होवै।
(१०) भूत अपूर्ण संभावनार्थ — ज्यो ऊ चाल्तो होतो।

(२) क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ के रूप + सहायक क्रिया

(११) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ — ऊ चाले छै।
(१२) भूत अपूर्ण निश्चयार्थ — ऊ चाले छो।
(१३) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ — ऊ चाल्यो छै।
(१४) भूत पूर्ण निश्चयार्थ — ऊ चाल्यो छो।
(१५) भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ — ऊ चाल्यो होवैगो।
(१६) वर्तमान पूर्ण संभावनार्थ — (ज्यो) ऊ चाल्यो होवै।
(१७) भूतपूर्ण संभावनार्थ — (ज्यो) ऊ चाल्यो होतो।

ऐतिहासिक दृष्टि से हाड़ौती कालों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) संस्कृत कालों के अवशेष काल—वर्तमान निश्चयार्थ, वर्तमान संभावनार्थ, आज्ञा और सामान्य भविष्यत् इस श्रेणी में आते हैं।

(ख) संस्कृत कृदंतों से बने काल—भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा तथा भविष्य आज्ञा इस श्रेणी में आते हैं।

(ग) आधुनिक संयुक्त काल—कृदंत तथा सहायक क्रिया और क्रिया के वर्तमान-कालिक रूप तथा सहायक क्रिया से बने काल इस श्रेणी में आते हैं—समस्त संयुक्त काल तथा भविष्य निश्चयार्थ आते हैं।

हाड़ौती के क्रिया-रूपों में ध्यान देने योग्य विशेषताएं

(१) हाड़ौती में कर्ता या कर्म के अनुसार ही अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाएं होती है। ऐसी क्रियाओं का अनतः कर्ता तथा कर्म में ध्वनि-साम्य भी देखने को मिलता है। हाड़ौती में यह प्रवृति इन उदाहरणों में देखी जा सकती है—

(१) म्हूं आऊं छूं (मैं आता हूं)
(२) रामो ग्यो (राम गया)

(३) मनै रोटी खाई (मैंने रोटी खाई)
(४) म्हां जावां छां (हम जाते हैं)
(५) कसण्यो आयो छो (कृष्ण आया था)
(६) थां चाल्या छा (तुम गये थे)

हाड़ौती क्रियाओं में जो ध्वनि-साम्य मिलता है उसे इस प्रकार समझा जा सकता है—

(क) अन्य पुरुष, पुल्लिग, एक वचन सर्वनाम व संज्ञा के साथ हाड़ौती में ओकारान्तता मिलती है अथवा सम्बन्धित संज्ञा शब्द के ओकारान्त होने पर ये भी ध्वनि-साम्य के आधार पर ओकारान्त हो गई हैं। बहुवचन क्रियारूपों में भी इसी ध्वनि-साम्य के कारण आँकारान्तता या आकारान्त मिलती है।

(ख) पुल्लिग, एक वचन, मध्यम पुरुष सर्वनाम के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया में यह ध्वनि-साम्य नहीं मिलता, पर क्रिया के बहुवचन के रूप अ पुरुष-बहुवचन की भांति ही कर्ता या कर्म से ध्वनि-साम्य रखते हैं मध्यम पुरुष एकवचन के रूप या तो अन्य पुरुष एकवचन की भाँ मिलते हैं अथवा ओकारान्त हैं।

(ग) उत्तम पुरुष के रूपों पर इस ध्वनि-साम्य का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है

(घ) क्योंकि हाड़ौती में अधिकांश स्त्रीलिंग शब्द ईकारान्त हैं अतः जहां क्रि के रूप स्त्रीलिंग के शब्दों से प्रभावित हुए हैं, वहां क्रिया ईकार हो गई है।

(२) हाड़ौती में अन्य पुरुष तथा मध्यम पुरुषों में आदरार्थकता में और उत्त पुरुष में अस्मिता अथवा आत्मगौरव के भाव में एकवचन के लिए प्रायः बहुवचन सर्वनामों का प्रयोग होता है। अतः एकवचन के साथ बहुवचन के क्रियारूप पाये जाते हैं।

(३) हाड़ौती में स्त्रियों के लिए जब आदरसूचक भाषा का प्रयोग किया जाता है तब क्रिया पुल्लिग बहुवचन मे होती है; यथा—राणी जी आया (रानी आई)। यह प्रक्रिया उस समय भी देखी जाती है जब स्त्रियां अस्मिता या आत्मगौरव से प्रेरित होकर बोलती है। तब भी क्रिया पुल्लिग बहुवचन में होती है; यथा—
म्हां ग्या छा (मैं गई थी)।

इन प्रयोगों को राजस्थान के राज-दरबार के वातावरण में आश्रय मिला और धीरे-धीरे ये जन साधारण में भी पहुंच गये।

(क) हाड़ौती के मूल काल

हाड़ौती में वर्तमान निश्चयार्थ, वर्तमान संभावनार्थ, आज्ञा, व भविष्य निश्चयार्थ संस्कृत से आये मूलकाल है। इन कालों के पुल्लिग और स्त्रीलिंग रूपों में कोई अंतर नही मिलता। इस प्रकार इन रूपो में लिंग-प्रदर्शन की क्षमता नही है और क्रिया का लिंग-निर्णय सम्बन्धित कर्त्ता और कर्म के आधार पर होता है।

वर्तमान निश्चयार्थ तथा वर्तमान संभावनार्थ—

हाड़ौती में वर्तमान निश्चयार्थ के रूप बहुत कम प्रचलित है। ये रूप कभी-कभी बोलचाल मे या कुछ प्राचीन हस्तलिखित पोथियों मे मिलते हैं।

वर्तमान निश्चयार्थ के दोनो लिंगों में एक ही रूप मिलते हैं—

उत्तम पुरुष एकवचन	—	म्हूं चालूं
उत्तम पुरुष बहुवचन	—	म्हां चालां
मध्यम पुरुष एकवचन	—	थूं तू चालै
मध्यम पुरुष बहुवचन	—	थां चालो
अन्य पुरुष एकवचन	—	ऊ चालै
अन्य पुरुष बहुवचन	—	वै चालै

वर्तमान संभावनार्थ के रूप वर्तमान निश्चयार्थ के समान ही हैं। वर्तमान संभावनार्थ में उपर्युक्त रूपों के साथ 'ज्यो' का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में होता है और संयोजक अव्यय 'तो' वाक्यों के मध्य में रहता है; यथा—

ज्यो ऊ चालै तो म्हूं भी चालूं (यदि वह चले तो मैं भी चलूं)

हाड़ौती वर्तमान निश्चयार्थ और वर्तमान संभावनार्थ मे धातु के साथ निम्नलिखित प्रत्यय जोड़े जाते हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष–	–ऊं	–आं
मध्यम पुरुष–	–अै	–ओ
अन्य पुरुष–	–अै	–अै

ये प्रत्यय पुल्लिग और स्त्रीलिंग रूपो मे समान है। स्वरान्त धातुओ मे उत्तम पुरुष एकवचन मे 'ऊं' ही मिलता है, पर शेष रूपो में इन प्रत्ययो के लगाने के पूर्व 'व' का आगम होता है; यथा—

ऊ रोवै (वह रोता है), म्हां रोवां (हम रोते हैं)

आज्ञा काल

हाड़ौती में आज्ञाकाल के निम्नलिखित रूप मिलते हैं जो स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में एक ही हैं—

मध्यम पुरुष एकवचन— तू चाल्

मध्यम पुरुष बहुवचन— थां चालो

इस काल के प्रयोग केवल मध्यम पुरुष में ही मिलते हैं। बहुवचन के रूपों की प्रक्रिया वर्तमान निश्चयार्थ के समान ही है और एकवचन में क्रिया धातु-रूप के साथ शून्य प्रत्यय जोड़ने से बनती है।

भविष्यत् निश्चयार्थ

भविष्यत् निश्चयार्थ काल उत्तरी हाड़ौती में -'सी', -'स्यूं' आदि प्रत्यय धातु के साथ जोड़कर बनाया जाता है और दक्षिणी हाड़ौती में वर्तमान निश्चयार्थ के साथ -'गा,' 'गी' आदि लगाने से इस काल के रूप बनते हैं। उत्तरी हाड़ौती में इन रूपों के अतिरिक्त दक्षिणी हाड़ौती के रूप भी प्रचलित हैं।

इसके प्रथम प्रकार के रूप उभय लिंगों में इस प्रकार मिलते हैं—

उत्तम पुरुष एकवचन—	म्हूं चाल्स्यूं
उत्तम पुरुष बहुवचन—	म्हां चाल्स्यां
मध्यम पुरुष एकवचन—	तू चालसी
मध्यम पुरुष बहुवचन—	था चाल्सी, चाल्स्यो
अन्य पुरुष एकवचन—	ऊ चाल्सी
अन्य पुरुष बहुवचन—	वे चाल्सी

इस काल के क्रिया-रूपों में निम्नलिखित प्रत्यय मिलते हैं, जो पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में एक ही हैं—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	-स्यूं	-स्यां
मध्यम पुरुष	-सी	-सी, स्यो
अन्य पुरुष	-सी	-सी

भविष्यत् निश्चयार्थ के दूसरे रूप क्रिया के वर्तमान निश्चयार्थ के साथ -'गा', -'गी' आदि प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं। इस प्रकार इन रूपों में दुहरे प्रत्यय पाये जाते हैं। ये रूप इस प्रकार मिलते हैं—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उत्तम पुरुष एकवचन	म्हूं चालूंगू	म्हूं चालूंगी
उत्तम पुरुष बहुवचन	म्हां चालांगा चालैंगा	म्हां चालैंगी
मध्यम पुरुष एकवचन	तू चालैगो	तू चालैगी
मध्यम पुरुष बहुवचन	थां चालोगा चालैगा	थां चालैगी
अन्य पुरुष एकवचन	ऊ चालैगो	वा चालैगी
अन्य पुरुष बहुवचन	वै चालैगा	वै चालैगी

इन रूपों के प्रत्ययों में लिंग-प्रदर्शन की भी क्षमता है। स्त्रीलिंग के सभी रूपों में -'ऐगी' प्रत्यय मिलता है, केवल उत्तम पुरुष के एकवचन में -'ऊंगी' प्रत्यय है। कुछ रूप दो प्रकार से बनते हैं। इनका प्रत्यय-विधान इस प्रकार है।

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उत्तम पुरुष एकवचन	–ऊंगू	–ऊंगी
उत्तम पुरुष बहुवचन	–आंगा, -ऐंगा	–ऐंगी
मध्यम पुरुष एकवचन	–ऐगो	–ऐगी
मध्यम पुरुष बहुवचन	–ओगा, -ऐगा	–ओगी ऐगी
अन्य पुरुष एकवचन	–ऐगो	–ऐगी
अन्य पुरुष बहुवचन	–ऐगा	–ऐंगी

स्वरांत धातुओं में धातु और प्रत्यय के मध्य में 'व्' का आगम होता है; यथा,– होवैगी, रोवैगी आदि।

(ख) संस्कृत कृदन्तों से बने काल

हाड़ौती में सामान्य भूतकाल या भूत निश्चयार्थ और भूत संभावनार्थ क्रमशः भूतकालिक व वर्तमान कालिक कृदन्तों से बनते हैं। इन कालों की रूप-रचना में लिंग-प्रदर्शन की क्षमता है, पर पुरुष-गत विकार क्रिया-रूपों में नहीं मिलते हैं।

सामान्य भूतकाल या भूत निश्चयार्थ

हाड़ौती में सामान्य भूतकाल दो प्रकार से बनता है—

(१) धातु में -'यो', -'या' जोड़कर—

चाल्यो, द्यो, ल्यो ।

(२) धातु में -'नो', -'ना' जोड़कर—

दीनो, लीनो

इन धातुओं वाली भूतकालिक क्रियाएं कुछ धातुओं से ही बनती हैं। वे हैं—

√ले, √दे आदि।

(क) हाड़ौती में भूत निश्चयार्थ के प्रथम प्रकार के रूप इस प्रकार बनते हैं—

	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
एकवचन —	चाल्यो	चाली
बहुवचन —	चाल्या	चाली

इस काल के रूप पुल्लिग एक वचन में ओकारान्त है और पुल्लिग बहुवचन में आकारान्त। इनके प्रत्यय क्रमशः -'यो' तथा -'या' हैं। स्त्रीलिंग के रूप सभी पुरुषों तथा वचनों में समान है, जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि कम से कम रूपों द्वारा काम चलाने की प्रवृत्ति आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रमुख बनती जा रही है। स्त्रीलिंग का -'ई' प्रत्यय धातु के साथ जोड़ा जाता है।

स्वरान्त धातुओं में से ईकारान्त और एकारान्त धातुओं में स्वर का लोप करने पर उक्त प्रत्यय लगते हैं; यथा—

प्यो (√पी), द्यो (√दे)

पर ओकारान्त तथा आकारान्त धातुओं में ये प्रत्यय अन्त्य स्वर के बाद में लगते हैं; यथा—

धोयो (√धो), आयो (√आ)

ऐकारान्त 'छै' धातु में पुल्लिग एकवचन के रूप में -'ओ', बहुवचन में -'आ' और स्त्रीलिंग के रूपों में -'ई' प्रत्यय मिलते हैं।

(ख) इस काल के द्वितीय प्रकार के रूप √दे धातु से इस प्रकार बनते हैं—

	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
एकवचन	दीन्यो, दीनो	दीनी
बहुवचन	दीन्या, दीना	दीनी

पुल्लिग के दीन्यो, दीन्या आदि रूपों में -'यो' व -'या' प्रत्ययों के पूर्व 'न्' का आगम मिलता है और द्वितीय रूपों में उक्त प्रत्ययों के स्थान पर -'ओ' तथा -'आ' प्रत्यय मिलते हैं तथा आगम उक्त रूपों के समान होता है।

भूत संभावनार्थ

हाड़ौती में इस काल के रूप धातु के साथ -'तो',-'ता' आदि प्रत्यय लगाने से बनते हैं। इनके रूप इस प्रकार मिलते हैं—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एक वचन	चालतो	चालती
बहु वचन	चालता	चालती

स्वरांत और व्यंजनान्त धातुओं में पुल्लिंग एक वचन का प्रत्यय -'तो', पुल्लिंग बहुवचन का -'ता' तथा स्त्रीलिंग के सभी रूपों का प्रत्यय -'ती' है।

(ग) आधुनिक संयुक्त काल

हाड़ौती संयुक्त कालों का निर्माण तिङन्त अथवा कृदन्त और सहायक क्रिया के योग से होता है। अतः संयुक्त काल के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि सहायक क्रिया के सम्बन्ध में विचार कर लिया जावे—

सहायक क्रिया

हाड़ौती में तीन धातुओं से सहायक क्रियाएं बनती हैं—

(१) √ छै से

(२) √ हो से

(३) √ रै से

मूलतः प्रथम दो सहायक क्रियाएं परस्पर पूरक हैं।

ये क्रियाएं सहायक क्रिया के अतिरिक्त आगे दिये गये रूपों में मुख्य या स्वतंत्र क्रियाओं के रूप में भी प्रयुक्त होती है।

हाड़ौती मे √ छै धातु से निम्न काल बनते हैं—

(क) वर्तमान निश्चयार्थ

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	छूं	छां
मध्यम पुरुष	छै	छो
अन्य पुरुष	छै	छै

(ख) भूत निश्चयार्थ

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एक वचन	छो	छी
बहु वचन	छा	छी

इन दोनों कालों में प्रत्ययों का प्रयोग पूर्व कथित √ चाल् के वर्तमान निश्चयार्थ और भूत निश्चयार्थ के समान होता है।

उपर्युक्त दोनों कालों के अतिरिक्त इसी क्रिया के भावों को व्यक्त करने के लिए √हो धातु से बने क्रिया-रूपों का प्रयोग मिलता है।

हाड़ौती में √ हो के निम्न रूप प्राप्त होते हैं—

(क) आज्ञार्थक

मध्यम पुरुष एक वचन — हो
मध्यम पुरुष बहु वचन — होवो

(ख) भविष्यत् निश्चयार्थ

इस काल के रूप दो प्रकार से बनते हैं—

(१) -गो,-गा आदि के योग से।
(२ -सी,-स्यूं आदि के योग से।

इस धातु के उक्त रूप इस प्रकार मिलते हैं—

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उत्तम पुरुष एक वचन	होऊंगो, होस्यूं	होऊंगी, होस्यूं
,, बहु वचन	होवांगा, होस्यां	होवांगी, होस्यां
मध्यम पुरुष एक वचन	होवेगो, होसी	होवेगी, होसी
,, बहु वचन	होवोगो, होसी- होस्यो	होवोगी, होसी
अन्य पुरुष एक वचन	होवेगा, होसी	होवेगी, होसी
,, बहु वचन	होवैगा, होसी	होवैंगी, होसी

उपर्युक्त दोनों कालों के रूपों का प्रत्यय विधान √ चाल् धातुवत् ही है जिन पर पहले विचार किया जा चुका है। 'होवैगो' श्रेणी की क्रियाओं में 'वै' का उच्चारण 'व' तथा 'वै' दोनों रूपों में मिलता है।

(ग) भूत संभावनार्थ

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एकवचन	होतो	होती
बहुवचन	होता	होती

इस काल के रूपों के प्रत्ययों पर √ चाल् पर विचार करते समय विचार हो चुका है।

तीसरी सहायक क्रिया √ रै धातु से बनती है। इसका प्रयोग मूल धातु तथा सहायक क्रिया के मध्य में होता है। इसके संयोग से तीनों कालों में कार्य की वर्तमानता प्रकट होती है। इसके रूपों से लिंग-वचन प्रकट होते हैं। सहायक क्रिया के रूप में इसका इस प्रकार प्रयोग मिलता है—

(१) मूल धातु + प्रस्तुत सहायक क्रिया + अन्य सहायक क्रिया
(२) मूल धातु + प्रस्तुत सहायक क्रिया

इसके रूप √ हो के निम्न काल प्राप्त होते हैं—

(ख) आज्ञाकाल

मध्यम पुरुष एक वचन — हो
मध्यम पुरुष बहु वचन — होवो

(ग) भविष्यत् निश्चयार्थ

इस काल के रूप दो प्रकार से बनते हैं—

(१) -गो,-गा आदि के योग से।
(२ -सी,-स्यूं आदि के योग से।

इस धातु के उभय रूप इस प्रकार मिलते हैं—

		पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
उत्तम पुरुष	एक वचन	होऊंगूं, होस्यूं	होऊंगी, होस्यूं
,,	बहु वचन	होवैंगां, होस्यां	होवैंगी, होस्यां
मध्यम पुरुष	एक वचन	होवैगो, होसी	होवैगी, होसी
,,	बहु वचन	होवैगो, होसी-होस्यो	होवैगी, होसी
अन्य पुरुष	एक वचन	होवैगा, होसी	होवैगी, होसी
,,	बहु वचन	होवैगा, होसी	होवैगी, होसी

उपर्युक्त दोनों कालों के रूपों का प्रत्यय विधान √ चाल् धातुवत् ही है जिस पर पहले विचार किया जा चुका है। 'होवैगो' श्रेणी की क्रियाओं में 'वै' का उच्चारण 'ब' तथा 'वे' दोनों रूपों में मिलता है।

(ग) भूत संभावनार्थ

	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
एकवचन	होतो	होती
बहुवचन	होता	होती

इस काल के रूपों के प्रत्ययों पर √ चाल् पर विचार करते समय विचार हो चुका है।

तीसरी सहायक क्रिया √ रै धातु से बनती है। इसका प्रयोग मूल धातु तथा सहायक क्रिया के मध्य में होता है। इसके संयोग से तीनों कालों में कार्य की ... प्रकट होती है। इसके रूपों से लिंग-वचन प्रकट होते हैं। सहायक क्रिया के रूप ... इस प्रकार प्रयोग मिलता है—

(१) मूल धातु + प्रस्तुत सहायक क्रिया + अन्य सहायक क्रिया
(२) मूल धातु + प्रस्तुत सहायक क्रिया

कभी-कभी एक ही अर्थ वाली दो क्रियाओं के योग से संयुक्त क्रिया निर्मित होती है जिससे मुख्य अर्थ पर बल पड़ता है; यथा—

देखी-भाळी (अच्छी तरह देखी हुई), भागी-ओळी (अच्छी तरह भागी),
फोड़ी-तोड़ी (क्षति पहुँचाई)

पर जिन क्रियाओं में पुनरुक्ति ध्वनि के आधार पर होती है वह निरर्थक होते हुए भी मूल के भाव पर बल देती है; यथा—

तोल्यो-जोल्यो (तोला), पूछ्यो-ताछ्यो (पूछा)

हाड़ौती में तीन क्रियाओं से भी संयुक्त क्रियाएं निर्मित होती हैं। इनमें प्रथम क्रिया प्रधान होती है और शेष दो क्रियाएं गौण होती हैं। जिन क्रियाओं के योग से मूल के अर्थ में द्योतनता आती है वे ये हैं—

देबू कर् (कार्य का प्रस्ताव)-चाल् देबू कर् (चल दिया कर)
जाणो छावचो (कार्य के प्रारंभ का प्रस्ताव)-चाल् जाणो छायजे (चल देना चाहिए)
देणो छावचो (कार्य के प्रारंभ का प्रस्ताव,-भाग् देणो छायजे (भाग जाना चाहिए)

अव्यय[1]

हाड़ौती में निम्नलिखित अव्यय मिलते हैं—

१. क्रिया-विशेषण
२. समुच्चय-बोधक
३. सम्बन्ध-सूचक
४. विस्मयादि-बोधक

१. क्रिया-विशेषण अव्यय

हाड़ौती में क्रिया विशेषण चार प्रकार के मिलते हैं—(क) कालवाचक, (ख) स्थानवाचक, (ग) परिमाणवाचक और (घ) रीतिवाचक।

(क) कालवाचक

हाड़ौती के कालवाचक क्रिया-विशेषण ये हैं—

आज्, आगै (आगे), अब्, अबार् (अभी), ईंबगत् (इस समय), ऊंबगत् (उस समय), खद् या कद् (कब), खदी (कभी), खदीको (कभी का), जद् (जब), जदीको (जभी का), काल् (कल), परस्यूं, परयूं (परसों), तरस्यूं (परसों से आगे के दिन), घड़ी-घड़ी (समय-समय पर), छण् (क्षण), जल्दी (शीघ्र), झट् (शीघ्र), झट्पट् (जल्दी), झटाक् (शीघ्र), रातुदन (रात-दिन), नत् (नित्य), बेळांसती (वेलासति), वेगो (शीघ्र), हाल् (अभी), हाल्नाईं (अभी तक), पैले दन् (पहले दिन), जंदाड़े (जिस दिन), उंदाड़े (उस दिन), खदाड़े (किस दिन), हातयूं हात् (तत्क्षण)।

(ख) स्थानवाचक

हाड़ौती के स्थानवाचक क्रियाविशेषण निम्नलिखित हैं—

आगै (आगे), आग्लो (आगे का), अग्याड़ी (आगे), अंठी (इधर), अंठीनै (इधर) हां (यहां), आर्पार् (आरपार), उंठी (उधर), उंठीनै (ऊधर), ऊपर् (ऊपर), ऊपरपास् (ऊपर), ओळ्यूं-दोळ्यूं (आसपास), कठी (कहां), कठी न कठी (कहीं न कहीं), कनै या कनै (निकट), खां या का (कहां), ज्यां (जहां), जठी (जिधर), जठी नै (जिधर) गोड़ै (निकट), तळै (नीचे), तीरै (निकट), दूरै (दूर), नजीक् (नजदीक), नीचै (नीचे), नैड़ो (निकट), पैलाड़ी (दूसरी ओर), पास् (समीप), पछवाड़ै (पीछे), बारै (बाहर), बीचै (बीच मे), सामै (सामने)।

१—अव्ययों के रूप नहीं मिलते अतः इन पर विचार निरर्थक प्रतीत होता है, पर हाड़ौती बोली का ज्ञान कराने की दृष्टि से ये विचारणीय बन गये हैं।

(योग), हळे (नीचे), ताईं (लिये), नीचै (नीचे), नजीक् (नजदीक), नीड़े (निकट), पाछै (पीछे), पछवाड़े (पीछे), पैलाड़ी (परवर्ती), पाम् (समीप), बारै (बाहर), बना (बिना), बाद् (बाद), मंझ् (मध्य), मंई (भीतर), माइनै, मांईं (भीतर), लारै (साथ), सैते (लिए), वास्तै (वास्ते), बीचै (बीच मे), सात् साथ), समेत् (युक्त), सामै (सामने), सरीखो (सदृश), स्वाय् (सिवाय), सूधो (सीधा)

४. सम्बोधन-बोधक

हाड़ौती में अनेक सम्बोधनबोधक शब्दों का प्रयोग होता है। इनका वाक्य से सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसे शब्द प्रत्येक भाषा में मिलते है। ये हर्ष, शोक आदि भावों को व्यक्त करने के लिए सभी भाषाओं मे प्रयुक्त होते हैं। ये निम्न प्रकार के हैं—

हर्ष-बोधक—आहा, हो-हो, है-है, स्याबास् आदि।

शोक-बोधक—अरे, अरे-बारे, हा, हाय् हाय्, अरे राम् जी, अरी म्हारी मां, राम् राम् आदि।

आश्चर्य-बोधक—वाह्-व्हा, है, ओहो आदि।

अनुमोदन-बोधक—हां, व्हो, हूं, स्याबास् (फा० शाबाश)

तिरस्कार-बोधक—हत्, दुरें, हट्, अरे, हट्, हत् आदि।

स्वीकार-बोधक—हां, म्हई, म्हूं, छो रा।

सम्बोधन-बोधक—अरे, है, ओजी, है जी, एजी ओ।

असम्मति-बोधक—न, ऊं—हूं।

(ग) परिमाण वाचक

हाड़ौती के परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण ये हैं—

अतरो (इतना), अतरोक् (इतना सा), घोत् (बहुत), बलकुल् (बिल्कुल), ज्यादा (अधिक), आदक् (पर्याप्त), जमा-जमा (सम्पूर्ण), कम् (कम), थोड़ो (थोड़ा), मोर् (और), सँदो (समस्त)।

(घ) रीतिवाचक

हाड़ौती रीतिवाचक क्रिया-विशेषण ये हैं—

अपूठो (पीठ करके), अस्यो-उस्यो (ऐसा-वैसा), कीदेई (किसलिए), क्यूं (क्यों), ज्यूं (ज्यों), क्यूं (क्यों), यूं (इस प्रकार), धमाधम (शीघ्रता से), सटासट्, सटापट् (शीघ्रता से), गटागट्, गटागट्, फटाफट्, फमाफम् (ये शब्द ध्वनि-अनुकरण पर बने है), लेरां या लारां (साथ), ठीक् (ठीक), नौठ् (कठिनाई से), धीरां-धीरां (धीरे-धीरे), मदरै-मंदरै (मंथरता से), बार्‌बार् (पुनः पुनः), बारबार् (पुनः पुनः), बरोबर् (बराबर), मते (अनुसार), सैज् (सहज), सही (सही), सांच्-माच् (सत्य), हाथूं-हाथ् (तत्काल)।

२. समुच्चय बोधक

हाड़ौती में समुच्चय-बोधक अव्यय इन प्रकारों में मिलते हैं—

संयोजक—अर्, मोर्, बोर (और)
विभाजक—कै (या), या (या), चावै (चाहे)
विरोधदर्शक—पण (परन्तु)
संकेतवाचक—ज्यो (यदि)
परिणामदर्शक—तो, तोभी या थोबी (तो भी)
कारणवाचक—ईंसूं (इसलिए), तो (तो)
स्वरूप वाचक—जाणै (जाने),

३. सम्बन्धसूचक

हाड़ौती सम्बन्धसूचक दो रूपों में मिलते हैं—

(क) विभक्ति रहित–ताई, समेत् आदि
(ख) विभक्ति सहित–आगे, लारै आदि

नीचे ऐसे अव्यय दिये जाते हैं—

अग्याड़ी (आगे), अठीं (इधर), आगली-सी (अगला), आगै (आगे), उपर्‌पास् (ऊपर), कनै (निकट), कारणै (लिए), जस्यो (जैसा), जीवणो (दाहिना), जोड़्

(ओर), हठे (नीचे), ताईं (लिये), नीचै (नीचे), नजीक् (नजदीक), नीड़े (निकट), पाछै (पीछे), पछवाड़े (पीछे), पैलाडी (परवर्ती), पास् (समीप), बारै (बाहर), बना (बिना), बाद् (बाद), मंझ (मध्य), भंई (भीतर), माइनै, मांई (भीतर), सारै (साथ), सेवै (लिए), वास्तै (वास्ते), बीचै (बीच में), सात् साथ), समेत् (युक्त), सामै (सामने), सरीखो (सदृश), स्वाय् (सिवाय), सूदो (सीधा)

४. सम्बोधन-बोधक

हाड़ौती में अनेक सम्बोधनबोधक शब्दों का प्रयोग होता है। इनका वाक्य से सम्बन्ध नहीं रहता। ऐसे शब्द प्रत्येक भाषा में मिलते हैं। ये हर्ष, शोक आदि भावों को व्यक्त करने के लिए सभी भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। ये निम्न प्रकार के हैं—

हर्ष-बोधक—आहा, हो-हो, है-है, स्याबास् आदि।

शोक-बोधक—अरे, अरे-बारे, हा, हाय् हाय्, अरे राम् जी, अरी म्हारी मां, राम् राम् आदि।

आश्चर्य-बोधक—वाह्-व्हा, है, ओहो आदि।

अनुमोदन-बोधक—हां, व्हो, हूं, स्याबास् (फा० शाबाश)

तिरस्कार-बोधक—हन्, दुरै, हट्, अरे, हट्, हत् आदि।

स्वीकार-बोधक—हां, म्हई, म्हूं, छोरा।

सम्बोधन-बोधक—अरे, है, ओजी, है जी, एजी ओ।

असम्मति-बोधक—न, ऊं—हूं।

हाड़ौती वाक्य-विचार

(क)

हाड़ौती वाक्य में शब्द-स्थापन

वाक्य-रचना की दृष्टि से हाड़ौती में तीन प्रकार के वाक्य पाये जाते हैं—

(१) साधारण
(२) मिश्र
(३) संयुक्त

१. साधारण वाक्य

हाड़ौती वाक्य आकार की दृष्टि से अधिक लम्बा नहीं होता। पांच-छह शब्दों की वाक्य-रचना सामान्य रूप से मिलती है। इससे अधिक दीर्घ वाक्य भी मिलते हैं और लघु भी। ऐसे दीर्घाकारी वाक्य—म्हूं काल् कोटा सूं थँ बेई दो लूगड़ा लायो (मैं कल कल कोटे से तेरे लिए दो लूगड़े लाया) कम सुनने में आते हैं। दीर्घाकारी वाक्यों के उद्देश्यों और विधेयों को विशेषणों आदि की सहायता से अधिक दीर्घ बनाया जा सकता है, पर यह प्रवृत्ति बोलचाल में नहीं मिलती। लघ्वाकारी वाक्य एक शब्द तक के मिलते हैं। ऐसे वाक्य आज्ञाकाल, सम्बोधन आदि में मिलते हैं; यथा—उठ्, जा, अरे। सम्बद्ध वाक्य में संज्ञा, सर्वनाम आदि सभी एक शब्द में वाक्य का निर्माण करते हैं। एक से अधिक शब्दों के वाक्य अति प्रचलित हैं; यथा—तू जा, काई करे छे आदि।

(१) सामान्य रूप से वाक्यों में शब्दों का स्थान इस प्रकार रहता है:—कर्ता, कर्म और क्रिया।

(क) हाड़ौती वाक्य में शब्द क्रम बदलने से कुछ अवस्थाओं में अर्थ बदल जाता है; यथा—

न्हार् कुत्तो खावै छै (शेर कुत्ता खाता है)

शब्द क्रम बदलने पर—

कुत्तो न्हार खावै छै (कुत्ता शेर को खाता है)

पर ऐसा परसर्ग-रहित शब्दों में ही होता है।

(ख) कर्ता और क्रिया के स्थान क्रमशः वाक्य के आदि तथा अन्त में निश्चित हैं, पर शेष कारक-शब्दों का क्रम वाक्य के मध्य में इस प्रकार मिलता है—

(१) कर्म शेष कारकों की अपेक्षा क्रिया के पास रहता है; यथा—

ऊ हात् सूं काम करै छै (वह हाथ से काम करता है), ऊ घर में आम् लायो (वह घर पर आम लाया)

(२) द्विकर्मक क्रिया के प्रधान और गौण कर्मों में प्रधान कर्म क्रिया के निकट होता है; यथा—

म्हनै ऊईं दो पीसा दया (मैंने उसे दो पैसे दिये)

(ग) वाक्य बिना कर्ता, कर्म या क्रिया के भी बनते हैं; यथा—

कर्ता-रहित	—	आम् ला (आम ला)
कर्म-रहित	—	म्हू दूं (मैं दूं)
क्रिया-रहित	—	च्यार् हात् (चार हाथ)

(२) हाड़ोती वाक्य में निजवाचक सर्वनाम पुरुष वाचक सर्वनाम के बाद में आता है; यथा—

तू आपणो काम् कर् (तू अपना काम कर)

(३) (क) विशेषण विशेष्य के पूर्व आते हैं; यथा—

काळो घोड़ो छै (काला घोड़ा है), पीळी पागड़ी छै (पीली पगड़ी है)

(ख) विधेय-विशेषण विशेष्य के बाद और क्रिया से पूर्व आता है; यथा—

घोड़ो काळो छै (घोड़ा काला है), पागड़ी पीळी छै (पगड़ी पीली है)

(ग) सख्यावाचक विशेषण संज्ञा से पूर्व मिलते हैं; यथा—

पाच् आदमी (पांच आदमी)

(घ) विशेषणों की विशेषता द्योतक शब्द विशेषण से पूर्व आते हैं; यथा—

घणू लाळ् रंग (अति लाल रंग)

(ङ) वर्तमान कालिक तथा भूतकालिक कृदन्त विशेषण रूप में प्रयुक्त होने पर विशेष्य से पूर्व आते हैं; यथा—

भागतो बैल् (भगता बैल), मरी चड़ो (मरी चड़ी)

(४) भेद्य शब्द भेदक शब्द के बाद में आता है और परसर्ग दोनों के मध्य में होता है; यथा—

बाद्रा को बच्चो (बंदर का बच्चा)

(५) (क) क्रिया के पूरक शब्द क्रिया से पूर्व आते हैं; यथा—

पूरो होबो (पूरा होना), छोनो रैबो (छच्छा रहना)

(ख) संयुक्त क्रियाओं में प्रधान क्रिया गौण क्रिया से पूर्व जाती है; यथा—

चाल् दो (चल दिया), खा बैठ्यो (खा गया)

(ग) सहायक क्रिया से मुख्य क्रिया पहले आती है; यथा—

जावै छै (जाता है), ग्यो होबैगो (गया होगा)

(६) (क) . . . क्रिया-विशेषण कर्ता से पूर्व तथा बाद

थो तू रै छै (वहां तू रहता है), तू काल् जावैगो (तू कल जायगा)

(ख) रीत क्रिया-विशेषण विधेय से पूर्व आते हैं; यथा—

ऊ धीरां चालै छै (वह धीरे चलता है)

(ग) समुच्चय बोधक अव्यय या विभाजक अव्यय दो सम्बन्धित शब्दों या वाक्यों के मध्य में आते हैं; यथा—

घोड़ो अर् बैल जावै छै (घोड़ा और बैल जाता है), ऊ आयो अर् म्हूं चाल्यो (वह आया और मैं चला)

(घ) 'तो' व 'ई' उस शब्द के ठीक पीछे आते हैं जिस पर बल होता है; यथा—

म्हूं तो चाल्यो (मैं तो चला), तू ई (ही) आयो छो (तू ही आया था)

(७) वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित होने पर भी बल के अनुसार उनके स्थानों में परिवर्तन होता रहता है। प्रायः जिस शब्द पर बल दिया जाता है वह शब्द वाक्य के प्रारम्भ में आता है; यथा—

क्रिया पर बल — दे तो दी म्हनै (कह तो दिया मैंने)

कर्त्ता पर बल — ऊंट् खेत् भेळ् ग्यो (ऊंट खेत उजाड़ गया)

कर्म पर बल — रोट्यां पेट् में पड़्गी दीखै थारै (तेरे रोटियां पेट में पड़ गई दीखती हैं)

करण पर बल — हातां सूं काम् कर्वा हाळो कदीं दुख् न पावै (हाथ से काम करने वाला कभी दुख नहीं पाता है)

भेद पर बल — घोड़ो म्हारो छै (घोड़ा मेरा है)

अपादान पर बल — बड् सै पत्तो गर्यो (बड़ से पत्ता गिरा)

अधिकरण पर बल—घर् में तो ऊंद्रा ई ग्यारस् करै छै (घर में तो चूहे भी एकादशी मनाते हैं)

(८) हाड़ौती वाक्य में संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण में से कोई भी कर्ता हो सकता है; यथा—

छोरो आयो (लड़का आया), ऊ आयो (वह आया), काळो आयो (काला आया)

हाड़ौती में निम्न प्रकार के वाक्य मिलते हैं—

१. विधानार्थक
२. निषेधवाचक
३. प्रश्नवाचक
४. विस्मयादिबोधक

विधानार्थक वाक्य के शब्द-स्थापन के सम्बन्ध में ऊपर विचार हो चुका है।

निषेधवाचक वाक्य

ऐसे वाक्यों की रचना विधानार्थक वाक्यों के समान होती है जिनमें निषेध-वाचक अव्यय निम्न रूप मे मिलता है—

(क) क्रिया से पूर्व आता है; यथा—
ऊ मोटर में नै बैठे (वह बस में नहीं बैठता)

(ख) क्रिया के बाद में भी आता है; यथा —
तू जावै मत् (तू मत जावे)

(ग) संयुक्त क्रिया मे मुख्य और सहायक क्रिया के बीच में आता है; यथा—
न्हार् बाकरी मार् नै न्हाके (शेर बकरी को मार न डाले)

(घ) वाक्य के आरंभ में भी आता है; यथा—
नै ऊ जावै (वह नहीं जाता)

प्रश्नवाचक वाक्य

हाड़ोती में प्रश्न वाचक वाक्य दो प्रकार के मिलते हैं—

(क) जिनका उत्तर 'हां' या 'ना' में होता है।

(ख) जिनके उत्तर में किसी बात का उल्लेख होता है।

(क) प्रथम प्रकार के वाक्य की रचना में—

(१) विधानार्थक वाक्य के अंतिम शब्द पर बल दिया जाता है; यथा—
तू जावैगो ? (क्या तू जायगा ?)

(२) प्रश्न वाचक 'नै' को विधानार्थक वाक्य के पीछे जोड़ा जाता है; यथा—
तू जावैगो नै ? (क्या तू जायगा ?)

(३) 'काईं' या 'कंईं' को वाक्य के अंत में रखा जाता है; यथा—
तू जावैगो काईं ? (क्या तू जायगा ?)
कभी-कभी 'काईं' का प्रयोग वाक्य के प्रारंभ में भी मिलता है; यथा—
काईं तू जावैगो ? (क्या तू जायगा ?)

(ख) द्वितीय प्रकार की वाक्य रचना में—

प्रश्न वाचक सर्वनाम और प्रश्न वाचक क्रिया विशेषण—

(१) क्रिया के पूर्व और कर्ता के बाद आते हैं; यथा—
ऊ काईं खावै छै ? (वह क्या खाता है ?)
ऊ कद् आयो ? (वह कब आया ?)

(२) संयुक्त क्रिया मे मुख्य और सहायक क्रिया के मध्य में आते हैं; यथा—
ऊ उठ् क्यूं जावै ? (वह उठ क्यों जावे ?)

(ख)

हाड़ौती वाक्य में अन्वय

हाड़ौती में निम्न प्रकार के अन्वय मिलते हैं—

१. कर्त्ता क्रिया अन्वय
२. कर्म-क्रिया अन्वय
३. विशेषण-विशेष्य अन्वय
४. सम्बन्धकारक-परसर्ग तथा भेद्य अन्वय
५. नित्य सम्बन्धी सर्वनाम और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम अन्वय

(१) कर्त्ता और क्रिया का अन्वय

हाड़ौती मे कर्त्ता संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण में से कोई भी हो सकता है और कर्त्ता के विभिन्न रूपों से क्रिया का अन्वय पाया जाता है—

(१) जब अप्रत्यय कर्त्ताकारक वाक्य का उद्देश्य होता है तब उसके लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष होते हैं; यथा—

गायां चर्‌री छै (गायें चर रही हैं), बामी में सै सांप् खड़्यो (बिल मे से सांप निकला)

(२) आदरार्थक कर्त्ता के साथ उभयलिंग एक वचन मे भी पुल्लिंग-बहुवचन की क्रिया आती है; यथा—

गरूजी बोल्या (गुरु बोले), राणीजी आया (रानी आई)

(३) जब एक ही लिंग के दो या अधिक कर्त्ता संयोजक अव्यय से जुड़े हुए हों तो क्रिया उसी लिंग के बहुवचन मे आती है; यथा—

घर् सूं डांडो अर् खोलू गर् पड़्या (घर से डांडा और कवेलू गिर पड़े)
गाय् अर् भैंस् चरबा गी (गाय और भैंस चरने गई)

कभी-कभी एक वचन क्रिया भी मिलती है; यथा—

राजो अर् ऊं को छोरो बनी मैं ग्यो (राजा और उसका पुत्र वन में गया)

(४) जब भिन्न लिंगों के दो या अधिक कर्त्ता संयोजक अव्यय से जुड़े हुए हो तो क्रिया पुल्लिंग बहुवचन मे आती है; यथा—

राजो अर् राणी घर् सूं खड़् ग्या (राजा और रानी घर से निकल गये)

पर कभी-कभी क्रिया निकटतम कर्त्ता के लिंग-वचन के अनुसार होती है; यथा—

यो आम् अर् या लीमड़ी लाग् री छै (यह आम तथा यह नीम उग रहे हैं)

(५) जब दो या अधिक कर्ता विभाजक अव्यय द्वारा जुड़े हुए हों तो क्रिया के लिंग, वचन निकटतम कर्ता के अनुसार होते हैं; यथा—

> आज् रात् मैं जन्द् के छुईल्यां आई छी (आज रात भूत या चुड़ैलें आईं थीं।)

(६) (क) जब संयोजक अव्यय से जुड़े हुए कर्ता विभिन्न पुरुषों के हों और उनमें से एक उत्तम पुरुष में हों तो क्रिया उत्तम पुरुष में होती है; यथा—

> थू र म्हूं चालँगा (तू और मैं चलेंगे)
>
> ऊ अर् म्हूं बोपार् करबा जाऊंगूं (वह और मैं व्यापार करने जाऊंगा)

(ख) यदि कर्ता मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष में हों तो क्रिया मध्यम पुरुष में होती है; यथा—

> थूर् ऊ चाल् (तू और वह चल), बा छोरी अर् थू कां ग्यो छो (वह लड़की और तू कहां गया था)

(२) कर्म और क्रिया का अन्वय

सकर्मक क्रियाओं के भूतकालिक कृदन्त से बने हुए कालों के साथ जब सप्रत्यय कर्त्ताकारक और अप्रत्यय कर्मकारक आता है तब कर्म के लिंग, वचन व पुरुष के अनुसार क्रिया के लिंग, वचन व पुरुष होते हैं; यथा—

> म्हनै रोटी खाई (मैंने रोटी खाई), बाप् नै बेटी परणा दी (बाप ने पुत्री का विवाह कर दिया)

हाड़ौती में कर्म और क्रिया के अन्वय की विशेषताएं वे ही हैं जो कर्त्ता और क्रिया के अन्वय की है,।

(३) विशेषण का विशेष्य से अन्वय

विशेषण अध्याय में इस विषय पर कुछ विचार हो चुका है[1], यहां कुछ अन्य अन्वयगत विशेषताओं पर विचार होगा—

(१) हाड़ौती में विशेषण के लिंग-वचन विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार होते हैं; यथा—

> काळो घोड़ो (काला घोड़ा), धोळी गाय् (श्वेत गाय)

विशेष्य अप्रत्यय कर्ता कारक में होता है तब विशेषण का कारक भी विशेष्य होता है; यथा—

[1] देखिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृष्ठ ७५–७६

राती घड़ो छै (लाल घड़ा है), गोरो चमार् बरो होवै छै (गोरा चमार बुरा होता है)

(२) आदरार्थकता में उभय लिंगीय विशेष्य का विशेषण पुलिंग बहुवचन में होता है; यथा—

बड़ा मामाजी आया (बड़े मामा आये), छोटा लाडीजी बैठ्या (छोटी बहू बैठी)

(३) (क) यदि दो भिन्न लिंगों के विशेष्य संयोजक अव्यय द्वारा जुड़े हुए हों तो विशेषण पुलिंग बहुवचन में होता है; यथा—

घणा नंदी अर् नाळा गेला में पड़ैगा (मार्ग में अनेक नदी-नाले पड़ेंगे)

(ख) पर यदि दो भिन्न लिंगों के विशेष्य विभाजक अव्यय द्वारा जुड़े हुए हों तो विशेषण निकटतम विशेष्य के लिंग के अनुसार होता है; यथा—

यो धोळो ल्वारो (या) ल्वारी कुण् को छै ? (यह श्वेत बछड़ा या बछिया किसका है ?)

(४) (क) यदि दो या अधिक विशेष्य संयोजक अव्यय से जुड़े हुए हों तो विशेषण बहुवचन में होता है; यथा—

घणा लोग लुगाई (अनेक स्त्री-पुरुष)

(ख) यदि दो या अधिक विशेष्य विभाजक अव्यय से जुड़े हुए हों तो विशेषण निकटतम विशेष्य के वचन के अनुसार होते हैं; यथा—

धोळो ल्वारो ल्वारी (श्वेत बछड़ा या बछिया)

(४) सम्बन्धकारक-परसर्ग तथा भेद्य का अन्वय

इस विषय पर 'परसर्ग' के अध्याय में विचार हो चुका है[१] यहां उसी पर आगे विचार होगा।

(१) यदि भिन्न लिंगों के दो या अधिक भेद्य संयोजक अव्यय से जुड़े हुये हों तो परसर्ग पुल्लिंग बहुवचन में होगा; यथा—

रूंख् का पत्ता अर् डाळ्या गर् पड़्या (वृक्ष के पत्ते और डालियां गिर पड़ीं)

पर कभी-कभी निकटतम भेद्य के अनुसार भी परसर्ग के लिंग-वचन होते हैं; यथा—

पींजरा की कोयल् अर् सो उड़्ग्यो (पिंजरे की कोयल और शुक उड़ गये)

यदि विभाजक अव्यय से जुड़े हुए भिन्न लिंग-वचन के भेद्य हों तो परसर्ग समीप के भेद्य के लिंग-वचन के अनुसार होता है; यथा—

ऊं की माळा को मूंग्यो गमग्यो (उसकी माला या मूंगा खो गया)

१— देखिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृष्ठ ६३-६४

(४) सर्वनाम और संज्ञा आदि का अन्वय

(क) नित्य सम्बन्धी सर्वनाम और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम का अन्वय—

हाड़ौती में नित्य सम्बन्धी सर्वनाम के लिंग-वचन का अन्वय सम्बन्धवाचक सर्वनाम से होता है, पर उसका कारक भिन्न होता है; यथा—

जो गयो जी ऊंका पांव में मागृगी (जो गया था उसके पैर में लग गई)

(ख) सम्बन्ध वाचक सर्वनाम का संज्ञा से अन्वय—

(१) हाड़ौती में ऐसे सर्वनामों के लिंग-वचन संज्ञा-शब्दों के अनुसार होते हैं; यथा—

म्हारै लामृरी छी ज्या फाट्गी (मेरे चटाई थी वह फट गई)

कभी-कभी स्त्रीलिंग में पुल्लिंग सर्वनाम भी प्रयुक्त होते हैं; यथा—

फाट्या कानां की छोरी छी ज्यो जा री छी
(फटे कानों की लड़की थी जो जा रही थी)

(२) यदि संयोजक अव्यय से जुड़े दो भिन्न लिंगों के दो या अधिक संज्ञा-शब्दों के लिए सम्बन्ध वाचक सर्वनाम आता है तो वह पुल्लिंग बहुवचन में रहता है; यथा—

वांके पास् पीसा (अर) कोड़ी छा जे वांई रै'ग्या (उनके पास पैसे कोड़ी थे, जो वहां ही रह गये)

(३) पर यदि विभाजक अव्यय से जुड़े हुए ऐसे शब्द हों तो सम्बन्धवाचक सर्वनाम के लिंग-वचन पुल्लिंग संज्ञा शब्द के अनुसार होते हैं; यथा—

कै छोरो कै छोरी छै ज्यो जा र्यो छै (या तो लड़का है या लड़की है जो जा रहा है)

साहित्य-खण्ड

हाड़ौती लोक-साहित्य

हाड़ौती लोक-साहित्य से तात्पर्य हाड़ौती क्षेत्र की उस मौखिक अभिव्यक्ति से है, जो भले ही किसी व्यक्ति से चली हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग युगीन वाणी-साधना समाहित रही है, जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहा है। इस प्रकार वह लोकजीवन का दर्पण है। लोक-जीवन ने शताब्दियों से जो देखा, अनुभव किया व सोचा-विचारा वही लोक-साहित्य की थाती बन गया। उसका निर्माण एक-दो दिन या एक-दो वर्ष का नहीं है, अपितु उसको आज का स्वरूप प्रदान करने में शताब्दियों ने योग दिया है। इस दीर्घकाल में 'योग्यतमावशेष' के नियम के अनुसार जो कुछ उसने संजोया है उसमें लोक का इतिहास निहित है। अनुपयोगी को त्याग करके भी वह इतना समर्थ है कि हाड़ौती-जीवन का शताब्दियों का मनोविकास प्रकट कर रहा है।

हाड़ौती लोक-जीवन और संस्कृति की झांकी उसके लोक साहित्य में स्पष्टतया मिल सकती है। हाड़ौती लोक साहित्य नामों और तिथियों को स्मरण न रख सका हो, पर उसने शताब्दियों के इतिहास को अपने सामने घटित होते देखा है अतः उसे वह कह सकता है। वैज्ञानिक साधनों के अभाव में उसने अपने देश का—हाड़ौती-क्षेत्र का सर्वेक्षण खंडों में ही किया हो, पर आज वह भूगोल का अच्छा ज्ञाता है। उसका परिचय यहां के व्यक्तियों की गेहूं, ज्वार की रोटी से है और राबड़ी से भी है। अतीत की घी-युक्त चावल-मूंगों की खिचड़ी का बहुमूल्य भोजन भी उसे याद है और मोतीचूर भी उसकी नवीन भोजन-सूची में जुड़े हैं। उसने दखनी चीर का सौन्दर्य देखा है, तो फगा का सौंदर्य भी। राखड़ी, भंवर, पहुंची आदि गहनों का उल्लेख यहां के लोक-साहित्य में मिलता है। इस क्षेत्र की सभी जातियों की पूरी सूची और उसकी प्रमुख विशेषताएं उसके पास विशदता से अंकित हैं। वह उनके विभिन्न रीति-रिवाजों तथा व्यवसायों का परिचय कुशल दुभाषिये बनकर देता है। विभिन्न देवी-देवताओं, व्रतों और धार्मिक विश्वासों को चाहे हम भूल गये हों, पर उसको तो स्मरण है, जिन्हें हम रूढ़ियां और अंधविश्वास कह कर टाल देते हैं वे ही तो उसने सुरक्षित रख लिये हैं और उन्हीं के आधार पर समय-समय पर चारण-भाटों की तरह पोथी खोलकर हमारे पूर्वजों का इतिहास अंतरंग मित्र की तरह कहता है। उसमें जीवन का उपयोगी सत्य भी सुरक्षित है और तात्विक सत्य भी। उसमें निहित मन का अध्ययन वहां तक गया है जहां तक मनोविज्ञान को अभी पहुँचना है। हाड़ौती 'बोली' का इतिहास भी वही बतला है। तात्पर्य यह है कि यहां का लोक-साहित्य इतिहासकारों, भूगोल-वेत्ताओं,

अर्थशास्त्रियों, नृशास्त्रियों, धर्मशास्त्रियों, नीतिशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और भाषाशास्त्रियों को अमूल्य उपयोगी सामग्री प्रदान करने की क्षमता रखता है।

आधुनिक हाड़ौती जीवन भले ही सरल जीवन हो, पर अपने अतीत से तो वह काफी विकसित और जटिल है। लोक-साहित्य प्रत्येक समय उसका दर्पण बना है। उसने दूध के दांत वाला उसका मुखड़ा भी दिखाया और मसें भीगता यौवन भी। जीवन के परिवर्तित रूपों को दिखाने के लिए लोक-साहित्य भी परिवर्तित रूपों में सामने आया। यदि हाड़ौती का सरलतम जीवन गीतों के माध्यम से व्यक्त हुआ है तो बाद का तनिक जटिल तथा विकसित जीवन गाथाओं का वर्ण्य-विषय बना है। अंतरंग (सब्जैक्टिव) अभिव्यक्ति से बढ़ते-बढ़ते साहित्य ने बहिरंग (ओब्जैक्टिव) अभिव्यक्ति भी अपनाई। अतः क्रमशः गीत और गाथाओं का जन्म हुआ। पेंसिल बनाने के लिए चाकू बनाया जाने पर उससे तरकारी भी काटी जाती है और नाखून भी; यहां तक लिफाफे पर गोंद भी उसी से लगा लिया जाता है। उसी प्रकार साहित्य की एक विधा चल पड़ने पर उसके विभिन्न रूपों में उपयोग देखे जाते हैं। कभी-कभी अभिव्यक्ति जीवन के अधिक अनुरूप बनने के प्रयास में नवीन साहित्यिक विधा भी खोज निकालती है। हाड़ौती लोकसाहित्य में भी जीवन की अनेकधा अभिव्यक्ति अनेक साहित्य-प्रकारों के द्वारा हुई है। अतः लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति और पहेली-साहित्य के विविध प्रकार जीवन के विविध रूपों को प्रकट करने के लिए हाड़ौती में चल पड़े।

हाड़ौती लोक साहित्य को निम्नलिखित छः भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. लोकगीत
२. लोकगाथा
३. लोकनाट्य
४. लोककथा
५. लोकोक्ति
६. पहेली

लोकगीत

"शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है।"[1] लोकगीत व्यक्ति की कृति भले ही हो, पर उसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व लोकसत्ता में लुप्त हो जाता है। शताब्दियों से संतरण

१—'लोक संस्कृति' विशेषांक, सम्मेलन पत्रिका, मराठी लोकगीत, पृष्ठ २५०।

करते हुए मूल लोकगीत के भाव और भाषा लोक-कंठ से निकल कर इतने लोक-व्यापी जाते हैं कि उनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व खोजने पर भी नहीं ढूंढा जा सकता। लोकगी का आधार न कोई शास्त्रीय छन्द होता है और न कोई शास्त्रीय संगीत, केवल लय आधार पर उनकी सृष्टि होती है। यह लयात्मक गीत किसी शास्त्रीय संगीत परंपरा में भले ही न आते हों, पर इनका अपना शास्त्र है, जिसका आधार पोथियां नहीं मौखिक परम्परा है। इन गीतों का विश्लेषण संगीत-शास्त्र के आधार पर होना चाहिये और इनके उस संगीत-सौंदर्य का मूल्यांकन होना चाहिये जो शताब्दियों से इन्हें लोक-कंठों पर बैठाए हुए है।

हाड़ौती लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है[1]—

१—संस्कार सम्बन्धी गीत २—ऋतु संबंधी गीत ३—व्रत संबंधी गीत
४—जाति संबंधी गीत ५—क्रिया संबंधी गीत ६—विविध गीत।

एक अन्य वर्गीकरण गायकों के आधार पर भी हो सकता है। जिसके अनुसार गीत तीन प्रकार के मिलते हैं—१—पुरुषों के गीत २—स्त्रियों के गीत। ३—बालक-बालिकाओं के गीत।

पर सुभीते की दृष्टि से इस प्रबंध में गीतों को निम्न वर्गों में रख कर अध्ययन किया गया है—

१—विवाह के गीत २—पुत्र जन्म के गीत ३—हालरा ४—दाम्पत्य जीवन के गीत ५—जनेऊ के गीत ६—त्यौहार-व्रतोत्सवों के गीत ७—भक्ति-विषयक गीत ८—बालिकाओं के गीत।

लोकगाथा

'लोकगाथा एक कथात्मक गीत होती है।[2] लोकगाथाओं में गेयता एवं कथानक का रहना अनिवार्य है। साथ ही इनके रचयिता अज्ञात होते हैं अथवा यों कहा जाय कि लोकगाथाएं व्यक्तित्वहीन होती हैं। ये संपूर्ण समाज की धरोहर होती हैं तथा इनका प्रचार जन-साधारण में रहता है। इनमें काव्यकला के गुण और सौंदर्य का नितांत अभाव रहता है।[3] लोकगाथा शब्द अंग्रेजी के 'बैलेड' शब्द का समानार्थी है। हाड़ौती लोक गाथा के दो भेद हैं—विशाल आकारी और लघु आकारी।

१—डा॰ उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३१

२—डा॰ सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोक गाथा, पृष्ठ "ज"

३—वही, पृष्ठ ६

विशाल आकारी गाथाएं हाड़ौती में अनेक मिलती हैं, पर यह लेखक अपनी शक्ति और सीमा में बंध कर जिन लोकगाथाओं को संग्रह कर सका और इस प्रबंध में जिन पर विचार कर सका वे हैं—तेजाजी, परथीराज की लड़ाई, बगड़ावतों की हीड, रामनरयाण; लघु आकारी गाथाएं—हीरामनजी और रूकमणी जी को ब्यावलो।

लोकनाट्य

लोक साहित्य का वह प्रकार, जिसका रंगमंच पर अभिनय किया जा सके, लोकनाट्य कहा जायगा। लोकनाट्य किसी घटना या कथा को लेकर पद्यात्मक कथोप-कथनों में प्रस्तुत की गई रचना है जिसमें अभिनय की अपेक्षा गीत और नृत्य का भी ध्यान रखा जाता है। लोक नाटक का उद्देश्य मनोरंजन ही होता है। इसका रंगमंच विकसित नहीं होता है और न अभिनेताओं के अलंकरण पर ही विशेष ध्यान रहता है। लोकनाटक की सामग्री लिखित अवश्य मिलती है, पर लेखक के नाम का अनस्तित्व और पद्यों का लोकीकरण उसे लोकसाहित्य की श्रेणी में ला रखता है। उसको अभिनय और रंगमंच भी इसी की पुष्टि करते हैं।

डा. सत्येन्द्र प्रभृति विद्वानों ने लोकनाट्य का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न करके उसे लोकगीत का ही एक अंग माना है,[1] जो संगत प्रतीत नहीं होता। लोकनाट्य में प्रधानता दृश्य-तत्व की रहती है, गीत उसके सहायक, महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग हैं अवश्य। लोकगीत की सीमा का इतना विस्तार कर देने पर लोकगाथा और लोकनाट्य का स्वतंत्र अस्तित्व शेष नहीं रह जायेगा।

हाड़ौती लोक नाट्य दो प्रकार के हैं:—

१. लीला:—ऐसे लोकनाट्य जो भक्ति रस से युक्त होते हैं वे लीलाएं हैं। हाड़ौती लीलाएं हैं—रामलीला, गोपीचंद-लीला, मोरधज लीला, फैलाद-लीला और रुक्मणी मंगल।

२. खेल या ख्याल:—लीलेतर लोकनाट्य इस श्रेणी में आते हैं जिनमें शृंगार या वीर रस प्रधान होता है। हाड़ौती खेल हैं— रंज्या हीर, ढोला मरवण, फूलादे और खेंवरा।

लोककथा

डा. सत्येन्द्र ने[2] लोक कथा और लोक कहानी में अंतर स्वीकार किया है, उनके अनुसार लोक कथा 'एक पूरा कहानी होती है, उसमें धार्मिक अभिप्राय होता है'। तथा इससे भिन्न कहानियों का लोक कहानी की संज्ञा दी है।

१—धी० व० आदि, हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ६६२

२— वही पृष्ठ ६८६

यह अंतर महद आधार पर खड़ा किया गया है, क्योंकि लोक में 'कथा' शब्द जिन विशिष्ट कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है उन्हीं के लिए हाड़ौती में 'क्याणी' (कहानी) शब्द भी प्रयुक्त होता है; जैसे, सतनारायण की (कथा) क्याणी, माई-दूज की (कथा) क्याणी आदि। हां, हाड़ौती का कहानी-वाचक 'बात' शब्द कथाओं के लिए प्रयुक्त नहीं होता। अतः यदि कोई भेद संभव हो सकता है तो 'लोक-कथा' और 'लोक-बात' जैसा हो सकता है। पर इस प्रबंध में लोक-कथा शब्द को व्यापक अर्थ में स्वीकार करके चला गया है। लोक-कथा, लोक-कहानी और लोक-बात परस्पर पर्यायवाची स्वीकार किये गये हैं।

हाड़ौती कहानियों के निम्नलिखित ९ प्रकार हैं:—

१—धार्मिक तथा व्रत-सम्बन्धी कहानियां	२—उपदेशात्मक कहानियां
३—पारिवारिक और सामाजिक कहानियां	४—पशु-पक्षी जगत की कहानि[याँ]
५—हास्य-रस की कहानियां	६—साहस और प्रेम की कहानि[याँ]
७—तिलस्मी कहानियां	८—ठगों की कहानियां
९—विविध।	

लोकोक्ति या कहावत

'अपने कथन की पुष्टि में, किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से किसी बात को किसी की आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालम्भ देने व किसी पर व्यंग करने आदि के लिए अपने में स्वतंत्र अर्थ रखने वाली जिस लोक प्रचलित तथा सामान्यतः सारगर्भित, संक्षिप्त एवं चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते हैं, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।'[1] यहां कहावत शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हाड़ौती कहावतों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है—

(१) कृषि सम्बन्धी कहावतें (२) समाज-चित्र सम्बन्धी कहावतें (३) जाति-संबंधी कहावतें (४) धर्म और नीति संबंधी कहावतें (६) ऐतिहासिक कहावतें (७) शिक्षा और ज्ञान संबंधी कहावतें (८) मनोवैज्ञानिक कहावतें (९) विविध।

पहेली

पहेलियां मनुष्य की बौद्धिकता और रहस्यमयता के सामंजस्य की उपज हैं। वे लोक-जीवन में सामान्य व्यक्ति के बुद्धि का अनिवार्य माप-दंड हैं; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे अवसर आते रहते हैं जब प्रश्नकर्ता के—विशेष रूप से स्त्री के सम्मुख ... को सुलझाना पड़ता है। इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि का व्यायाम भले ही

१. सहल, राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन, पृष्ठ २०।

होता हो और उनसे थोड़ी देर के लिए किसी का मनोरंजन भले ही हो जाता है, परन्तु इनसे रस की निष्पत्ति नहीं होती है ।

अतः काव्य की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है ।[1] उत्तम काव्य न सही पहेलियां अधम काव्य या आनन्दवर्धन की 'काव्यानुकृति' के अन्तर्गत तो अवश्य आवेंगी । हडसन[2] के अनुसार सामान्य रुचि के आधार पर ठहरा ज्ञान अपनी प्रतिपादन शैली से भी साहित्य के अन्तर्गत आ जाता है । अतः पहेलियों का अध्ययन साहित्य के भीतर किया जा सकता है ।

१—डा० कृष्ण देव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ १६४

२—"Literature is composed of those books, and of those books only, which, in the first place, by resson of their subject matter and their mode of treating it, are of general human interest; and in which, in the second place, the element of form and the the pleasure which form gives are to be regarded as essential."

Hudson, An Introduction to the Study of Literature, page 10.

हाड़ौती लोक गीत

हाड़ौती प्रदेश के लोक-जीवन का जितना विस्तार है, उतना ही विस्तार यहाँ के लोक-गीतों के विषयों का भी है। वे उसके कोने-कोने को झांकते प्रतीत होते हैं। साहित्यिक गीतों ने भले ही यहां के लोक जीवन को अपना वर्ण्य-विषय नहीं बनाया हो, पर यहां के लोकगीत तो इस प्रदेश की प्रत्येक भावना के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किये हुए हैं। वे मनुष्य के जन्म के पूर्व से आरम्भ होते हैं और उसकी मृत्यु के उपरांत तक चलते हैं। हिन्दुओं के संस्कारों की अवशिष्ट चेतना उन्हीं के बल पर है। प्रेम के पवित्र क्षेत्र में उन्हीं का अबाध प्रवेश है। उनमें बालक-बालिकाओं के भोले हृदय को अभिव्यक्ति मिली है। प्रकृति के विशाल क्षेत्र से उन्होंने आवश्यक भाव-सामग्री प्राप्त की है। सारांश यह है कि हाड़ौती लोकगीतों ने यहां के जीवन को नाना रूपों में अभिव्यक्त की है। उनके विभिन्न प्रकारों के अध्ययन से यहां के लोक-जीवन की वैविध्यपूर्ण झांकी देखी जा सकती है।

विवाह के गीत

संस्कारों में सबसे प्रसिद्ध संस्कार विवाह का है जिसका आरम्भ 'सगाई' से होता है और अंत 'दूणो'[1] में होता है। इस आरम्भ से लेकर अंत तक की प्रत्येक क्रिया का संपादन गीतों के द्वारा होता है। शास्त्रोक्त विधियों के पश्चात् जो-कुछ शेष रह जाता है उसके संपादन का भार स्त्रियों पर होता है और वे इसका संपादन इतनी कुशलता और मधुरता के साथ गीत के स्वरों से रसमय वातावरण उत्पन्न करके करती हैं कि विवाह-समाप्ति के उपरांत भी उसकी मधुर स्मृति आगामी कुछ दिनों को तो मोहक बना ही देती है। किसी किसी ने दृष्टिकोण-भिन्नता से इसे नारी जाति की उच्छृंखलता का अवसर कह दिया हो, पर सचमुच विवाह का भार तो स्त्रियों के कंधों पर ही रहा है।

विवाह कोई एक क्रिया नहीं है, अपितु विभिन्न अवसरों पर होने वाले संस्कारों की समष्टि है। विवाह में सगाई, टकीरा (लग्न), बन्दवाक (विनायक), तेल, बँदा (बंदर), बरानी, फेरा (पाणिग्रहण), तोरण, बरा (विदाई), धारणा (जुआ), दूणा (गौना) आदि अनेक प्रमुख क्रियायें मिलती हैं। इनके बीच-बीच में अन्यान्य छोटी-मोटी व्यवहार तथा लोक-व्यवहार सम्बन्धी क्रियायें भी सम्पन्न होती रहती हैं।

१—हाड़ौती लोकोक्ति है—ब्याव की [illegible] [illegible] पर दूठी का [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] थी।

विवाह एक मांगलिक कार्य है और समस्त मांगलिक कार्यों का प्रारंभ स्त्री-गीतों में एक ही प्रकार से होता है। सर्व प्रथम वे 'गणेशजी' गाती हैं, फिर 'सती', 'थाड़ी' व अन्य देवी-देवताओं से मंगल-कामना करती हैं और तत्पश्चात् प्रस्तुत कार्य से संबंधित गीतों का स्वर वायु-मंडल में गूंज जाता है। जहां आवश्यकता होती है वहां स्त्रियां गीत की एक-एक पंक्ति में कुल के समस्त पुरुषों का एक-एक करके नाम गिनाती हैं। नाम गिनाने की यह क्रिया इतनी विशद और औपचारिक होती है कि प्रत्येक नाम के साथ एक ही पंक्ति की पुनरावृत्तियां साहित्यिक दृष्टि से उसमें कोई रस शेष नहीं रह जाने देतीं। प्रत्येक प्रकार के गीतों के बाद स्त्रियों में बताशे बांटे जाते हैं। इन देवी-देवताओं के गीतों पर तो आगे स्वतन्त्र रूप से विचार होगा। यहां केवल उन गीतों के सम्बन्ध में विचार किया जायगा, जो विवाह से सीधा संबंध रखते हैं।

सगाई के गीत

सगाई (वाग्दान) विवाह का आदि है जिसमें वर तथा कन्या पक्षों में परस्पर रुपया-नारियल, वस्त्रादि का आदान-प्रदान होता है। यह आरम्भ कन्या पक्ष की ओर से होता है और उत्तर में वर पक्ष को भी कन्या की 'ओळ' भरनी पड़ती है। हाड़ौती में सगाई के स्थान पर 'रप्यो-नारेळ' शब्द रूढ़ होकर अनेक बार सगाई के भाव को व्यक्त करता है।

सगाई के समय पर प्रायः गणेशजी, माताजी आदि देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त 'सगारी' भी गाई जाती है जिसमें सुगारी के स्वरूप के बोध के साथ-साथ वर पक्ष में कन्या के आगमन की उल्लासमयी अभिलाषा का वर्णन मिलता है—

कैंतोड़ी सळ दमरणे चंदण सरया लेप, सगारी रूड़ो बांकड़ो।

× × ×

मन मैं म्हारो लाड़ सड़ो हरलियो, हळो पड़यो छै म्हारै हाथ।
मन मैं लाड़ सड़ो म्हारी हरलई, समरथ बैठ्या छै म्हारै पास।

× × ×

देखूं म्हारा लाड़ा लाड़ी आवतां, फूली अंग न माय।

उकीरा के गीत

'उकीरो' या लग्न-पत्रिका कन्या-पक्ष की ओर से भेजी जाती है। कन्या-पक्ष वाले इस अवसर पर पाणिग्रहण का समय निश्चित करते हैं, पंडित द्वारा पत्रिका लिखवा कर वर-पक्ष के पास भेजते हैं और वर-पक्ष इसे लोगों की उपस्थिति में विधिवत् स्वीकार करता है। इसे 'उकीरो भेजना' कहते हैं। इस पत्रिका के साथ रुपये, वस्त्रादि

भी वर के लिए भेजे जाते हैं। वस्तुतः विवाह-कार्य का प्रारम्भ यहां से ही मानना चाहिये। इसके बाद से ही दोनों पक्षों में उल्लास, व्यस्तता आदि का संचार हो जाता है।

इस समय के गीतों में कन्या-पक्ष का 'मादो-मांवळो' प्रसिद्ध गीत है। इस गीत में कन्यादान के महत्व को बताया गया है—

> की दय मादो नीरजै, ज्यांरा छै बड़-बड़ पाना जी।
> मां घर साजन फर-फर जावै, छै कोई मकन कंवारी जी।
>
> × × ×
>
> पीतळ को दान सभी कोई देसी, सांसी को दान दोहेलो जी।
> सांसी को दान सभी कोई देसी, चांदी को दान दोहेलो जी॥
> चांदी को दान सभी कोई देसी, सूना का दान दोहेलो जी।
> सूना को दान सभी कोई देसी, मोत्यां को दान दोहेलो जी॥
> मोत्यां को दान सभी कोई देसी, गऊ को दान दोहेलो जी।
> गऊ को दान सभी कोई देसी, कन्या को दान दोहेलो जी॥
> कन्या को दान (पिता का नाम) देसी, ज्यांको गरवो गोतोजी।

एक अन्य गीत में मांवले का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है :—

> एक मावला में इंदराजा सेस धरणी,
> सै'र पाटण, मांवळो मक-मालरो,
> मांवळा री जात जाणी देश-देश बखाणियां,
> लाडी च्यार खण्ड बखाणियां।

'उकारो' शब्द 'उत्कीरः' शब्द से बना है। इससे यह प्रतीत होता है कि अतीत में इस अवसर पर कागज के अभाव में किसी वस्तु पर आवश्यक सूचना उत्कीर्ण करके भेजी जाती थी। आज उत्कीर्णता का प्रयोग नहीं मिलता, तब भी यह प्राचीन-परम्परा का द्योतक शब्द बोली में अपना अस्तित्व बना कर उसकी ओर संकेत कर रहा है।

बन्याक के गीत

लग्न-पत्रिका भेजने के पश्चात् कोई भी शुभ दिन देखकर ग्राम के प्रसिद्ध गणेशजी के यहां जाकर विधिवत् उनकी पूजा की जाती है और वहां से पांच कंकड़ लाये जाते हैं। उन्हें गणेशजी के रूप में 'पाटे' पर स्थापित कर देते हैं। गणेश-स्थापन को 'बन्याक बैठना' कहा जाता है। वस्तुतः जन साधारण में 'बन्याक बैठना' क्रिया से जो भाव-ग्रहण किया जाता है वह यह है कि वर या कन्या के साथ गणेश-पूजन के उपरांत एक ऐसे बालक को 'बन्याक' कहकर जोड़ देना जो उसके साथ निमंत्रण पर भोजन

करने जाता है। इसी दिन से व्यवहारी या सम्बन्धी वर या कन्या को निमंत्रित करना आरम्भ कर देते हैं। इस दिन 'बड़े गणेश' गाये जाते हैं और गणेशजी से अपने कुल की वृद्धि की कामना की जाती है तथा यह भी प्रार्थना की जाती है कि विवाह में जब-जब मांगलिक कार्य हो, तब-तब आप अवश्य पधारें, यहां आपका स्वागत होगा। आप हमारी विपत्तियों का निवारण करें और समस्त विवाह-कार्य में कभी भी किसी प्रकार की कमी न आने दें। हाड़ौती क्षेत्र मे रणथम्भौर के गणेश सबसे प्रसिद्ध हैं। अतः एक गीत मे उन्हीं से प्रार्थना की गई है—

गढ़ रणत भंवर सूं आवो बंदायक
करो न अणचीती बरदड़ी।
औरां की बरद जण आवो बंदायक
(व्यक्ति का नाम) की बरद उतावळी।
पैलो तो वासो बास जे कांकड़
कांकड़ कळस बंधाड़या।
× × ×
आटवूं तो वासो बस जे फेरा मैं
बामण वेद सुणाइया।
म्हारी तीन बसत उबार गणपत–
आंधी, मे'ह, बवूळियो,
म्हारै पांवळ बरज्यो चरयां व चंगेरिया, हरिया मूंग मंडोळवां,
गुड़ बरज्यो ढेल्यां व भेल्यां, खांड बरज्यो सोपळा।
× × ×
म्हारै लाडली को चीर बरज्यो, रायवर की चीरड़ी
म्हारी लाडली परवार पूरी, एक और दूजो सासरो।

बना

दुल्हे को हाड़ौती में 'बना' की संज्ञा दी जाती है और दुल्हिन के लिए 'लाडो' शब्द का प्रचलन है। 'बना' एक प्रकार का गीत भी होता है जिसे 'बन्दाक' से 'निकासी' के पूर्व तक गाया जाता है। ऐसे गीतों में वर के वैभव और रूप-माधुरी के स्त्री-हृदय पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण मिलता है। ये गीत 'पमी'– युक्त बना को गांव मे बुलाने समय और विभिन्न निमंत्रणों पर भोजन करने जाने के अवसर पर गाये जाते हैं।

एक "बना" गीत मे वर से यह कामना की गई है—

१—दुल्हे के हाथों मे नारियल पकड़े देने को पमी भरना कहते हैं।

तथा विक के पीछे बनी के साथ वह इस शर्त पर चौपड़ भी खेलता है—

विक डाल दो कमरे में चोपड़ खेलेंगा बना ।

× × ×

अगर मैं हारूंगी तो सुबह चाय पिला दूंगी

पर ये दोनों बना-बनी हाड़ोती के न रहकर हिन्दी के हो गये हैं और हाड़ोती-क्षेत्र में चुपके से घुस आये हैं।

लाडी

'लाडी' गीत पाणिग्रहण के पूर्व तक कन्या-पक्ष में गाये जाते हैं। इन गीतों में दुल्हिन का सौंदर्य-वर्णन नहीं मिलता, यह देखकर आश्चर्य होता है। बहुत संभव है इसके मूल में यह कारण हो कि इन गीतों की रचना स्त्रियों द्वारा हुई है, पुरुष द्वारा नहीं और समलिंग होने के कारण स्त्री स्त्री पर मोहित नहीं होती।[1] अतः गीतकार का ध्यान इस ओर न जाना स्वाभाविक था। इन गीतों में दुल्हिन की यह कामना है कि मुझे उचित वर तथा घर मिले। वर की खोज में जाने वाले अपने दादा से वह कहती है—

बाबाजी दादाजी अस्या घर दीज्यो जी राज,
झरोखा बैठी दांतण करूं।

तब दादाजी का उत्तर होता है—

बाई के धनधन भर्‌या छै भंडार, कावड्यां सूं पानीड़ो भरै।
बाई के बामण तपै छै रसोयां।

एक अन्य गीत मे किसी वर द्वारा पिता से उसकी पुत्री मांगी गई तो पिता का सहज उद्गार इस प्रकार व्यक्त होता है—

लाडी का दादाजी केसर तोले, चावर लड़ो धार म्हाराज।
तोलतां तोलतां नजर पड़ी छै, ये लड़वण म्हाने दे दो म्हाराज।
पाळी पोसी दूध पिलायो म्हाराज, म्हाके दयो दो न जाय म्हाराज।

एक अन्य गीत मे बनी का विवाह एक सावले वर से हो गया, जिसका बनी को दुःख है। तब उसके परितापार का शमन उसके दादा इस प्रकार करते हैं—

वर बैठ्यो बाबाजी की ओठिया
घांडा रम पीवो न चवोठिया

१—मोह न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह रीति अनूपा।
रा० च० मा०, उत्तरकांड, ११४,२।

बीरा

विवाह के आनंद-मय प्रसंग में 'बीरा' गीत अत्यन्त करुणामयी अभिव्यक्ति से युक्त गीत है। जब किसी बहिन के यहां उसकी पुत्री या पुत्र का विवाह होता है तब 'बीरा' गीत गाये जाते हैं। सामान्यतया सभी स्त्रियां भाई से युक्त होती हैं। अतः ऐसे गीतों को प्रत्येक विवाह में सुना जा सकता है। सर्वप्रथम बहिन भाई को 'बतीसी झनाने' जाती है।[1] बतीसी को स्वीकार कर लेने पर बहिन के परिवार को भाई द्वारा विधिवत् वस्त्रादि देने पड़ते हैं और कभी-कभी 'मामा-भात' (एक भोज) भी देना पड़ता है। इस प्रसंग से सम्बन्धित अनेक गीत हाड़ोती लोक-जीवन में मिलते हैं। 'बीरा' अनेक प्रसंगों से युक्त है—बहिन का भाई को निमंत्रित करने जाना, विषम आर्थिक स्थिति के कारण भाई का निमंत्रण स्वीकार करने से बचने का प्रयास, बहिन के द्वारा भाई की प्रतीक्षा, बहिन का अपने घर में भाई का स्वागत व कभी-कभी रूठना, वस्त्र पहनाना आदि। इस अवसर का प्रत्येक गीत लोक साहित्य की अनुपम निधि है।

'बीरा' शब्द 'बीर' से बना है जो भाई के अर्थ में आता है।[2] हाड़ोती के बीरा में बहिन बड़े उल्लास से अपने भाई को 'बतीसी' देने के लिए जा रही है। उसके हृदय में उमंग है कि मेरा 'हाड़ोत्या' बीरा कब मिलेगा—

म्हारी डाल भरी गज नारेळां सूं।
तूं तो जी देबा म्हारा दादाजी के चालो,
दादाजी से मलतां म्हारो हियो ऊमगै
म्हारी मायड़ से मलतां, म्हारे नैण झड़ाझड़ लागै।
म्हारो सहियो हाड़ोत्यो बीरो सद री मलै।

और बीरा था विपन्न और दीन। अतः बहिन को देखते ही उसकी यह दशा होती है—

बीरो तो नूतण म्हूं चली जी राजा, ले लाडू की छाप
बैनड़ भाई काकड़, बीरो म्हारो दौड़्यो बागां जाय
बीरा भातीया।

१—'बतीसी' शब्द बताशे के परिवार का है। 'बतीसी' एक मिठाई है जो बताशे के समान होती है। उत्तर प्रदेश में यह 'फैनी बताशे' की अभिधा से युक्त है। यद्यपि आजकल बतीसी के स्थान पर सामान्य मिठाई ले जाई जाती है, तथापि 'बतीसी झनाना' पद रूढ़ होकर प्रयुक्त हो रहा है।

२—चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।
बिहारी रत्नाकर, दोहा ६७७

बणां भाई बाग में, दोड़्यो छोवट जाय ।
वैणां भाई छोवटां दोड़्यो पोळ्यां जाय ।
वेणां भाई पोळ्यां, भाई दोड़्यो म्हलां जाय ।
"बीरा जी थांका घर मांय भतीजो खेलै छै बारै"।
"तुरल्या तो घर की भावजी, बीरा जी लियो छै घुमाय"
रोती तो रोती बारै नीसरी, 'म्हारा बीरा जी तो लिया है घुमाय'

इसी बीच राजा उधर निकला। परिस्थिति देखकर राजा का जो कर्तव्य होता था उसका निर्वाह करते हुए उसने पूछा कि बहिन तुझे क्या-क्या चाहिये ?

"कतरा तो लावें थारे लूगड़ा, कतरा तो लावे सरोताव,
कतरा तो लावे थारे रोकड़ो, कतरा तो लावे थारे भेंट में"
"जतरा तो पीपळ का पान छै जी राजा उतरा लावे म्हारे लूगड़ा"

राजा जी ने सब कुछ प्रबंध कर दिया फिर भी बहिन के मन में कसक रह गई—

भामा की तस भामल्यां न मागे, म्हारा बीरा जी की होड़ न होय
बीरो होवे तो मलस्यूं, राजा जी सूं मल्यो न जाय, बीरा भातिया ।

एक अन्य गीत में बहिन की भाई से मिलनोत्कंठा की तीव्रता का कितना सुन्दर चित्र निम्न चार पंक्तियों में दिया गया है—

गाडी तो रणा की रेत में रे, बीरा उड़ रही गगनार ।
'चालो म्हारा धोळ्या उतावळा, मायणी जामण जाई जोवै बाट"

× × ×

धोळ्यां का चमक्या सीगड़ा रे, म्हारा बीरा जी की पचरंग पाग,
भावज को चमक्यो चूड़लो रे, म्हारा भतीजा का भुगल्या टोप ।

इस गीत की अंतिम दो पंक्तियों में कितना सूक्ष्म-निरीक्षण है। पहले धवल बैल के शृंग दिखाई दिये, फिर भाई की पंचरंगी पाग, तत्पश्चात् भावज का चूड़ा और अन्त में भतीजे का टोपा। सबसे ऊंची वस्तु सबसे पहले और फिर क्रमशः लघुतर वस्तु दिखाई देती है (पृथ्वी गोल है न) और सभी तो शीर्षस्थ वस्तुएं ही दिखाई दी हैं। एक के सींग, दूसरे की पगड़ी, तीसरे का टोपा, पर भावज का चुड़ला क्यों। हाथ ऊंचा कर रखा होगा ? नहीं। सम्बन्ध ऊंचाई-निचाई से गहरा है— भावना का है। चुड़ला ही तो भावज के जीवन का सर्वस्व है। यदि वह नहीं हो तो सब कुछ किस काम का भावज के अस्तित्व का क्या अभिप्राय।

यदि हम यहां नरसी मेहता के जीवन से सम्बन्धित मार्मिक भावों से भरे 'बीरा' पर विचार न करें तो यह प्रसंग अधूरा ही रह जायेगा। बहिन द्वारा प्रतीक्षा की जा रही है, पर बीरा आता नहीं। ऐसे अवसर पर परिवार के सदस्य कब चूकने वाले थे, व्यंग्य-बाण छोड़े गये। उस समय की मर्माहत बहिन के हृदय की कितनी विवश व्यंजना इन शब्दों में है—

जळ मरूं क डूब मरूं म्हारी माय,
नरसी मेहता की बायड़ी।
दोर जठाण्यां म्हाने बैणा मारै,
सासू ननद सतावै, हे माय।
पाड़ोसन म्हारी घणी छै दूतारी,
बळती में पूळो जोवै, हे माय।
सामूजी म्हारा एक न मानै,
पाछो ई बिलखत आवै हे माय।
म्हारो बाबो घणो नरधन छै
अब मुनैं पूंदड़ कुण उढ़ासी माय?

अंत में, वह निराश होकर जब जल भरने चली गई। तब 'गोपाल आण मिले' और तब 'लूगड़ा की कापड़ा की पार-पार न रही।'

तेलों के गीत

पाणिग्रहण से पांच या सात दिन पूर्व 'तेल चढाने' की क्रिया का आरंभ होता है। कितने दिन के तेल हैं, इसका निर्णय शास्त्रोक्त ढंग से किया जाता है। इस दिन से 'तेलणें (सौभाग्यवती स्त्रियां) वर या कन्या को कटार हाथ में लेकर क्रमशः शिर से पैर को छूती हैं और तत्पश्चात् दूल्हे को स्नान कराये जाते हैं। तब से वर को अकेले घूमने की आज्ञा नहीं होती और उसे सदैव कटार हाथ में रखनी पड़ती है। इस क्रिया के साथ-साथ अनेक प्रकार के औपचारिक गीत गाये जाते हैं, जो काव्य की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस समय के गीतों के नाम हैं—तेल, सोकलो, उबटण, पीठी, हळदी और न्हाण। सोकलो, उबटण और पीठी एक ही सामग्री के विभिन्न नाम हैं। 'तेल' के गीत का एक अंश देखिये—

तेलज बोलै छै तेली कै, हळदी बोलै छै बाण्यां कै।
कद चढ़सी म्हारी लाड लडी के अंग।

'न्हाण' में कल्पना की उड़ान ऊंची और भावमयी है—

न्हाय लै गोरी लाड लडी, न्हाय लै जी।

पांका पांवल्या हेटै गंगा बवै छै ।
भट म्हारी भाछो लाडी न्हावसी जी ।
भट चांद सूरज रायत-सांयत भावजी ।
× × ×
म्हारी लाडली ऊपर भ्रंद्र गाजै ।
म्हारी लाडली ऊपर चन्न छाजै ।

बनी स्नान कर रही है भौर उसके पांवों के निकट गंगा बह रही है । चंद्र सूर्य भी स्नान की प्रतीक्षा में है । राजा इन्द्र भी प्रसन्नता से गर्जन कर रहा है भौर लाडी के सिर पर छत्र शोभायमान है । बनी के स्नान में प्रकृति के व्यापार भी हाथ बंटा रहे हैं, सुख-सुविधा प्रदान कर रहे हैं । यहाँ पांव के साथ 'ल्या' प्रत्यय 'ड़ा' प्रत्यय का सहोदर है जिसमें बनी के पांवों की लघुता, सुन्दरता भौर उनके प्रति स्नेह की व्यंजना है ।

सांभी

यह गीत तेलो के दिन से भारंभ होता है भौर जितने दिन के तेल होते हैं उतने दिन ब्राह्म मुहूर्त में गाया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि सांभी शब्द सं॰ संध्या 7 संज्झा 7 सांझ 7 हा॰ सांझ + ई से बना है । यहां सध्या का तात्पर्य सायंकाल न होकर संधि-काल से है । ब्राह्म-मुहूर्त मे स्त्रियां विविध देवताभ्रों का भाह्वान करती है । प्रथम भाह्वान गणेश का होता है—

ये भल दूरां बो देसां सूं भावो जी बंदायक,
करो न मण-चौठी बरघड़ी ।

इसी प्रकार 'धाड़ी' को जाग्रत किया जाता है—

उठो नै धाड़ो माता होवो छै बियाव,
उठ कै माता दांतण लीज्यो ।

तथा उसका स्वागत-सत्कार किया जाता है ।

इन्हीं सांभियों में 'ज्वारा', 'भालर', 'नोतो' भौर 'बोरा' गीत गाये जाते हैं । इन सब गीतों में मूल रूप से एक ही प्रकार के भाव हैं—सभी उपकरणों को जाग्रत करना भौर उनका स्वागत-सत्कार करना । 'ज्वारा' में शकुन-रूप में बोये हुए जौ की हरीतिमा को भक्षुण्ण रखने का प्रातःकालीन स्मरण मिलता है—

म्हारा हरिया ज्वारा भो बाऊंगा स्यांगणा ।
सूरज नै बाया रूणादे जो नै सींच लिया ।

सांभी के गीत प्रातःकालीन गाई जाने वाली प्रभातियो के समकक्ष माने जा सकते हैं ।

बासण के गीत

मंडप से एक दिन पूर्व 'बासण' लाये जाते हैं। इस अवसर पर स्त्रियां गाती हुई कुम्हार के घर पहुँचती हैं। वहां पर पांच या इससे अधिक शुभ संख्या में स्त्रियां एक-एक घड़ा, एक-एक कलश तथा एक-एक बिजोरा (एक पात्र) अपने सिर पर रखकर लाती हैं और उन्हें उस स्थान पर रख दिया जाता है, जहां गणेश-स्थापन हुआ था। ये गीत अनेक प्रसंगों से संबंधित होते हैं। कोई गीत चाक (कुम्हार के चक्र) का पूजन करते समय गाया जाता है तो कोई कलश पूजते समय। किसी गीत का स्वर स्त्रियों को बासण लेने के लिए बुलाने के समय लहराता है, तो कोई गीत लौटते समय ढोल के तड़ाके के हार में मिल जाता है। बासण लेकर लौटते समय का एक गीत है—

हंसली भी, पुड़ला भी लाग्यो जी बना, दूर बणज्यारी को लाल बना।
करवा भी, बासण भी लाग्योजी बना, दूर बणज्यारी को लाल बना।
मेंदी भी, लच्छा भी लाग्यो जी बना, दूर बणज्यारी को लाल बना।
पहलो भी, गैणो भी लाग्यो जी बना, दूर बणज्यारी को लाल बना।

मेंढा या मंडप के गीत

'मेंढा' शब्द मंडप का विकृत रूप है। मंडप के दिन शास्त्रोक्त विधि से हवन होता है और परिवार तथा व्यवहार के व्यक्ति उनपर वालों को वस्त्र पहनाते हैं जो 'मंडळ' बैठते हैं। इस 'मंडळ बैठने' को विवाह में अत्यधिक महत्व प्राप्त है, क्योंकि हाड़ौती समाज में व्यावहारिकता निर्वाह करने का सुयोग इसी समय होता है। देवी-देवताओं से सम्बन्धित भजन-गीतों के अतिरिक्त मंडप की शोभा और मंडपस्थ व्यक्तियों से सम्बन्धित उल्लेख इसी समय के गीतों में मिलते हैं—

देवता ने यो बड़ रोपियो जी,
सीता देवी ने बांधी छै पाळ।
दूधां तो दहियां यो बड़ सींवियो,
गुड़-घी बांधी छै पाळ।

आगे इसकी उपमा इन्द्रासन से दी गई है—

राजा म्हानै फोमरिया ले चालो तो
मे मंदरासण देखस्यां।
फोमरिया को कांई राणी देखबो,
फोमरिया मैं रच्यो छै ब्याव जी।
लाडा लाडी परणसी।

ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त गीत उस समय की ओर संकेत करता है जब मंडप की मांगलिक क्रिया किसी वट-वृक्ष के नीचे सम्पन्न होती थी। उस समय इतने विशाल आयोजन के अवसर पर वटवृक्ष-तल से अधिक सुखद स्थल अन्य क्या हो सकता था।

घोड़ी

विवाह के कुछ दिन पूर्व से 'बंदोरी' निकालना प्रारंभ हो जाती है, जिसमें प्रायः रात्रि में वर या कन्या को गांव में चारों ओर बाजे बजाते हुए घुमाया जाता है और स्त्रियां उसके पीछे गाती हुई चलती हैं। वर को घोड़ी पर बैठाया जाता है और कन्या को घोड़े पर। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'घोड़ी' कहते हैं। ऐसे गीतों का प्राचुर्य 'निकासी' के समय दिखाई देता है। 'निकासी' बरात के प्रस्थान से पूर्व होती है।

'घोड़ी' गीतों का एक ही विषय होता—घोड़ी व वर के सौंदर्य का वर्णन। 'घोड़ी' गीत दो प्रकार के होते हैं—बड़ी घोड़ी और छोटी घोड़ी। 'घोड़ी' गीत अधिकांश में लम्बे हैं। एक गीत में घोड़ी के सौंदर्य, शृंगार और साज-समाज का वर्णन है इस प्रकार मिलता है—

लीली तो लील बछेरड़ी, कोई बांधी चंदण के रूंख,
नवल बनी जी की घोड़ी जो चरै।
खूंटै तो बांधी जो चरै जी,
पीवै छै कचोळा दूध
नवल बना जी की घोड़ी जो चरै जी।
फूटै पलाण हीरा जड़ी जी,
कोई मोत्यां सूं जड़ी छै लगाम।

इसी घोड़ी पर चढ़ कर वर ससुराल पहुंचता है, वहां उसे दिखाई देता है—

मामा सामां ओवरा, सूरज सामी पोळ,
हंस उडे ऊ मांडवै, पाणी भरै संसार,
नाई लीपै लीपणा सासू नै पूरयो चोक।

इस घोड़ी का रंग 'लीला' है [1] और मुलतान से आई है।[2] अभी वह चंचल बछेरी है।[3] वह रंगीली भी है [4] और उसका अपूर्व सुंदर शृंगार है।[5]

१—लीली तो लील बछेरड़ी, हाजी कोई बांधी चंदण के रूंख।
२—घोड़ी मुलतान सूं घोड़ी आई जी बना।
३—लीलड़ी म्हारी अचळ बछेरड़ी।
४—घोड़ी आई दुवारै रंगीली खड़ी।
५—घोड़ी तो भल सणगारिया।

'घोड़ी' के नाम से नृत्य-गीत भी मिलते हैं। कभी-कभी समूह की कुछ स्त्रियां तो नगाड़े की चोट पर या ढोल के तड़ाके पर द्रुत गति के साथ नृत्य करती हैं और गीत गाती है। कुछ अवसरों पर नाचती हुई स्त्रियां इतनी शक्ति का परिचय देती है कि ढोली या नगाड़ेवाला भले ही थक जावें, पर उनका नृत्य बंद नही होता। घर्सों नाचती हुई निम्न-वर्ग की स्त्रियों का यह रूप देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। उनके गीतों में भाव-प्रदर्शन के स्थान पर बल-प्रदर्शन का अधिक महत्व है, जो प्रतिस्पर्धा की भावना से किया जाता है। ऐसे समय का एक गीत देखिये—

ढोला ढोल मंजीरा बाजे रे।
काळी छींट को घाघरो नजारा मारे रे॥

यह इस गीत की टेक होती है जिसके पश्चात् मन चाहे 'डोहे' या दोहे जोड़कर इसका मनमाना विस्तार किया जाता है। दस-बीस डोहे, जो स्त्रियों को याद हों, वे गाती चलती हैं तथा गीत और नृत्य बढ़ने चलते हैं। ये दोहे मूलभाव से तादात्म्य रखें है यह आवश्यक नही है। इनमें से कुछ हो 'डोहे' ऐसे होते हैं, जो मूल भाव से सम्बन्ध रखने हैं। उनमे से कुछ 'दोहे' यहां दिये जाते हैं—

फूल गुलाबी लूगड़ो जी, पल्ला बूंटीदार।
ओढूं तो लाज्यां मरूं जी, छोटा सा भरतार॥
एडी राखूं ऊजळी जी, पींडी साटमसोट।
असो चालूं घूमती जी, रंडवा कूटै पेट॥
बागां जाज्यो सायबाजी, लीबू लाज्यो च्यार।
नारगी मत लावज्यो जी, सोकड़ियां को सार॥
म्हारै पीयर को पालज्यो जी, बाकी-चूंकी ईस।
सूदा सोज्यो सायबा जी, बापं आवै रीस॥
दुकड़यो भरयो चूरमो जी, जीमें रख्या बदाम।
सासू जी को डावड़ो, दमड़ी दे न छदाम॥

सेवरो

यह बरात का गीत है जो रात्रि के समय 'घोड़ी' के साथ ही गाया जाता है। 'सेवरो' हिन्दी का सेहरा है, जिसकी व्युत्पत्ति सं० शेखर>प्रा० सेहरो>हा० सेवरो है। सेवरा मालिन से खरीदा जाता है—

बाबा जी की बाड़्यां-झाड़्यां में काई फैरे छो मालण जी।
थांकी मालू पूछे छै मालण, 'काई काई सोदा लाया जी।
'म्हूं फलां मोगरा की लाया सेवरिया गुथ लाया जी।
भो तो सेवरियो म्हारा रायबर के सोवै जी।

एक अन्य गीत में 'सेवरो' को सुन्दर बनाने की कामना है—

माली की री भो खियो हमारो मानो,
सेवरो मोत्यां-मोत्यां जड़ लड्यो री ।
सेवरियो राई-राई बर के सोवै री ।
सेवरियो सुन्दर सुन्दर बर के सोवै री ।

और अन्य गीत में 'मालण को नै रायबर मोया' की शिकायत मिलती है ।

अगवाणी के गीत

'अगवाणी' से तात्पर्य स्वागत से है । बरात के कन्यापक्ष के यहां पहुंच आने के पश्चात् जब बराती विश्राम कर चुके होते हैं तब संध्या के समय प्रथानुसार उनकी अगवानी (स्वागत) होती है । वस्तुतः यह अगवानी उनकी है जो अब तक अपरिचित थे और कल वे घनिष्ठतम व्यक्ति बनने वाले हैं । एक अद्भुत स्थिति है । कल के बाद मुंह बन्द है । स्त्रियों को जो कुछ प्रेम-सिक्त अटपटी वाणी में कहना है वह आज तक कह लें, कल तो नया चित्र बन जावेगा । अतः इस अवसर पर तो वह दुल्हे पर भी व्यंग करने से नहीं चूकती, पर उनका मुख्य आलम्बन तो वर की माता बनती है—

क्यूं रे लाडा एकलोई आयो
थारी भावू नैं क्यूं न लायो ?
थारी मायड़ नै क्यूं न लायो ?
वा देखो, वा देखो, वा चली आवै,
राम भजन करती वा चली आवै ।

इस आनंदमय वातावरण से सम्बन्धित सभी गीत उपर्युक्त भाव से अनुप्राणित हैं । स्नेह-सिक्त व्यंग व चुटकी लेने का भाव, जिनमे सभी परिवार वालों की लपेट होती है, समस्त ऐसे गीतो के मूल मे है ।

टोडरमल

'टोडरमल' हाड़ौती का प्रसिद्ध गीत है जिसे वर-पक्ष की स्त्रियां गाती है । यह गीत पाणिग्रहण के उपरांत गाया जाता है । यह कहना कठिन है कि यह टोडरमल अकबर का मंत्री था या अन्य कोई व्यक्ति । गीत में 'जीत्यो छै रप्या के पाण टोडरमल जीत्यो छै' से पैसे के बल पर जीतने वाले टोडरमल का संकेत मिलता है, पर यह संकेत किसी व्यक्ति-विशेष तक पहुँचने के लिये पर्याप्त नहीं प्रतीत होता है ।

'टोडरमल' गीत में प्रश्नोत्तर-शैली में विवाह के संपादन-संकेत मिलते हैं—

कुणी नै गरड़ो घोपियो, कुणी न बाई छै साळ ।
टोडरमल जीत्यो छै ।

हाड़ा राव जी गरड़ो बोरियो नैनानागजी ने बाई रूं भाड़ ।
जीरयो रे रूपा के पारा, टोडरमल जीरयो रे ।
मायो गुणी को डूंगर सग चढ़्यो, गुणी की दमी रे कराड़,
मायो गुणी को मखरक दीवलो, नैनागामजी की कर्ता कळी नार ।
मायो जीरयो जीरयो ढोल घुड़ाय । टोडरमल......

इसी प्रकार गीत आगे बढ़ता है । गीत में 'गरड़ो बोरना' और 'ताळ बोना' क्रमशः पुत्र और पुत्री के जन्म की ओर संकेत करते हैं, 'डूंगर सग चढ़ना' में बरात बनाकर विवाह के लिए जाना और 'कराड़ दगना' में कन्या के पराई हो जाने के संकेत भी ग्रहण किये जा सकते हैं ।

कामण

'कामण' शब्द संस्कृत 'कार्मण' से बना है, जिसका अर्थ जादू टोना होता है । कामण के गीत वर को कन्या के वश में करने की भावना से गाये जाते हैं । सुना है कि इन गीतों के गाने के पूर्व कोई एक विधि सम्पन्न की जाती है यद्यपि अब देखने में नहीं आती ।[1] 'कामण' के गीत रात्रि में गाये जाते हैं और विनायक (बन्दाक) के पश्चात् से आरंभ हो जाते हैं, किन्तु ऐसे गीतों का प्राचुर्य उस समय मिलता है जब वर तोरण पर आता है । तब एक ही ध्वनि अनेक कंठों से, जो प्रायः समवेत नहीं होते, सुनी जाती है—कामण कौ ने कर्‌यो । इस 'कामण' में वर के सौंदर्य का वर्णन मिलता है—

रगसै तळाई की गार ।
रगस्या कामणीयां ।
मोचड़िया मैं रमग्या कामणीयां ।
जामा पै रमग्या कामणीयां ।
चीरां पै रमग्या कामणीयां ।
मोत्यां पै रमग्या कामणीयां ।

इस 'कामण' का प्रभाव भी एक अन्य गीत मे इस प्रकार दिखाया गया है—

जब रावजादो बनो कांकड़ आयो,
कांकड़ री कांकड़, कामण कूने करयो ?
ऊं सोकड़ का छोरा पै कामण कीने करया ?
ऊ लग लग री घूजे छै, कामण कौनें करया ?

एक अन्य 'कामण' गीत में प्रश्नोत्तर क्रम इस प्रकार मिलता है—

[1]—श्याम परमार, मालवी लोक गीत, पृष्ठ ८० ।

लीलो दगळो, नीलो सूत, बांध्यो रै सासू को पूत ।
बाध-बूंध वानैं करी सलाम ।
एक सलाम माई दूसरो सलाम ।
तीसरी सलाम थारा बाप को गुलाम ।
थारा दादा को गुलाम ।
"छोड़ो छोड़ो जी बाबाजी की प्यारी, थांका हुकमी चाकर राज"
"चाकर छां तो फैली छां, पण अब तो कामण करस्यां राज"

जादू-टोना सम्बन्धी अवशिष्ट लोकगीत उन अंधविश्वासों के प्रतीक हैं जो भारतीय जन-जीवन में आज भी कुछ अशों में विद्यमान हैं और जिनके अवशेष वर्तमान शिक्षित जगत में आज भी कुछ अंशों में विद्यमान हैं। इनका उन्मूलन वर्तमान शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ होता जा रहा है ।

फेरा के गीत

पाणिग्रहण को हाड़ौती में 'फेरा' कहा जाता है । यह शब्द इसलिये प्रचलित हुआ कि वर-वधू को इस समय अग्नि-वेदी के आस-पास फिरना पड़ता है। फिरना ही फेरा है । यद्यपि यह सबसे प्रमुख कार्य है, परन्तु इसका सारा दायित्व शास्त्रों ने अपने हाथों में लेकर स्त्रियों को दर्शक बना दिया है । वे शास्त्रों के मंत्रों का उच्चारण सुनती रहती हैं और जब शास्त्रों का मुख बंद हो जाता है तब वे गाने लगती हैं। वह समय है, जब वर-वधू मंडप के चक्कर लगाते हैं—

अगलो फेरो जी हर फर्‌या, बेसक दीनो हर के हाथ ।
मंडळ मांड्यो जी सोवता, बेवा की आर न पार ।
दूजो फेरो जी हर फर्‌या, बेसक दीनो हर के हाथ ।
सूनो दीनो जी सोवतो, चांदी की आर न पार ।
× × ×
सातवूं फेरो जी हर फर्‌या, बेसक दीनो हर के हाथ ।
लडवण दीनी जी रूप की, कपड़ा की, डाईजा की आर न पार ।
परण लडवण चाली जी सासरे, लार लाग्या जी मायर बाप ।
ये घर जावो जी म्हारी मायड़ी, थांय तो करैगो आर ।
यें घर जाओ जी तुलसी को बड़लो यें बना सींचेगो कुण ।

एक अन्य गीत में कृष्ण को भीसम के द्वारा कन्या का दान दिया जा रहा है—

हंसराय चड़ता यें आवो जी वासदेवजी का जाया, तो नै कन्या को दानजी ।
गऊ को दान, तुलसी को दान, कन्या को दान दोई कीज्यो ।
सोनो भी तो दाऊजी, रूपो भी दोनो, तोई नै हरस्यो गंवार जी ।

एक अन्य गीत गूजर मीना जातियों में भी इसी अवसर पर गाया है—

गरण गरण गरणायूं फरै जी, चड़स कुवां में जाय।
परणूं तो पातळिया परणूं, राल्यूं फेरै हाथ।

पाणिग्रहण के अवसर पर ही 'रुकमणी को ब्यावलो' भी गाया जाता है, जिस पर लोक गाथा के अध्याय में विचार हुआ है।

वदा (विदा) का गीत

विदा विवाह के मांगलिक कार्य का अत्यन्त मर्मस्पर्शी प्रसंग होता है। एक युग से अधिक समय तक जो बालिका माता-पिता के हाथों में खेली, पली तथा बड़ी हुई वही जब पराई होने जा रही हो तब कौनसा पत्थर–हृदय पिघल न जावेगा। इस करुण प्रसंग के अनेक गीत लोक-साहित्य में भरे पड़े हैं। जिस वातावरण में कन्या बड़ी, उसे छोड़ते हुए वह रुक्मिणी के रूप में कह उठती है—

माजी म्हानै वेगा सा लीज्यो बलाय,
अंबा म्हारी दूरी दीनी हे।
आथा डूंगर बन घणां, पंछी उड़्यो न जाय,
कुनणपर की बाटड़ल्यां, म्हासूं कुण तो सवैगो आय।
अंबा म्हारी दूरी दीनी हे।
सासू नणदल दोर जठाणयां, बांसूं मलैगा जाय,
छोटा भैया को मन में आवे, छोटा देवर न रासैगा पास।
अंबा म्हारी दूरी दीनी है।
माभो री सहेल्यां आभो, आपां मलतां बांय पसार,
पोळी में रा पूतल्या माजी, दीज्यो सहेल्यां नै बांट।
सूरज स्वामी अंतरजामी, रथ जोवो जी रघुनाथ।
अंबा म्हारी दूरी दीनी हे।

'पोली में रा पूतल्या माजी दीज्यो सहेल्या ने बांट' में सूरदास के कृष्ण की भावना के प्रतिकूल अभिव्यक्ति है। कंस के द्वारा भेजे गये अक्रूर के साथ कृष्ण चले गये, पर अपनी मुरली 'राधा जनि लेय चुराय' की आशंका बनी रही। यहां वधू समझ गई कि यदि अब लौट कर मायके आई भी तो 'पूतलों' से (छोटे छोटे बरतन), जिनसे बालिकाएं टूटे फूटों का खेल खेला करती है, खेलने वाली नहीं रह जाऊंगी। अतः उनका उपयोग क्या होगा। अच्छा तो यह हो कि उन्हें सहेलियों को बांट दिया जावे। कंस को मारने जाने वाले कृष्ण कदाचित् रुक्मिणी से अधिक अबोध और बालक हैं। इसलिए उनका उपर्युक्त आग्रह है, पर रुक्मिणी भी तो अभी कल तक उन 'पूतलों' से खेल रही थी।

एक अन्य विदा गीत में मातृ-हृदय की विवेक-नियंत्रित अभिव्यक्ति है। माता पुत्री से कहती है कि उसे ससुराल में पहुँच कर किस प्रकार का आचरण करना है—

रूक्मणा बाई तो मजा में रीज्यो।

सोच फकर मत करज्यो, रूक्मणा बाई तो मजा में रीज्यो।
न्हाज्यो, धोज्यो, जळ भर लाज्यो, फेर रसोयां में जाज्यो।
जद रूक्मण थानें भूख लगै, सासू से मागर खाज्यो।
जद थाका सासू ससरा लड़ै तो, बारैं जा मत सीज्यो।
सासू नणदां ढोर जळ्याण्यां, बाबू हलमल रीज्यो।

रातीजगा के गीत

'रातीजगा' एक ऐसी प्रथा है जिसमें वर-वधू के प्रथम मिलन की रात्रि में स्त्रियां रात्रि-भर बैठकर विविध देवी-देवताओं के गीत गाया करती हैं। इन गीतों में सती और चाड़ी को सबसे अधिक गाया जाता है। पर इस अवसर पर जो 'सती' गाई जाती है वह अन्य अवसर पर गाये जाने वाले 'सती' गीत से भिन्न है—

खां थानें रोळ्यो, देवी रोळ्यो,
खां थानें करयो सणगार ?
सत-जुग में करयो सणगार,
म्हारै गाव के गोवरै माई छै सती।

× × ×

दूध खड़ायां देवी आवटै,
ज्यूं ई थानें करयो अगन प्रसनान।
पून पराया कारणे—
दूध खड़ायां आवटै—
ज्यूं ई थानें होम्यो मास।
यो मंड राख्यो देवी आरको जी,
ज्यूं ई थाका सेवग नै राख,
थांरा जाजोड़ा नै राख।

गाळ

गुणा या गौना विवाह-सम्बन्धी अंतिम क्रिया है, जो यद्यपि प्रत्यक्ष में विवाह से सम्बन्ध नहीं रखती, पर है विवाह का ही एक अंग। विवाह के एक वर्ष या इससे अधिक बाद विवाह-तिथि पर गौना देने की प्रथा हाड़ोती में प्रचलित है। गौना के अवसर पर वर वधू को लेने के लिए अपने मित्रवर्ग के साथ आता है। इस समय भी

दहेज के समान ही कन्या-पक्ष यथानुरूप सत्कार भी देता है। इस समय कुछ अन्य गीतों के साथ 'गाळ' गाई जाती है। 'गाळ' के अतिरिक्त 'परजूणी' पुकार भी स्त्रियां रात्रि के समय जंवाई की बुद्धि-परीक्षा किया करती हैं। पहेलियों पर तो आगे विचार होगा, यहां 'जंवाई की गाळ' पर विचार करना है।

'गाळ' हिन्दी की 'गाली' है। स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली 'गाळ' की कटुता काफी कम हो गई है और उसमें इतना माधुर्य आ गया है कि जंवाई जैसा सहृदय प्राणी भी बिना प्रतिक्रिया को ओढ़े उन्हें सुन सकता है। हाड़ौती की इस गाळ में कितनी मिश्री घुली हुई है, स्वागत-सत्कार कितना मधुर है—

थारजी खातर बाग लगाऊं जंवाई सा,
घूमण कै मन आवो सा जंवाई प्यारा लागो सा
थो जी म्हारी राज कंवर का कंथ, जंवाई म्हानै प्यारा लागोस',
म्हानै मीठा लागो सा।
थारजी खातर रसोई बनाऊं, सा जंवाई सा,
म्हारे जीमण कै मन भावो सा, जंवाई म्हानै प्यारा लागो सा।
थारजी खातर सेज बछाऊं सा, जंवाई सा,
पोढण के मन भावो सा, जंवाई म्हानै प्यारा लागो सा।

'जंवाई की गाळ' अनेक हैं किसी में जंवाई के स्वागत की तैयारी है, किसी में उसका स्वागत किया जा रहा है और किसी में वधू को उसके पास भेजा जा रहा है, पर पारिवारिक लज्जा उसे जाने नहीं दे रही। एक गाळ में पति-पत्नी के कलह का भी वर्णन है—

जो बाला सरवरिया की ऊंची नीची पाळ, जंवाई धोवै धोवती जो म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका ससरा जी सूं जार, सामै तो सांड्यां भेज ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका सासू जी सूं जार, ताता भात 'याव ज्यो जी म्हांका राज।
जो बाला खोज्यो म्हांका साळाजी सूं जार, सामल म्हाकै जीम ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो साळाहेलीजी सूं जार, गाळ्यां तो बोत पवाव ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो बांकी सहेल्या सूं जार, मरवण नै म्हलां भेज ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो छोरी दासी सूं जार, म्हलां में सोवड़ मांड ज्योजी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो बाई जी को डांव, ढेडां का जंवाईजी हारग्या जी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो जंवाई जी नै रोस मुखड़ा पै दीनी थापकी, मोरां पै दीनी लात की, जी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो बाईजी के रोस, म्हलां सूं नीचे उतर ग्या जो म्हांका राज।
ए गोरी अब के पाछी बावड़ आव, चाकर थांका बाप का, चाकर थांका बीर का, थानै सात सलाम, म्हांकाराज।

ओ बाला चाकर रह्यो ही न जाय, चाकर बाला जीव का ओ म्हांका राज।

यहां पर उन अन्य गालियों पर भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा जो समय समय पर विवाह में गायी जाती हैं। ब्याई, ब्याण, नणदोई या अन्य किसी सम्बन्धी को लक्ष्य करके ये गाई जाती हैं। अतः इनमे वह माधुर्य नही मिलता, जो जंवाई की गाळ मे मिलता है। कहीं-कहीं ये गाळ अशिष्ट, अश्लील और भद्दी हो जाती हैं जिनमें गुह्यांगो की चर्चा रहती है।

एक गाळ मे कुछ अशिष्ट शब्दो का प्रयोग मिलता है—

ब्याई जी बाळी असी मालजादी।
पल्ला मे लालां हाथ मे फूल।
लूगड़ा कै हीरा मोती कसीदा का फूल।

एक अन्य गाळ मे ब्याण पर चोरी करने का आरोप है।

(व्यक्ति का नाम) वाली असी माल जादी टारी, लूगड़ा के पल्लै लाडू बाधलाई।

दूसरी 'गाळ' में साळाहेली (साले की पत्नी) अपने नणदोई (ननद के पति) की कामना करती है—

नणदोई सा म्हानै भंवर घड़ा दो जी,
नणदोई सा म्हानै एरण मंगा दो जी।
रखड़ी मे कृष्ण मुरारी।
नणदोईसा म्हानै राम मला दो जी।
साळा तो हेल्या पतव्रता नारी जी।
अपना साळाजी का पांव दाबता मल जावे गरधारी।

ऊपर जिन विवाह गीतो पर विचार हुआ है उनके अतिरिक्त भी गीत विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं, ये गीत अनेक प्रसंगो के मिलते हैं। स्त्रिया खानागार (खदान से मिट्टी) लेने जा रही हैं और गीत गाती जा रही हैं। दूल्हा पाणिग्रहण के लिए 'मायां' में जा रहा है और स्त्रियां गीतों का रस बरसा रही हैं। 'पालक्याचार' (पलंग पर बैठकर विविध लोकाचारो को कराना) हो रहा है और आसपास बैठी सखी सहेलियां मुस्कराती गाती जा रही हैं। पालक्याचार का एक अंग जुआ खिलाना भी है। जुआ खेलते समय यदि वधू जीत जाती है तो उसके पक्ष की स्त्रियां जो कुछ गाती है उसकी टेक यह होती है—

म्हाकी लाडी जीती ढेडां को खेल न जाणै

यह कहना कठिन है कि विवाह की कौनसी ऐसी क्रिया है जो बिना गीत के सम्पन्न हो जाती है। आरम्भ से अंत तक विवाह का प्रत्येक कार्य ढोल और स्त्री के कंठ के स्वरों मे डूबकर संपन्न होता है।

दहेज के मसले ही बच्चों पर अत्याचार करता को देता है। इस समय कुछ अंश धीरों के साथ 'गाळ' गाई जाती है। 'गाळ' के अतिरिक्त 'बनड़ा' गुजरात भी किसी रात्रि के समय जंवाई की बुद्धि-परीक्षा किया करती है। पहेलियों पर तो आगे विचार होगा, यहाँ 'जंवाई की गाळ' पर विचार करना है।

'गाळ' हिन्दी की 'गाली' है। स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली 'गाळ' की कटुता काफी कम गई है और उनमें इतना माधुर्य आ गया है कि जंवाई जैसा अहंमन्य प्राणी भी बिना प्रतिवाद को छोड़े उन्हें सुन सकता है। हाड़ोती की इस गाळ में कितनी मिश्री घुली हुई है, स्वागत-सत्कार कितना मधुर है—

थारकी खातर बाग लगाऊं जंवाई सा,
सुगनां के मन भायो सा जंवाई प्यारा लागो सा
यो जी म्हारी राज कंवर का कंथ, जंवाई म्हानै प्यारा लागोस',
म्हानै मीठा लागो सा।

थारकी खातर रसोई बनाऊं, सा जंवाई सा,
म्हारे जीमणा के मन भायो सा, जंवाई म्हानै प्यारा लागो सा।
थारकी खातर सेज बछाऊं सा, जंवाई सा,
पोढणा के मन भायो सा, जंवाई म्हानै प्यारा लागो सा।

'जंवाई की गाळ' अनेक हैं किसी में जंवाई के स्वागत की तैयारी है, किसी में उसका स्वागत किया जा रहा है और किसी में वधू को उसके पास भेजा जा रहा है, पर पारिवारिक सभ्यता उसे जाने नहीं दे रही। एक गाळ में पति-पत्नी के कलह का भी वर्णन है—

जी बाला सरवरिया की ऊंची नीची पाळ, जंवाई धोवै धोवती जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका ससरा जी सूं जार, सामै तो सांड्यां भेज ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका सासू जी सूं जार, ताता भात घाव ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका साळाजी सूं जार, सामल म्हांकै जीम ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो साळाहेलीजी सूं जार, गाळ्यां तो बोत गवाव ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो वांकी सहेल्या सूं जार, मरवण नै म्हलां भेज ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो छोरी दासी सूं जार, म्हलां में चोपड़ मांड ज्योजी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो बाई जी को डांव, डेडां का जंवाईजी हारग्या जी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो जंवाई जी नै रोस मुखड़ा पै दीनी थापकी, मोरां पै दीनी
लात की, जी म्हांका राज।

जी बाला आयो आयो बाईजी के रोस, म्हलां सूं नीचै उतर ग्या जी म्हांका राज।
ए गोरी अब कै पाछी बावड़ आव, थाकर थाका बाप का, थाकर थांका वीर का,
थानै सात सलाम, म्हांकाराज।

जो बाला चाकर रह्यो ही न जाय, चाकर बाला जीव का जी म्हाका राज।

यहा पर उन अन्य गालियो पर भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा जो समय समय पर विवाह में गायी जाती है। ब्याई, ब्याण, नणदोई या अन्य किसी सम्बन्धी को लक्ष्य करके ये गाई जाती हैं। अतः इनमें वह माधुर्य नही मिलता, जो जंवाई की गाळ मे मिलता है। कहीं-कहीं ये गाळ अशिष्ट, अश्लील और भद्दी हो जाती है जिनमे गुह्यांगों की चर्चा रहती है।

एक गाळ मे कुछ अशिष्ट शब्दों का प्रयोग मिलता है—

ब्याई जी थाळी असी मालजादी।
पल्ला मे लाला हाथ मे फूल।
लूगड़ा कै हीरा मोती कसीदा का फूल।

एक अन्य गाळ में ब्याण पर चोरी करने का आरोप है।

(व्यक्ति का नाम) थाली असी माल जादी दारी, लूगड़ा के पल्लै लाडू बांधलाई।

दूसरी 'गाळ' मे साळाहेली (साले की पत्नी) अपने नणदोई (ननद के पति) की कामना करती है—

नणदोई सा म्हानै भदर घड़ा दो जी,
नणदोई सा म्हानै एरण मंगा दो जी।
रखड़ी मे कृष्ण मुरारी।
नणदोईसा म्हानै राम मला दो जी।
साळा तो हेल्यां पतव्रता नारी जी।
अपना साळाजी का पांव दाबता मल जावे गरधारी।

ऊपर जिन विवाह गीतों पर विचार हुआ है उनके अतिरिक्त भी गीत विवाह के अवसर पर गाये जाते हैं, ये गीत अनेक प्रसगो के मिलते हैं। स्त्रियां खानागार (खदान से मिट्टी) लेने जा रही है और गीत गाती जा रही हैं। दूल्हा पाणिग्रहण के लिए 'मायां' मे जा रहा है और स्त्रियां गीतों का रस बरसा रही हैं। 'पालरयाचार' (पलंग पर बैठकर विविध लोकाचारों को कराना) हो रहा है और आसपास बैठी सब सहेलियां मुस्कराती गाती जा रही हैं। पालरयाचार का एक अंग जुआ खिलाना भी है। जुआ खेलते समय यदि बहू जीत जाती है तो उसके पक्ष की स्त्रियां जो कुछ गाती है उसकी टेक यह होती है—

म्हांकी लाडो जीती देवां को खेल न जाणे

यह कहना कठिन है कि विवाह की कौनसी ऐसी क्रिया है जो बिना गीतों के सम्पन्न हो जाती है। प्रारंभ से अन्त तक विवाह का प्रत्येक कार्य ढोल और स्त्री के गीतों के स्वरों में डूबकर संपन्न होता है।

दहेज के समान ही कन्या-पक्ष वस्त्राभूषण वरपक्ष को देता है। इस समय कुछ प्रसि
गीतों के साथ 'गाळ' गाई जाती है। 'गाळ' के अतिरिक्त 'पयाळ्यां' पूछकर भी स्त्रि
रात्रि के समय जंवाई की बुद्धि-परीक्षा लिया करती हैं। पहेलियों पर तो आगे विच
होगा, यहाँ 'जंवाई की गाळ' पर विचार करना है।

'गाळ' हिन्दी की 'गाली' है। स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली 'गाळ' की कटुत
काफी छन गई है और उसमें इतना माधुर्य आ गया है कि जंवाई जैसा अहंमन्य प्राणी
भी बिना प्रतिष्ठा को खोये उन्हें सुन सकता है। हाड़ौती की इस गाळ में कितनी
मिश्री घुली हुई है, स्वागत-सत्कार कितना मधुर है—

आपकी खातर बाग लगाऊं जवाई सा,
घूमण के मस जावो सा जवाई प्यारा लागो सा
ओ जी म्हारी राज कंवर का कंत, जवाई म्हानै प्यारा लागोसा,
म्हानै मीठा लागो सा।
आपकी खातर रसोई बनाऊं, सा जंवाई सा,
म्हारै जीमण कै मस आवो सा, जवाई म्हानै प्यारा लागो सा।
आपकी खातर सेज बछाऊं सा, जवाई सा,
पोढण के मस आवो सा, जंवाई म्हानै प्यारा लागो सा।

'जंवाई की गाळ' अनेक हैं किसी में जंवाई के स्वागत की तैयारी है, किसी
में उसका स्वागत किया जा रहा है और किसी में वधू को उसके पास भेजा जा रहा है,
पर पारिवारिक लज्जा उसे जाने नहीं दे रही। एक गाळ में पति-पत्नी के कलह का
भी वर्णन है—

जो बाला सरवरिया की ऊंची नीची पाळ, जंवाई धोवै धोवती जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका ससरा जी सूं जार, सामै तो सांड्यो भेज ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो म्हांका सासू जी सूं जार, ताता भात 'धाव ज्यो जी म्हांका राज।
जो बाला खोज्यो म्हांका साळाजी सूं जार, सामल म्हांकै जीम ज्यो जी म्हांका राज।
जो बाला खोज्यो साळाहेलीजी सूं जार, गाळ्यां तो बोत गवाव ज्यो जी म्हांका राज।
जी बाला खोज्यो बांकी सहेल्या सूं जार, परवण नै म्हुलां भेज ज्यो जी म्हांका राज।
जो बाला खोज्यो छोरी दासी सूं जार, म्हुलां मैं बोरड़ मांड ज्योजी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो बाई जी को दांव, ढैरा का जंवाईजी हारग्या जी म्हांका राज।
जी बाला आयो आयो जंवाई जी नै रीस मुक्का वै दीनी पावजी, मोरा पै दीनी
लात की राज।

जी बाला आयो आयो बाईजी कै रीस, म्हुलां सूं नीचे -
ए छोरी दब कै पाड़ी बारह मास, बाहर भाग।

ओ बाला चाकर रह्यो ही न जाय, चाकर बाला जीव का जी म्हांका राज

यहां पर उन अन्य गालियों पर भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा जो समय समय पर विवाह में गायी जाती है। ब्याई, ब्याण, नणदोई या अन्य किसी सम्बन्धी को लक्ष्य करके ये गाई जाती हैं। अतः इनमें वह माधुर्य नहीं मिलता, जो जंवाई की गाळ में मिलता है। कहीं-कहीं ये गाळ अशिष्ट, अश्लील और भद्दी हो जाती हैं जिनमें गुह्यांगों की चर्चा रहती है।

एक गाळ में कुछ अशिष्ट शब्दों का प्रयोग मिलता है—

ब्याई जी बाळी असी मालजादी।

पल्ला में लाला हाथ में फूल।

लूगड़ा कै हीरा मोती कसीदा का फूल।

एक अन्य गाळ में ब्याण पर चोरी करने का आरोप है।

(व्यक्ति का नाम) बाली असी माल जादी दारी, लूगड़ा के पल्लै लाडू बांधलाई

दूसरी 'गाळ' में साळाहेली (साले की पत्नी) अपने नणदोई (ननद के पति) की कामना करती है—

नणदोई सा म्हानै भंवर घड़ा दो जी,

नणदोई सा म्हानै एरण मंगा दो जी।

रखड़ी में कृष्ण मुरारी।

नणदोईसा म्हानै राम मला दो जी।

साळा तो हेल्या पतरना नारी जी।

अपना साळाजी का पांव दाबता मल जावे गरधारी।

ऊपर जिन विवाह गीतों पर विचार हुआ है उनके अतिरिक्त भी गीत विवाह अवसर पर गाये जाते हैं, ये गीत अनेक प्रसंगों के मिलते हैं। स्त्रियां खानागार (खद से मिट्टी) लेने जा रही हैं और गीत गाती जा रही हैं। दूल्हा पाणिग्रहण के लि 'मायां' में जा रहा है और स्त्रियां गीतों का रस बरसा रही हैं। 'पालथ्याचार' (पल पर बैठकर विविध लोकाचारों को कराना) हो रहा है और आसपास बैठी स सहेलियां मुस्कराती गाती जा रही हैं। पालथ्याचार का एक अंग जुआ खिलाना है। जुआ खेलते समय यदि बहू जीत जाती है तो उसके पक्ष की स्त्रियां जो कुछ गा है उसकी टेक यह होती है—

म्हांकी लाडी जीती देशां को खेल न जाणै

यह कहना कठिन है कि विवाह की कौनसी ऐसी क्रिया है जो बिना गीत जाती है। आरम्भ से अंत तक विवाह का प्रत्येक कार्य ढोल और गीतों के संपन्न होता है।

पुत्र जन्म के गीत

'हाड़ौती में पुत्र-जन्म से सम्बन्धित अनेक गीत हैं। इन गीतों का प्रारंभ पुत्र जन्म के दो मास पूर्व से ही हो जाता है और पुत्र-जन्म के एक मास बाद तक चलता है। प्रारम्भ का गीत 'साध' कहलाता है और अंतिम गीत 'जळवा'। 'साध' और 'जळवा' के बीच 'चूड़ो, 'टोपी', 'सांठो', 'कठलो', 'बधावो', 'पोमचो', 'मैंदी', 'टीको' 'जावो', 'पालणू' आदि गीत गाये जाते हैं। इनमें से अधिकांश गीत पुत्र-जन्म के उपरान्त गाये जाते हैं। इसके सब गीतों के प्रारंभ में देवी-देवताओं के गीत गाये जाते हैं, जिनमें 'सती-दादी' गीत प्रमुख होते हैं।

साधां

'साधां' पुत्र-जन्म के पूर्व गाई जाती है। आठवां मास प्रारंभ होने पर गर्भवती स्त्री की ओर से नाई उसके मायके में 'हरी बंधाने' जाता है। यह भावी पुत्र-जन्म की सूचना है। इस सूचना-प्राप्ति के उपरांत मायके-वाले भी अपनी प्रसन्नता सूचित करने के लिए 'साध' भेजते हैं। जिसमें मिठाई, खाजे, लड्डू आदि होते हैं। यही 'साध' ग्राम में प्रदर्शन-उपरांत नाइन द्वारा घरों पर बांट दी जाती है, जिसे 'साध बांटना' कहते हैं। इस काल में नियमित रूप से कुछ दिन गीत भी गाये जाते हैं, जिन्हें 'साधां' या 'साध' कहते हैं। इन 'साधों' में गर्भवती स्त्री की रुचि से सम्बन्धित गीत होते हैं, जिनसे गर्भकाल के विभिन्न मासों में गर्भवती स्त्री को प्रिय लगने वाली वस्तुओं का उल्लेख होता है—

पहलो मास बहू नै लाग्यो, धूहतड़ मन लाग्यो ।
दूजो मास बहू नै लाग्यो, राब दही मन लाग्यो ।
थांनै केसर पावो जी सासूजी का पूत, हे म्हानै, जच्चा नै केसर पावोजी
अगलो मास बहू नै लाग्यो, केला, नारंगी मन लाग्यो ।
चौथो मास बहू नै लाग्यो, खांड, मटैली मन लाग्यो ।
पांचवूं मास बहू नै लाग्यो, मेवा, मख्याई मन लाग्यो ।
छठो मास बहू नै लाग्यो, आमा, नींबू मन लाग्यो ।
सातवूं मास बहू नै लाग्यो, घेवरड़ो मन लाग्यो ।
आठवूं मास बहूनै लाग्यो, पांट, चूंदड़ मन लाग्यो ।
नऊं मास बहू नै लाग्यो, ओवरा में मन लाग्यो ।
दसवूं मास बहू नै लाग्यो, हालरियां मन लाग्यो ।
थानै केसर घोलो जी, मोती बाई सा का बीर ।
हे म्हानै, जच्चा नै केसर पावोजी ।

केसर तो या मंहगी होई रुप्या को मधमासा ।
मॅं हळदी पावोजी, दस बीसा का देय हमाना ।
मॅं मॅंगी सूंगी लाम्रो जी म्हारा परदा मॅं पोंचाम्रो जी ।
भंवर म्हानै केसर पाम्रो जी ।

एक अन्य साध के गीत का समस्त कलेवर तो यही है, पर उसमें भूमिका-रूप मे कुछ और भी मिलता है—

पिया राजियो गढ़ बूंदी का हाट, अनोखो पीळो लावज्योजी म्हांका राज ।
गोल्या गोरी मूरख गंवार, बनजायां पीळो न खुलै जी म्हांका राज ।
मरू एक जीवो म्हांका राज ।
म्हांका राजन मसळ रालियो जी म्हांका राज ।
कुण आगे करूंगी पुकार, कुण सुणैगो म्हांकी विनती जी, म्हांका राज ।
सूरज आगे करूंगी पुकार, कै माता सुनैगी म्हांकी बीनती जी, म्हांका राज ।
एक पलंग दोनो पोढ़स्याजी म्हांका राज ।
हुलक रतन उपाड्या जी म्हांका राज ।

और तत्पश्चात् 'पहलो मास बहू......' मिलता है ।

एक अन्य गीत में जच्चा को प्रसव-वेदना हो रही है और वह अपनी वेदना को पति से सीधे-सीधे न कहकर उसकी व्यंजना-भर कर रही है, पर अज्ञानी पति कुछ नहीं समझ पा रहा है—

म्हैनी सी नार नारेळां हांसो पेट, आवै छै पीड़ उतावळीजी ।
डलर-मलर करतां फरै जी, घड़ी दोय पिया रावळे जी आयाजी ।
रावळे पांव चुकाव जी ।
तुम रावळे हम पड़दान धरम ही न्याव चुकावसी जी ।
न समझ्या भोली बाई सा का वीर, चालै छै पीड़ उतावळी जी ।
घड़ी दोय जी राज ।
राजा बागां मै जाय, बागां मोसर गुथज्यो जी ।
गोरी तुम कलियां हम छै फूल, घर मॅं ही मोसर गुथस्यां जी ।
राजा चोगाना में जाय, चोगाना में घुड़ला डकावज्यो जी ।
तुम गोरी घुड़ला हम असवार, घर मॅं ही घुड़ला डकावसी जी ।
झगड़त-झगड़त होई बड़ी बार, चतरभुज जनमिया जी ।
अब समझ्या भोळी बाई सा का वीर, घर मॅं से बायर भागिया ।

एक अन्य गीत मे परिवार के सभी सम्बन्धी बहू से विनय करते हैं कि "तुम पोपल पी लो, यह गुणकारी है", पर वह नही मानती । अन्त मे स्वयं पति कहता है :—

ऊबा-ऊबा सायबजी बीनवै जी
"गोरी बड़ा साजन की थें पीवो क्यूं न पीपलियां।"
"पीपळ लागै चरचरी जी पिया जीमनियां दाजै।"
'चंद बदनी थें पीवो क्यूं नें पीपलिया।'
"पांका हुलरिया कै मावै हरया दूध, पीवै क्यूं न पीपलिया।"

जापा के गीत

'जापा' से तात्पर्य प्रसव से है। प्रसव के उपरान्त स्त्रियां कुल-देवता से मंगल-कामना करती हैं। इस मंगल-कामना के अतिरिक्त ऐसे गीतों में अन्य-अन्य पारिवारिक स्थिति का भी चित्रण मिलता है। बेचारी कुल-वधू को प्रसव-पीड़ा हो रही है और सब परिवार के सदस्य अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं, किसी को कोई चिंता ही नहीं। अतः अंत में उसको अपने पति को अंगूठा मोड़कर जगाना पड़ता है और एक प्रकोष्ठ खाली करवाना पड़ता है—

कूंळै ऊबो कुळवऊ जी, थाको बदन रयो कुम्हलाय, च्यंता म्हारी कुण करैगो।
सासरा जी पड़ का चोधरी, सासूजी कै सरब भंडारी।
जणाळ पथा बोलडो, नणदोई पराया पूत।
ओबरड़ा में पोढ़ियो जी, ज्यामैं सूत्या सासूजी का पूत।
पगोठो मोड़ जगाइया जी, जागो नैं नंदानड़ा राव, खाली करदो ओबरोजी।
हंस-हंस पेच संवारिया जी, बांधै भाकर बांधी री पाग, लो सुंदर ओबरोजी।
थे जी जणज्यो डावड़ो जी, दादाजी रयो बंस बधाय, बधाई सूरज में करांजी।

प्रसव दस दिन के उपरांत शुभ मुहूर्त देखकर जच्चा को उस प्रकोष्ठ में से गीत और ढोल की ध्वनि के बीच में निकाला जाता है। उस समय बधावा, होले, पीपली आदि प्रचलित सभी गीत गाये जाते हैं। सूर्योपासना के उपरांत जिस प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है, उसका बधावा में वर्णन मिलता है—

चढ़ अटारी मन मोती सीना, ऊपर मारू बधोरो जी।
[illegible] पधार्या जी।
[illegible] जी।
[illegible] जी।

[illegible]

हिजड़ों का समुदाय भी तालियां पीट-पीट कर नाच-नाच कर गा उठता है 'वारी जाऊं रे तोपे मोरे लला ।' उस समय का पुत्र जन्म का हर्ष मनुष्य तक सीमित नहीं रहकर प्रकृति तक पहुँच जाता है—

जच्चा के हो गया ललना, सकर कंद नाचन को भाए ।

आलू रताळू में भई लड़ाई, बैंगण ने छोड़ी लड़ाई,

सकरकंद नाचन को आया ।

'टोपी', 'बठलो', 'सांठो' आदि में वस्तु-वर्णन मिलता है और वस्तु-प्रेषक का संकेत भी रहता है । 'टोपी' गीत देखिये—

नैन्या का बाबाजी गया अजमेर, गया सांगानेर

घूघरा हाळी टोपी लायाजी ।

जळवा

'जळवा' गीत प्रसूति-सम्बन्धी अंतिम गीत होते हैं । जळवा पूजना एक प्रथा है जिसके अनुसार स्त्री 'सूर्य नारायण' को जल चढ़ा कर पूजा करती है । इसी दिन वह चूड़ा पहनती है और तब से उसका दोष दूर हो जाता है । जळवा प्रसव से लगभग एक मास बाद पूजी जाती है । इस समय भी देवी-देवताओं के अनेक गीतों के साथ जळवा, चूड़ा, मेहंदी आदि गीत गाये जाते हैं । एक 'जळवा' गीत में ससुर, सास, मामी ढोली आदि को विभिन्न कार्यों को करने के लिये संकेत दिये गये हैं—

धन री सेल्यां नै बाण्यां वेग बलावो दन दस मगल गावो ।

धन री माली नै बाण्यां वेग बलावो कूळ मैं वेळ रुपावो ।

धन की ढोली नै ये बाण्या वेग बलावो दन दस ढोल बजाओ ।

धन की समार नै, ये बाण्या वेग बलावो, कुंभ कळस मगावो ।

पावड़ली ये बैठो बाबा पावड़ली छुटवावै ।

पावड़ली के रमक भमक पाणीयार्‌यां छोबट ।

झालरी झरोर बाबा फरे री हटीले ।

जो थनै भावै गोरा देम की धरवाणी ।

हाड़ा राव की बाळी सोठी रे ।

× × ×

जो थनै भावै गोरी भालो मूको (व्यक्ति का नाम) जी वाली सोठी रे

थानै जळवा पूज बतावै रे ।

झालरी झरोरे बाबा फरै री हटीले ।

उपर्युक्त गीत की भाषा अत्यधिक विकृत हो गई है, इसमें कुछ स्थलों पर गीत अस्पष्ट हो गया है ।

ऊबा-ऊबा सायबजी बीनवै जी
"गोरी बड़ा साजन की थें पीवो क्यूं न पीपलियां ।"
"पीपळ लागै चरचरी जी पिया जीमनियों दाजें ।"
'चंद बदनी थें पीवो क्यूं नैं पीपलिया ।'
"पांका हुलरिया कै मावें हरवा दूध, पीवै क्यूं न पीपलिया ।"

जापा के गीत

'जापा' से तात्पर्य प्रसव से है। प्रसव के उपरान्त स्त्रियां कुल-देवता से मंगल-कामना करती हैं। इस मंगल-कामना के अतिरिक्त ऐसे गीतों में जापा-जन्य पारिवारिक स्थिति का भी चित्रण मिलता है। बेचारी कुल-वधू को प्रसव-पीड़ा हो रही है और सब परिवार के सदस्य अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं, किसी को कोई चिंता ही नहीं। अतः अंत में उसको अपने पति को अंगूठा मोड़कर जगाना पड़ता है और एक प्रकोष्ठ खाली करवाना पड़ता है—

कूंळे ऊबी कुळवऊ जी, बांको बदन रयो कुम्हलाय, च्यंता म्हारी कुण करैजी।
समरा जो घर का चोधरी, सासूजी के भरय भंडारी।
नणदळ म्हा बोलड़ो, नणदोई पराया पूत।
ओवरड़ा में ओवरो जी, ज्यामें सूत्या सासूजी का पूत।
अंगोठो मोड़ जगाइया जी, जागो नैं नंदानड़ा राव, खाली करदो ओवरोजी।
हंस-हंस पैंच सवारिया जी, बांनै पनकड़ बांधी हैं पाग, सो सूंदर ओवरोजी।
पे जी जणज्यो हावड़ो जी, दादाजी रयो वंस बधाय, बधाई सुन्दर में करांजी।

लगभग दस दिन के उपरांत शुभ मुहूर्त देखकर जच्चा को उस प्रकोष्ठ में से गीत और ढोल की ध्वनि के बीच में निकाला जाता है। उस समय बधावा, टोडो, पीमचो आदि उल्लिखित सभी गीत गाये जाते हैं। कुंवोरासि के उपरांत जिस प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है, उसका बधावा में वर्णन मिलता है—

थळ भरया गज मोती मीना, ऊपर साकर बधोरो जी।
आगै मावड़, पाछै फलोसड़, बीचै आप पधारया जी।
आप सासूजी के पगल्या लागी, नणदल क्यूं ममकोड़्यो जी।
के म्हारी माको आप पढाया, कै मोसाळा मैं सायाजी।

'नणदल क्यूं ममकोड़्योजी' में सूक्ष्म विश्लेषण क्षमता दिखाई देती है। यह स्पष्ट है, पर ननद की ईर्ष्या है भाभी के 'बींदड़ो' पर, इसीलिये वह प्रसन्न नहीं है। पुत्र-जन्म पर प्रसन्नता की लहर चारों ओर दौड़ जाती है। उसमें स्त्रियां भी भाग लेती हैं और बच्चे (टाबर) भी भाग लेने आ पहुंचते हैं। इनाम पाने की दृष्टि से

हालरा (लोरियां)

पुत्र जन्म के गीतों के उपरांत उन गीतों पर भी विचार कर लेना चाहिए जिन्हें 'हालरा' या लोरी कहते हैं। लोरियां संसार के प्रत्येक साहित्य में विद्यमान हैं। विश्व भर में बच्चों को सुलाने के लिए किसी न किसी प्रकार की लय को माताएं गुनगुनाती रहती हैं। इस शब्दमयी गुनगुनाहट में कोई न कोई अर्थ अवश्य रहता है, पर बच्चे की दृष्टि से ऐसे गीतों में अर्थ-गौरव का कोई महत्व न होकर उनमें निहित लय का होता है। 'मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीत होता है कि लोरी से एक तो बच्चे का ध्यान इधर-उधर बिखरने से रोक लिया जाता है दूसरे बच्चे को मानसिक आश्वासन रहता है कि वह अकेला नहीं है और किसी न किसी का स्नेहपूर्ण संग उसे मिला हुआ है।'[1]

हाड़ौती के हालरो के विषय सूर के 'जोइ सोइ कछु गावै' के समान हैं। माता का मुख्य लक्ष्य रहता है 'मेरे लाल को आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै'। इसीलिये एक हाड़ौती गीत मे नींद को आमंत्रित किया जाता है—

सोजा म्हैना एक घड़ी।
नींदड़ली यू कहां अड़ी।
आजा नींदड़ आजा री।
भाया नै बेग सुलाजा री।

कभी अपने पुत्र को पुकार कर तथा उसे अन्य बच्चों से अच्छा बताकर सोने की स्पर्धा उत्पन्न की जाती है—

म्हारो बेटो सोवै छै।
ओरां का न्हना रोवै छै।
सोजा भाया सोजा रे थू।
खांड खोपरा खाणा थू।

एक अन्य गीत में सुन्दर उद्यान लगाने की चर्चा है, जिसमें 'भाया सीताफल तोड़ेगा'—

म्हारा भाया के कारणै।
बाग लगा चूं बारणै।
भायो बाग में दोड़-दोड़ जाय।
बागां का सीताफल तोड़-तोड़ खाय।

१—धीरेन्द्र वर्मा आदि—हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ६६४।

लोरियों में निहित भावों का प्रभाव बच्चे की अबोध अवस्था के कारण प्रत्यक्ष रूप से तो पड़ता नहीं दिखाई देता, किन्तु इसका प्रभाव अंतर्मन पर अज्ञात रूप से पड़ता रहता है। वीर अभिमन्यु तथा प्रह्लाद की माताओं ने जो कुछ गर्भकाल में सुना था उसका प्रभाव उनकी संतानों पर पड़ा था। इसका उल्लेख हमारे शास्त्रों में *मिलता है।*[1]

जातकर्म संस्कार में बालक की जीभ पर 'ॐ' लिखकर उसके कान में 'वेदोऽसीति' कहने के मूल में भी इसी अंतर्मन के द्वारा शुभ संस्कार उत्पन्न करने का लक्ष्य था।[2] *आज के शिक्षा के क्षेत्र में सोते हुए व्यक्ति के कान के पास ध्वनि-ग्राहक यंत्र (रिसीवर)* रखकर सुप्त व्यक्ति को अंतर्मन द्वारा शिक्षा देने के कुछ नवीन सफल प्रयोग किये गये हैं। ऐसी दशा में लोरियों द्वारा जिस बालक-मन में आनंद तथा उत्फुल्लता-पूर्ण भाव *तथा वातावरण की सृष्टि की जाती है उसका अतीत में* स्वीकृत ठोस मनोवैज्ञानिक आधार स्पृहणीय है।

समस्त लोरियाँ आकार की दृष्टि से अति संक्षिप्त हैं। ४ से ६ चरणों में प्रत्येक लोरी समाप्त हो जाती है और प्रत्येक चरण भी अति लघु होता है।

दाम्पत्य जीवन के गीत

दाम्पत्य जीवन की पृष्ठ भूमि

हाड़ौती दाम्पत्य जीवन का आरंभ शास्त्रोक्त विधियों और लोकाचारों से सम्पन्न विवाह की समाप्ति पर होता है। अग्नि की साक्षी में ली गई प्रतिज्ञाएं पति-पत्नी को चिर मधुर बंधन बनाकर उन्हें आजीवन बांधे रखती हैं। इसी बीच प्रेम भी उदित होकर उनके जीवन को सुन्दर बनाने में साथ देता है। यह विशुद्ध दाम्पत्य भाव परम्परागत है। बालिका और बालक जो कुछ समाज और घर में देखते हैं उसी का अनुकरण वे भी करते हैं। पति-पत्नी पारस्परिक काम तृप्ति के साधन न होकर गार्हस्थ्य की गाड़ी को सफलता-पूर्वक चलाते रहने का दायित्व ग्रहण करते दिखते हैं। एक ओर तो वधू विवाहोपरांत माता-पिता से विदाई लेकर मार्ग में जा ही रही है

१—भागवत ७,७,१२-१६।

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्राहानुग्रहमीश्वरः
धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम्।
तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः।

२—दयानंद सरस्वती, संस्कार-विधि, पृष्ठ १०।

कि उसे अपने मकान पर भी विदा हो जाती है और इसीलिये वह सारी बरात मे पहले अपने घर पहुँचना चाहती है—

> ताळो मार कूँची सार बूँ म आया जी बना।
> थां की मायड़ को नहीं रे भरोसो जी बना।
> सारी जान पैली रथ म्हारो हांको जी बना।
> सासरो, मायरो को नई रे भरोसो जी बना।
> थे तो लावेगी उनाळ पर म्हारो जी बना।

दाम्पत्य जीवन का आधार–प्रेम

इस पतिव्रतापरिवेश के बीच जिस प्रेम का स्फुरण हुआ हो वह निश्चय ही ऐहलौकिक जीवन के प्रेम-विवाहों (लव मेरिजेज) से कहीं अधिक ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित होगा। इसीलिए हाड़ौती दम्पती में जिस प्रेम का उदय होता है वह गहरा, चिरस्थायी और प्रतिष्ठित होता है। परिस्थिति का एक झटका उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। दाम्पत्य प्रेम के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग।

संयोग पक्ष

हाड़ौती गीतों में दाम्पत्य प्रेम का विकास पारस्परिक हास-विलास में परिवार के मध्य हुआ है। एक गीत में दिखाया गया है कि एक नायिका द्वार के मध्य में खड़ी है और पति उसे अपने पास बुला रहा है, पर वह परिवार के सदस्यों के वहां होने से नहीं आ पा रही है, लज्जा ने मार्ग रोक रखा है—

> 'गोखड़ला के बीचे काई जी खड़ा छो ?'
> 'मोती हार पोवां छां।'
> मोतीहार पोतां म्हारा राईवर ने देख्या,
> 'लडवण आओ न उरा सा।'
> 'म्हूं तो करयां आऊं जी म्हारा राईवर,
> म्हारा बाबाजी दादाजी खड़ा छै।'
> 'थांका बाबाजी दादाजी के बीचे हरी जी कनातां,
> तैं तो आओ न उरा सा।'

इस हास-विलास-मय जीवन मे दम्पती को क्या-क्या सूझती है। एक दिन पान के साथ पति ने पत्नी को भंग खिला दी और वह बावली हो गई—

> पानां की बड़ोयां दे गयो, संय्या अरसीदल, मैं ठाणी रे।
> आधी-आधी रात पयर को तड़को, जब मोय बड़ियां दीनी रे।
> उस बड़ियां में जादू-टूणा बावळी कर डाली रे।

दम्पती का चांदनी रात का मिलन भी अति सुखद है—

चांदा थारी चांदणी रै वारी, सूतो पलंग बछाय।
जद जागूं जद दोय जणां, कोई माहणी भरतार।

और वर्षा के वातावरण मे दोनो का प्रेम अधिकाधिक पल्लवित होता रहता है। पत्नी का लहरया (ओढनी-विशेष) वर्षा में सावन की बदली ने भिगो दिया, पर उस समय पति पास था अतः वातावरण सुखद बन गया—

भंवर थांकी बादळी नै म्हांको लैर्‌यो भजोयो जी राज।
लहर्‌यो तो सूखै सामी साळ में ढोला लयर लयर जिव जाय।
गोरी चंता जण करो जी लर्‌यो फेर मंगांदां जी राज।

इसी संयोग—पक्ष मे आभूषणों के साधन से प्रेम-प्रसंग के पल्लवित होने के अनेक गीत हाड़ौती में मिलते हैं—

नै डूब रै मोरी जान, गोरी की गागर न डूबै रै।
देख्यो थारो सागर नीर, गोरी की गागर न डूबै रै।
पगल्या मैं पायल लाग्रो, गुमानी ढोला न फैरूं रै।
पलंग पर न फोडूं रै मोरी जान, पलंग पै न फोडूं रै।

× × ×

हिवड़ा नै हांसज लाय गुमानी ढोला नै फैरूं रै।
मुखड़ा नै बैंसर लाय गुमानी ढोला न फैरूं रै।

इस गीत में कानो के झालज, माथे की रखड़ी, चोटी की डोरी आदि के वर्णन मिलते हैं।

यदि त्यौहारों के अवसर पर पति-पत्नी पास हों तो दम्पती-जीवन में रस बरसने लगता है और वियोग में वे ही प्रसन्नता के स्थान पर दुख का कारण बन जाते हैं। पति-पत्नी पास हैं और होली आ गई, इसलिये कितना आनंद छाया हुआ है—

रत फागण की आई होळी मचे झड़ाका की।

और गणगौर पर पत्नी की कामना होती है।

आज म्हारी साथ घटा पै गणगौर,
गणगोर्‌यां पधारो जी राज।

सारांश यह है कि हाड़ौती गीतों में दाम्पत्य-जीवन का मिलन-पक्ष कल्पना के परों पर उड़ने वाला नहीं है, अपितु आस-पास के वातावरण से प्रस्फुटित है। प्रत्येक त्यौहार पर उसका नवीन रूप मिलता है। उसकी लोक में प्रतिष्ठा है।

वियोग-पक्ष

संयोग और वियोग दाम्पत्य जीवन के दो पहलू हैं। सभी प्रकार के जीवन में वियोग के कारण प्रस्तुत होते रहते हैं। कभी पति को नौकरी के लिए बाहर जाना पड़ता है, कभी कोई पड़ौसिन आकर पति-पत्नी में मनमुटाव करा देती है और कभी खेल ही खेल में दोनों में कहा-सुनी हो जाती है। तब मान-मनावन के प्रसंग प्रस्तुत हो जाते हैं। सास-बहू के झगड़े भी दम्पती के सुखद जीवन को विषादमय बना देते हैं। क्योंकि पति-पत्नी में वंशानुगत दृढ़ संस्कार और धार्मिक निष्ठा मिलते हैं इसीलिये किसी साधारण बात को तो पत्नी इस प्रकार चुटकियों में उड़ा देती है जैसे कुछ है ही नहीं। किसी स्त्री ने आकर कहा कि तुम्हारे पति तो 'जार' हैं, अमुक-अमुक स्थल पर देखे गये हैं, तो उसका उत्तर होता है—

> म्हारा साजन पातळा, जणी जणी का यार।
> जणी–जणी मक मारलो, म्हारा छै मरतार।

हाड़ौती दम्पती का वियोग ऋतु व मासों में प्रतिष्ठित करके भी लोक गीतों में दिखाया गया है। उस वियोग में स्वाभाविकता है। कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं है। पति बाहर जा रहा है। बाहर भीषण ग्रीष्म है अतः पत्नी का हृदय भीतर से बोल उठता है—

> खां चाल्यो रे, लोभी खां चाल्यो रे, प्यारा खां चाल्यो रे।
> झगझगती दफैरी में खां चाल्यो रे।
>
> × × ×
>
> मारघो जासी, लोभी मारघो जासी, प्यारा मारघो जासी।
> ए म्हारा हालीना बरा छै, थनें मार लेसी।

उपर्युक्त गीत में 'खां चाल्यो रे' की तीन आवृत्तियों ने गीत में इतनी व्याकुलता भर दी है कि पाठक का मन थामें नहीं थमता और ठीक उसके पश्चात् 'झगझगती दफैरी में खां चाल्यो रे' में दुपहरी की भीषणता-द्योतन के लिए 'झग-झगती' अनुरणनात्मक शब्द बहुत ही सुन्दर बैठा हुआ है। पत्नी की आन्तरिक पुकार शब्दों की सीमाएं से फूट-फूट कर इस शब्द स्थापन द्वारा प्रकट हो रही है। कोई आलंकारिक शृंगार नहीं, कोई कथन-वक्रता नहीं, है तो केवल पुनरावृत्ति; फिर भी सरलतम शब्दों में सशक्ततम अभिव्यक्ति इस लोकगीत में मिलती है।

एक अन्य गीत में पत्नी अपने विमुक्त पति से मिलना चाहती है जो नौकरी में गया हुआ है और बहुत दिनों से लौटा नहीं है। अतः उसने कुछ युक्तियां सोच निकाली। प्रारंभिक कुछ युक्तियां तो असफल रहीं, पर अंत में पति को आना ही पड़ा। यहां आकर पति ने देखा तो बात भिन्न थी—

पांच पाना को बड़लो रोपियो, होयो छै गै'र घमेर।
मारू जी म्हाका छोड़ गया।
बालक डावड़ी हो गई जोद जवान, मायारा लोभी अब घर आवो,
चंता लग रही।
मारूणी कागज मोकल्या, 'थांका बीर परणै छै, अब घर आवो,
मायारा लोभी।'
'बीर परणै तो भली होई, आछी रै जान बणावो मारूणी म्हांकी।'
'मारूणी कागद मोकल्या' बैण परणै छै घर आवो।
'बैण परणै तो भली होई, आछो रै जान बणावो मारूजी म्हांकी।'
मारूणी कागद मोकल्या 'पुतर जनम्या, घर आवो।'
'पुत्र जनम्या तो मन होई, गाड्या दरब लुटाओ।'
मारूणी नै कागद मोकल्या, 'थांकी माय मरै छै, घर आओ।'
'माय मरी तो भली होई, आयो म्हांकी मारूणी को साल।'
भायला नै कागद मोकल्या, 'थांकी मारूणी मरै छै।'
'आ ल्यो राजा जी थांकी नौकरी, उजड़ गया छै घरबार।'
ऊभो मैनी नौकरी, खात मैल्या कमीण।
मायारा भरल्या तोबरा, घोड़ा करलो जीण।
गैला मैं मल्या भाईला, 'खओ घरा का समचार।'
'माय काते छै जी कातणा, बैण खेले छै जी फूलल्या।
भाई पढै छै जी चतरसाळ, लाल सूता छै पालणू।
मारूणी रसोया कै बीच।'
'तू छनगाळी गोरी छळ कर लियो बुलाय।'
'अब घर आवो चंता लग रही अब घर आवो बरखा लग रही।'

स्वकीया-भाव की प्रतिष्ठा

हाड़ौती दाम्पत्य जीवन स्वकीया-प्रधान जीवन है। परकीया और सामान्या
चित्र साहित्य में तो भरे पड़े हैं, पर हाड़ौती लोक गीतों में ऐसे चित्र बहुत ही क
मिलते हैं, जो मिलते हैं उनके प्रति भी लोक-धारणा अनुकूल नहीं प्रतीत होती। वस्तुत
हाड़ौती लोक-जीवन में तो स्वकीया-भाव की प्रतिष्ठा है। यह स्वकीया-भाव भारती
जीवन की विशेषता है। परकीया नायिका पपीहा का बोल सुनकर नायक को उपव
में आने का आमंत्रण देती है, पर नायक नहीं आता। इस प्रसंग में उभयपक्षी भा
की सुन्दर अभिव्यक्ति इस गीत में मिलती है—

'भंवर बागां में जास्योजी ।'
म्हूं तो कलियां बीणूं छूं परदेसी ।
पपीयो बोल्यो जी ।
'ओढ़ावन म्हारी कण बर लाया जी ।
सखी म्हारी घर में बैरी ही लाई । पपीयो०
'भंवर थांकी परणी मरज्यो जी
म्हांकी लागी लगन मत तोड़ी ।' पपीयो०
ओढ़ावन म्हांको थेंई मरज्या मो जी ।
म्हांकी परणी अंत बणावै । पपीयो०

दाम्पत्य जीवन के घुन

१. परकीया-जन्य ईर्ष्या—पवित्र दाम्पत्य जीवन में भी कुछ ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जिनमें स्वकीया का जीवन विषाद और ईर्ष्या से आन्दोलित रहता है। रात्रि को पति घर पर नहीं रहा और प्रातःकाल लौटा तो पत्नी को कुछ लक्षणों से यह ज्ञात हो गया कि वह रात्रि में पर-स्त्री के पास रहा। अतः उसका हृदय व्यथित हो उठा—

काजळ को कांटो लग्यो, मेंहदी को या डाळ ।
पीतम को बेरयां लगी, सालै बारा मास ।

२. सामान्याजन्यः ईर्ष्या—उसके विषाद को जन्म देने वाली वेश्या भी है। उसका पति वेश्या की चटक-मटक से लुभा कर वेश्या-गमन का अभ्यासी बन गया। अतः पत्नी भी उन कारणों को सोचती है और निज में आकर्षण उत्पन्न करती है तब इस आदत को छोड़ने के लिए पति से कहती है—

एड़ी राखूं ऊजळी, फापो राखूं ठीक ।
भगतण जावो छोड़ द्यो, घरणे आवो ठीक ।

वस्तुतः वियोग-जनक ऐसे कारण तो हाड़ौती गीतों में कम ही मिलते हैं, अन्य स्वाभाविक कारण ही इन गीतों में भरे पड़े हैं। शरद-ऋतु आई हुई है और उधर पति के लिये राजा की नौकरी आ जाती है—

सरद रत स्याळा की आई ।
म्हूं कांई करूं रे म्हारी जान, नौकरी राजा की आई ।

और एक दूसरे गीत मे नायिका कहती है—

म्हूं तो बरजूं छूं जी म्हारा कंत मलवर, नौकरी मत जावोजी...

३. सास-बहू का पारस्परिक द्वेष—सास-बहू के झगड़े हाड़ौती प्र
में प्रायः देखने को मिलते हैं। इसके कभी-कभी भीषण परिणाम निकल कर दा
जीवन को विषाक्त बना देते हैं। एक गीत में सास बहू को विष दे देती है और
से पूछे जाने पर वह उसको इधर-उधर टालती रहती है। गीत इस प्रकार है—

म्हारा ठण्डा जल की माछळी पानीड़ो पाड़ो री।
'आपणी नंदी में री सासू माछल्यां घणी छै री।'
'तरकारी राखो रे।'
'और दना तो री सासू बमच्यो स्याग मैले छी।
टुकड्या तो भर्या रे।
और दना तो री सासू सैळा टूकड़ा मैळे छी।
फुलका तो पीया री।
'खातां ई खातां सासू नींदड़ली आवँ छी।'
'पलंगां पै पोढोरो।
आपण ओवरा में ई पलंग बछ्यो, छै री।
पलंगा पै पोढो री।'
'बाराई बरस मे माता गांव सूं आयो छूं री।
कायवां म्हारी दीखै री, माता, भाग्मा म्हारी दीखै री
माहणी नई दीखै।'
'थारी माहणी नै लाला फोमरियो आवै रै,
फोमरियो हेर्योरे।'
'हार्यो री थाक्यो माता फोमरियो हेर आयो री,
तोई न लादी री।'
'थारी री माहणी नै लाला भाइल्यां आवे छै रे
भाइल्यां हेरो रे।'
'हार्यो री थाक्यो माता भाइल्यां हेर आयो री,
तोई नै लादी रे।'
'थारी माहणी नै लाला नींदड़िया आवै छै रै,
पलंगा पै हेरो रे।'

× × ×

'थापणां बंडा में रै लाला छाणा रै भर्या छै रै,
दगन दे दो रे।'
'थारा ई छाणां कै री माता थारै ई राबा दूं री
नारेळा दागूं री।'

'आपणा कोठा में रे लाला गेहूंडा भर्‌या छे रे
बांख्या कर दो रे।'

४. असहिष्णुता—एक अन्य गीत में पति पत्नी के चौपड़ खेलने का वर्णन है। खेलते ही खेलते दोनों में कहा-सुनी हो गई और पत्नी को पति द्वारा पीटा गया। उसने दुखी होकर अपने पिता के पास पत्र लिख भेजा। ये भाव इस गीत में व्यक्त हुए हैं—

'चदा मह' जी चांदणी सी रात, चंदा के उजाळे चौपड़ खेलस्यां।'
'में छो मारूणी भूखां घर की नार, चौपड़ तो खेलैंगा साथी भायला।'
'म्हारा बार के नौ सो परवादारजी, आप तो सरीखा हाळी-बाळदी।'
आयो लखपतिया के रोस, पतळी सी कमर्‌यां पें दीनी लात की।
गोरा सा मुखड़ा पै दीनी थाप की, सार्‌या रंग्या पचरंग्या पै छाप का
'छोरी दासी मे'लां दवनो जोय, कागद लख भेज्या नरपत बाप कै।
दवलो जोतां लागी बड़बार, चंदा के उजाळे कागद मांडस्यां।'
मांडी मांडी सात सलाम, अदबच मांड्या छै करड़ा ओळमां।
मांडी मांडी बावळ की गाळ, मांडी मांडी मायड़ की गाळ।
पतळी सी कमर्‌यां पै मारी लात की, गोरा सा मुखड़ा पै मारी थाप की,
रंग्या पचरंग्या मांड्या छापका।

× × ×

'बेटा रे बेटा थू तो पूत कपूत, छोटी सी रूकमण ने भैली सासरे।'
'म्हूं छूं पूत सपूत जी म्हारी छोटी सी बैनड़ भैली सासरे।'
बीरा जी ने घुड़ला सणगारियां, हसत्यां सणगारी पूरी पांच सो।
उलटियो उलटियो दादा जी रो देस, जी आण तो धुड़कियो ससरा का देस में
धड़ धड़ धूरा जी को लोग कोई सेजां में धड़कियां छै जी परणियां पातळा
'यो स्यो मारूणी ६०० करोड़ को हार जी थाया तो लसकर ने पाछा फेरज्यो।
'बालूजी ने लूं नो सो करोड़ को हार जी, म्हारा गोरा सा मुखड़ा पै साले थापकी
म्हारी पतळो सी कमरयां पै साले लात की, रंग्या पचरंग्या साले छापका।

गीत की कथा सहसा समाप्त होकर मन को अस्पष्ट रख देती है। दाम्पत्य जीवन के इस रूप में स्त्री को पीटने का जो विवरण मिलता है और उसके मूल में दिया गया कारण ग्रामीण लोक जीवन का एक रूप है।

दाम्पत्य जीवन के विकृत रूप

१. अयोग्य पति—दाम्पत्य जीवन के कुछ विकृत चित्र भी गीतों में देखने को मिलते हैं। एक पत्नी को नपुंसक पति मिल गया। अतः वह अपनी कसक इस प्रकार व्यक्त कर रही है—

> बाजरा की रोटी जीवै सोळो खाटो।
> धाड़ूयो जायो को सासूजी थाने, सोळो माटो।

एक अन्य गीत में पत्नी इसलिए दुखी है कि उसको अपना पति छोटा और बुद्धिहीन मिल गया है। इसलिये उसको समस्त आभूषण बेकार लगते हैं और वह गुमान करने लायक भी नहीं रह गई—

> किस पर करूं गुमान मुझको बालम मिल गया छोटा।
> एकड़ी तो म्हूं कभी युद फेंकूं, साजन मलग्या छोटा।
> जरा छोटा, जरा पतली कमर का, जरा अकल का छोटा।

२. देवर-भाभी में प्रणय—एक अन्य गीत में भाभी और देवर के विकृत सम्बन्धों की चर्चा मिलती है—

> छमछुम बाजे नेवरिया, गोदी में लेलो देवरिया।
> पड़ी पगारया बीजणी, तू बायरो उड़ा देवरिया।

कुछ जातियों में 'नाता-प्रथा' प्रचलित है और पति के मरने पर अथवा पति के जीवित रहते हुए स्त्री 'झगड़ा' चुका कर किसी दूसरे को पति चुन सकती है। उस वर्ग में देवर-भाभी का वह आदर्श नहीं मिलता, जिसकी प्रतिष्ठा तुलसी कर गये हैं।[1] ब्राह्मण वैश्य तथा क्षत्रिय वर्गों में भाभी के प्रति मातृवत् व्यवहार का आदर्श मिलता है। परकीया-भाव की प्रतिष्ठा कुछ वर्गों के गीतों में स्पष्ट देखने को मिलती है। वहां भायली परकीया रूप में है—

> भायली तू तो उरी आजा, उरी आजा काम छै।
> थारै केई बेटका की म्हारै टाम छै।

३. वृद्ध-विवाह—एक अन्य गीत में युवती स्त्री से वृद्ध के विवाह की स्पष्ट निंदा की गई है, शैली प्रतीकात्मक है—

> हुळाबोळ होग्यो रे
> साठ बरस को डोकरो नारी ने ओढ़्यो रे।

१—प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।
सीय राम पद अंक बराएं। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएं।
रा० च० मा०, अयोध्याकांड १२२,१।

परकीया दाम्पत्य जीवन के चित्र कभी कभी गीतों में मिल जाते हैं। यहाँ नायक नायिका का व्यवहार लोक-आधार पर होता है। ढाढ़ोली में अधिकांशतः ऐसी भावना का आधार 'भायली' में मिलता है।

जनेऊ (यज्ञोपवीत) के गीत

जनेऊ या यज्ञोपवीत भी हिन्दुओं के सोलह संस्कारों में से एक है। 'जनेऊ-लेना'-संस्कार केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्गों में मिलता है। शेष वर्ग में भी जनेऊ पहनने वालों के कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। जनेऊ लेते समय शास्त्रोक्त विधियों का पालन तो होता ही है, साथ ही लौकिक आचारों का भी निर्वाह यथावश्यक होता रहता है। टीका, लग्न तथा पाणिग्रहण के अतिरिक्त शेष सभी कार्य यज्ञोपवीत में भी विवाह के समान ही होते हैं। उपयुक्त मुहूर्त निकाल कर विनायक-स्थापन किये जाते हैं, 'बने' गाये जाते हैं, बिन्दोरियां निकाली जाती हैं आदि आदि। अतः यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर भी घर में वही वातावरण रहता है जो विवाह के समय मिलता है। आधुनिक युग में जब से द्विजवर्ग का धार्मिक दृष्टिकोण धुंधला हो गया है तब से यज्ञोपवीत के प्रति वह भाव नहीं रह गया है, जो अतीत में विद्यमान था। अतः आज अतिरिक्त व्यय से बचने के लिए विवाह के साथ ही तीनों वर्गों में जनेऊ भी ले लेने के प्रायः उदाहरण मिलते हैं।

जनेऊ लेने के दिन 'बना' के बाल उतरने से साफ करा दिये जाते हैं और उसे कोपनी (कोपीन) पहनाई जाती है। बढ़ई उसके लिए दंड तथा खड़ाऊं बनाकर लाता है। उस दंडधारी बने को खड़ाऊं पहन कर तथा बगल में आसन लेकर दो बार भिक्षा-याचना करनी पड़ती है। प्रथम अपने गुरु के लिए और द्वितीय अपनी माता के लिए। शास्त्रोक्त विधि से मंत्रोच्चार के उपरांत जब यज्ञोपवीत सम्बन्धी सब क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं, तब 'मैंडा' के समान ही सभी कुटुम्बियों को वस्त्र पहनाये जाते हैं।

एक गीत में जिन-जिन वस्तुओं का उपयोग यज्ञोपवीत संस्कार के लिए होता है, उन्हें एक 'जनेऊ गीत' में बताया है। वे वस्तुएं है—डंडक (दंड), पांवड़यां (खड़ाऊं), छबल्यो (टोकरी), नातणू (तौलिया), बसतर (बिस्तर), खाजल्या (खाजे), लड़वा (लड्डू) आदि—

> खांय की पांवड़ल्यां रे बाला।
> तो खाय को थारो डंडक बावनवो।
> स्याम बेद पढ़ पंडत हो नारायण।
> सूना की पांवड़ली रे बाला।

रूपा को थारो डंडक दावणवो।
श्याम बेद पड़ पंडत हो नारायण।

यही नारायन कनउजी लोक गीतों मे भी कासी बेद पढ़ आया है।[1]

एक अन्य गीत मे बालक यज्ञोपवीत धारण करने की सबल लालसा प्रकट करता है—

छोटी सी दड़ी रै लाला मोत्या सूं जड़ी।
जनेऊ लवावो बाबाजी आज की घड़ी।

एक गीत में यज्ञोपवीत सूत्र को बनाने का पूर्ण विवरण मिलता है। भगवान राम व लक्ष्मण के जनेऊ लेने के अवसर पर यज्ञोपवीत के महत्व का वर्णन एक अन्य गीत में इस प्रकार मिलता है—

जब रघुनंदन कांकड़ आया।
कांकड़ आया कळश बंधाया।
देखो री रघुनंदन की बातां।
देखो री सीयाबर की बातां।
जगमग जोत करै छै।
कंचन सूतक पूर जनेऊ।
तीन लोक में अधक जनेऊ।
राम री लछमण ले छै जनेऊ।
भरत चत्रगुन ले छै जनेऊ।

10862

बनारस शिक्षा का केन्द्र रहा है और अतीत में जो व्यक्ति वहां से संस्कृत अध्ययन करके लौटता था, उसके प्रति समाज में श्रद्धा का भाव मिलता था। इसीलिये जनेऊ लेते समय आज भी बालक को औपचारिक रूप से यथोल्लिखित वेश बनाकर काशी पढ़ने भेजा जाता है। दूर जाने वाले पुत्र के लिए माता-पिता के हृदय की ममता किस प्रकार बाधा बन रही है, इसका एक गीत में इस प्रकार वर्णन मिलता है—

बाळो चाल्यो बैण बाणारसी।
बांरा मामाजी जाबा न देय।
लाल तुम थांई भणो।
बाळा लाल पूणी सानां घणी।
थारा पड़बा की चतर साळ।

१—'कासी बेद पढ़ि आये नारायण बरुआ'
संतराम अनिल, कनउजी लोक गीत, पृ० २५५

बाळा देस्यां रै दखणा धोवती।
थारा गरू जी नै कपला गाय।

यज्ञोपवीत के समय शास्त्रोक्त मंत्रोच्चार प्रधान रहता है। इसलिये उच्चारण-काल में गीतों का स्वर मंद पड़ जाता है। ऐसे अवसर के गीतों में परंपरागत वर्णनों की प्रधानता है और भावना का प्रायः अभाव मिलता है।

त्यौहार–व्रतोत्सव के गीत

भारतीय जीवन काव्यमय रहा है। इसलिये हमारे जीवन के पग-पग पर व्रत हैं, त्योहार हैं तथा उत्सव हैं। भूमि के प्रत्येक खंड पर तीर्थ हैं। नदियों में से प्रत्येक गंगा की समता करती है। पशुओं में से प्रत्येक देवता है। पहाड़ों में से प्रत्येक गोवर्धन का महत्व रखता है। हमने इसी भावुकता में एक ओर लक्ष्मी की पूजा की तो दूसरी ओर सरस्वती की उपासना की। अवतारों के जीवन में अपने जीवन का आदर्श भी हमने देखा और राक्षसों की कल्पना हमारे जीवन को सजग प्रहरी बनकर हर समय पतन-पथ से बचाती रही है। हमारी ममता चींटियों तक फैली हुई है। हम पत्थर पूजते हैं, घूरे को पूजते हैं और भदकर विषधर को दूध पिलाते हैं—पूजते हैं। ऐसा भारतीय भावुक जीवन हाड़ौती लोक-जीवन में भी प्रतिबिम्बित है।

हमारे व्रत, त्योहार तथा उत्सव ऐसे ही भावुक जीवन की परिणतियां हैं। जीवन के इस छोर से उस छोर तक, बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक हम भावनाओं से बंधे हैं। दिन की कौनसी घड़ी, मास का कौनसा दिन, वर्ष का कौनसा मास हमारी भावनाओं से असम्बन्धित है, कह नहीं सकते। एक-एक तिथि को ले लीजिये, किसी में व्रत का विधान है तो किसी में उत्सव का। प्रत्येक दिन को ले लीजिये, वह किसी न किसी देवता से सम्बन्धित है और हमारी व्रत भावना, यात्रा-भावना, मुहूर्त-भावना आदि को प्रभावित करता रहता है।

हाड़ौती के प्रमुख त्योहार तथा उनसे सम्बन्धित साहित्य का विवरण आगे दिया जा रहा है—

मास व तिथि	त्यौहार का नाम	अनुष्ठान	तत्सम्बन्धी लोक-साहित्य
चैत्र—			
कृष्णपक्ष द्वितीया	भाईदोज, दवात-पूजा	गोबर की दूज बनाकर बहनें उसको पूजा करती है और भाइयों के तिलक लगाती हैं। दवात की पूजा होती है।	कहानी कही जाती है। ...
कृष्णपक्ष सप्तमी	सेढ़ी माठें शीतलाष्टमी	स्त्रियां शीतला देवी की पूजा करती हैं और ठंडा भोजन करती हैं।	गीत गाये जाते हैं।
कृष्णपक्ष त्रयोदशी	न्हाण (स्नान)	होली के समान रंग डालते हैं। यह जाति के लोगों में ही परस्पर खेला जाता है।	सांगोद में न्हाण के खेल-तमाशे होते हैं।
शुक्लपक्ष प्रतिपदा	नोरता बैठना (नवरात्र-प्रारंभ)	देवी की पूजा होती है।	
शुक्लपक्ष तृतीया	गणगौर	स्त्रियों द्वारा गौरी की पूजा की जाती है। राजस्थान में यह त्यौहार स्त्रियों द्वारा बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है।	गीत गाये जाते हैं।
शुक्लपक्ष अष्टमी	थापीपूजन (देवीपूजन)	दीवार पर हाथ या त्रिशूल-चिन्ह अंकित करके उसको पूजते हैं। एक विशेष प्रकार का ही भोजन इस दिन बनता है।	कभी कभी गीत गाये जाते है।
शुक्लपक्ष नवमी	थापीपूजन (देवीपूजन)	अष्टमी के अनुसार इस दिन वे लोग देवी की पूजा करते हैं, जो अष्टमी को किन्ही परंपरागत कारणों से नहीं कर पाते।	रामलीला का अभिनय प्रारंभ होता है।
	सम्या (सम्मिलन)	राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न की झांकी निकलती है।	

मास व तिथि	त्योहार का नाम	अनुष्ठान	सम्बन्धी लोक साहित्य
शुक्लपक्ष नवमी	राम नवमी	भगवान् की सवारी निकलती है और उत्सव मनाया जाता है।	रामलीला होती है।
वैशाख—			
	वैशाख नहावो (वैशाख स्नान)	नित्य प्रति सूर्योदय से पूर्व नदी या किसी पवित्र स्थान पर मास-भर स्नान किया जाता है। मासान्त में ब्राह्मण निमंत्रित किये जाते हैं।	भजन गाये जाते हैं।
शुक्लपक्ष तृतीया	आखातीज (अक्षय-तृतीया)	दीवारों पर सात (सुहे) चित्रित किये जाते हैं। कृषक-वर्ग अपने खेतों में हल चलाने का मुहूर्त करते हैं।	
शुक्लपक्ष चतुर्दशी	नरसींग-चोदस नृसिंह-चतुर्दशी	व्रत रखा जाता है।	प्रह्लाद-लीला का अभिनय होता है।
ज्येष्ठ—			
कृष्णपक्ष अमावस्या	बड़ पूजनी मांवस	स्त्रियां वट-वृक्ष की पूजन करती हैं।	गीत गाती हैं।
शुक्लपक्ष दशमी	गंगादसमी (गंगादशमी)	स्त्रियां व्रत रखती हैं।	
शुक्लपक्ष एकादशी	नरजला-ग्यारस (निर्जला एकादशी)	निर्जल व्रत रखा जाता है। संध्या के समय मंदिर पर कलश, पंखा, वस्त्र और आम रखे जाते हैं और तत्पश्चात् पानी पिया जाता है।	

मास व तिथि	त्योहार का नाम	अनुष्ठान	तत्सम्बन्धी लोक साहित्य
आषाढ़—			
शुक्लपक्ष द्वितिया	रथजातरा (रथ-यात्रा)	जगदीश का रथ का प्रस्थान होता है।	भजन गाये जाते हैं।
शुक्लपक्ष एकादशी	देव-सोवणी (देव शयनी)	व्रत रखा जाता है। कुमारियां कपड़े के गुड्डा-गुड्डी बनाकर उन्हें जल में विसर्जन करती हैं।	गीत गाती हैं।
श्रावण—			
शुक्लपक्ष पंचमी	नाग पांचे नाग-पंचमी	दीवार पर नाग की आकृति बना कर पूजा की जाती है और किसी बिल में दूध डाला जाता है।	कथा प्रचलित है।
कृष्णपक्ष अमावस्या	हर्याळी मांवस (हरियाळी अमावस्या)		झूले के गीत गाये जाते हैं।
शुक्लपक्ष तृतीया	छोटीतीज	स्त्रियां व्रत रखती हैं। तीज पूजती हैं।	सावण व तीज के गीत गाये जाते हैं।
शुक्लपक्ष सप्तमी	माई सातें (मातृ सप्तमी)	स्त्रियां व्रत रखती हैं। मेले लगते हैं।	माताजी (देवी) के गीत गाये जाते हैं।
शुक्लपक्ष पूर्णिमा	राखी (रक्षाबंधन)	बहनें भाइयों के राखी बांधती हैं। दीवारों पर 'सरवण' चित्रित किये जाते हैं और उन्हें पूजा जाता है।	
भाद्र पद—			
कृष्णपक्ष तृतीया	बड़ी तीज	स्त्रियां व्रत रखती हैं। तीज पूजती हैं।	छोटी तीज के अनुसार।
कृष्णपक्ष अष्टमी	कान्हूड़ आठें (कृष्णाष्टमी)	उपवास रखा जाता है। कृष्ण-झांकी बनाई जाती है।	भजन गाये जाते हैं। कीर्तन होते हैं।

मास व तिथि	त्योहार का नाम	अनुष्ठान	तत्सम्बन्धी लोक साहित्य
कृष्णपक्ष नवमी	गोगानोमी (गंगानवमी)	झांकियों के दर्शन किये जाते हैं।	–
कृष्णपक्ष द्वादशी	बछ्बारस (वत्सद्वादशी)	स्त्रियों द्वारा गाय व गोवत्स पूजे जाते हैं। उस दिन गेहूं से बना कोई भोजन नहीं किया जाता है।	कहानी कही जाती है।
कृष्णपक्ष त्रयोदशी	सोरती [1] (शिवरात्रि)	उपवास रखा जाता है।	शिव-मंदिर में शिव-कीर्तन और भजन होते हैं।
शुक्लपक्ष चतुर्थी	चतरा चोथ (छात्र-चतुर्थी)	बालक व्रत रखते हैं और गणेश की पूजा करते हैं।	बालक गीत गाते हैं।
शुक्लपक्ष अष्टमी	अमकारथो	बालिकाएं व्रत रखती हैं तथा मिट्टी के शिव-पार्वती बना कर पूजती हैं। उस दिन अग्नि द्वारा पकाई वस्तु का सेवन नहीं होता।	कहानी कही जाती है।
शुक्लपक्ष दशमी	तेजा दसमें तेजा दशमी	तेजाजी की पूजा होती है। मेला लगता है।	'तेजाजी' लोक-गाथा गाई जाती है।
शुक्लपक्ष एकादशी	डोलग्यारस ग्यारस (जलझूलनी एकादशी या डोलयात्रा एकादशी)	व्रत रखा जाता है। विमानों को सजाकर कीर्तन करते हुए नदी या सरोवर-तट पर ले जाया जाता है।	भजन गाये जाते हैं।

1—हाड़ोती में सोरती से अभिप्राय प्रायः उस मेले से है जो शिवरात्री पर शिवरात्री के दूसरे दिन लगता है।

मास व तिथि	त्योहार का नाम	अनुष्ठान	तत्सम्बन्धी लोकसाहित्य
शुक्लपक्ष चतुर्दशी	अणंत चोदस (अनंत-चतुर्दशी)	दीवार पर हस्त-चिह्न अंकित कर अनंत भगवान की पूजा की जाती है। अणंत (सूत्र) बाधा जाता है और रोट (मोटी रोटी) बनाये जाते हैं।	कहानी कही जाती हैं।
आश्विन—			
कृष्णपक्ष प्रतिपदा से अमावस्या तक	सँजा	दीवार पर गोबर द्वारा विभिन्न चित्र बनाये जाते हैं।	बालिकाएं गीत गाती हैं।
कृष्णपक्ष अमावस्या	तुलसी-बेवड़ा	बालिकाएं व्रत रखती हैं। तुलसी की पूजा करती हैं।	गीत गाती हैं और रात्रि भर जागती हैं।
शुक्लपक्ष प्रतिपदा से दशमी तक		प्रतिपदा से दशमी तक वही होता है जो चैत्र शुक्लप्रतिपदा से दशमीतक होता है।	
कार्तिक—			
कृष्णपक्ष त्रयोदशी	धनतेरस	गृह-पथ पर दीपक जलाये जाते हैं।	'होड़' गाई जाती है।
कृष्णपक्ष चतुर्दशी	नरक चोदस	,, ,,	,, ,,
कृष्णपक्ष अमावस्या	दाळी (दीपावली)	'गोरधन' पूजे जाते हैं।	,, ,,
शुक्लपक्ष द्वितीया	भाई दूज व दवात पूजा	गोबर की दूज बनाकर बहनें उसे पूजती हैं। भाइयों के तिलक लगाती हैं।	कहानी कही जाती है।
शुक्लपक्ष एकादशी	देव उठणी ग्यारस (देव-उत्थान एकादशी)	देव उठाये जाते हैं। आंगन लीपकर उसमें गाजर बेर, आंवले आदि रखे जाते हैं; जिन्हें पूजा-उपरांत सुहाया जाता है।	कुछ पद्य बोले जाते हैं।

को भर कर वे इन त्योहारों को मनाती हैं उतनी उतनी उमंग अन्य किसी त्योहार को मनाने मे नहीं दिखाई देती। एक से एक सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित होकर कभी गौरी की पूजा करती हैं तो कभी उपवनो मे झूले झूलती हैं।

इन अवसरों के गीतों में भी स्त्रियों की उमंगें व अभिलाषाएं छलछलाती दिखाई देती है। हो क्यों नही, यही तो वह त्योहार है जब वे गौरी से अपने अखंड सौभाग्य का वरदान प्राप्त करती हैं। येही तो वे रमणीय दिवस होते हैं जब प्रकृति अपने यौवन को मुक्त हृदय से जन-जन के लिये बिखेर देती है और प्रत्येक सहृदय व्यक्ति में मस्ती का संचार कर देती है। एक गणगौर गीत में एक स्त्री माता-गणगौर का पूजन करने जाती है और अपनी कुछ कामनाएं प्रकट करती हैं—

'गोरी गणगोर माता खोल कंवाड़ी।
बारै ऊबी थारी पूजणवाळी।'
'पूजणवाळी सुवागण कांई मांगै ?'
'मै मागां छा अलल कूंडा, छाछ मथणिया।
हिया सवाणू गोबर मांगां, कड़्यां सवाणी लार।
जनेर जमी बाबल मांगां, राता देई माता।
कीड़ै कांटै काका मांगां, चुड़लावाळी काकी।
कान्ह कुंवर सा वीरा मांगा, राई सी भोजाई।
पूंछ उडावण फूफो मांगा, मांडा नीचै भुवा।
बाजळियो बैणोई मांगा, घूंघटवाळी भाभी।
लछमण सरीखा देवर मांगा, सरीकसन सा भरतार।
डाबर डूबर बेटा मांगा, देवकन्या सी बेटी।

× × ×

सार की तो सुई गोरल पाटका ये तागा।
मे र सींवां छां गोरा ईसर जी का तागा।

अतः गणगौर गीत हाड़ौती नारी के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। वह सभी कुछ यहां प्राप्त कर लेती है। उसकी सम्पन्नता के आदर्श भी इस गीत में निहित हैं। 'हिया सवाणू गोबर मांगा' व 'कंड्यां सवाणी लार', ऐसे सामाजिक विकास की सूचना देता है जब पशुधन को अत्यधिक महत्व प्राप्त था और पैसे को महत्व नही मिल पाया था।

एक अन्य गीत में पत्नी 'गणगौर' पूजने जाना चाहती है, पर 'रसिया' जाने नही दे रहा है—

म्हारा दादाजी कै जो, म्हारा बाबाजी कै थाली छै
गणगोरजी रसिया।
घड़ी दोय सहेल्यां में जाबा दो।

एक अन्य गीत में भी—

> भंवर म्हानै खेलण दो गणगोर।
> म्हारी सैयां जोवै बाट।
> म्रो भंवर, म्हानै खेलण दो गणगोर।

हाड़ौती का प्रसिद्ध गीत 'घूमर' भी इन्हीं अवसरों पर गाया जाता है। 'घूमर' एक प्रकार का सामूहिक राजस्थानी नृत्य गीत है जिसमें स्त्रियां नाचती हुई गाती रहती हैं। यह नृत्य गीत गरबा से मिलता जुलता है।[1] हाड़ौती में यह गीत नृत्य के बिना भी गाया जाता है। रास्ते में चलती हुई स्त्रियां इसे स्वर के दीर्घलयात्मक उतार-चढ़ाव के साथ गाती चलती हैं—

> घूमर दे, ये गौरी घूमर दे।
> हाड़ा राव सा नै माणी गणगोर, हाय गोरी घूमर दे।
> माथा नै मैंमद लावे जो ये गोरी घूमर दे।
> काना नै झालज लावज्यो ये गोरी घूमर दे।

गणगोर और तीज पर अपने पति से मिलने की कामना परम्परागत रूप से तीव्र होती है और पति भी इस शकुन-मय त्यौहार पर घर पहुँचने का यथासंभव प्रयास करते हैं। होली पर न लौटने वाले प्रियतम के प्रति पत्नी का उपालम्भ एक गणगोर गीत में मिलता है; जिसमें उसकी याचना होती है कि वे इस त्यौहार पर तो अवश्य आयें—

> बादीला जो आज्यो जी गणगोर।
> होली तो जी थानै ऊई देश की कीनी।
> म्रया छो जी नपट कठोर।

उधर पति के पास वे वस्तुएं नहीं हैं जो स्त्री द्वारा अभीप्सित थीं, फिर भी वह हार्दिक स्वागत के लिये प्रस्तुत है—

> 'आज म्हारी नाव यहा पै गणगोर।
> गणगोरयां पधारो जी म्हांराराज।'
> 'गोरी म्हांकै नई छै जी घेवर दाल।'
> 'आज म्हांकै यूं ही पधारो जी सरदार।
> सबकर थाना म्हांरा सरदार।'

श्रावण मास में छोटी और बड़ी तीज में गाये जाने वाले गीतों में वर्षा की मादकता और उससे उत्पन्न पारस्परिक हास विलास के चित्र मिलते हैं। ये ही वे अवसर होते हैं जब स्त्रियां झूला झूलती हुई गाती हैं और सखी-सहेलियों में मिलकर आनंद मनाती हैं। गणगोर के एक गीत में एक स्त्री अपने पति से शिकायत करती है—

१—रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, राजस्थानी लोक गीत, पृष्ठ ११४।

भंवर पाणी बादळी नै म्हारो लै'रयो मजोयो जी राज।
लै'र्यो तो सूसे सामी माळ में ढोला लहर लहर जिय जाय।
'गोरी चंता जण करो जी लै'र्यो फेर मगा दा जी राज।'

घनघोर घटा मे पपीहे का शोर भी उन्हें बुरा लगता है, क्योंकि नंदकिशोर पास हैं—

तामे की हंडिया मे गरम सा पानी म्हावेंगे नंदकसोर।
पपीया बाहे मचाने सोर।

अब तक तो नव वधू अपनी सहेलियो के साथ तीज मनाती रही पर अब ससुराल में आने पर उसे अतीत के दिन याद आने लगे हैं; ये भाव निम्न गीत में पाये जाते हैं—

आई मां फैली सावणी तीज,
तीजां में मैलो मां सासरै।
और सहेल्यां तो मा झूलण जाय, मां खेलण जाय।
म्हनै तो मण को पीसणू।
म्हनै तो मण को पीवणू।

'पपीयो बोल्यो री' गीत भी ऐसे ही अवसरों पर प्रायः गाया जाता है।

होली के गीत

ब्रज की होली देश के उत्तरी भाग में फैल गई और उसके साथ ब्रज के गीत भी हाड़ोती मे पहुँच गये। इसलिए होली के नाम से जो गीत स्त्री और पुरुषों के द्वारा गाये जाते हैं उनमे से अनेक प्रायः ऐसे होते हैं जिनकी भाषा का हाड़ोतीकरण किया गया दिखाई देता है। हाड़ोती मे अति प्रचलित एक ऐसा गीत देखिये—

ब्रज मंडल देस दता रे रसिया।
तेरी ब्रज मे मोर बोलत हैं।
ये तो बोलत मोर फटे छतियां। ब्रज मंडल०

और

आज बरज में होली रे रसिया।
होली भई बरजोरी रे रसिया।
कांई की तेरी कंचन होली कांई की पचकारी, रे रसिया।
× × ×
केसरण रंग अबीर गुलालो।
दस मण केसर घोळी रे रसिया।

हाड़ोती बोली मे ही एक 'बड़ी होली' मिलती है। इधर तो होली आई है और इधर पति जा रहे हैं। अतः पति को पत्नी द्वारा मना किया जा रहा है। यही भाव इस गीत मे है—

गढ़ मूं होळी भी उतरी, हठहट लिया पे मनागु जी
होळी माई भी जगु मायो।
कुण मानै माळो मालियो कुण मानै डीलां री मील।
मो तो मीठू मीरगू मानो हो, गुजंगी मोह।
देव मनाता भोग्यां मीरगों, करम मानता भोग्या मोह।

चंदसखी के होली-विषयक गीत हाड़ौती में प्रचलित है। जिनमें कृष्णलीला के कुछ आख्यान वर्णित है—

डूंगर गड़ बनसी करी रे।
हां रे सहका ग्वाल्या लिया बुलाय।
भर-भर दूना पी गया।
रयो भी दियो बुलाय।
हां रे लड़का नंद जसोदा का।
जनम लियो बसदेव के।
चंदसखी की बीनती रे।
सहका गुण ग्यो, तरजणहार।
हाथ जोड़ बिनती करूं।
म्हारा आवागमन निवार।
हां रे, लड़का नंद का।
जनम लियो बसदेव के।

पुरुषों के द्वारा होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में या तो अश्लीलता होती है या भक्ति होती है। होली जलने की रात्रि को जो गीत गाये जाते हैं उनमें कभी-कभी भजन भी सुने जाते हैं। अश्लील गीतों को यहां देना मर्यादा के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है। ऐसे गीतों को अशिक्षित वर्ग खुलकर गाता है।

होली के साथ ही दीपावली पर गाई जाने वाली 'हीड' पर भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

हीड या हीडो

'हीड़' या 'हीडो' [1] दीपावली पर गाया जाने वाला गीत है। इसके गायक प्रायः ग्वाले होते हैं। हीड रूप से गाय, बैल और भैंसों की हीड हाड़ौती में प्रचलित है। इन गीतों मे पशुओं की स्तुतियां मिलती है और उनकी रक्षा करने वाले के यशोगान मिलते हैं। 'गाय की हीड' मे देवनारायण की प्रशस्ति है। 'बैल की हीड' इनमें सबसे

१—'हीड' या 'हीडो' शब्द सं०-ईड् धातु से सम्बन्ध रखता है कि जिसका अर्थ 'स्तुति या प्रार्थना करना' है।

अधिक आकर्षक व काव्यमयी है। बैल इन्द्रासन से अवतरित होकर आया है और पृथ्वी का भार वहन करने वाला है, पर सामाजिकों ने उसके साथ अन्याय किया; दीपावली पर उसका सुन्दरतम शृंगार किया जा रहा है आदि भाव इस गीत में मिलते हैं—

इंदरासण सैं रै धोळ्या ऊतर्‌या,
मां कै गळै रै फूलां की माळ।
मैंई तो जावो रै धोळ्या अमरत लोक मे।
थें तो खीवो रै जग्यां का भार।
जातां तो लैगा रै थांका बारणा।
थांका चरणां मैं दैगा ढोक।
बड़ा तो घरा रै धोळ्या जावज्यो।
वहां तो बसै रै सतवंती नार।
मे तो जावां अमरत लोक मैं।
म्हां तो राळां रै जग्यां को भार।
करस्यां तो दनां मैं धणी म्हारा आवैगा।
थे सदी तो करैगा संभाळ।'
'कातो तो मईनो फदक लाग रयो।
ज्यामैं आवै रै ढाळ्यां को त्वार।'

इस गीत में बैलों के प्रति किये गये अत्याचार का भी वर्णन है—

जातां ई दैगा म्हांकै सट्ठ की,
वै तो बांवड़तां दैगा रै गाळ।

पर दीपावली पर उन्हें कितने सुन्दर ढंग से सजाया जा रहा है तथा उनकी पूजा की जा रही है—

'गंगा ई जमना मैं धोळ्या म्हारा न्हाव ज्यो
थांई तल-तल च् गो मांड।
अगलां तो बगलां भूरां मांड दी।
पूठां पै मांड्यो सूरज चांद।
रंग्यो तो चंग्यो धोळ्या म्हारो दैवड़ो।
जाणै तोरण आयो बींद।
माता संजो दी रै आरत्यो।
धोळ्यां री रै, हमन की माड।'

इसी प्रकार गीत आगे बढ़ता है। गीत का अंत उन्हीं दौरवारिकताओं में होता है जिसमें अभिजात लोकगीतों का अंत मिलता है। इसमें विविध कुटुम्बियों तथा मेहरों के नाम और काम गिनाये गये हैं।

'हलजोत' के समय गाये जाने वाले गीतों में से एक गीत इस प्रकार है, जिसमें 'चौथमाता' की स्तुति है—

बाग बण्यो है भवानी, लेहा थांका मन भवा।
थांकी कलयां की जोत बड़ाई, थांका मीठू की जोत बड़ाई
राजराणी।

अब एक छायो बड़वाळो माता चौथ को।
बावड़ी बणी है हे भवानी, पणघट थांका मन भवा।
थांका नीरज की जोत बड़ाई, हे राजराणी।
मंदर बण्यो है हे भवानी, पैड्यां थांकी नव मुई।
थांका दरसण की जोत बड़ाई, रे राजराणी।

× × ×

मै तो थाने गायां हे भवानी, गाय सदावरयां।
थें तो पूरी मन की आस, रे राजराणी।
अब एक छायो बड़वाळो माता चौथ को।

'तेजाजी' गीत पुरुष-वर्ग भी गाता है और स्त्रियां भी गाती हैं। पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले 'तेजाजी' पर तो आगे स्वतंत्र रूप से विचार किया गया है। यहां स्त्रियों में जो 'तेजाजी' के गीत प्रचलित हैं उन पर विचार किया जायगा। जिसे पुरुष-वर्ग गाता है वह 'तेजाजी' एक लोकगाथा है। इस गाथा के कई मर्मस्पर्शी स्थल हैं। नारियों ने उनमें से कुछ स्थल अपने काम के चुनकर अनेक स्वतंत्र गीतों की सृष्टि की है। जलती अग्नि में नागिन भस्म हो गई और नाग तेजाजी द्वारा बचा लिया गया। तब नाग के शब्द गीत में इस प्रकार फूट पड़े हैं—

'हे मेरी मीत मलतो देकर आग लगायो।
सुण सांवत सूरा, थारे हाथ कांई आयो।
एजी मेरी जळ गई नागणी लाई छण मे।
थनै बधूं न दियो जोड़ा बछड़ाय ?,
'जी गुण करतो भोगण मान्यो रे बासक काळा।
जी बच गई तेरी जान राम रखवाळा।'
'म्हारे लागी आग बदन में आवै मन में,
डसूं थारे तांई।'

थाड़ी-पूजन या देवी-पूजन के समय जो गीत गाये जाते हैं उन पर अन्यत्र विचार हुआ है। इसी प्रकार वैशाख तथा कार्तिक-स्नान के समय भजनों का प्रचार है। देव-उत्थान एकादशी के दिन जो पद्य बोले जाते हैं वे छोटी-छोटी तुकबन्दियां सी होती हैं; यथा—

गाजर बोर चणा की भाजी ।
उठो बाबा राजी बाजी ।
गाजर बोर आंवळा ।
उठो बाबा सावळा ।

गंगोज के गीत

यहां एक अन्य उत्सव पर गाये जाने वाले गीतों पर भी विचार कर लेना चाहिये जिसको 'गंगोज' कहते हैं और जिसको हाड़ोती में काफी महत्व प्राप्त है। प्रत्येक गंगा यात्री अपने साथ गंगा के पानी को 'झरी' भर कर अवश्य ले जाता है और उपयुक्त अवसर देखकर 'गंगोज' करता है, जिसमें वह प्रीति-भोज का भी आयोजन करता और आमंत्रित व्यक्तियों को गंगाजल पिलाता है। इस अवसर पर उक्त 'झरी' की पूजा होती है और हवनादि होते हैं। 'झरी' को नदी-स्नान कराया जाता है। लौटते समय स्त्रियां पीछे-पीछे गाती हुई आती हैं। गंगोज के गीतों में से एक गीत में गंगाजी के उमंग पड़ने की प्रार्थना की गई है और उनके स्वागत की तैयारी का वर्णित है—

आयां का लेरी वारणा, देख्यां का हरख उछाव ।
अमंगो वाने चांदा बारे पाटो भीज्यो ।
पाटो भीजे, रातो भीजे, चरणां हलोळा लेय ।
गंगा माय अमंगी वाने, चांदा बारे पाटो भीजे ।
भैंस दवाऊं बालड़ी, दूध कराडूं भी पाव ।
रांधूंगी गुंदड़ी खीर, रातो भीज धोळो भीजे ।
चरणां हलोळा लेय ।

× × ×

सस-वस रांधूंगी सालणो, करड़ो सेकूंगी कसार ।
साहू तो बांधूं बाजणा, धूंघर सो दरबार ।

कभी-कभी यह झरी वर्षों में—४० से ६० वर्षों में उठाई जाती है। तब तक पात्र के अन्दर का पानी सूख जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गंगोज

अवसर पर वह सूखा सा कंकड़ पुनः पानी में बदल जाता है, इसे 'चरी प्रमंगवो' कहते हैं।

गंगोज के समय के सभी गीतों में गंगा के स्वागत की तैयारी का विधान मिलता है। उनकी स्वागत-सामग्री है—खीर, चावल, मूंग की दाल, लापसी, कसार, के लड्डू, घृत, पापड़, पापड़ियां, मिश्री, शक्कर आदि। काफी अच्छा मारवाड़ी कच्चा भोजन है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि यह गीत उस समय बना जब बड़ी-बड़ी जेवनार तक में आज के अनेक पकवान प्रचलित न थे और उपर्युक्त कच्चा खाना खिलाया जाता था। एक अन्य गीत का आरंभ बड़ा सुन्दर हुआ है—

मायां का लेसी वारणां वो रामा, देस्यां तो हरख उछाव।
तुलछयां का बड़ला में गंगाजी को घोरो।

और फिर उपर्युक्त भोजन-सामग्री का वर्णन मिलता है। अन्त में—

जीम्या छे रंज रीया मो रामा, दूधां सूं कुल्ला भराय,
चाखो न डाहल पान।
प्रधरंग राचो जीमड़ो यो रामा, दांत दांड्यूं का बीज।
बारा बंबा को देवरो दमकै सवाई जोत।
तुलछयां का बड़ला में गंगाजी को घोरो।

हाड़ोती के उर्वर क्षेत्र में कभी घी-दूध की नदियां बहती थीं, तब गंगा-माता को दूध से ही कुल्ले करने चाहिए हो।

भक्ति विषयक गीत

लोक जीवन दार्शनिकों और भक्तों का जीवन नहीं होता है। वह तो परंपराओं पर आधारित जीवन होता है। एक बार जिस मान्यता को स्वीकार कर ली वह उसमें सुदीर्घ काल तक प्रचलित रहती है। इसलिए हाड़ोती लोक-जीवन में ईश्वर को भी वह स्थान प्राप्त नहीं है जो इतर देवताओं को मिला हुआ है। गणेश, जो राम-नाम की महिमा समझने से ही सर्व प्रथम पूजे जाते हैं,[1] हाड़ोती लोक-जीवन में भी राम से अधिक प्राथमिकता प्राप्त कर गये हैं। इसीलिये प्रत्येक शुभ कार्य के आरंभ में गणेशजी के गीत मिलेंगे। भले ही उनकी भक्ति के मूल में स्वार्थी प्रेरणा रहती हो, पर इससे गणेश विषयक गीतों का महत्व कम नहीं होता है।

१—महिमा जासु जानि गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।
रा० च० मा०, बालकांड १८, २।

हाड़ौती के भक्ति-विषयक गीतों को हम चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

१—कुल देवता के गीत　　　२—ग्राम देवता के गीत

३—तीर्थ देवता के गीत　　　४—ईश्वर-भक्ति के गीत या भजन

गणेशजी के गीत

सुभीते की दृष्टि से हम देवता-विषयक स्तुतियों और प्रार्थनाओं को स्तोत्रों की संज्ञा दे देते हैं और शेष भक्ति-विषयक उद्गार भरे गीतों को भजनों के अन्तर्गत रखेंगे। हाड़ौती गीतों में स्तोत्रों की संख्या अधिक है। गणेश के स्तोत्र हाड़ौती गीतों में भरे पड़े हैं। उनमें गणेशजी के रूप-गुण की प्रशंसा है और कामना है कि आप पधार कर "अणचीती बरधड़ी" (अचिन्त्य वृद्धि) कीजिये—

> गढ़ रणत भंवर से आवो बंदायक,
> करो न अणचीती बरधड़ी।

और अन्त में जिस शुभ कार्य के लिए उनका आह्वान होता है उसका भी उल्लेख गीत के अन्त में मिलता है—

> म्हारे लाड़लो को कोर बदग्यो, रायबर की कोरड़ी।

अनेक गीतों में गणेशजी के सौंदर्य तथा शृंगार का वर्णन मिलता है और उनकी पूजा का विधान भी प्रायः गीतों में देखने को मिलता है—

> चौकी बैठ दसनान कराऊं।
> आभूषण पैराऊंगी देवा।
> गवरी सुत के गुण गाऊंगी।
> बका-बका कंदण और पहुंचा,
> बेसर लोड़ चढ़ाऊंगी।
> कौण-कौण बजदा का सोवर घूंघूं,
> नागण गळे पैराऊंगी।
> धूप, दीप, नैवेद, आरती,
> लड्डुवा का भोग लगाऊंगी।

कुल-देवता के गीत

हाड़ौती के कुल देवताओं में से प्रमुख देवताओं के गीतों का यहाँ परिचय दिया जा रहा है—

सती के गीत : हाड़ौती लोक-जीवन में गणेशजी के पश्चात् 'सती-थाड़ी' का महत्व है। प्रत्येक शुभ अवसर पर सती और थाड़ी गाई जाती है। यहाँ पर प्रत्येक परिवार की एक सती और एक थाड़ी होती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि हमारे कुल की रक्षा इन्हीं के हाथों में है। यदि ये तनिक भी अप्रसन्न हो गईं तो कुल का नाश अवश्यंभावी है। यहाँ तक देखा गया है कि परिवार में कोई व्यक्ति बीमार है, आँखें दुख रही हैं तो पास-पड़ौस की स्त्रियों को बुलाकर 'सती-थाड़ी' या माता के गीत अवश्य गा लिए जाते हैं।

सती के गीतों में उसके स्वागत व पूजा की तैयारी मिलती है, जो सती के अनुरूप होती है—

आज अमावस्या पाट पधार्या,
तो थो मंड लीपणा, थो मंड पोतणा,
थो मंड चतरणा जोग।

× × ×

आज अमावस्या पाट पधारया,
पैला बसावणा,
मेंदी-लच्छा बसावणा,
पान पतासा बसावणा,
काजल टींकी बसावणा,
सरबस गैणू बसावणा,
पैड़ा को सल्लो बसावणा जोग।

अंत मे, सती से एक प्रार्थना है कि मुझे एक पुत्र दे, अन्यथा मुझसे मेरे पति अप्रसन्न हैं तथा परिवार रुष्ट है और इस प्रार्थना को सती स्वीकार भी कर लेती है—

महामाई एक झड़ूल्यो देय।
एक झड़ूल्या के कारणे म्हारो कंत परायो,
सेज पराई, रूस्यो सब परवार।
"एक झड़ूल्या का दो ले गोरी।
यो ले थारो कंत या ले थारी सेज,
रूस्यो गोत मनाय।"
महामाई एक झड़ूल्यो देय।

थाड़ी के गीत : प्रत्येक परिवार की एक कुल-देवी होती है। चैत्र शुक्ला अष्टमी या आश्विन शुक्ला अष्टमी या नवमी को वर्ष में दो बार सारा परिवार उसकी पूजा

करता है। यहां तक कि कोई परिवार-सदस्य दूर भी हो तो उस दिन वह यथासंभव घर पर आने का प्रयास पूजा में सम्मिलित होने के लिए करता है। विवाह के अवसर पर उसका आह्वान इस प्रकार मिलता है—

> म्हारे आज ए आणंद उछाव।
> म्हारे तूंटो घाड़ो माता भाव सै।
> एक भाव करे माता घाड़ी तूठ्यां, म्हारे होया छै आणंद।
> एक सार जुग जात आस पूरी बीनवे।
> माता घाड़ो का थ्रो मंडट मैं अवड़न आऊंलो मोरिया,
> अवछळ आंबो बारे, रूंख लागे छै बरख सुवावणो।
> कोयली री मंदरी सार बोले, सोवटा रूळ आवणै।
> माता घाड़ी का थ्रो मंडड मैं,
> घी बर डवलो हाथ जोड़यो।
> आज न्हावै ए गोरो मैंमडो बोपल्यो,
> ऊंकी मैंमडी नै जाया छै लाडण पूत।
>
> × × ×
>
> पग पड़ै न्हैना मोटा सेऊ थारा, थें तूठ्यां फल पावसी।
> सगल्यां गोरयां को वंस वधाय, माता थें तूठ्या फळ पावसी।

और अंत में पुजारी को घाड़ी का आशीर्वाद उसी गीत मे इस प्रकार प्राप्त होता है—

> खाज्यो तो पीज्यो गोतो बलसज्यो
> थांके लछमी को होज्यो परगास।
> राजा तो होज्यो गोठी देस का।
> परजा देसी थाने आसीस।
> माता ओवरां की राणियां
> सब दुख नवारण्यां।

(आज मेरे आनंद और उत्साह है। मुझसे देवी मनसे प्रसन्न है। माता घाड़ी तेरे मन की एक प्रसन्नता से मेरे आनंद हो गये हैं। युगों से चली आती आशा को पूर्ण कर दिया है। हम प्रार्थना करते हैं। घाड़ी माता के मंदिर में सुन्दर आंवला तथा मोगरा शोभा पा रहे हैं। एक सुन्दर आम का पेड़ बाहर है, वह वृक्ष बड़ा शोभायमान प्रतीत होता है। कोयल धीमे स्वर मे बोलती है और शुक भी आंगन में मधुर स्वर में बोल रहा है। घाड़ी माता के मंदिर में हाथ से दीपक घृत से भर कर ज्योतित किया है। आज मस्त गोरा पुजारी स्नान कर रहा है; क्योंकि उसकी मस्त पुजारिन ने प्यारे

पुत्र को जन्म दिया है।'''समस्त छोटे-बड़े व्यक्ति तेरे पैरों में प्रणत हैं। तू प्रसन्न होगी, तो फल मिलेगा।'''पौत्रो, तुम माता-पिता और फलना-फूलना। तुम्हारे लक्ष्मी की सम्पन्नता रहे। तुम किसी देश के राजा होना और प्रजा तुम्हें आशीर्वाद देगी। तुम्हारी रानियां दूसरे के समस्त दुःखों को माता के समान निवारण करे)[1]

उपर्युक्त 'धाड़ी' विवाहादि में गाई जाती है। जापे या प्रसव के समय की धाड़ी इससे भिन्न है, जिसमें पुत्र की मंगल-कामना के लिए आशीर्वाद चाहा गया है और देवी का आशीर्वाद मिलता भी है कि यह घर नीम के वृक्ष के समान फले—

यो घर फळज्यो कड़वा नीम ज्यूं, लाछमी को होज्यो वोढ़ाव।

स्थानीय देवता के गीत

बालाजी, भैरूजी, ऊदजी, रसयाजी, कुमारजी, छप्पनजी, पत्तरेसरजी आदि ऐसे देवता हैं जो स्थानीय कहे जा सकते हैं। ये स्थानीय देवता गांव की और परिवार की रक्षा करने में समर्थ हैं। अतः इनका भी स्मरण समय-समय पर स्त्रियों द्वारा कर लिया जाता है। इनमें से कुछ देवता वर्ग-विशेष से सम्बन्धित हैं। सभी वर्ग की स्त्रियां इन्हें नहीं गाती हैं। उदाहरण-रूप में, कुमार जी के गीत ब्राह्मणों में अति अल्प सुने जाते हैं। छप्पन जी का क्षेत्र कोयला, बारां के आस-पास तक ही सीमित है। शेष हाड़ौती में इनके गीत नहीं मिलते।

उपर्युक्त देवताओं के गीतों में बालाजी के गीत अधिक मिलते हैं। हाड़ौती मान्यता के अनुसार बालाजी भी दो प्रकार के हैं—भक्त और वीर स्त्रियां केवल भक्त बालाजी के प्रति ही अपनी भक्ति दिखलाती है। वीर बालाजी की तो वे विभूति तक नहीं लेतीं, क्योंकि उनका विश्वास है कि वीर बालाजी की उपासना डाकिनें करती हैं।

बालाजी के एक गीत में सकाम भक्ति का यह रूप मिलता है—

बेटा के कारणै बोल्या छै बोल।
सांई के कारणै हणुमत पूजिया॥
पूज्या छै हणुमत दीनो छै ढोक।
गोद भड़ूल्यो ले घर आइया।

अन्य गीत में उनके शृंगार का वर्णन है—

नारेळ्या सीस में टोपी बोत खुलै छै जी
मूंगफळी सो आंगळ्यां में बीट्यां तो बोत खुलै छै जी।

१—'धाड़ी' गीत की भाषा में शब्द इतने विकृत हो गये हैं कि अर्थ सहसा में नहीं आता। अतः अर्थ देने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

'रंगवाड्यां का बालाजी' का गीत हाड़ौती में अति प्रसिद्ध है।

'भैरूजी' के गीत में इस प्रकार का वर्णन मिलता है—

"री तू उदयापर की गूजरी, डाळ नमावै कळयां बीणै।
गूंथ गळा की माळ।"

"म्हूं गूं'घूं जी रंग रसिया भैरू, घर बाळां की माय।"

रत्याजी और भैरूजी की मान्यता निम्न-वर्ग में अधिक मिलती है, सम्भवतः गूजरों में। इसलिये रत्याजी के गीत में भी 'ज्या रे गूजर की बेटी' का उल्लेख मिलता है।

'पतरेसर' गीत में पतरेसर को मोगरे की कलियां अर्पित करने का वर्णन मिलता है। 'ऊदजी' गीत में ऊदजी को जोरावर जोधा कहा गया है जिन्होंने युद्ध में भाई बेटों को हराया—

देखो जोरावर जोदा ऊद गाद्दी पर बैठो।

× × ×

ऊदजी तो जीत्या भाई बेटा हार्‌या।

चारभुजाजी और मथरानाथजी के गीत : बूंदी और कोटा जिलों के केन्द्रों में क्रमशः चारभुजाजी (चतुर्भुज) और मथुराधीश के अति प्रसिद्ध मंदिर हैं। इनके दर्शन करने के लिए दूर-दूर से यात्री आया करते हैं। लोक-जीवन में इसीलिये इनकी मान्यता रही है।

एक गीत में चारभुजा की स्तुति इस प्रकार मिलती है—

ऊंचा ऊंचा मंदर लाल धजा फरभूई मंदर की देखो दरा।
मंदर सामै गरुड़जी बराजे, दरवाजा में हनती खड़ा॥
गढ़ बूंदी बराजे चार भुजा, गढ़ गोर बराजे च्यारभुजा।

और एक अन्य गीत में मथुरानाथजी का इस प्रकार वर्णन है—

सरी मथुरेस धणी रंग भीना, म्हारो मनहर लीनो मा।
मोर मुकट माथे पर भारी, पचरंग पाग फुनंदी॥
आगो फेरयां चदरणी भीणूं, म्हारा मन हर लीनो मा।

तीर्थ-देवता के गीत

हाड़ौती क्षेत्र के सबसे अधिक यात्री बद्रीनारायण की यात्रा को जाते हैं और मार्ग में ब्रज के आवरण के भूमों के दर्शन भी करते हैं तथा लौटते हुए दिल्ली में और

के दर्शन भी कर आते हैं। इसलिए हाड़ौती गीतों में बद्रीनारायण, कृष्ण और मीरां के अनेक गीत मिलते हैं।

'बद्रीनारायण' के एक गीत में बद्रीनारायण से दर्शन देने की प्रार्थना की गई है। इसी गीत में मार्ग की कठिनाइयों का भी वर्णन मिलता है—

> सुणो बदरीनाथ बिनाता, थां दरसण दो परतीपाळा।
> परभू सीसो नै डोर हमारी, म्हारै दरसण की बलिहारी॥
> परभू मारग घडरिया भारी, परबत चढ़तो म्हूं हारी।
> परभू सतमग सूनो बांको, गमल सुई को नांको॥
> परभू मूना में भाई आवै, म्हांनै थत चरणां में जावै।
> परभू बकरा की बाळर धाई, नाज पड़ी भर लाई॥
> परभू दासी मीरां गावै, म्हांरो चत चरणां में जावै।

हाड़ौती में मीरां के नाम पर न जाने कितने लोक-गीत चढ़े हुए हैं और प्रचलित हैं। मार्ग की कठिनाइयों के साथ भक्त की दृढ़ निष्ठा का वर्णन इस गीत में मिलता है—

> हाथ लकड़ियां भारी सांवरा, खांदै कामळियां भारी।
> परवत चढणूं जरूर, बदरी विसाल जी सूं मलणूं जरूर॥
> कठण केदारनाथ जी सूं मलणूं जरूर।
> गरत गंगाजी में न्हाणूं जरूर।
> बूढ केदारजी सूं मलणूं जरूर।
> नत उठ न्हाणो मांवण एक टक जीमबो।
> प्यादल चलणों जरूर।
> धरत्यां को सोबो सांवरा, कांवळा को ओढबो।
> दरसण द्यो न भरपूर।

कृष्ण-लीला सम्बन्धी गीतों का वर्णन अन्यत्र भी किया गया है। यहां एक गीत राधा-कृष्ण की लीला का दिया जाता है—

> हाथां में छल्ला मूंदड़ी जी पायल के झणकार।
> छुगल्यो तो लीनूं छूमलें साथ सहेलियां के झुण्ड,
> राधेजी पाणीड़ो चाल्या जी।
> चुगल्या तो मैल्या जळ की तीरं पै जी, कान्हा नै हेला देय।
> म्हानै उचाय जावो बेवड़ो, म्हारी सासू सुगनी का पूत।

× × ×

आबा दे रे म्हारा करसन कन्हैया ने मार उड़ावे थारी खाल ।
अनोखी राणी मोड़ा क्यूं आया जी ।
देखो तो राधे मोड़ा आया जी ।
मैं रे गई छी सासू एकली, मैं रे सगाई एती बार ।
आबा दो रे म्हारी संग की सहेलियां, म्हूं रे बात दूं बताय ।
सासू जी गाळी मत काढो जी ।

राधा और कृष्ण का जो रूप सूर तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने अपनाया था उसकी लोक-मानस में किस प्रकार परिणति हुई, यह इस गीत से स्पष्ट हो जाता है। यहां आकर राधा पत्नी बन गई और कृष्ण पति तथा यशोदा सास का अधिकार प्रदर्शित करके राधा को गाली तक देने लगी।

श्री जी के गीतों में उनके रूप-सौंदर्य का वर्णन मिलता है और उसका प्रभाव भी भक्त-हृदय पर दिखाया गया है। नीचे जो गीत दिया जा रहा है वह 'मीरा के परभू गिरधर नागर' की छाप से युक्त है—

सखी जी कंवळ सरीखा नेतर तमारा,
चत मन मेरो हर लीनो ।
रात दीस मोहि कळ न पड़त है ।
कांई जाणां कोई जादू कीनो ।
तू जो रंग रसियो रंग भीनू ।
नाथ थारी सूरत ने जादू कीनू ।
सखी जी जोवूं जतरे खड़ी ने बीसरूं,
योई नीम मने लीनू नाथ० ।

'जगदीश' के गीत में भगवान से प्रार्थना है कि आप मुझे जल्दी दर्शन दीजिये, मैं महान् दोषी हूं आप ही मुझे अपना सकते हैं—

रात-दीस मोई कळ न परत है, तलफ-तलफ दन रैण ।
दरस मोहि बेगा दीज्यो जी ।
दरस मोहि बेगा दीज्यो जी, म्हारा मन मोहन जगदीस,
खबर मोरि बेगा लीज्यो जी ।
गुण तो म्हां में एक नईं है पण औगण भरया छै अनेक,
औगण म्हारा माफ कीज्यो जी ।
भोग मंडी में भोग होवे छै परभू छप्पन कोटी लागे भोग ।
दरस मोहि बेगा दीज्यो जी ।

इनके अतिरिक्त नाथद्वारा के श्रीनाथ, केदारनाथ आदि के अनेक गीत स्त्रियों के कलकंठों से समय-समय पर सुने जा सकते हैं।

भजन (ईश्वर भक्ति के गीत)

उपर्युक्त गीतों में और भजन शीर्षक के अन्तर्गत विचार किये गये गीतों में कोई तात्विक अंतर नहीं है; जैसे, 'म्हारा मघरेस धणी रंग भीना, म्हारो मन हर लीनो सा' गीत एक भक्त हृदय की पुकार है और भजनों के अन्तर्गत यह सहज ही स्वीकार्य हो सकता है। पर यह वर्गीकरण सुभीते की दृष्टि से कर लिया गया है। भजनों को भी हम दो मोटे वर्गों में बांट सकते हैं। भक्ति-रस प्रधान भजन और शांत-रस प्रधान-भजन। भक्ति-रस प्रवृत्ति-मूलक है क्योंकि इसका स्थायी भाव भगवद्विषयक रति होता है और शांत-रस निवृत्ति-मूलक है क्योंकि इसका स्थायी निर्वेद या शम होता है। भक्ति प्रवृत्ति-मूलक होने पर भी सांसारिक दृष्टि से तो निवृत्ति-परक होती है और शांत-रस निवृत्ति-मूलक होने पर भी परम ब्रह्म परमात्मा की ओर प्रवृत्ति-परक दृष्टिकोण अपनाता है। हाड़ौती गीतों में दोनों प्रकार के दृष्टिकोण मिलते हैं। कुछ गीतों में व्यक्ति के शरीर व संसार की नश्वरता की अच्छी अभिव्यक्ति मिलती है। एक गीत में सकल संसार चर्ममय दिखाया गया है और भगवद्भजन की प्रेरणा दी गई है—

> चामड़ा की पूतली भजन कर ले।
> चामड़ा का हाथी घोड़ा चामड़ा का ऊंट।
> चामड़ा का बाजा बाजे चारूं ईं खूंट।

समस्त संसार चर्ममय है। अतः नाशवान है, शाश्वत नहीं है। इसलिये जीवन के तात्विक सत्य को समझ कर राम-भजन करने का उपदेश कबीर भी देते हैं—

> मूंठी बांध्यो आयो जगत में, जावैगो खोल मूंठो।
> अखियां से तो चोख बंदा, हिया की क्यूं फूटी।
> दनया, दौलत, माल-खजाना धरया रहत खूंटी।
> आखियां तो तेरी होई रे बंद, का जंदगानी झूंठी।
> फैली बेड़ा पड़्या संमद में, दूसरी नाव छूटी।
> कहत कबीर सुणो भाई साधो, या छै नज बूंटी।

और इसलिये उपदेश देते हैं—

> सदा रहो अलमस्त भजन में, पी ले रे बूंटी।
> राम का घोटा, मन की कूंडी, ग्यान की रगड़ बूंटी।

कबीर के अनेक भजन हाड़ौती लोक-जीवन में समा गये हैं। कबीर के पदों में से जिन पदों से हाड़ौती लोक-जीवन प्रभावित हुआ है वे शांतरस-प्रधान पद ही हैं। उनकी उलटबांसियों से तो वह घृणा सी रखता प्रतीत होता है। अतः उन्हें 'गप्पें' कहता है—

सुनो रे भाई गप्पों में जीतेगा कौन।
एक अचंभा मैं सुण्या भाई कुएं में लागी आग।
पांणी पांणी जळ गया अो मंछलो खेले फाग। [1]

कबीर के अतिरिक्त मीरां, चंद्रसखी, ब्रह्मानंद, सूर आदि के पद लोक-जीवन में अत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। मीरां का अति प्रसिद्ध पद तो प्रायः सुनने को मिलता है—

बसो म्हारा नैणां में नंदलाल।
सांवळी सूरत मोयनी मूरत, नैणां बण्यां बसाल।

उसका दरद का दीवानापन आज भी संगीत के स्वरों में गूंजता रहता है। मीरां मेवाड़ की है। मेवाड़ और हाड़ौती में सांस्कृतिक और सामाजिक आदान-प्रदान रहा है। मेवाड़ तो शताब्दियों से राजस्थान के शौर्य का केन्द्र रहा है। अतः हाड़ौती ही क्या, मीरां के मधुर गीतों की माधुरी से सारा उत्तरी भारत प्रभावित है।

'चंद्रसखी भज बाल कसन' की छाप से अनेक गीत हाड़ौती में मिलते हैं। उक्त छाप के अतिरिक्त भी चंद्रसखी नाम से अनेक भजन पाये जाते हैं। एक हाड़ौती *भजन में चन्द्रसखी आत्मा को सम्बोधन कर रही है—*

आत्मा रो आतमा, पर घर तो मत जारी।
कथा सुण जे कान दे, ले हरी को नाम।
दो घड़ी बसराम लीजे, पाछै घर को काम।
म्हारी परम संतोसण आत्मा, थू भज ले री गोपाल।
राजी रै री दीनानाथ सूं।
आतमा रो आतमा, गंगा न्हा'या न गोमती, चल्या न गड़ गरणार,
बणज्यारा का बैल ज्यूं, गया जमारो हार।

× × ×

१—तुलना कीजिये—

समंदर लागी आगि, नदियां जल कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूखां चढ़ि गई।
(कबीर ग्रंथावली, पृ० १२)

चन्द्रसखी की बीनती सुणज्यो सरजण हार।
हाथ जोड़ अरजी करूं, म्हारी आवागमन निवार।

एक अन्य गीत में, जिसमें 'चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण' की छाप है, मनुष्य को मुसाफिर की संज्ञा दी है और सावधानी से भक्ति करने के लिए कहा है—

न घर तेरा न घर मेरा, ग्यारह दीना डेरा।
मुसाफर सर फेरैगा माळा।
पारा कटै जीव का जाळा।
तू तो ले ले रे म्हल झरोखा,
ज्यांरा जुड़ग्या ताळा।
तू तो ले ले रे बेटा पोता,
गरब भरयो मत बोलै रे।
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण,
हरी चरण के चत लागो रे।

चन्द्रसखी के गीत अत्यन्त सरल सुबोध भाषा-शैली में मिलते हैं और लोक-जीवन को सीधे प्रभावित करने वाले हैं। इसीलिये ही उनका अत्यधिक प्रचार है। एक गीत में मनुष्य के शरीर को अमूल्य बतलाकर अत्यन्त मार्मिक ढंग से उद्बोधन किया है—

नर तेरा चोला रतन अमोला।
बरथा खोवै मतीना, नींद भर सोवै मतीना।
नर तेरी देई रे मानस की, भगती कर जिसमे ईश्वर की।
सुध-बुध भूल गया उस घर को, गाफल सोवै मतीना।

× × ×

देखे हरीचंद सा दानी, कासी में बक गये संभू प्राणी।
वानै भरयो नीच घर पाणी, बाद में रोवै मतीना।
देखे माता, पिता, सुत, नारी, ये सब मतलब के खातरदारी।
खेता केसोराम ब्रह्मचारी, ई में मोवै मतीना।

'कलजुग में राजा भरथरी' कहकर गाये जाने वाले अनेक गीतों में राजा भर्तृहरी के जीवन की कुछ ऐसी झाकियां मिलती हैं जिनसे विरक्ति-भाव की पुष्टि होती है—

"थे तो छो जोगी म्हे छां जोगण्यां
हलमल मांगां जोग, राजा भरथरी।
केसर चन्दन छोड़ के राजा, लीनी छै बभूत रमाय।

युक्तियां बतलाईं, पर वे राधा को पसंद नहीं आईं। ये युक्तियां व प्रसंग परंपरागत नहीं हैं, अपितु मौलिक उद्‌भावना के परिचायक हैं—

> राजा राणी हार घड़ाइयो, फेर मंदर गिया जी, हरस्या सरी भगवान।
> हार खोल खूंटयां धरयो, राधेजी सो गया सुख भर नींद।
> पौ फाटी फगड़ो होयो, राधेजी की उचटी नींद।
> नींद उचट चत खूंटयां गयो, राधेजी का मन में उपज्यो सोच।
> 'हार दोजी म्हारा स्याम, कंठ लागे है रूलावणो।'
> 'राधेजी म्हानें हार न लियो, काळा नाग छुड़ाय।
> हार लियो तो खाटसी, नतर खाटे न कोय।'
> 'सात समंद बलोइया, समंद बलो नेता करया, नागनाग नेता करया।
> जीं दन तो खाटयो नईं, अब क्यूं खाटे म्हारा स्याम?'

× × ×

> नरसी जी भगत स्वामी आपका, टूटो सरी भगवान।
> हाथ जोड़ राधे जी खड़ा, फोड़ो सरी भगवान।
> हंसत मुसत स्वामी उठिया, हारज दियो बताय।
> यो लो जी राधे जी थांको हार, कंठ लागे छै सुवावणो।

ऐसी न जाने कितनी मौलिक कल्पनाएं हाड़ौती लोक-साहित्य में भरी पड़ी हैं।

एक अन्य गीत में राम-जीवन से प्रसंग चुनकर गंगासागर ने एक गीत की सृष्टि की है। भरत (?) माता से पूछ रहे हैं कि तुमने राम को बनवास क्यों भेजा—

> राम चले बनवास आज क्यूं भेज्या री माई।
> माता कहे औतार ज्यानकी संग लछमन भाई।
> भेज दिया बनवास, मात तनें दिया नईं भाई।
> राम री लछमन, भरत, सत्रघन है चारंघू भाई।
> भेज दिया बनवास मात तनें दया नईं आई।
> राजा जसरथ जी ने प्राण तज्या है, छन में सुरती पाई।
> 'गंगासागर' कहत हरी को स्मरण कर भाई।

पर उपर्युक्त पद में 'राम चले' शब्द प्रसंग की कल्पना में बाधा डालते हैं। यह कथन किसका है, यह गीत से स्पष्ट नहीं हो पाता।

बालिकाओं के गीत

बालिकाओं के गीत उनके सरल और भोले हृदय की उपज होते हैं जिनमें जीवन के प्रति उनके निर्भ्रान्त दृष्टिकोण का पता चलता है। उनका जीवन राग-विरागों के जटिल संघटित रूप से प्रेरित न होकर उन सरल भावनाओं से प्रेरित होता है जो मानव-जीवन के प्रारंभिक काल में मनुष्य में रही होगी। कहीं आनन्दप्रद वस्तु को देखा और वे नाच उठीं, कहीं करुण प्रसंग पर वे आठ-आठ आंसू बहाने लगी और कहीं मानव की चोंच ने उनमें करुणा का संचार कर दिया। न जाने कितनी सरलतम भावनाओं की अभिव्यक्तियां उनके गीतों में मिलती हैं।

श्रावण मास आया हुआ है, चारों ओर हरियाली छायी हुई है तथा मोर नाच रहे हैं। तब उनका भी मन-मयूर नाच उठता है। उनके भीतर बैठी कोयल कूक उठती है—

छोटी मोटी सैंया रे सावन का मेरा झूलना।
नन्हीं नन्हीं बुंदियां रे सावन का मेरा झूलना।
एक झूला डला मैंने बाबुल जी के राज में।
संगी सहेली रे सावन का मेरा झूलना।

इस अवसर पर बालिकाओं में जो हर्ष छाया रहता है उसे 'आनन्द' की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि इस गीत की भाषा हिन्दी है, पर हाड़ौती क्षेत्र में इसका इतना प्रचार है कि इसे हाड़ौती का न कहना इसके साथ अन्याय होगा।

बालिकाओं के गीतों में भावों की सरलतम अभिव्यक्ति मिलती है। एक बालिका अपनी उस स्थिति को प्रकट कर रही है, जिसमें वह कल पराई होकर ससुराल जाने वाली है और उससे माता, काकी आदि प्रसन्न हैं—

उड़ जाऊंगी री माय पंख लगाय।
थोड़ा दना की फादणियां।
म्हारी माबू भी मूंडे तो बोल।
मां परदेसी कोयलियां।
उड़ जाऊंगी री माय, पंख लगाय।

ऊपर से देखने पर बालिकाओं के गीत अर्थ गाम्भीर्य-रहित तुक-बंदियां सी लगती हैं। ऐसा कुछ गीतों में होता भी है जिनका एक पद तो केवल ऊपर के पद की पाद-पूर्ति के लिए रखा जाता है—

छोटी सी थाळी चांदी की।
जै बोलो महात्मा गांधी की।

ऐसी ही पादपूर्ति एक 'मेंडकी' गीत में भी मिलती है, पर वहां मर्म-गांभीर्य भी है। 'मेंडकी' गीत उस समय गाया जाता है जब वर्षा नहीं होती और अकाल सिर पर मंडराने लगता है। उस समय छोटी-छोटी बालिकाओं के सिर पर मिट्टी की मेंडकी बनाकर रख दी जाती है। ये समूह में एक घर से दूसरे घर तक गाती हुई जाती हैं। वहां प्रत्येक गृह-स्वामिनी उनकी मेंडकी पर लोटा भर पानी डाल देती है और बालिका जल-स्नाता हो जाती है। उस समय जो गीत गाया जाता है उसके भाव अवसर के उपयुक्त है—

'मंदर राजा पाणी बरसाओ,
छोरा छोरी तसायां मरे छै।
'बरसेंगा बरसावेंगा।
बाण्या की छाती कुटावेंगा।'

और आगे के वर्णनों मे इसी वर्षाभाव का वर्णन मिलता है। 'बाण्या की छाती कुटावेंगा' में वणिक की अकाल के समय की लोभ की मनोवृत्ति पर तीखा प्रहार किया गया है।

हाड़ौती की बालिकाओं का सबसे प्रिय गीत 'सँजा' है जिसे वे संपूर्ण आश्विन-कृष्णपक्ष मे कई बार गाती हैं। गाने का समय संध्या का होता है। इससे पूर्व समस्त पक्ष-भर मुख्य द्वार के यथा-संभव समीप दीवार पर गोबर द्वारा विभिन्न चित्र बनाती रहती है और उन्हें विभिन्न फूलों की पंखुड़ियों से सजाती रहती हैं। वे चित्र चांद्या (चंद्रमा), जनेऊ (यज्ञोपवीत), ढोल्यो (ढोलो), कागलो (कौवा), पोळ्यो (द्वारपाल), सात्यो (स्वस्तिक), घेवर, चोपड़, बीजणू (पंखा), बावड़ी मनुष्य आदि के होते हैं। आश्विन कृष्ण-पक्ष की अमावस्या से २–३ दिन पूर्व बड़ी 'सँजा' बनाई जाती है। जिसे शुक्ल पक्ष आरंभ होते ही मिटा दिया जाता है और उसे नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। यह चित्रकला की शिक्षा का एक रूप है।[1]

इस सँजा के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उनमें सँजाबाई नामक किसी ऐसी बालिका का उल्लेख मिलता है जिसका ससुराल अजमेर में था और विवाहोपरांत सांगानेर गई थी—

सँजाबाई को सासरो गढ़ अजमेर।
परण पधारया सांगानेर।
छोड़ो थांकी चाकरी, पधारो थांका देस।

इस गीत मे आनुप्रासिक छटा के साथ वर्णन आगे बढ़ता है—

१—विशेष जानकारी के लिए देखिये-श्याम परमार, मालवी लोक गीत, पृ० ४१ से
।

बालिका के 'हृदय की अभिव्यक्ति 'लाडो' गीतों में भी मिलती है। कन्या के पिता वर की तलाश में जाते हैं। उस समय भोली-भाली बालिका अपनी बुद्धि के अनुसार पिताजी से कहती है—

> "बाबा जी दादाजी अरणां घरां दीज्यो जी राज,
> झरोखा बैठी दांतण करूं'।

और जब पिता कह देता है—

> बाई के अनधन भरया छै भंडार, कावड्यां सूं पाणीड़ो भरे,
> बाई के बामण तपै छै रसोयां।

तब वह प्रसन्न हो जाती है।

एक अन्य गीत में एक बालिका का विवाह कर दिया गया है। ससुराल में पहुंचते ही उसको पारिवारिक कार्यों में जुटना पड़ा। खेलने की अवस्था अभी गई नहीं है। अतः उसको प्रत्येक गृह-कार्य से झुंझलाहट होती है और अपनी सहेलियों में खेलना चाहती है—

> खेलबा री बार सासू गोबर करावै।
> फांक जाऊंगी ठेपलो, उड़ जाऊंगी म्हारै पीर।
> चंदा चांदणी सी रात, आयो साथण्यां को झुंड।
> सासू खेलबा न देय।

इस प्रकार बालिकाओं के गीत उनके जीवन के नाना रूपों से निकलते हैं। उनके गीतों में हाड़ोती बालिका-जीवन की झांकी देखी जा सकती है।

लोक गीतों की प्रगतिशीलता

यद्यपि लोकगीत हमारी अतीत की मान्यताओं, परंपराओं और स्वीकृतियों की रक्षा का दायित्व वहन करते हैं, फिर भी वे रूढ़िग्रस्त नहीं होते हैं। वे युग के साथ बदलते चलते हैं और नये-नये रूपों मे प्रकट होते हैं। प्राचीन विचारों के प्रति आस्था लोकगीतों की विशेषता होती है, पर नवीनता से वे आंखें मूंदे नही रहते। किसी भी नवीन मान्यता को वे आरम्भ मे स्वीकार नही करते हैं। वे लोक के भावों की अभिव्यक्ति होते हैं। लोक-मानस भी सहसा किसी नवीनता को अपनाने में झिझकता है। जब [illegible] बहुत आगे निकल जाते हैं तब लोक-मानस उनके द्वारा पीछे छोड़े विचारों को कर एक कदम आगे बढ़ता है और जब व्यक्ति उससे भी आगे चला जाता है तब [illegible]रे-धीरे चलकर वहां पहुंचता है। लोक-साहित्य इसी प्रकार लोक-मानस का करता है। लोक-मानस की एक विशेषता और देखने में आती है कि वह

मृत आदर्शों को भी बहुत दिनों तक मृत वानर-बालक के समान चिपकाए रहता है। उन्हें छोड़ता भी है, पर बहुत बाद में।

प्रारंभ में तो किसी भी नवीन बात की जो प्रतिक्रिया लोक-मानस में होती है वह लोक गीतों में देखने को मिलती है—

देखो बारी जच्चा ने जुलम किया, अंग्रेजी जाप्ता सरू किया।
दाई को बुलाना छोड़ दिया, बेगम को बुलाना सरू किया।

यद्यपि खाने-पीने में आज अतीत से काफी अन्तर आ गया है, पर आज भी गंगाजी के स्वागत के जो गीत गाये जाते हैं उनमें अतीत के सर्वश्रेष्ठ भोजन का ही वर्णन मिलता है—

चावल रांधूं ऊजळा हरिया, मूंगां की दाळ।
लस-पस रांधूंगी लापसी, करड़ो सेकूं यो कंसार।
लाडू तो बांधूं बाजणां पूंजां सो परवार।

पर यदि ध्यान से देखा जाय तो लोकगीतों में सभी क्षेत्रों में प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर होती है। देवताओं के क्षेत्र में प्राचीनतम गीत धाड़ी-सती के मिलते हैं, पर कालान्तर अन्य देवता भी स्थान प्राप्त करते गये हैं। जब लोग यात्राओं के लिए डिग्गी, बद्रीनारायण आदि तीर्थों पर जाने लगे तो उनके ही गीत गाये जाने लगे—

हाथ लकड़िया भारी, सांवरा खांधे कमळिया भारी।
परवत चढ़णू जरूर, बदरी बिसाल जी सूं मलणू जरूर।

बना का रूप भी प्राचीन के साथ-साथ नवीन भी होता चला जा रहा है। एक हिन्दी से प्रभावित गीत में बना 'कांग्रेसी अफसर' बनना चाहता है और वह सुने वालो वाला है—

खुला बाळा सूं खड़ो बनो बाबाजी सूं अरज करै।
×   ×   ×
भला दो नाम कांगरेसी में, बनूं पूं कांगरेसी अफसर।

के साथ चपरासी लगा हुआ है—

चपरासी, पर्सो आबा ने दूंगी।

की मृत्यु के उपरांत नुक्ता भोज में परंपरागत दास-
की ओर से होता है, पर पति तो कहता है—

मैं रे माला गेऊंदा भरया छे रे।
आप्यां तो घर दो रे।'

थें दूर खेलण मत जावो जी।
मरलाई छूं कवा को फाणी।

×　　×　　×

बना म्हारा बेवड़ा को नाम हजारी।
म्हारी डूमळी को नाम नाराणी।
भरलाई कवा को पाणी।
बना म्हारी नातणी को नांव गुलजारी।
बालटी को नाम गोराली।
भरलाई कवा को फाणी।

जिन्हें साहित्यिक पारिभाषिक शब्दों के द्वारा काव्य को रसास्वादन करने का अभ्यास है, वे इसे वात्सल्य रस के अन्तर्गत ले सकते हैं। वात्सल्य के वर्णनों में सुंदरतम उदाहरण लोरियां होती हैं जिनका हाड़ौती गीतों में प्राचुर्य है—

मा री वड़ी रंग-रोळ करां।
मामा का पगल्या केसर में करां।
मोरां का पगल्या धूळ में करां।
म्हारा मामा का पगल्या केसर में करां।

एक और लोरी देखिये—

सोजा न्हैना एक घड़ी।
नींदड़ली थू कहां मड़ी।
आजा नींदड़ आजा री।
माया ने बेग सुलाजा री।

शृंगार रस

शृंगार रस के गीत हाड़ौती में अनेक हैं, जिनमें संयोग और वियोग दोनों के चित्र मिलते हैं। संयोग के चित्रों में हृदय की उमंगों का भी वर्णन है और कायिक सामीप्य का भी। इनमें प्रथम प्रकार के वर्णन अधिक हैं। संयोग में कभी लहरिया भीगने के प्रसंग से प्रेम का स्फुरण होता है, कभी पति-पत्नी में हास-विलास चलता है, कभी होली खेली जाती है और कभी नायक द्वारा नायिका को अंग तक पान में रसकर दे दी जाती है—

पाना की बड़ीयां दे गयो, संध्या मरनोदन में टाणी रे।
आधी रात पयर को तड़को, जद मोय बड़िया बीनी रे।
उन बड़ियां में जादू दूणां, ...कर डाली रे।

पर गीतों में संयोग की अपेक्षा वियोग शृंगार के वर्णन अधिक मिलते हैं। वियोग शृंगार के चार प्रकार होते हैं—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण। करुण को छोड़कर शेष सभी प्रकार के वियोग गीतों में मिलते हैं। मान-मनावन का एक चित्र देखिये—

गोरी सूती सेज पै, मुख पै डाल रुमाल।
नयन गुलाबी हो रया, पिया करै मनवार।

शास्त्रीय दृष्टि से इस नायिका को खंडिता कहेंगे। इसी खंडिता नायिका में ईर्ष्याहेतुक मान को जन्म देने वाले संयोग चिन्हों का नीचे के दोहे में वर्णन मिलता है—

काजळ को कोटो लग्यो, मैं' दी को मा डाळ।
पीतम की बोल्यां लगी कोई, सालै बारा मास।

प्रोषितपतिका नायिका के अनेक वर्णन हाड़ौती गीतों में भरे पड़े हैं। शरद-ऋतु आई और प्रियतम नहीं आये। इसलिए वह संदेश भेज रही है—

सोग्यो म्हारी जोड़ी का भंवर जी सूं जाय।
यो तो आड़ो जुलम पड़े छै जी राज।
रळन सियाळो लागियो, ठंड पड़े असराळ।
बादर बैठी मोसळी, सियां मरै भरतार।

एक अन्य प्रोषितपतिका की दशा बड़ी दयनीय चित्रित की गई है—

ए म्हानै बेगो घर पधारो जी म्हारा मतवालिया।
ऊंची तो पाळ तलाब की मंमदारियो हलोळा ले छै जी।
म्हारा मतवारिया।

× × ×

ए म्हानै रोळूं तो थांरी आवै जी म्हारा मतवारिया।
म्हानै सुवड़े पान न भावै जी।
जो म्हूं तो घुल-घुल पीळर होगी जी म्हारा मतवारिया।

इसमें 'दैन्य', 'विषाद' व 'चिन्ता' संचारियों की कितनी सुन्दर व्यंजना है। घुल-घुल कर पीळर होना और मुख से पान न भाना अनुभाव है। समुद्र के समान तालाब का लहराना उद्दीपन है तथा आलम्बन नायक है, जो दूर देश चला गया है जिसने कर्तव्य स्मरण से रौद्र रसों की ध्वनि निकलती है।

विप्रलंभ शृंगार के अनेक गीत हाड़ौती में मिल जाते हैं जिनमें विरह की दश अवस्थाओं का चित्रण मिलता है। इन गीतों में भाव-छंदों को ही अधिक

शान्त तथा भक्ति रस

शृंगार के पश्चात् सबसे अधिक गीत हाड़ौती में शान्त तथा भक्ति रसों के मिलते हैं । ऐसे रसों के वर्णनों में संसार की नश्वरता और परमात्मा के प्रति अनुरक्ति का चित्रण मिलता है । संसार क्षणभंगुर है । उसके नश्वर उपकरणों के ज्ञान के रूप उद्बोधन की इतनी सरल अभिव्यक्ति कम ही स्थलों पर दिखाई देती है—

चामड़ा की पूतळी भजन कर ले ।
चामड़ा का हाथी, चामड़ा का ऊंट ।
चामड़ा का बाजा बाजै चारूं ईं खूंट ।

इसी भाव को मनुष्य को मुसाफिर बतलाकर एक अन्य गीत में इस प्रकार ध्वनित किया गया है ।

न घर तेरा, न घर मेरा, छापर दीना डेरा ।
मुसाफिर कद फेरैगा माळा ।
थारा कटै जीवड़ा का जाळा ।

'कटै जीव का जाळा' में पुनर्जन्म की समाप्ति का लक्ष्य है । तू मुसाफिर है अतः तुझे घर बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

भक्ति रस के वर्णन विविध देवी-देवताओं के स्तोत्रों तथा भजनों में भरे पड़े हैं । निम्न गीत में भगवान से जो स्तुति की जा रही है वह कितनी स्वाभाविक तथा हृदय से निकली हुई है—

रात दोस मोई कळ न पड़ै है, तलफ तलफ दन रैन ।
दरस मोहि वेगा दीज्यो जी ।
दरस मोहि वेगा दीज्यो जी, म्हारा मन मोहन भगवान ।
खबर मोरि वेगा लीज्यो जी ।

हास्य रस

हास्य रस के उदाहरण भी लोकगीतों में मिल जाते हैं । एक [illegible] की पत्नी को [illegible] ने [illegible] दिया । अपनी पत्नी के प्रति वह [illegible] कैसे सहन हो सकती थी । अत: वह भी [illegible] लेकर निकल पड़ा और [illegible] —

[illegible] में, [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible], [illegible] ।
[illegible] ।

मांछर हेरण नीसरया, सो घोड़ा असवार ।
कोटा बूंदी हेरियो ढोला हेरयो छै नाहरवाल ।
ढाल तरवारां माछर न मरै, ढोला चमड़ी सूं मर जाय ।
गोरी न माछर खा गयो जी राज ।
मांछर की माय, 'यो खद मारयो छै जोर जवान' ।
मांछर की माहणी, 'यो खद मारयो वेड़्या का सरदार ।
सेजा का सरदार ।
पियारी न मांछर खा गयो ।
गोरी न माछर खा गयो ।

अद्भुत रस

हाड़ौती लोकगीतों में कुछ उदाहरण अद्भुत रस के भी मिल जाते हैं। लोकगीतों के अतिरिक्त अनेक आश्चर्यजनक मुख्यार्थों से भरी हुई पहेलियों मे भी इस रस के उदाहरण भरे पड़े हैं। इस रस का एक उदाहरण देखिये—

एक अचंभा में सुण्या भाई, कुवा में लागी आग ।
फाणी फाणी जळ गया, वो मांछळी खेलै फाग ।
जंगमन से चींटी चली, पीकर नौमण तेल ।
बगलां में दवाया अंजन, सर पै राखी रेल ।
चींटी मरी पहाड़ पै, चींगण चाल्या चमार ।
सवा लाख जूत्यां बणी, चड़स बण्या हजार ।

हाड़ौती की स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतो मे रौद्र, वीर, वीभत्स तथा भयानक रसो के उदाहरण नही मिलते हैं। ऐसे उदाहरण पुरुषों के गीतों में मिल जाते हैं, जिन पर आगे विचार किया जायगा।

वस्तु-व्यापार द्वारा भाव-व्यंजना के भी कुछ सुंदर उदाहरण इन लोकगीतो में मिल जाते हैं। पति परदेश चला गया और दीर्घकाल से नहीं लौटा। इस दीर्घकालीन भाव की व्यंजना कितने सुंदर ढग से इस गीत में की गई है—

पांच पाना को बड़लो चोपियो,
होयो छै घं,र घमेर
मायारा लोभी अब घर आवो ।

पांच पत्तों का पौधा पति के प्रयाण-समय नायिका ने लगाया था। वह अब विशाल वृक्ष बन गया है और उसमे अनेक डालियां व पत्ते निकल आये। हे हे संपत्ति के लोभी, अब तो घर आ जाओ।

शान्त तथा भक्ति रस

शृंगार के पश्चात् सबसे अधिक गीत हाड़ौती में शान्त तथा भक्ति रस
मिलते हैं। ऐसे रसों के वर्णनों में संसार की नश्वरता और परमात्मा के प्रति अनु
का चित्रण मिलता है। संसार क्षणभंगुर है। उसके नश्वर उपकरणों के ज्ञान के
उद्बोधन की इतनी सरल अभिव्यक्ति कम ही स्थलों पर दिखाई देती है—

चामड़ा की फूटळी भजन कर ले।
चामड़ा का हाथी, चामड़ा का ऊंट।
चामड़ा का बाजा बाजे चाहूं ई खूंट।

इसी भाव को मनुष्य को मुसाफिर बतलाकर एक अन्य गीत में इस प्र
ध्वनित किया गया है।

न घर तेरा, न घर मेरा, छापर दीना डेरा।
मुसाफिर लद फेरैगा माला।
थारा कटै जीव का जाळा।

'कटै जीव का जाळा' मे पुनर्जन्म की समाप्ति का लक्ष्य है। तू मुसाफिर है अ
तुझे घर बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

भक्ति रस के वर्णन विविध देवी-देवताओं के स्तोत्रों तथा भजनो में भरे
हैं। निम्न गीत मे जगदीश से जो स्तुति की जा रही है वह कितनी स्वाभाविक त
हृदय से निकली हुई है—

रात चोस मोई कळ न परत है, तलफ तलफ दन रैन।
दरस मोहि वेगा दीज्यो जी।
दरस मोहि वेगा दीज्यो जी, म्हारा मन मोहन जगदीस।
खबर मोरि वेगा लीज्यो जी।

हास्य रस

हास्य रस के उदाहरण भी लोकगीतों में मिल जाते हैं। एक वीर पति
पत्नी को मच्छर ने अंगुली मे काट लिया। अपनी पत्नी के प्रति यह मच्छर की धृष्टत
उसे कैसे सहन हो सकती थी। अतः वह भी एक सौ अश्वारोही लेकर निकल पड़ा औ
दुनिया छान डाली —

सूती छी रंग मैल में, सूतोई छो खूंटी ताण।
गोरी न मांछर खा गयो जी राज।
खाटयो छो बीचली आंगळी, चढी अर आगळी।
गोरी न मांछर खा गयो जी राज।

मांछर हेरण नीसरया, सो घोड़ा असवार ।
कोटा बूंदी हेरियो ढोला हेरयो छै नागरवाल ।
ढाल तरवारा माछर न मरै, ढोला चमटी सूं मर जाय ।
गोरी न मांछर खा गयो जी राज ।
माछर की माय, 'यो खद मारयो छै जोद जवान' ।
मांछर की माल्हणी, 'यो खद मारयो खेड्या का सरदार ।
सेजा का सरदार ।
पियारी न मांछर खा गयो ।
गोरी न मांछर खा गयो ।

अद्भुत रस

हाड़ौती लोकगीतों में कुछ उदाहरण अद्भुत रस के भी मिल जाते हैं। लोकगीतों के अतिरिक्त अनेक आश्चर्यजनक मुहावरों से भरी हुई पहेलियों मे भी इस रस के उदाहरण भरे पड़े हैं। इस रस का एक उदाहरण देखिये—

एक अचंभा में सुण्या भाई, कुवा में लागी आग ।
फाणी फाणी जळ गया, वो माछळी खेलै फाग ।
जंक्सन से चीटी चली, पीकर नौमण तेल ।
बगलां में दबाया अंजन, सर पै राखी रेल ।
चींटी मरी पहाड़ पै, घीमण चाल्या चमार ।
सवा लाख जूत्यां बणी, चड़स बण्या हजार ।

हाड़ौती की स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों मे रौद्र, वीर, वीभत्स तथा भयानक रसो के उदाहरण नही मिलते हैं। ऐसे उदाहरण पुरुषों के गीतो में मिल जाते हैं, जिन पर आगे विचार किया जायगा।

वस्तु-व्यापार द्वारा भाव-व्यंजना के भी कुछ सुंदर उदाहरण इन लोक-गीतो में मिल जाते हैं। पति परदेश चला गया और दीर्घकाल से नहीं लौटा। इस दीर्घकालीन भाव की व्यंजना कितने सुंदर ढग से इस गीत में की गई है—

पांच पाना को बड़लो चोपियो,
होयो छै गै,र घमेर
मायारा लोभी अब घर आवो ।

पांच पत्तों का पौधा पति के प्रयाण-समय नायिका ने लगाया था। वह अब विशाल वृक्ष बन गया है और उसमें अनेक डालियां व पत्ते निकल आये। हे हे संपत्ति के लोभी, अब तो घर आ जाओ।

अलंकार

अलंकारों का प्रकृत प्रयोग लोकगीतों में ही देखने को मिलता है। य
उनका प्रयोग भाव को स्पष्ट करने के लिए होता है। उनमें केवल कथन-शैली क
चमत्कार नहीं होता। ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनमें अलंकारों के प्रयोग से भा
बहुत ही स्पष्ट हो गई है। हाड़ोती लोकगीतों का सबसे प्रिय अलंकार उपमा है
इन गीतों में उपमा के सभी प्रकार मिलते हैं, पर लुप्तोपमा का प्रयोग प्रचुरता
मिलता है। पूर्णोपमा में फिर भी कवि का कर्तृत्व झलकने लगता है औ
लोकगीतों में तो गीतकार का अनस्तित्व होता है। सादृश्य और साधर्म्य के आधार प
लाये गये उपमान अधिक दूर तक नहीं चलते, पर जिनमें प्रभाव-साम्य को ध्यान
में रखा गया हो वे बड़े आकर्षक होते हैं। ऐसे उपमानों का एक ऐसा कलात्मक
प्रभाव पड़ता है कि वे बहुत समय तक मस्तिष्क में गूंजते रहते हैं। एक 'जल्ला
गीत में अलंकार-विधान दोनों प्रकार से हुआ है—

> थे छो म्हारा नैणा मैल्या सुरमा, म्हारी जोड़ी का जल्ला।
> थे छो म्हारी दांतां मैली चूंप, फीयर पूरी का जल्ला।
> जल्ला जो थई म्हारी कठड़ी का हीरा।
> थे छो म्हारा हीवड़ा तो मैल्या जीवड़ा,
> मरग.नैणी का जल्ला।

अलंकारों की यह झड़ी हृदयगत भावनाओं का प्रतीक बनकर आई है, किसी कलाकारिता के कारण से नहीं। अतः कितनी स्वाभाविक है। उपमानों को भी देखिये, कितने समीप के हैं। वे ही हैं जो उसके आसपास हैं। नैणा का सुरमा, दांतों की चूंप, कठड़ी का हीरा और हीवड़ा मैल्या जीव में एक से एक सुन्दर उपमान लाये गये हैं। सादृश्य का आधार नहीं है, आधार है प्रभावसाम्य का। 'हीवड़ा मैल्या जीव' मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त अप्रस्तुत का विधान कितना सुंदर है। अलंकारों का प्रकृत विधान यही होता है।

एक उपमा का उदाहरण देखिये—

> म्हनो सी नार नारेळां हांसो पेट।

गर्भवती स्त्री के पेट को नारियल के समान बताने का आधार सादृश्य है। सादृश्य ऊपरी नहीं है, कुछ दूर तक गया है। नारियल में एक और वस्तु होती है गिरी, जो नारियल के भीतर रहती है। यहां भी बालक पेट में पल रहा है। 'हँसो' वाचक शब्द है। धर्म लुप्त है। अतः लुप्तोपमा का उदाहरण है।

लोक गीतों में अलंकार-योजना के लिए जब कल्पना चल पड़ती है तो कितने
... उपमान खोज कर लाती है—

सूरज म्हारा सायबा, चंदा देवर जेठ।
नणदल आभा बीजळी, चमकै चारूं खूंट।

पति सूर्य है और ज्येष्ठ व देवर चंदा है। चाहे ज्येष्ठ आयु में नायिका के पति से बड़े हों, पर उसकी दृष्टि में तो पति ही सबसे बड़े है। ननंद को विद्युत-आभा कहकर उसका चांचल्य, लावण्य और गौरवर्णता एक साथ मूर्तिमान करदी है।

एक अन्य उदाहरण लीजिये। एक समस्त व्यापार का दूसरे व्यापार पर आरोप है—

पानी मैंनी ठीकरी, कोई घस घस पतळी होय।
रजपूतां की डावड़ी कोई, पीयर बूंढो होय। [1]

कुछ उपमानों के उपयोग करने में दीर्घकालीन निरीक्षण या परंपरागत मान्यता ही सहायक हो सकते हैं। जो ठीकरी पानी में पड़ी हो और धीरे-धीरे पानी के बहने से पतली हो जाती है उसका घिसना कितना सूक्ष्म होता है इसको २–४ दिन या २–४ मास में देखा नहीं जा सकता। दो–चार वर्ष में उसका घिसना स्पष्ट दिखाई पड़ता है। धीरे–धीरे क्षीण होने के लिए इससे सुंदर उपमान हो ही नहीं सकता। क्षत्रियों में योग्य वर की तलाश में कभी-कभी युवतियों का यौवन रावळों में मुरझा जाता था, वे वृद्धा सी लगने लगती थी। अतः रजपूतां की डावड़ी (पुत्री) को 'पानी मैंनी ठीकरी' कहना कितना सुन्दर है।

ऐसा ही एक सुंदर उदाहरण लुप्तोपमा का मिलता है। यह कथन उस लड़की का है जिसका विवाह होने वाला है—

उड़ जाऊंगी री माय, पंख लगाय,
थोड़ा दना की पावणियां।

जिन्हें चमत्कार प्रधान-अलंकारों में विश्वास है उन्हें भी यहां निराश नहीं होना पड़ेगा। एक श्लिष्ट शब्द के उपरांत समासोक्ति द्वारा दोनों पक्षों की क्रियाओं का कितना सुंदर निर्वाह 'बीछूड़ा' गीत में मिलता है—

बीछूड़ा की खाई पैयर चाली हो,
लहरदार बीछूड़ो, माया रो लोभी बीछूड़ो।

यह बीछूड़ो 'वृश्चिक' और 'वियोग' दोनों है। दोनों का दर्द और लहरों का साम्य कितना सुंदर है।

---

[1] –उपमान साम्य की दृष्टि से तुलना कीजिए :

अवधि शिला का उर पर था गुरु भार।
तिल तिल काट रही थी उसे अश्रु जल-धार।
—साकेत, नवम सर्ग, अंतिम छंद।

हाड़ौती लोकगाथा

हाड़ौती लोक-गाथाएं गांवों में कुछ व्यक्तियों की जिह्वा पर बैठी हुई हैं। अनेक लोक-गाथाओं में से 'तेजाजी', 'हीड' आदि तो इसलिये प्रचलित हैं कि उनके गाने के अनिवार्य अवसर आते रहते हैं और उनका सम्बन्ध गायकों की धर्म-भावना से है। पर शेष गाथाएं उपयुक्त वातावरण के अभाव में लुप्तप्राय सी हैं। अर्थ प्राप्ति में उलझे आधुनिक जटिल जीवन मे पैसे की भूख को ये गाथायें तृप्ति नहीं दे सकती अतः अनुपयोगी सिद्ध होकर अपना अस्तित्व विस्मृति की गहन गुफाओं में खोती जा रही हैं।

इन गाथाओं का नायकत्व अधिकांश में ऐसे पात्रों को मिला है, जिनका जन-जीवन से क्षीण सम्बन्ध है। अतः व्यक्ति मे सामाजिक, पारिवारिक या वैयक्तिक स्फूर्ति देने की क्षमता इनमें नहीं मिलती। जिस गाथा में यह क्षमता है उसे आज भी महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। 'तेजाजी' ऐसी ही गाथा है। वीर और शृंगार रस कुछ गाथाओं में रस दशा तक नहीं पहुँच पाये हैं। वैयक्तिक राग द्वेष उत्साह स्थायी को साधारणी-कृत नहीं होने देते, क्योंकि उसमें लोक-व्यापी हृदय को स्फूर्ति देने की क्षमता नहीं है। पृथ्वीराज की वीरता का आधार व्यक्तिगत स्वभाव-विषमता ही है, आलम्बन की—घाटी के रावजी, पृथ्वीराज के मामा की—दुष्टता नहीं है। उधर तेजाजी का उत्साह लोक-मानस में उत्साह भरने वाला है। शृंगार रस की धारा 'बगड़ावतों की हीड' मे बही है, पर आलम्बन के अनौचित्य से वह निष्कलुष नहीं कही जा सकती।

समस्त गाथाओं की वर्णन-शैलियां समान सी है। युद्ध के वर्णनों में एक ही प्रकार की युद्ध-सामग्री व युद्ध-प्रणाली पाई जाती है। योद्धाओं को युद्ध के पूर्व आमंत्रण करने व उन्हें शस्त्र वितरित करने में भी एक ही प्रकार की वचनावली प्रयुक्त हुई है। सभी नायकों को ग्राम में प्रवेश से पूर्व किसी न किसी पनिहारिन से भेंट करनी पड़ती है।

पुरुष पात्रों मे वीरता और धैर्य गुण विद्यमान है और स्त्री पात्र सुन्दर हैं, अलंकृत हैं तथा 'दखणी चीर' ओढ़े हैं। स्त्री पात्रों में मातृत्व अत्यन्त उदात्त एवं प्रेरक है और अत्यन्त ममतावान भी है। बहिनें भ्रातृ-प्रेम से आर्द्र हैं, पत्नियों की अपनी अपनी विशेषता है। किसी में सौंदर्य मूर्तिमान है, तो किसी में सतीत्व भरा पड़ा है तथा कोई केवल लक्ष्य-प्राप्ति में तत्पर है। तेजाजी की पत्नी परम सती है और जैमती लक्ष्य-प्राप्ति मे तत्पर है। पुरुष पात्रों के गुण या अवगुण वे नये नहीं आदर्श है, पर तेजाजी का चरित्र इसका अपवाद है। सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में केवल स्थू

रेखाएँ उभर पाई हैं। सच बात तो यह है कि इस प्रकार की लोकगाथाओं में घट वर्णन पर जितना अधिक ध्यान रहता है उतना ही संगीत की रक्षा पर। चरि चित्रण को तो अत्यन्त गौण समझा जाता है।

यद्यपि इन रचनाओं में यत्किंचित देशकाल का चित्रण मिल जाता है, उसमें सर्वत्र तदनुरूपता नहीं पाई जाती। राम के काल में युद्ध में तोपों का प्रयोग ऐ ही दोष है। सभी पात्र एक सी वेशभूषा व अस्त्र-शस्त्र धारण करने वाले हैं। देवको में पहुँचे पात्रों की घोड़ियां तक भवानी का अवतार हैं। भारतीय धार्मिकता और अं विश्वास गाथाओं से विद्यमान हैं। इसीलिए अलौकिक शक्तियों के प्रति अत्यन्त आस्‌ अनेक गाथाओं में मिलती है; जिनमें वर्तमान बौद्धिक युग का समाधान और विश्वा नहीं खोजा जा सकता। अज्ञात कवियों द्वारा लिखी गई ये रचनाएं दुःखांत ही अधि है। संभवतः किसी वीर का स्मारक बनाने की प्रथा जब देश में चली तब उसक सम्बन्ध हृदय से था, वह रूढ़िग्रस्त नहीं थी। फिर उसका स्मारक हृदय में भी स्थायं रूप से बनाने के लिए कालान्तर में लोक-गाथाओं की सृष्टि हुई। अतः शहीदों क *स्मृतियां दुःखांत लोक-गाथाओं को जन्म देकर रह गई। ऐसी गाथाओं की रचन* संभवतः ऐसे प्रतिभा संपन्न भाटों के द्वारा हुई जो डिंगल में कविता लिखने में असमर्थ थे, पर जिनमें कवि कर्म के संस्कार वंशानुगत थे। इसीलिये वीरगाथा-काल की चेतना परिवर्तित वेश में इन गाथाओं में विद्यमान है।

किशोरसिंह बारहठ ने इनकी रचना 'पंवाड्या' छंद में बताई। उनके अनुसार 'पंवाड्या' एक संकर जाति का छंद है, जिसमें कहीं तो दोहों का बिगड़ा हुआ स्वरूप दृष्टिगोचर होता है और कहीं दंडक जाति का छंद-विशेष का उपयोग किया जाना पाया है, पर पंवाड्या काव्य की एक शैली ही प्रतीत होती है। आधुनिक प्रचलित लोक-गाथाओं के छंदों के सम्बन्ध में कोई निश्चित नामकरण करना कठिन प्रतीत होता है। क्योंकि उनकी स्थिति गायक-परक है। प्रत्येक गायक प्रत्येक चरण के एक दो शब्दों को या तो घटा-बढ़ा देता है या तोड़-मरोड़ देता है। इससे छंद की आत्मा ही नष्ट हो जाती है। तुकांतता भी इनमें नहीं मिलती।

हाड़ौती लोक-गाथाओं के दो प्रकार हैं। विशालाकार लोक-गाथाएँ और लघ्वाकार लोक-गाथाएं। प्रथम श्रेणी में तेजाजी, परथीराज की लड़ाई, बगड़ावत की हीड और रामनस्याण या राम-रसायण आते हैं और दूसरी श्रेणी की लोक-गाथाएं हीरामनजी और रुकमणी जी को ब्यावला है।

१—सौरभ, फरवरी १६२१ (पृष्ठ २७५)

तेजाजी

हाड़ौती लोक-गाथाओं में तेजाजी का प्रमुख स्थान है। इसे प्रतिवर्ष नियमित रूप से गाया जाता है। यह गाथा लम्बी है। अतः इसका गाने का काल दीर्घ होता है। ग्रामों में इस गाथा को एक मास पूर्व से गाना प्रारम्भ कर देते हैं और तेजा-दशमी—भाद्रपद शुक्लपक्ष दशमी को इसका गायन समाप्त हो जाता है। इसी दीर्घ काल तक गाये जाने की परम्परा को देखकर 'तेजाजी गाबो' मुहावरे रूप में भी प्रयुक्त होने लगा है, जिससे निठल्लेपन का संकेत मिलता है। गाने के उपकरणों में ढोलक, मंजीरे तथा कभी-कभी अलगोजे प्रयुक्त होते हैं। साधारणतः यह गान तेजाजी के भंडे के आस-पास चलता है जिसे गाव में निर्धारित स्थान पर गाड़ दिया जाता है और तेजा दशमी के दिन उस स्थान पर ले जाया जाता है जहां तेजाजी की प्रतिमा बनी होती है। इस गाथा को गाने की दो शैलियां प्रचलित है। एक शैली के अनुसार सभी गायक भंडे के आसपास एकत्र होकर ढोलक और मंजीरे के उतार-चढ़ाव के साथ गाते चलते हैं। दूसरी शैली में, एक कुशल गायक पहले गाथा की कुछ पंक्तियां गाता है, तत्पश्चात् शेष गायक उसे दुहराते हैं। वाद्य-यन्त्रों का साथ सदैव चलता रहता है।

तेजाजी की मान्यता अशिक्षित वर्ग में अत्यधिक है और इसीलिये उस वर्ग के आबाल-वृद्ध उपर्युक्त तिथि को व्रत रखते हैं। उनके विश्वास के अनुसार तेजाजी ऐसे देवता हैं, जिनका नाम लेकर सर्पदंशित व्यक्ति के गले में सूत्र बांध दिया जावे तो विष का प्रभाव नहीं हो पाता और व्यक्ति जीवित रहता है। तेजा दशमी के दिन जब गले में बंधे सूत्र को काटा जाता है, जिसे "डसी काटना" कहते हैं, तब दंशित व्यक्ति को 'मैं'ड़' (विषाक्तावस्था में उत्पन्न तन्द्रा की लहर) आने लगती है और कुछ समय पश्चात् वह व्यक्ति नितांत स्वस्थ हो जाता है।

तेजाजी की जीवनी से सम्बन्धित कुछ खेल की पुस्तकें मिलती हैं। किन्तु वे हाड़ौती बोली में नहीं है। हाड़ौती बोली की यह लोकगाथा मौखिक परम्परा पर चली आ रही है। इसीलिए विभिन्न स्थानों के विभिन्न व्यक्तियों से तेजाजी सुने जाएं तो उनमें अन्तर मिलेगा। यह अन्तर कथागत विकास का ही प्रायः होता है, चरित्रगत नहीं।

कथानक

तेजाजी गाथा के नायक है जिनका विवाह अति बाल्यकाल में हो गया था और जिसका उनको स्मरण तक नहीं था। एक बार जल में स्नान करके घाट पर ध्यान लगाकर बैठे हुए थे तब माता गूजरी पानी भरने आई। उसके भूंठे ही अपने

पुत्र को रोने का बहाना करके शीघ्र घाट से दूर हट जाने के लिए कहा और जब
कुछ आगे बढ़ी तो माता ग्रमरी ने कह दिया—

'भूंड घणीं मत बोले रै घोड़ी औ हाळा।
म्हारो फोर थारो सासरो'

इस नवीन रहस्य को ज्ञात करके तेजाजी ने यह निश्चय किया कि वे
अपनी पत्नी को लेने ससुराल जावेंगे। पहले तो मां ने बातों में फुसलाया, पर बाद में
कह कर स्वीकृति दी कि पहले अपनी बहिन को ससुराल से लाकर यहां रख जा, क्यों
रक्षाबन्धन का त्यौहार आ रहा है और तत्पश्चात् अपने ससुराल चला जाना। उन्हें
माता की आज्ञा शिरोधार्य की। अपनी बहिन राधा के ससुराल में जाते समय मार्ग
कुछ लुटेरे मिल गये, किन्तु लौटते समय इसी मार्ग से आने का उनको वचन दे
तेजाजी आगे चले गये और बहिन के ससुराल पहुंचे।

वहां पर उन्हें हार्दिक आतिथ्य प्राप्त हुआ, पर बहिन को नहीं भेजा गया
लौटते हुए कुछ दूर आने पर उन्हें अपनी बहिन आती हुई दिखाई दी तो तेजाजी
ने पूछा—

सबको संदाई आई छै नै बानड़ म्हारी।
लाखीणा सगा से रूठए न कर आई नै।

और बहिन ने विश्वास दिलाया कि उनकी आज्ञा से ही आई हूं तब वे
बहिन को लेकर लुटेरों के पास पहुंचे। इस पर वे बहुत हर्षित हुए। अब तेजाजी ने
अपना भाला एक पेड़ में घुसा कर कहा कि यदि तुम इसे निकाल सको तो मुझे लड़ने
का साहस करना। लुटेरों ने प्रयत्न किया पर भाला नहीं निकला। तब राधा जाकर
भाले को निकाल लाई और लुटेरे भाग निकले।

तेजाजी राधा को लेकर घर पहुंच गये और अपने ससुराल चलने की तैयारी
करने लगे। उनकी भाभी ने एक दुःस्वप्न देखा कि तेजाजी को 'कांकड़ देवड़ी'
(मृत्यु) हो गई है। इसलिये उसने मना किया, पर तेजाजी ने नहीं माना और वे
घोड़ी पर बैठकर चले गये। मार्ग में अनेक अपशकुन हुए। उन्हें वे शक्ति के बल पर
अनुकूल करते चले गये।

बांवां सू जीवां आवा ये कोचर राणी।
न तो तूंगूं भतका की बलेरू थारा पांखड़ा।

इस प्रकार जब वे आगे बढ़े जा रहे थे तब मार्ग में एक बन जलता हुआ
[illegible] दिया। उसे वे बुझाने लग गये और उसमें जलते हुए एक सर्प को बचा लिया।
[illegible] पर इसलिए कुपित हो गया कि उसकी पत्नी (सर्पिणी) तो जल गई

और उसे बचा लिया गया। वह सर्प तेजाजी को काटने लगा तो उन्होंने उसे वचन
दिया कि मैं लौटूंगा तब यहां अवश्य आऊंगा और तब ही तुम दंशन कर लेना।

बाढ़ से युक्त बनास नदी को घोड़ी पर पार कर वे ससुराल पहुंचे। वहां
उनका खाने-पीने में अनादर हुआ, जो उनके लिए असह्य था। अतः वे लौट पड़े
उनकी पत्नी मोडल और उसकी सहेली माना गूजरी ने उन्हें मनाया—

गूजर की माना लूमी छै, हे घोड़ी जी हाळा।
ऊंकी मोडळ लूमी छै पगां कै पागड़े।

अब तेजाजी माना गुजरी के अतिथि बन गये।

उसी रात्रि में चोर माना की गायें चुराकर ले गये। अतः वह विलाप करने
लगी। किसी का साहस नहीं हुआ कि लुटेरों से गायें छुड़ा लावें। अतः गूजरी को
तेजाजी से जाकर कहना पड़ा—

गांव में रांडा बसै छै रे जीजाजी म्हारा।
मरदां ने फैरी छै लांबी कांचल्यां।

और रोने लगी। इस पर तेजाजी घोड़ी पर बैठकर लुटेरों के पास पहुंचे और
युक्ति से काम लेते हुए कहा—

थाने तो बरी करी छै रे मामाजी म्हारा।
भाणेज की गायां ने घेर लाया।

और जब तेजाजी द्वारा स्मरण दिलाया गया कि उनकी मां ने उन सबके राखी
बांधी थी, तब लुटेरों ने गायें लौटा दीं।

गायों में एक बछड़ा नहीं लौटा था। अतः माना के आग्रह पर उन्हें दुबारा
उसे लेने जाना पड़ा। इस बार दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। ये अकेले थे और वे अनेक
अतः ये घायल हुए—

सुवा मण सोधो तो घोड़ी का डील पै-
मेळो होग्या छै रे घोड़ी जी हाला।
मुवा मण सोधो होयो आरणां डील पै।
कम कम में सेच टूट गया छै घोड़ी जी हाळा।
मीणां मारपीट मचाया छै रे।

और बछड़े को लाकर माना गुजरी को संभला दिया। तेजाजी की पत्नी उनकी
यह दशा देखकर रो पड़ी। जब तेजाजी सर्प को दिये वचनों का निर्वाह करने के लि
लौट पड़े तो वह भी पीछे होली। तेजाजी सर्प के पास बैठ गये और घोड़ी बाप

उनकी बहिन तथा माता को सुना आई। घावों के कारण सर्प-दंशन के लिए शरीर का कोई भाग प्रशस्त नहीं रह गया था। अतः तेजाजी ने जीभ निकाली और सर्प ने उसमें काट लिया—

> बाळो तो जीभ के लूम्यो छै रे।
> जीमा के डस्गो छै जाट को डावड़ो।

घोड़ी को भी कान में काटा गया। अंत में रानी मोहन चिता बनाकर सती हो गई—

> ऊंकी मोहन ने घोर तेजाजी।
> दोन्या ने बराबर मउ थो मरी नारा।

ऐतिहासिकता

तेजाजी राजस्थान के ऐसे वीर हैं जिनकी जीवन-गाथा लोक-जीवन में समा गई है और जिन्हें देवता का पद प्रदान कर स्थान-स्थान पर उनकी देवलियां (छतरियां) निर्मित की गई हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि इस वीर की जीवन गाथा के साथ अलौकिक घटनाओं और वीर कृत्यों की कहानियां जुड़ गई होंगी। इसलिये जो गाथा हाड़ौती-क्षेत्र में गाई जाती है उसमें ऐतिहासिक अंश कितना है, यह विचारणीय है।

लोकगाथाओं के अतिरिक्त तेजाजी के जीवन से सम्बन्धित अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनके लिखने में ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा के स्थान पर जनश्रुतियों का आश्रय ग्रहण किया गया है। *अतः वे प्रामाणिक नहीं कही जा सकतीं। ऐसी* पुस्तकों से किशनगढ़ से प्रकाशित श्री रामगोपाल शिवरामजी राव की लिखित *'तेज-लीला'* है। *इस पुस्तक का लेखक मुख पृष्ठ के पृष्ठ भाग पर लिखता है,* "यह पुस्तक प्राचीन लिखावट महात्मा गोपीदासजी श्री कृष्णदासजी का वार्तालाप गद्य रूप सम्वत १७३४ की लिखावट थी उसे मैंने पद्य रूप देकर आपके कर कमलों में प्रस्तुत की है।" मूल पुस्तक का, जो सम्वत १७३४ की है, आधार भी ब्रजवासी महाराज मुखदासजी की सम्वत १४५५ में लिखी कथा है।[1] इन उल्लेखों से पुस्तक की प्रामाणिकता विचारणीय बन जाती है। इस लीला से कुछ तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। पुस्तक के अनुसार तेजाजी खरनाल के निवासी थे और धोलिया जाट थे। उनके पिता का नाम ताहड़ और माता का नाम यशोदा था। तेजाजी का विवाह रायमल की पुत्री प्रेमलता से अति बाल्यकाल में हुआ था। लोकगाथा के अनुसार ही तेजाजी जब पनेर में अपने ससुराल पहुँचे तब वहां अपनी सास द्वारा उनका अपमान हुआ। जब वे लौटने लगे तब लाछू गूजरी की प्रार्थना पर उसके अतिथि बने। *रायमल की पत्नी की प्रेरणा से लाछू*

१—रामगोपाल शिवरामजी 'तेज लीला', राव, पृष्ठ ५

गूजरों की गायें चोरी चली गईं और उन्हें लौटा ले जाने के प्रयत्न में तेजाजी घाय हुए तथा अन्त में सर्प दंश से उनकी मृत्यु हुई।

उपर्युक्त अंश 'तेजलीला' की कथा का उत्तरार्द्ध है। पूर्वार्द्ध में तेजाजी अं प्रेमलता को क्रमशः महाराज कश्यप नाग और नागदेवी के अवतार बताये हैं और उ अवतार तत्कालीन गौ-रक्षा की आवश्यकता के हेतु हुए। कश्यप और उनकी पत्नी अवतार लेने की प्रेरणा विष्णु भगवान् और इन्द्र से मिली है। इस प्रकार पूर्वा अलौकिक घटनाओं से युक्त और अविश्वसनीय है। उत्तरार्द्ध का आधार जनश्रुति प्रत होती है जिसकी रक्षा हाड़ौती लोक गाथा में भी हुई है। 'तेजलीला' के लेखक अनुसार तेजाजी की जन्म-तिथि संवत १३३० भाद्रपद दशमी रविवार है और इन प्रथम विवाह संवत १३३३ ज्येष्ठ एकादशी को हुआ था। इनके पांच विवाह हुए, सब पत्नियां मृत्यु को प्राप्त होती चली गईं। 'लीला' के अनुसार उनका स्वर्गव संवत १३५० चैत्र शुक्ला दशमी को हुआ।

ठाकुर देशराज ने 'मारवाड़ का जाट' इतिहास लिखा है, जिसमें तेजाजी जीवन-चरित पर तीन स्थलों पर विचार हुआ है। एक स्थल पर धोल्या गोत के छोटूजी के आधार पर तेजाजी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया गया है—

तेजाजी का जन्म संवत ११३० माघ शुक्ला चतुर्दशी बृहस्पतिवार को हुअ उनके पिता का नाम ताहड़ था और पनेर के राव रायमल की बेटी पेमल से इन विवाह हुआ था। पेमल गौरी उनकी अन्तिम स्त्री थी। इससे पहले उनके पांच वि और हो चुके थे। इनकी मा का नाम राजकुंवर था। 'छोटूजी भी सुरसुरा गाव हो उनकी शहीदी का स्थान बताता है।' संवत ११६० वि० की माघ कृष्ण चतुर्थी उनका बलिदान हुआ था। यह छोटूजी की बही का कथन है किन्तु सर्वसाधारण अनुसार शुक्ल दशमी उनके बलिदान की तिथि है।[1]

उपर्युक्त दोनों आधार विश्वसनीय नहीं प्रतीत होते हैं। दोनों का आधार ज श्रुति प्रतीत होती है *जिसमें बाद में तिथियों का योग* देकर उसे प्रामाणिक बनाने प्रयास किया गया है। इसीलिये दोनों की तिथियों में पर्याप्त अन्तर है। यहां तक तेजाजी के छः विवाहों से सम्बन्धित व्यक्तियों और कन्याओं के नाम भी परस्पर नहीं खाते पर कुछ विश्वसनीय जानकारी भी प्राप्त होती है—वे धोल्या गोत्र के उनके पिता का नाम ताहर या ताहड़ था। उनमें गौ प्रेम भरा हुआ था। लाखा लाछू गूजरी की गायों की रक्षा करते हुए वे घायल हुए और सर्पदंश उनकी मृत्यु कारण बना। उपर्युक्त तथ्यों की प्रामाणिकता 'मारवाड़ का जाट इतिहास' के लें

१—ठाकुर देशराज' मारवाड़ का जाट इतिहास, पृष्ठ १५१ से १५३

ने भी स्वीकार की है।¹ पर इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में लेखक किसी निष्कर्ष पर न पहुँच कर इनका जन्म 'ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में भादों सुदी को मानता है। इस निर्णय का आधार केवल कल्पना होने से उसे प्रामाणिक कहा जा सकता।

'तेजाजी' कथा दुःखान्त है। कथा में कलात्मकता के निर्वाह की अपेक्षा की अनुरूपता ही अधिक मिलती है। इसलिये कथा का विकास सरलतम ढंग से है। कहीं भी उसमें कृत्रिम गति लाने का प्रयास नहीं मिलता है। इतना होने पर 'तेजाजी' की कथा आकर्षणहीन तथा कला-शून्य नहीं है। बाल-विवाह की विस्मृति में परिवर्तन और तेजाजी की ससुराल जाने की उत्सुकता से कहानी कौतूहल उत्पन्न हो जाता है। बहिन को लाने व लुटेरों के प्रसंग प्रासंगिक कथा कर आधिकारिक कथा के प्रवाह में शिथिलता उत्पन्न नहीं करते। मार्ग के अपशकुन का अदम्य उत्साह से विरोध करते हुए आगे बढ़ते देखकर श्रोता भी विस्मय-मुग्ध आगे बढ़ता चलता है। सर्प की रक्षा की घटना से श्रोता की उत्सुकता तीव्र हो जाती है। पश्चात् ससुराल में हुए अनादर से जो विषम स्थिति उत्पन्न होती है, उसका समाधान माता गूजरी द्वारा होता है। ठीक इसी के पश्चात् लुटेरों द्वारा गायें चुरा कर ले जाने की घटना और उसमें प्रदर्शित तेजाजी का अदम्य शौर्य श्रोता के भावना समुद्र में ज्वार उत्पन्न कर देता है। कथा की चरम-सीमा वहां आती है जब पत्नी, बहिन व माता की उपस्थिति में तेजाजी जीभ निकालते हैं और सर्प उन्हें काटता है। कथा का यह करुणतम प्रसंग है जिसे सुनकर कोई श्रोता अश्रु मोचन किये बिना नहीं रह सकता।

तेजाजी की कथावस्तु का निर्वाह सरलतम होते हुए भी ऐसे प्रसंगों से शून्य नहीं है जो उनमें कौतूहल व विस्मय न उत्पन्न करते हों। कथा एक पग आगे बढ़कर एक-साथ जगत में ले जाती है और फिर दूसरा पग दूसरे जगत में रखकर श्रोता का हृदय भावों से सम्पन्न कर देती है। तेजाजी की कथा की घटनाएं कहीं टूटी हुई नहीं हैं। कार्य-कारण सम्बन्ध में आबद्ध होकर अंत तक उसे विश्वास की परिधि के भीतर स्थित किये रहती हैं।

चरित्र-चित्रण

'तेजाजी' के चरित्र पर प्रकाश प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रणालियों से पड़ा है, पर अधिकांश में कथोपकथन द्वारा ही चरित्र सामने आये हैं। इस गाथा के प्रमुख पात्र तेजाजी ही हैं। शेष पात्र माता गूजरी, बोदल, भाभी, सुगणा, राधा व कोई

१—जगदीश सिंह गहलोत, मारवाड़ का कर इतिहास, पृष्ठ २१५ से २१६

गौण है। तेजाजी का चरित्र-चित्रण अत्यधिक कलात्मक हुआ, इससे यह पात्र श्रोता के मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ जाता है।

तेजाजी

गाथा के नायक तेजाजी जाट जाति के एक वीर पुरुष हैं। कठिनाइयों में स्वपथ निर्माण करने का अदम्य उत्साह उनमें भरा पड़ा है। इसीलिये वे अपशकुनों की चिन्ता नहीं करते, अपितु उन्हें शक्ति के बल पर अनुकूल बनाते चलते हैं--

> सूण मनातो जावै छै रै घोड़ी जी हाळा,
> जारयो छै वन में एकलो।

यही वीरता भयंकर युद्ध में भी दिखाई देती है। माना गूजरी का बछड़ा लाने के लिए वे वीर अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। वचनों का निर्वाह वे किसी भी समय करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। अतः मृत्यु को सामने खड़ा देखकर अपनी चिकित्सा की चिंता उन्हें नहीं होती, अपितु चिन्ता होती है--

> लख्या लेख गोडा भाग्या छै री गूजर की माना,
> बाचा चूकँगो काळा की पूरी बामल्यां।

वीरता के साथ दया और सहानुभूति उनके चरित्र मे मणि-कांचन का संयोग है। इन्हीं मानवीय उदार गुणों से प्रेरित होकर वे जलते हुए वन को बुझाने लग जाते हैं और जलते हुए सर्प को बचा लेते हैं। गौ-रक्षा की भावना भी उनमें विद्यमान है--

> सूधी घूंदाड़ा चालै नै री घोड़ो म्हारी।
> *बारो बळ रयो छै गऊ-गरास को।*

तेजाजी परम भगवद् भक्त रूप में भी सामने आते हैं। उन्हें नित्य प्रति भगवान की सेवा साधने की लगन बाल्यकाल से ही है। इसी का प्रभाव है कि उनके सामने झूठ छिप नहीं सकती—

> झूंठ घणी मत बोलै हे गूजर की माना,
> जुड़्या छै क्वाड़, बाळू थारो लैल रयो।

इसी धार्मिकता का प्रतिफलन उनकी चारित्रिक पवित्रता में होता है। अपनी बहिन के ससुराल में पहुँचने पर पनघट पर 'माथा मांट उचायां सूं ज्याग बता दूं' का प्रस्ताव जब एक पनिहारिन की ओर से होता है तब तेजाजी कह देते हैं—

> *ज्यूं ई भरिया, ज्यूं ई उच लें, फणियारी माना,*
> पैला को तरिया नै मैलूं कळस्यो बेवड़ो।

उन्हें सामाजिक-पारिवारिक मर्यादाएं अत्यधिक प्रिय हैं। किसी व्यक्तिगत वेश में वे कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहते जो पारिवारिक शांति को भं अपनी बहिन से यह पूछकर कि तू 'लाखीणा सगा' से पूछकर आई है न, इस चय देते हैं। दूसरों की भावनाओं का आदर करना और पारिवारिक रीति-रिव निर्वाह भी उन्हें प्रिय है। अतः बहिन के यहां एक बार भोजन करने पर 'भू धोळची' भैंसे दे देते हैं—

> खांसा मैं तो भूरी दीनी छै—
> वैरा नै ताईं, दीनी छै धरमा धोळची।

वे माता और भाभी की आज्ञा का पालन करने वाले हैं। इसलिये उनके पर ससुराल जाने के पूर्व बहिन को लेने चले जाते हैं। यहीं वे व्यवहार-कुश आत्म-प्रतिष्ठा-प्रिय रूप में भी सामने आते हैं। अतः वे मांगे बैल अपनी नहीं जोतते—

> मांग्या ढोल्या नै जोऊं भोजाई म्हारी।

और न ससुराल का अनादरपूर्ण आतिथ्य स्वीकार करते हैं।

घोड़ी के प्रति उनके हृदय में इतना ही प्रेम है जितना किसी पुरुष में प्रिय पुत्री के प्रति होता है। उसका तनिक भी दुःख वे नहीं देख सकते। जब घोड़ी को पीट देती है तब वे भी उसे दंडित करते हैं—

> डाल तो कंदेर की तोड़ी छो रै घोड़ी की हाळा,
> माळो की छोरी कै सांटघां मांड द्या।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि तेजाजी का चरित्र मानवीय गुणों का कोष इनके चरित्र में जाति और व्यक्ति दोनों का समन्वय है। इनका निष्कलुष च गाथा को लोगों का कंठहार बनाये हुए है।

भोडळ

मदना जाट की पुत्री भोडळ गाथा की नायिका है। बाल्यकालीन विवाह विस्मृति उसमें भी विद्यमान है। उसमें भारतीय नारी के आदर्श मूर्तिमान है। तै जब बछड़े को लेने के लिए जाने लगते हैं तब वह भी जाने का आग्रह इस भाषा करती है—

> आडे डास बण जाऊंगी रै सायंद म्हारा।
> भळका झेलूंगी दांत की धूंप कै मांईनैं।

और इसी रूप की चरम सीमा वहां देखने को मिलती है जब वह परमात सतीत्व की मांग रही है—

मोडळ तो बामी पै बैठी छै रे पोड़ी जी हाळा
सत मांग री छै सरी भगवान सूं ।

मोडल का दाम्पत्य प्रेम आध्यात्मिक है। उसमें वासना की तनिक भी गंध नहीं है।

माना गूजरी

माना गूजरी के रूप में सामान्य नारी का चरित्र चित्रित हुआ है। मिथ्या-भाषण, व्यंग, स्वार्थ-परायणता और बुद्धि हीनता उसके चरित्र की विशेषताएँ हैं। इस चरित्र की उपस्थिति से मोडळ का चरित्र काफी उभर आया है। उसकी स्वार्थ-परायणता की चरमता तब देखने को मिलती है जब बछड़े को लाने के लिए तेजाजी को इन शब्दों से प्रोत्साहित करती है—

> म लायो गायां को रखेल,
> गायां तो सांझ होगी छै रे जीजाजी म्हारा,
> ल्यो गायां को मोड़ ।

फिर भी अपनी सहेली की दारुण व्यथा को समझने का स्त्री-सुलभ हृदय उसे प्राप्त है। अतः मोडल की प्रार्थना पर तेजाजी को रोक लेती है और आतिथ्य का निर्वाह करती है।

भाभी व माँ

भाभी का चरित्र अत्यल्प सामने आता है। तेजाजी के परिवार में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। उसकी स्वीकृति से तेजाजी रायां को लेने जाते हैं। उसमें विवेक विद्यमान है। अतः दुःस्वप्न देखने पर तेजाजी को मना कर देती है। जब तेजाजी नहीं मानते हैं तो वह उन्हें कोसती भी है। भाभी के संबंध में सभी सम्बन्धित पात्रों का यह विश्वास है—

> भाभी सगत भवानी छै रे पोड़ी जी हाळा,
> भाभी का बोल्या बचन एळा न जावै ।

मुवरां तेजाजी की माँ है। उसमें मातृत्व मूर्तिमान है। इसलिये वह पुत्र और पुत्री दोनों का मंगल चाहती है।

घोड़ी

यद्यपि घोड़ी पशु-पात्र है फिर भी उसमें मानवोचित गुण विद्यमान है। वह बोलती, कोसती तथा समझती है। उसमें अपने स्वामी के प्रति अगाध प्रेम विद्यमान है। अतः जब तेजाजी विषधर से वचन-बद्ध हो जाते हैं तब वह कहती है—

झीणी है रे लगाम घोड़ी की डाळा,
तोड़र थूं तोड़ूं काळा को बाळग्यो।

यह सामान्य घोड़ी नहीं है अपितु अलौकिक शक्ति से युक्त है। इसीलि
को घुमाने समय तेजाजी जिस अपने गुरु काष्ठ से उसे बांधकर आते हैं वह
जाता है—

बरगा के बांधी सी हरया होग्या कं'बड़ा।

इसीलिये यह तेजाजी के बिना कहे ही जान लेती है—

बाबा थारो तो काळा की भूरी बामण्यां।
थारो म्हारो कोईनै छै रे म्हारा धणी,
थारी मामी का बोल्या बचन न टळे।

और तेजाजी की मृत्यु के समय उनके संकेत पर बहिन तथा माता
लेती है।

राधा में बहिन का प्रेम दिखाई देता है। वह ससुराल में तनिक परेशा
तेजाजी की सास दुष्ट प्रकृति की स्त्री है जो अपने दामाद तक का स्वाग
करती है और अपनी पुत्री से दूसरे व्यक्ति को पति रूप में अपना लेने के
कहती है।

परिवार-समाज-चित्रण :

'तेजाजी' में अनेक पारिवारिक और सामाजिक आदर्श भरे पड़े हैं। इस
में माता-पुत्र, माता-पुत्री, पति-पत्नी, भाई-बहिन, देवर-भाभी, भाभी-ननंद, सास
समधी-समधिन आदि के पारस्परिक सम्बन्धों के इतने सुन्दर आदर्श भरे पड़े हैं कि हा
क्षेत्र में 'राम-चरित-मानस' के पश्चात् यह लोकगाथा ही अशिक्षित वर्ग को पथ-प्र
करती रही है। इन सम्बन्धों की रक्षा केवल आडम्बर-पूर्ण शिष्टाचार से नहीं,
सौहार्द-पूर्ण बंधनों से हो रही है। प्रेम का सूत्र इन्हें ग्रथित किये हुए है। मर्याद
ध्यान प्रत्येक दशा में रखने का सफल प्रयास इस काव्य में मिलता है। तेजाजी
को लेने उसके ससुराल पहुंचे और बहिन सास द्वारा दी गई यातनाओं तथा दुःख-
भार को सुनाने व रोने लगी—

मण पीसूं छूं, मण पोऊं छूं, बीराजी म्हारा,
फेर का छड़का की सेंचूं छूं गेंद बलोवणी।

तो तेजाजी युक्ति से समझाते हैं—

भलो थारो भाग खुल्यो छै।
खूं'का करमा में लख्या छै' गेंद बलोवणी।

भारतीय परिवार में सास-बहू, ननद-भोजाई के सम्बन्ध प्रायः कटुतापूर्ण पाये जाते हैं। उनमें पारस्परिक कलह-द्वेष प्रायः चलते रहते हैं। तेजाजी अपनी बहिन से पूछते हैं—

णणदोलो थारो कांई मांगे छी री म्हारी बे'नड़,
कांई लेखा सूं ऊने मूंडो मोड़ ल्यो।

और अन्त मे तेजाजी के निर्देशों का निर्वाह करने का परिणाम यह होता है।

नणद भोजायां मल री छै घोड़ी जी हाळा,
मल री छै भाभी का मे'ल में।

'तेजाजी' मे अत्यन्त निकट सम्बन्धो मे स्नेह छलकता दिखाई दे रहा है। पति-पत्नी के पुनीत प्रेम का अन्त मोडल के सतीत्व में होता है। माता के प्रति पुत्र व पुत्री की आज्ञाकारिता, भाभी के प्रति देवर की श्रद्धा व भाई के प्रति बहिन का प्रेम अपने आदर्श रूप में चित्रित हुआ है। बहुत दिनो के पश्चात् बहिन भाई से मिलती है। इसलिये जब भाई आया तो मिलनोत्कंठा से वह छत पर से कूद पड़ती है और मार्मिक शब्दों मे अपना प्रेम व्यक्त करती है—

बीरो दीख्यायो माणक चोक में।
थांसूं ई छटक पड़ी छै राधा बानड़
आगो छै माणक चोक में।
दोड़ तो मली छै राधा बानड़।
'घणां ई दना में आयो छै रे बीरा जी म्हारा,
थारा लेखां सूं बानड़ मरगी सासरे।'

इन सम्बन्धो की परीक्षा संकट के समय होती है। तब वे अपने निष्कलुष व स्वार्थरहित रूप मे प्रकट हो जाते हैं। तेजाजी की मृत्यु के पश्चात् मोडल सती हो जाती है और राधा तथा माता अश्रु में डूब जाती हैं।

'तेजाजी' में शिष्टाचारों का सुन्दर निर्वाह मिलता है। बड़ों के प्रति ढोक, समवयस्कों से आलिंगन-मिलन तथा छोटों के प्रति आशीर्वाद व्यक्त करने के अनेक स्थल गाथा में है। हाड़ौती-क्षेत्र में परदे की प्रथा का परिपालन कठोरता से होता है और स्त्रियों का मुख यदि भूल से भी किसी ऐसे सम्बन्धी द्वारा देख लिया जावे, जो न देखने योग्य है तो उन्हें अपने ऊपर अत्यधिक झुंझलाहट आती है। राधा की सास सूत कात रही थी कि तेजाजी अकस्मात् वहां पहुंच गये उस सास के शब्द देखिये—

बाळूं जाळूं थारी लाण्यां रांदया रे माया,
म्हारा लखोणा लगाजो ने माथे मोडो देख लो।

और ठीक इससे पूर्व ही तेजाजी का शिष्टाचार देखिये—

> ब्याण्यां जार ढुवांरी छै घोड़ी जी हाळा—
> ज्वारी छै रांटघो कातती ।
> फेन म्हांका राम-रमोळ ब्याण म्हारो,
> म्हारी माता का फेनजे पगल्या लागणा ।

वस्तुतः 'तेजाजी' पारिवारिक आदर्शों से भरी एक सुन्दर गाथा है। जि
तेजाजी की सास का व्यवहार खसकता हुआ कांटा है। वह 'मानस' की कैकेयी
उसमें किसी ऊंचे मानवीय गुण के स्थान पर नीच प्रवृत्तियों को ही पोषण मिला
तेजाजी के बारह वर्ष पश्चात् आने पर भी उसके वचन होते हैं—

> अस्या तो जंवाई मोक्ला आवै छै री गूजरों की छोरी ।
> नतकेई आवै छै प्यारा फावणा ।

और अपनी पुत्री के सती होने के निश्चय पर उसे परामर्श देती है—

> 'यू' कांई बावळी होगी छै है बेटी म्हारी ,
> तेजल सरीखा जाटां का छोरा मोकळा ,

पर इसी पात्र की नीचता का परिणाम तो तेजाजी की मृत्यु रही है। इस प
की उपस्थिति से यह आदर्श परिवार अवास्तविकता के आरोप से बच गया है।

इस गाथा का समाज का ढांचा भी स्पृहणीय है। उसको आधार उ
मानवीय गुण—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि हैं। जहां कहीं इन गुणों
अभाव मिलता है वहीं इसकी प्रतिष्ठा का प्रयत्न इस गाथा में किया गया है। सत्य
प्रतिष्ठा का प्रयत्न इन पंक्तियों में है—

> भूंट घणी मत बोले रे, गूजर को माना ।
> घुड़पा धें क्वांड़ बाळू थारो खेल र घो ।

अहिंसा वृत्ति का प्रसार प्राणी-मात्र तक है। गौ-रक्षा की भावना से ज
वन को बुझाते समय सर्प तक की रक्षा करके इस भाव की प्रतिष्ठा की गई है। य
तक कि जब सर्प दंशन करने के लिए कहता है और घोड़ी कुपित होकर उसे मारने
निश्चय प्रकट करती है तब तेजाजी द्वारा अहिंसा की प्रतिष्ठा इन शब्दों में मिलती है

> हींदू धरम लजावां छां घोड़ी री म्हारी ,
> दूध लाजै छै मसमा माई को ।

लुटेरों को दंडित करके चोरी न करने की प्रतिष्ठा की गई है। वो बार
स्थल आये हैं जहां चोरी के प्रति सहज घृणा उत्पन्न करने के प्रयास मिलते हैं।

ब्रह्मचर्य के परिपालन का आदर्श तेजाजी के चरित्र में विद्यमान है। आरम्भ में भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्ति इस वृत्ति को ही क्रिया है। पनिहारिन के सिर पर घड़ा रखने के प्रसंग में ब्रह्मचर्य के आदर्श का निर्वाह दिखाई पड़ता है—

ज्यूं ई भरिया, ज्यूं ही उब लै फणियारी आया,
पैला की तरिया पै न मैलूं कळस्यो-बेवड़ो।

'तेजाजी' मे विशाल समाज-चित्रण के लिए अवकाश नहीं था। इसलिये समाज का संकुचित रूप, जिसमें कुछ ही जातियां—जाट, गूजर, मीना तथा और माली हैं, सामने आ पाया है। इन जातियों के माध्यम से जो समाज का चित्र प्रस्तुत किया गया है उसमें हमारे भारतीय समाज को दिशा-निर्देश करने की अद्भुत क्षमता है। उक्त वर्ग जो में बुराइयां है उनका प्रक्षालन कर दिया गया है और उनके स्थान पर मर्यादायुक्त समाज की प्रतिष्ठा की गई है।

अन्य काव्यगत विशेषताएं

'तेजाजी' का प्रधान रस वीर है। अंत में करुण रस भी मिलता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है जो नायक तेजाजी में व्याप्त है। उनके अदम्य उत्साह के समक्ष प्रकृति की बाधाएं दूर हो जाती हैं और शत्रु परास्त होते हैं। उत्साह निजी स्वार्थ-भावना से प्रेरित न होकर सर्वभूत-हित-कामना-मय होने से उज्ज्वलतम रूप में सामने आता है। इससे प्रेरित तेजाजी को कभी लुटेरों का मान-मर्दन करते देखते हैं, कभी गोरक्षार्थ वन की रक्षा मे तत्पर पाते हैं और कभी आर्त व्यक्ति के कष्ट का निवारण करने के लिए जूझते दिखाई देते हैं। वन में जलते हुए घास को देखकर तेजाजी अति उमंग से अग्नि को बुझाते दिखाई देते हैं—

डाळ डूंगर की तोड़ी छै घोड़ी जी हाळा,
भूंरो टो तोड़यो छै कड़वा नीम को।
सळ सळ सायां बभावै छै रै घोड़ी जी हाला,
सायां बभावै छै बांडी बरड़ में।

दया वीरता के भी उदाहरण तेजाजी में है—

मांख्यां सूं दीख्यायो बासक देवता।
सेवां सै सरप उखाळ्यो छै रै घोड़ी बो हाळा,
डालां पै झेलम्यो बासक देवतो।
डरप सूं फटकारयो छै—
फूंक्यो, पसेळ्यो छै, हिवड़े लगाल्यो!
× × ×

थाथा हुए बालक कै ताईं या थो।

युद्ध-वीरता के उदाहरण नहीं मे किंतु वसे युद्ध के सपन मिलते हैं।

करुण रस के लिए इससे मार्मिक घटना कम मिलेगी कि तेजाजी जैसे पति, माता व बहिन की उपस्थिति में मर गये अपनी भीम कटता रहे हैं। उस समय इस गाथा का लोक कवि चाहता तो भावों के प्रवाह में श्रोता या पाठक को बहुत दूर तक तथा बहुत देर तक बहाता ले जाता, पर उसने थोड़े ही शब्दों में माता और बहिन की व्यथा को इस प्रकार व्यक्त कर दिया—

म्हनूं तो बरी करी छे रे काळा रे बाबा,
छोटी सी उमर में बीरो म्हारो छळ लियो।

× × ×

माता थारी बळ बळ रोवै छे रे धोड़ी बी हाळा,
रो री छै काळा की भूरी वामस्यो।
थने म्हनूं बरी करी छे रे म्हारा साल
छोटो सो उमर में म्हने छोड़ चाल्यो।

और मोहल का शव के साथ सती होने का प्रसंग तो करुणतम है ही।

इस गाथा में बहुत कम अलंकार मिलते हैं। उपमा तथा उत्प्रेक्षा इसके दो प्रमुख अलंकार हैं। उत्प्रेक्षा का उदाहरण देखिये—

जळ में डांक पड़यो छै,
तरे छै जाणे ऊंडा दह की मांछळी।

एक अन्य स्थल पर घोड़ी के लिए कितना सुन्दर उपमान लाया गया है—
घोड़ी नाच री छै सांवण आया मोरड़ी।

अनेक स्थलों पर भाषा की अनुरणनात्मकता सुन्दर बन पड़ी है।

१. भळ-भळ भाला भळक छै।
२. खरळ-खरळ खाळ्या बोलै छै।
३. खड़-खड़ पेड़्यां उतर रयो छै।

गाथा में कथोपकथनों का प्राचुर्य है। इसके कथोपकथन घटना और चरित्र का विकास करते हैं। कथोपकथन छोटे हैं। प्रायः दो पंक्तियों में समाप्त हो जाते हैं। गाथा के कथोपकथन की प्रश्नोत्तर-शैली से वस्तु की रोचकता बनी रहती। कथोपकथन में पात्रानुकूलता और स्वाभाविकता मिलती है। इसी कथोपकथन-शैली में ही प्रारंभिक गणेश-वंदना इस प्रकार की गई है—

"कांई तो माता करैगो गणेश्यो,
कांई करैगी देवी सारदा ?"
"रद सद करैगा गणेस-देव लाल म्हारा,
भूल्या नै संभलावैगी देवी सारदा।"

कथोपकथन के बीच-बीच में थोड़े से विवरण मिलते हैं जो सरस तो हैं, पर पुनरावृत्तियों से युक्त हैं। लोकगाथाएं स्मृति-पटल पर ही आश्रित रहने के कारण ऐसी पुनरावृत्तियों को दोष रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

बगड़ावतों की हीड

'हीड़' शब्द पर अन्यत्र विचार हो चुका है। बगड़ावत गोठरा निवासी बाघजी नामक क्षत्रिय के पुत्र थे। लोकगाथा के अनुसार इनके २४ पुत्र थे जो अपनी शूरवीरता और रोमांसमयी प्रवृत्ति के कारण लोक-कंठ में घर कर गये हैं। हाड़ौती-प्रदेश में इनकी वीरता की यह गाथा गूजरों में विशेष रूप से प्रचलित है, जिसे वे गेहूं बोने के पान-आश्विन मास से आरंभ करके दीपावली तक गाया करते हैं। इन वीरों की गाथा हाड़ौती में 'बड़ी हीड़' के नाम से प्रचलित है।

कथानक

बाघ जी के २४ पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें नियाजी और भोजाजी दो प्रमुख थे। एक बार नियाजी पाटोदी कल्पालिन के पास सुरापान करने गये वहां उन्होंने जितनी सुरापान की उससे अधिक भूमि पर गिरा दी। इससे शेष नाग (वासकराज) विचलित हो गये। उन्होंने भूमि के इस भार को दूर करने के लिए भगवान से प्रार्थना की। भगवान विष्णु की प्रेरणा से नारद कुष्ठ-रोगी का वेश धारण करके चौबीसों (२४ पुत्रों) को छलने चले, पर असफल रहे। तब भगवान की प्रेरणा से चौसठ योगिनियों ने स्वदेह की मैल से भवानी की उत्पत्ति की। उस भवानी ने भी अपनी देह की मैल से हीरा दासी को उत्पन्न किया। योजनानुसार भवानी ने बदनौर के राजा के यहां जैमती कन्या के नाम से जन्म लिया। युवावस्था प्राप्ति के साथ जैमती का टीका लेकर ब्राह्मण गोठ में पहुंचा, जहां उसने भोजाजी को नारियल दे दिया। भोजाजी ने रेण के वृद्ध राणजी को यह टीका दे दिया और वृद्ध राणजी बरात बना कर चले। नियाजी और भोजाजी भी बरात में थे। तोरण भोजाजी द्वारा मारा गया और उसके तीन फेरे भोजाजी ने खाये, पर विवाह वृद्ध राणजी के साथ ही सम्पन्न हुआ।

जैमती भोजाजी पर आसक्त हो गई थी। अतः उसने दासी द्वारा मना किये जाने पर भी भोजाजी का पत्नीत्व ग्रहण करना उचित समझा और पत्र लिखकर बारया-चक्र के द्वारा भोजाजी के पास भेजा। भोजाजी ने पत्र पढ़कर जैमती को अपने घर लाने का निश्चय किया, यद्यपि उसको भाभी ने रैण के रावजी से शत्रुता मोल लेना उचित नहीं बताया। अब ये २४ भाई सशस्त्र रैण में पहुँचे और बाग में जाकर हीरा के सिर का घड़ा फोड़ दिया। तत्पश्चात् भोजाजी अपनी बूंळी घोड़ी को उड़ाकर महल में ले गये और वहां से जैमती को भगा लाये—

> थांसै बूंळी भवानी उड़ी म्हलां कै उपरबास,
> थांसै तो लाई जैमती राणी नै उतार।
> थांसै चौईसा भाई बांका लाग्या छै गोठां की गैल।

गोठ पहुँच कर भोजाजी निश्चित विलास में डूब गये। इधर रैण के रावजी सेना सजा कर गोठ पर आक्रमण करने आ गये। तब चौईस भाई सशस्त्र लड़ने चले। युद्ध में उन्होंने रावजी की सारी सेना समाप्त कर दी—

> सारी फोजां राणा की उड़ा दई
> छोड़ था दो लोग ।

इसी बीच में राणी जैमती के मन में चौईसों से घृणा उत्पन्न हो गई थी। अतः उचित अवसर समझ कर उसने चौईसों को समाप्त कर दिया—

> घुड़ल्यो फैरयो राणी जैमती नै,
> फोंदा करी परवाण
> मूंड माळा राणी नै फैरली
> चोबीस बैटा बाघ का माथा लीना उतार।

अब भोजाजी की पत्नी सेडू के गर्भ से सम्वत् १४०० के माह मास के शुक्ल पक्ष में देवनारायण ने भूमल में जन्म लिया इससे रैण के रावजी चौंक पड़े—

> माह महींनो पख चांदणों, चोदस सो को साल,
> नारायण नै जनम लियो लेड़ै मूंराळै जाय।
> धर्मी राणा की गढ़ राण।
> सूना राणा सोभ्फळपा, सोभ्फळ बैठ्या होय।

अतः उसने दूतियों द्वारा देवनारायण की हत्या करवानी चाही, जिससे उनों का दिन देवनारायण के लिए भयप्रद बन गया। माता को यह षड्यंत्र प्रकट हो गया और वह उसके मायके चली गई। वहां उसे समाज व परिवार का यह अपवाद सहना पड़ा कि भोजाजी को मरे तो एक युग हो गया और यह पुत्र कैसा? पर देवनारायण के अलौकिक प्रभाव से सब शांत हुआ।

जब देवनारायण कुछ बड़े हुए तो छोछू भाट ने रैण के रावजी द्वारा उन्हें वंशानुगत शत्रुता को स्मरण कराया और उन्हें गोठ मे ले आया। यहां आकर उन्होने सेना एकत्र की और रैण के रावजी—भोल्या पर आक्रमण किया। इस बार भयंकर युद्ध हुआ जिसमें भोल्या मारा गया और देवनारायण की विजय हुई। रैण का राज्य देवनारायण ने अपने भाइयों को दे दिया और स्वयं गौ-सेवा करने लगे।

वस्तुतत्त्व

'बगड़ावत की होड' की कथा मे अलौकिक और लौकिक तत्त्वों का समावेश है। जेमती के चरित्र मे अलौकिक तत्त्वों का अत्यधिक समावेश है। उसकी जन्म की कथा और बाद के कृत्य अलौकिक हैं। चोईसों के साथ जुड़े घटना-चक्र में भी यत्र-तत्र अलौकिक तत्त्व विद्यमान है। अतः इस गाथा की घटनाओं के विकास का आधार ठोस भौतिक प्रतीत नही है। कार्य-कारण की एक शिथिल शृंखला उन्हे बाधे तो है, पर उसमें पाठक बौद्धिक समाधान नही पाता है। नियाजी और भोजाजी के सुरापान का भार शेषनाग पर पड़ना और उसका भगवान से प्रार्थना करना-जैसी घटनाएं पाठक के गले नहीं उतारी जा सकती। इसी प्रकार चोईसों की विजय दिखाकर भी जेमती द्वारा उनका वध किसी ठोस आधार पर न दिखाया जाने से वह युक्ति-संगत नही प्रतीत होता है। देवनारायण का जन्म-आधार भी अलौकिकता लिए हुए है। इस गाथा के कथा-विकास के आधार रोमांस और आश्चर्यतत्त्व हैं। गूजर भोजाजी पर जेमती की आसक्ति और भोजाजी का जेमती के लिए प्राणों पर खेल जाना वीरगाथा काल की घटनावलियों की याद दिलाती है। इस रोमांस की विद्यमानता से गाथा में आकर्षण उत्पन्न हो गया है।

देवनारायण से सम्बन्धित कथा स्वतंत्र उपकथा है, जिसका पूर्व की घटनावली से क्षीण सम्बन्ध है। वंशानुगत वैर के आधार पर भोल्या पर आक्रमण करने के मूल में छोछू भाट की प्रेरणा रही है। यह अंश लघु और प्रथम की तुलना में प्रभावशून्य है। इसने 'होड' का अंत सुखमय हो गया है।

इस प्रकार समस्त कथानक में घटनाओं के अनेक उतार-चढ़ाव हैं। जिनके फलस्वरूप पाठक या श्रोता का कुतूहल गाथा में साद्यन्त बना रहता है। प्रेम का त्रिकोण और वंशानुगत शत्रुता के भाव गाथा में फैल कर उसे शिथिल और प्रभावहीन बनने से बचा लेते हैं। अलौकिक तत्त्वों की उपस्थिति से जो वस्तुगत शिथिलता आई है उसे उक्त दोनों भावों ने सुन्दरता के साथ संभाल लिया है।

चरित्र-चित्रण

इस गाथा के प्रमुख पुरुष पात्र हैं—नेवाजी, भोजाजी, रैण के रावजी, देवनारायण और छोछू भाट और स्त्री-पात्रों में जेमती प्रमुख है। ये पात्र जाति के रूप में ही अधिकांश में चित्रित हुए हैं। इसलिये चरित्रों की स्थूल रेखाएं ही उभर पाई हैं।

नेवाजी तथा भोजाजी

बावजी के पुत्र नेवाजी तथा भोजाजी दोनों भाई हैं और दोनों के प्रतिनिधि हैं। इन सभी पुत्रों की समान आकृति-प्रकृति है—

> दोईंग तो बेटा भी रे एक बाप का।
> जे बांको एक रे पूरस एक मुगुध्यार।

प्रारंभ में इन्हें सुराराम करने वाले रूप में दिखाया है। ये अद्भुत शराबी हैं। शराब पीने की धुन में ये अपनी घोड़ी तो गिरवी नहीं रखते, पर स्वर्ण का सांकला अवश्य गिरवी रखकर शराब पीते हैं। इनके शराब पीने का अतिशयोक्ति-पूर्ण विवरण इस प्रकार मिलता है—

> बारा ई माटी तो मियोजी पी गयो,
> ऊ तो तेरा की पी गयो उधार।
> ऊन्या ई तो मूण्यां नियोजी भड़क्यो,
> बाने भाड़पा ए समंद तळाव।

उसमें एक सहज शूरवीरता है जिसने जेमती को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। उस शूरवीरता का प्रदर्शन तोरण मारते समय भोजाजी द्वारा किया जाता है। रैण के रावजी से युद्ध करते समय उनका युद्ध-कौशल दिखाई देता है। नारदजी के छल से बचकर वे अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हैं, पर वे सर्वत्र बुद्धिमान प्रतीत नहीं होते हैं। इसीलिये जो नारियल भोजाजी के लिए आया था उसे वे रैण के रावजी को दे देते हैं। भोजाजी अद्भुत प्रकार के अल्हड़ प्रेमी हैं। जेमती का पत्र पाकर भाभी के मना करने पर भी और मृत्यु को सामने खड़ा देखकर भी अपने निश्चित मार्ग से विचलित नहीं होते हैं और भाभी से कह देते हैं—

> आडे तो दे लेंगा भाभी म्हारी माडण्यां,
> भाभी म्हारी पल-पल आवेंगा सेल।

नेवाजी को अपनी बूंळी घोड़ी से अत्यधिक प्रेम है जिसे वे भवानी का अवतार मानते हैं।

संक्षेप में, दोनों के जीवन में सामंती युग की छाप है। उनके जीवन में वीरता और प्रेम का अद्भुत मेल है, जिसे सुरा प्रोत्साहित करती रही है।

रैण का रावजी

रैण राज्य के रावजी वृद्ध क्षत्रिय हैं, जिनका विवेक खोया हुआ है। अतः उस अवस्था में भी १३ वर्षीय जेमती से विवाह करने को उद्यत हो जाते हैं और कर लेते

है। वे सामन्ती युग की विलासिता के प्रतीक हैं। उनकी वीरता का आधार रक्तपातों की शक्ति है। अस्सी वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई है—

अस्सी बरसां का रैणां का बांगरा पै हरदम्या बावर की रात।

देवनारायण :

उत्तरार्द्ध कथा के नायक देवनारायण का जन्म पिता सिवाजी की मृत्यु के उपरांत हुआ। बाल्यकाल में ही इनमें अद्भुत पराक्रम और अलौकिक शक्ति सम्पन्नता दिखाई देती है। इसीलिये जब रावजी द्वारा उन्हें विषपान कराने के लिये दूतियां भेजी जाती हैं तब वे विष को भी अमृत के समान पी जाते हैं—

ल्याऊं ईं दूत्यां का मांचळ पी गयो
अमरत करियो मान।
कळापारी हो पेटां में जनम लिया
राणाजी ऊ ने मारैगो मान।

और जिस सूखी डाल पर बाल्यकाल में वे झूमते हैं वह हरी हो जाती है—

सूखा हो बांस हरया नारायण कर दिया,
कोयलिया बोल रही कुरळाट।

उनमें गौ-रक्षा की अद्भुत लगन है। वंशानुगत बैर का भाव छोछू द्वारा जागृत किया जाने पर वे गोठ का राज्य लेकर ही छोड़ते हैं और त्याग-वृत्ति के फलस्वरूप उसे अपने भाइयों को दे देते हैं। देवनारायण का चरित्र अलौकिक शक्तियों से युक्त होने के कारण देव-कोटि में ही आवेगा, उसमें मानवीय विशेषताएं अल्प हैं।

छोछू भाट

छोछू भाट अपनी जाति का प्रतिनिधि और सच्चा ईमानदार व्यक्ति है। अस्सी वर्ष का बूढ़ा भाट छोछू बालक देवनारायण में उन भावनाओं को उभारता है, जो रैण के रावजी का राज्य गोठ से अंत करने का कारण बनी हैं। देवनारायण द्वारा १३ वर्ष का युवक बनाया जाने पर, वह गोठ में जाकर गुप्तचर का कार्य करता है और गोठ की पनिहारिन द्वारा पहचाने जाने पर वह युक्ति से काम लेता है—

थाने दे दूं दोवड़ कापड़ा, लागै धरम की बैण।
मत कीज्यो रैण का राव सूं, म्हाने देगो जीवड़ा सूं मार।

रैण का राव से साक्षात्कार करने के लिए उसने धूल छानने की जो युक्ति निकाली वह उसकी सूझ-बूझ का परिचय देती है।

जैमती

गाथा की नायिका जैमती सबसे आकर्षक पात्र है। वैभव और मानवीय दुर्बलताओं से युक्त यह पात्र अद्भुत सा प्रतीत होता है। उसकी उत्पत्ति भी विचित्र ढंग से हुई है। चौसठ योगिनियों की भैंस की कुक्षी ने भवानी को जन्म दिया और वही बजनौर के राजा के यहां जन्म लेकर आई—

भैंस की बतियां थाने समझ लो
ऊंची भवानी बणाई गई ।

जिसके सम्बन्ध में ज्योतिषियों की भविष्य वाणी होती है—

मांडे तो आयो रे राजा राणी जैमती
या परणे भोठां में जाय ।

वह एक अपूर्व सुन्दरी है जिसके अंग-प्रत्यंग का अपूर्व सौंदर्य है—

पूंगरळ्यां सी आभी बांकी आंगळ्यां, मुग्धा चंपा की डाळ ।
पींड्यां बांकी सगसगी, जांघा बांकी मेदा की लोय ।
आंख्यां बांकी आंबळा की फांक, ज्यांकी नाक सूवा की चूंच ।
होट पुताड़्यां पाका रच रया, भाभी पाका दांत दाड़ूंघ् का बीज ।
चोटयां में बासक रम रया, ज्यांका सीस बण्यां नारेळ ।

वह भोजाजी की अल्हड़ता और वीरता पर आसक्त है। इसलिये रावजी से विवाह होने के उपरांत भी उसका लक्ष्य भोजाजी को प्राप्त करने का रहता है। राजसी वैभव-विलास के समक्ष वह गोबर और छाछ में रहना अधिक पसंद करती है। अतः जब भोजाजी उसकी सुधि तक नहीं लेते तो वह पत्र लिखकर भेजती है, जिसके प्रसाधन है—

चटी तो आंगळ्यां की हीरा कलम करो ।
हीरा म्हारी आगळ्यां की बणा लो दवात ।
लख-लख तो परवानूं हीरा छोरो मांड दे ,
हीरा म्हारी बीवा में सात सलाम ।
बगल्यां ई तो बगल्यां में लख जे ओळघू ,
हीरा म्हारी बीवा में सात सलाम ।

और बात्याचक के द्वारा पत्र पहुंचा देती है। अन्त में उसका भवानी का रूप पुनः सामने आया है। जब चोईसों को मारकर वह मुण्ड माला धारण करती है—

मूंड माला राणी नै फैर लो—
चोईसा बेटा बाघ का माथा लीना उतार।

संक्षेप में, जेमती का चरित्र परस्पर विपरीत विशेषताओं का संघात है। उसे देखकर पाठक आश्चर्यचकित तो हो जाता है, पर उससे प्रभावित नहीं हो पाता है।

अन्य विशेषताएं

रस की दृष्टि से इस गाथा में वीर तथा शृंगार रस की सामग्री विद्यमान है। शृंगार रस की दृष्टि से आलम्बन का अनौचित्य इसमें सबसे बड़ी बाधा है। भवानी का अवतार जेमती प्रेमिका है, जो शराबी प्रेमी भोजाजी के सर्वथा अनुपयुक्त है। यद्यपि काव्य के मध्य में जेमती का पंडित से यह कहना कि टीका चोईसा को देना है, रैण के राव के अधिकार में रहकर भी भोजाजी को प्रेम-भरे पत्र लिखना तथा दासी के मना करने पर भी भोजाजी को प्राप्त करने का आग्रह करना आदि बातें इस बात की ओर संकेत करती हैं कि इसके हृदय में भोजाजी के प्रति गंभीर प्रेम है तथापि अंत में उसे चोईसों की मुंडों की माला धारण करते देख पाठक की धारणा परिवर्तित हो जाती है। तब पाठक समझने लगता है कि यह तो सब लीला थी। इसलिये शृंगार रस की सारी सामग्री विद्यमान होने पर भी रस-निष्पत्ति में बाधा प्रस्तुत होती है। वीर रस के वर्णन में युद्ध के वर्णन सजीव और आकर्षक हैं। चोईसों की एक-एक क्रिया से उत्साह झलकता है। यही बात देवनारायण के युद्ध-कौशल में दिखाई देता है।

गाथा में अनेक वर्णन सुन्दर बन पड़े हैं। जिस उत्साह से बरात में जाने की तैयारी चोईसा करते हैं उसमें स्थानीय रंग है जिससे वर्णन मे स्वाभाविकता आगई है—

कमर ई तो कटारी चोईसा ने बांध लियो।
दाने बांध्यो छै पातू ई हथियार।
चम-चम तो दमके छै चोईसा का बीजळा।
बाके बैलां को माच्यो भरळाट।

जैमती के अंग-प्रत्यंगों के लिए जो उपमान लाये गये हैं, वे कितने स्वाभाविक हैं। लोक-साहित्य में मूंगफलियों सी अंगुलियां, नारियल सा सिर, शेषनाग सी चोटी आदि उपमाएं रूढ़ हो गई प्रतीत होती हैं। उन्हीं का यहां उपयोग है। अतिशयोक्ति तो अनेक स्थलों पर मिलती है—

१. सातई तो पड़दा जमी का फूट गया,
मण वैं साव्यो छै सराप।

आडे फरघो छै बानड़ बेग आय के, यो आवे न जावा देय।

तब मां ने लिखा भेजा—

बैनड़ दीजे थारी पूठ की, थंई मोऊ मैं देगो पुगाय।
हाथी तो दीजे थारी चढ़ण को, थंई मोऊ देगो पुगाय।
हरी हरी चूड्यां परथीराज फैर जे, ओढ़ जे दखणी चीर।
खाडी बणजे रै बानड़ बेग की, थंई मोऊ में देगो पुगाय।

इस पत्र को पढ़कर पृथ्वीराज की सुप्त वीरता जाग उठी और वह बानड़ बेग को मारकर घर लौट आया।

अब उसने मामा को लिखा कि मुझे नैनसुख घोड़ी व कुंडालदेश चाहिये पर जब मामा का यह उत्तर मिला—

"मांग्या ई बछेरा रै भाणजा न मलै, न मलै मांग्या गांव।
मांगी मलै न बैसल देश कुंडाळ को, यू लागै छै भाणेज।
उलटाई कागद कागय फेर लखो, करड़ा लखो जवाब।
घोड़ा चढणी को थारै हूंस छै, म्हारै चंदा को चाकर होव।"

तो युद्ध की तैयारियां आरंभ कर दी और मामा को भी युद्ध के लिए तैयार रहने का पत्र लिख दिया गया। दोनों ओर अनेक योद्धा बुलाये गये। पृथ्वीराज को सहायता के लिए सुगरा तथा काल्या भील और सेरावाद के मीने आये और घाटी के रावजी की सहायता के लिए भवानीसींगजी और सारपन के सेरसींगजी आये।

भयंकर युद्ध हुआ। उसमें सूरजमल मारा गया और रावजी भी काम आये। झाली राणी राव जी के साथ सती हो गई। अब चंदा सीधा अकबर बादशाह के पास अपनी प्रार्थना लेकर दिल्ली पहुंचा। अकबर बादशाह तो युद्ध में आने के लिए तैयार हो गया, पर उसकी बेगम बोल उठी—

काट खाऊंगी मियां जी कालजूं, बैंच खाऊंगी सूर।
बांको मूण्यू घं परथीराज पातळो, ऊ भडकै लेगो मार।

अतः उसने चंदा को जयपुर के राजा मानसिंह के पास भेज दिया। राजा मानसिंह अनेक वीरों को लेकर पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिये आ गये। दोनों दलों में युद्ध हुआ। चंदा के हाथ से पृथ्वीराज का मंत्री बोला मारा गया।
भयंकर युद्ध करने लगा। राजा मानसिंह को मारने के लिये वह
: के होदे को काट गया। अंत में बादशाही भी काट दिया जिस पर
[illegible]—

एक एक होदो तो परथीराज काट्यो, कांई दीना प्रवयावन काट ।
प्रवयावन होदो तो म्हनै काटिया म्हानै दीखै नाई मान ।
काती कुत्ती ज्यूं मान थारी मां होई, क्तनाइ जाया मान ।
प्रवयावन होदा तो मनै काटिया, होदा होदा में मान ।
घोड़ो पलाण्यू ईनै नैणसुखो हथणी के प्रधरधास ।
भूरी हथणी पै राजा मान सोवै, ईनै होदो दीनूं काट ।

अंत में दोनों पैदल लड़ने लगे और दोनों घायल होकर गिर पड़े । बहिन को जब यह समाचार मिला तो वह मिलने आई और उसके मिलते ही पृथ्वीराज इस संसार में नहीं रहा—

बैनड़ सूं मल तांई मोरछा मा गई, लेख्या पाळ तळाव ।
प्राकास से प्राई गुरवण्या, लेगी यांईं उठाय ।

पृथ्वीराज-युद्ध (पंवाड़ा) नाम से एक प्रति कोटा संग्रहालय मे सुरक्षित है । यह प्रति प्राचीन नहीं है । अभी २-३ वर्ष पहले यह सुनकर लिखी गयी है । इस प्रति की गाथा मे और मुझे दीगोद से प्राप्त गाथा मे तनिक सा अंतर है, जो लोक-गाथाओं में मिलता है । संग्रहालय की प्रति का प्रारंभ सूरजमल व कलाली के प्रश्नोत्तर से होता है । मध्य भाग मे चंदा की प्रार्थना सुनकर अकबर स्वयं आने को तैयार नहीं होता, अपितु वह भूरेखा को पत्र लिखता है पर उसकी पत्नी भी अकबर की पत्नी के समान 'कात खाने' की बात कहती है । अब अकबर भरे दरबार मे पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए 'बीड़ा' फिराता है, जिसे राजा मान उठाते हैं; अन्य किसी का साहस नही होता । प्रमुख पात्रो के नाम तो दोनो में समान है, पर गौण पात्रों के नामो में अंतर मिलता है । इसी प्रकार आक्रमण के समय विभिन्न स्थानों पर पड़ाव डालने के वर्णित स्थानों के नामों में भी अंतर है ।

चरित्र-चित्रण

पृथ्वीराज की लड़ाई के पात्रों मे नायक पृथ्वीराज का चरित्र-चित्रण ही विशेष रूप से हो पाया है, शेष पात्रों के चरित्रों पर अधिक प्रकाश नही पड़ पाया है । इस गाथा के पात्रों की संख्या अधिक है, पर उनमें से कुछ का तो उल्लेख-भर है । पृथ्वीराज के अतिरिक्त सीवण मां, चंदा, ढोला, रावजी, मानसिंह व अकबर उल्लेखनीय पात्र हैं ।

पृथ्वीराज

सीवण माता से उत्पन्न मऊ का राजा पृथ्वीराज बाल्यकाल में चपल और उद्दंड है। उसे खेलों का बड़ा चाव है। जब वह तिलोल खेल को अपनाता है तब उसकी उद्दंडता प्रकट हो जाती है—

> चाव चटूया को कंवरां ने मेट करयो, लियो छ्ँ गलोल्यो चाव।
> फणगट भैंस्यो फोड़े बेवड़ा, नत की लावे राड़।

यही उद्दंडता धीरे-धीरे निर्भीकता में परिणत हो जाती है। वीरता के साथ निर्भीकता मिलकर उससे जंगल के समस्त सूकरों तथा सिंहों का शिकार कराती है।

पृथ्वीराज स्वभाव से क्रोधी तथा उतावला है। क्रोध में वह अपने विवेक को खो देता है। तब उसका ओछापन भी सामने आता है। वह चंदा के साथ शिकार खेलने गया और चंदा के हाथ की बर्छी शिकार पर फिसल गई। इसी पर उसने चंदा में गाली निकाल दी—

> बरछी रपटी चंदा का हाथ की, पीथा ने खाडी गाळ।

यही स्वभाव का छिछलापन उसके स्वभाव में दुष्टता ला देता है, जिससे सामान्य मानवीय गुणों का भी कहीं-कहीं लोप दिखाई देता है। अपने मामा का पृथ्वीराज ने वध कर दिया है और मामी उसके साथ सती होने जा रही है। वह आग में जल रही है। पृथ्वीराज अपनी प्रकृतिवश उस समय भी व्यंग करने में नहीं चूकता—

> ऊबो ई ऊबो परपी राज ज्वाब करै, सुण जे मामी म्हारी बात।
> दूध सलायो मामी म्हारी दाफती, थूं कस्यां सहेगी आग।

पर अपनी मां के प्रति उसमें श्रद्धा है और वह आज्ञाकारी है। पृथ्वीराज एक वीर पुरुष भी है। उसे युद्ध प्रिय है। अतः अपने जीवनकाल में उसने कई लड़ाइयां लड़ीं। युद्ध-कौशल से परिचित होने के नाते न तो काल्या भील उसके सामने ठहर सका, न सेराबाद के मीना और न घाटी के रावजी तथा चंदा। कभी-कभी वीरोचित उदारता भी उसमें दिखाई देती है। अतः वह शरणागत काल्या भील को क्षमा कर देता है, किन्तु अधिकांश में तो उसमें नृशंसता ही है। घाटी पर चढ़ाई करते हुए रावजी के अधिकार के गांव को लूटना और उसको जला देना इसका परिचायक है—

> नगर नमाणा का मोटा सेठजी, लूट्या ई ने आर।
> हलो का घेरया डांगरा, हांक मऊ में जाय।

× ×

बैठ्यो ई बैठ्यो पीथो ज्वाब करै, सुरण ढोला परधान।
नगर नमाणू बाळो गाव नै, जो रावजी सुरणे परवान।

वह स्वाभिमानी तथा दुराग्रही है। एक बार जिस बात को मन में ठान लेता है उसके औचित्य-अनौचित्य पर बिना विचार किये उसे पूरा करना चाहता है। मामा से कुंडाल देस व नैरण-सुख अश्व तलवार के बल पर मांगता है, जिसे उसकी मां राखी बांधकर मांगना चाहती है—

म्हूं बेटो छूं बांका रजपूत को, स्यूं तलवारयां कै पाण।

कभी-कभी वह कायरता का भी प्रदर्शन करता है और अपना वास्तविक रूप भूल जाता है, किन्तु जब उसकी मां व्यंग्य-बाण से वास्तविकता का बोध कराती है तो उसकी शूरवीरता प्रकट हो जाती है। बानड़ बेग ने पृथ्वीराज को उस समय रोक लिया जब वह गुजरात से आ रहा था। तब मां ने उसे कहला भेजा कि अच्छा हो कि तू बानड़-बेग की पत्नी बन जा, तब वह ही तुझे मऊ पहुंचा देगा। इस कथन ने उसके सोये हुए क्षत्रियत्व को जगा दिया। पृथ्वीराज बानड़ बेग के शव को उसकी पत्नी को देकर अपनी उदारता का परिचय देता है। यहां तक कि उस शव को आगरे पहुंचाने का प्रबंध करता है, जो क्षत्रिय-परंपरा की एक कड़ी के समान है—

बैठ्यो ई बैठ्यो परथीराज ज्वाब करै, सुरण ज्यो बोदूजी बात।
मेलै-मेलै म्हां तो जावै छा, ई नै सगत तुड़ाई नाड़।

×　　　×　　　×

हरया तो काटो रे बागा का बांसड़ा, ल्यो रै डोळी बरणाय।
ज्यां मैं बठाणो मियां साब नै, आगरै दो नै पहुंचाय।

वह विजय-कामना से भगवान पर आस्था रखता है, पर उसके कार्यों से किसी आस्तिकता का परिचय नहीं मिलता है। गावों को जला देना और लूट लेना किसी उदात्त मानवीय वृत्ति के परिचायक नहीं है। नशा करना और चौपड़ खेलना तो सामान्य राजपूती विशेषता है, पर प्रश्न-विशेष के लिए पृथ्वीराज का प्रण नितांत वैयक्तिकता लिए हुए है।

चंदा

घांटी के राव जी का पुत्र चंदा स्वाभिमानी क्षत्रिय है और भाली रानी का पुत्र है। यद्यपि पृथ्वीराज द्वारा शिकार के समय गाली देने के प्रसंग में उसकी त्योरियां चढ़ जाती है, पर उसमे भी यही अवगुण विद्यमान है। बाल्यकाल से ही वह वीर है, पर हथियार चलाने से उसे [illegible]

उसकी बर्छी शिकार पर से फिसल जाती है। बाद में वह कुशल योद्धा के रूप में युद्ध-क्षेत्र में दिखाई देता है और युद्ध में डोला का वध करता है। पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने की उसकी उत्कट लालसा है। प्रतिहिंसा से पीड़ित होकर वह कभी अकबर के पास जाता है और कभी मानसिंह के पास। अकबर ने जब टालमटूल की तो उसका उत्तर होता है—

> डूब गी बादसा थी बादसाही, डूब्यो राजपूतां को राज।
> रावजी सरीसा रण में मार दया, म्हारी कोई न सुणै पुकार।

माता के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा है। युद्ध से पूर्व चौपड़ खेलना, नशा करना, तत्कालीन राजपूती विशेषता-रूप में उसमें भी विद्यमान है।

घाटी के रावजी

घाटी के रावजी चंदा के पिता हैं। उनके चरित्र में सामान्य क्षत्रियोचित गुणावगुण विद्यमान हैं। अपने भानजे के प्रति उनके हृदय में प्रेम विद्यमान है। जिसका परिचय उसके प्रथम मिलन के समय देते है—

> हाथ्यां ने दवा दो नोमण चूरमा, घोड़ां ने रातब घांस।
> साथ्यां ने दबा दो एगता चूरमा, घी की रैलापेल।
>
> × × ×
>
> हंस के मळकतां मामाजी नै भोळ्यां लयो, सिर पै फेरयो हाथ।
> जीवतो रीजे म्हारा भाणजा, थई दियो रीछवो पांव।

पर दुराग्रह, व गाली देने की प्रवृत्तियां उनमे भी विद्यमान है। अतः भाणजा द्वारा घोड़ा मागने पर वे यह कह देते हैं—

> घोडा चढणो की थारे हू'स छें, म्हारे चांदा के चाकर आव।

वीर होने पर भी राव जी में युद्ध-कौशल नहीं दिखाई देता। अतः वे युद्ध मे मारे जाते हैं।

डोला पृथ्वीराज का मंत्री और कुशल योद्धा है। सूरजमल जाति से बनिया होने पर भी अद्भुत वीर है। सिर कट जाने पर भी वह लड़ता रहता है। इस पर पृथ्वीराज के मुंह से उसकी प्रशंसा सुनाई पड़ती है—

> धन रे सूरजमल मायड़ी पूत जणिया, जो जणती दो-चार।
> एकम रसरी का धाना लागता, तो थो पाती दल्ली को राज।

खींवण मां

सभी पात्रों में सबसे सबल व्यक्तित्व खीवण मां का है, जो पृथ्वीराज की मां है। यदि शिवाजी को वीर बनाने का श्रेय माता जीजाबाई को है तो पृथ्वीराज को वीर बनाने मे भी खीवण मां का पूरा हाथ है। वह सच्ची क्षत्राणी और कुशल माता है। अपने पुत्र को शूरवीर तथा उद्दंड रूप में ढालने में उसका पृथ्वीराज के बाल्यकाल से प्रयत्न रहा है। इसीलिये पनिहारिन को बेवड़ा फोड़ने की शिकायत पर पुत्र को न डांटकर वह उसको पीतल के बेवड़े देने की व्यवस्था करती है :

> जाली का झरोखा सूं खीवण ज्वाब करै, सुण जे ढोला बात।
> तांबा पीतळ का दवा दो बेवड़ा, ये हरखतड़ा घर जाय।

जब कभी अपने पुत्र में कायरता देखती है तो उसके व्यंग्य-बाण अत्यधिक तीव्र हो जाते हैं। बानड़ बेग के प्रतिरोध को समाप्त करने मे अपने पुत्र को अक्षम देख कर कहती है, अच्छा हो, तू बानड़ बेग की पत्नी बन जा तो वह तुझे मऊ में पहुंचा आवे। कभी यह व्यंग्य तीखा न होकर मार्मिक होता है। उसका स्वरूप उसी के पुत्र पृथ्वीराज के द्वारा इस प्रकार वर्णित है—

> खीवण थाई काळी बरड़ मै, सांप बामली मांई।
> खींवण ध्याई मऊ का मैल में, जीनै जायो परथीराज।

वह भी स्वभाव से क्रोधित है। जब ज्योतिषी द्वारा यह बतलाया जाता है कि पृथ्वीराज अपने मामा के लिए घातक होगा तब वह कहती है—

> बाळो तो जालूं नै पोथी पानड़ा, पत्रड़ा में मेलूं आग।
> वो भायां का फेरया घूमथा, धूंकी मूरी भैंस।
> थांई तो करूं रै घर को ओमी धूं, न तो दारूं मार।
> सर तो टंका दूं फळस्या कै कांगरां, धड़ दरवाजा कै बार।

'वो भायां का फेरया घूमथा, धूंकी मूरी भैंस' में अपने भाई के प्रति सहज प्रेम उसमे विद्यमान है। इस भ्रातृ-प्रेम ने उसके पुत्र-प्रेम को दबाया नहीं है। इसी से वीरा खीवण पृथ्वीराज के प्रयाण के समय कितनी मीठी घुड़की भरती है—

> म्हूं बरजूं धूं थूठो मान लियो, मान जा मायड़ की बात।
> सांगा मूण्या पै घाटो का राव जी, थांई भड़के लेगा मार।
> म्हूं बरजूं धूं थूठो मन लियो, मानजा मायड़ की बात।
> समदा दत्तो यो म्हारा वीर नै, लायो ऊंटड़ा छोड़।

सींवण मां के व्यक्तित्व में मदरदर्शी क्षत्राणी का चित्र अंकित हुआ है। उसका पुत्र-प्रेम दर्पमयी माता का प्रेम है।

झाली राणी सच्चो दर्प से दीप्त क्षत्राणी है। उसे अपने पति से अगाढ़ प्रेम है, जिसका परिचय सती होकर देती है। पृथ्वीराज के प्रति इसके हृदय में प्रेम विद्यमान है। अतः युद्ध में जाते समय राव जी को समझाती है कि उसे मारना मत।

अन्य काव्यगत विशेषताएं

'पृथ्वीराज की लड़ाई' में युद्ध के वर्णन सुन्दर बन पड़े हैं। श्रोता वर्णनों को सुनकर ऐसा अनुभव करता है मानों लड़ाई उसकी आंखों के सामने हो रही है। दृश्य गतिमय चित्रों के रूप में आंखों के सम्मुख आने लगते हैं। यद्यपि जितने भी युद्ध इसमें हुए हैं उनमें एक ही प्रकार के वर्णनों की आवृत्तियां है, पर ऐसा तो लोकगाथाओं में प्रायः मिलता है। ये वर्णन कल्पना-प्रसूत न होकर वास्तविक से लगते हैं—

दोन्यां का दळां में बाजा हद बाज रया, दोनी बुवारै खेत।
रण का मांझे दोनों आवड़या, यामैं हुण पांडू हुण मेत।
दोनों का घोड़ा फरया गोनकुंडे, दोनी छुड़ावै दांव।
दळ का मांझी दोनों आवड़या, यामैं हुण पाहूं हुण मेत।
पाज धरा पै चमकै बीजळा, पाळा बारळ मांई।
झोको चमके यूं रावजी का हाथ को, पीथा का दळ के मांई।
रावजी सरे यूं परयो यूं बाजै, रै ग्याणी मन के मांई।
लगी पमांड़ूं ग्ळशा मेल को, जाठे हळ में ठोको हार।
× × ×
मस्तक-मस्तक दो होवा नाळ करै, उठी मैं मन मै ही अपूर।
× × ×
तरवारयां की तड़ी उडै, बगतर कट कट जाय।

युद्ध का वर्णन करते समय यह ध्यान रखा गया है कि पात्र के अनुरूप दाव हों। अतः भीमों के हाथ भी वे होते हैं—

हाथ दै गुराड़ा दै दूसरौ भीम कड्यो, भौ से कतुवलयो भार।
कुंवर बाघड़या भो बाजै भेषा का, बाजै फोज्यां बादी वार।

युद्ध के वर्णनों में यथार्थता और स्वाभाविकता मिलती है। नायू ने इन्हें कल्पित सुंदरता से अलग किया है।

'पृथ्वीराज' की लड़ाई का प्रधान रस वीर है। प्राश्रय पृथ्वीराज और आलंबन अनेक व्यक्ति तथा उनके कार्य हैं। वीर रस के उपयुक्त वर्णनों तथा प्रसंगों का इसमें प्राचुर्य है। युद्ध के समय पृथ्वीराज के ये कथन उसकी वीरता के सूचक हैं—

> म्हूं तो कऊं छूं मामा जो फेर बाल्यो, रै ज्यागो मन के मांई।
> भाभी देगो म्हने ओळभूं, रावजी लीना मार।

× × ×

> हेरयो-हेरयो परथीराज फरै, हेरयो-हेरयो जाय।
> म्हानै बता दो घाटी का रावजी, म्हां करां कटारा घाव।

वीर रस की निष्पत्ति में यहां एक बात खटकती है। वह है आलम्बन का अनौचित्य। घाटी के रावजी, जो पृथ्वीराज के मामा होते हैं, आलम्बन का औचित्य नहीं रखते। वे प्रकृति से दुष्ट नहीं है और न लोक-शत्रु हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर पृथ्वीराज उनसे युद्ध करता है और उन्हें मार डालता है। इसलिये पृथ्वीराज के साथ श्रोता का तादात्म्य स्थापित नहीं हो पाता। रस की सारी सामग्री विद्यमान होने पर भी रस-निष्पत्ति के स्थान पर रसाभास ही इसमें मिलता है। काल्या भील तथा खैराबाद के मीणों में आलम्बनत्व का प्रकृत विधान है। वे चोर हैं और आस-पास के मनुष्यों को परेशान करते रहते हैं।

रौद्र तथा वीभत्स रस के वर्णन भी इस गाथा में मिल जाते हैं। रौद्र रस की सामग्री पृथ्वीराज के द्वारा शिकार के समय गाली देने व नैणसुख अश्व को मामा द्वारा न देने पर पृथ्वीराज के अप्रसन्न हो जाने और रावजी तथा पृथ्वीराज के पारस्परिक पत्रों के आदान-प्रदान में मिलती हैं।

गाथा की भावानुरूप शब्दावली में अलंकारों का अत्यल्प प्रयोग दिखाई देता है। उपमा, उत्प्रेक्षा के दो-एक उदाहरण खोजने पर मिल सकते हैं, पर अलंकारों के प्रति नायू की कोई रुचि नहीं दिखाई देती है। उसकी रुचि है समर्थ व सशक्त भावाभिव्यक्ति में, जिसके लिए वह उपयुक्त शब्दावली चुन लेता है। अधिकांश गाथा में ओज गुण-सम्पन्न पदावली के ही दर्शन होते हैं। माधुर्य गुण का सर्वथा अभाव है।

राम नरणाए या राम-रसायण

'रामनरणाण' लोकगाथा का हाड़ौती में कभी काफी प्रचार रहा था। जिसके फलस्वरूप इसको पोथियों तक में सुरक्षित कर लिया गया। पोथियों में सुरक्षा पाकर यह लोकगाथा लोक-मानस से लुप्त हो गई प्रतीत होती है। इसीलिये इस लेखक को अनेक व्यक्तियों से पूछताछ करने पर भी पूरी गाथा का ज्ञाता नहीं मिला। वैसे दो-चार छंद तो अनेक व्यक्तियों के कंठ से सुनने को मिले। तुलसी की लोक-प्रिय रचना 'रामचरित मानस' के उपरांत जिस प्रकार साहित्य-जगत में बहुत समय तक रामकथा के आधार पर अन्य महाकाव्य जन्म न ले सके, उसी प्रकार लोक-मानस ने भी इस परम्परा को अनावश्यक समझ कर विस्मृत कर दिया। मुझे सांगोद से एक पोथी प्राप्त हुई जिसके प्रारम्भ में 'रामनरणाण लख करयो' लिखा था और छंद संख्या क्रम में पहले छंद की संख्या ४०२ थी। इस पोथी का अंत १७८ वें छंद से होता था। प्राप्त कथांश और छंद संख्या को देखने से यह प्रकट होता है कि हाड़ौती में प्रचलित 'रामनरणाण' लगभग १००० छन्दों की विस्तृत लोकगाथा रही है। जिसके कुछ अवशेष अब इस रूप में मिलते हैं। यह प्रायः नवरात्र के अवसर पर गाई जाती है। ढोल और डंडे पृथ्वीराज की लड़ाई के समान प्रयुक्त होते हैं। मुख्य गायक केन्द्रस्थ होता है और शेष उसके कथनों को दुहराते गाते चलते हैं।

अपूर्ण पोथी का प्रथम छन्द इस प्रकार है—

> मैं'लाईं सूं उतर मंदोदरी बागां रै गई, अर सुण सतवंती बात।
> देवलोक तो थाने त्यागन करयो, थे अब आया रामधां मांय।

और अंतिम छन्द इस प्रकार है—

> पाळ समंदर की हणवत आ पड़्यो अर बैठ्यो छै सेवा मांई।
> सकार राळ्यो छै रै हणवत जोध नै, ईंनै गई छै मांछळी खाय।

इस प्रकार प्राप्तांश में सीता-हरण के उपरांत से लंकादहन तक की घटनाएं पाई जाती हैं। 'राम-चरित-मानस' की घटनावली से 'नरणाण' की घटनाएं तो अभिन्न है, पर विस्तारों में लोक-मानस की झलक देखने को मिलती है। तुलसीदास का मर्यादावाद यहा नहीं मिलता है। इसलिये सीता को खोजते समय जब राम किसी

राम ठाकुर राम बन गये। उनका बांका राजपूतीपन 'नरयाण' में प्रमुख हो गया, ईश्वरत्व गौण और अलक्षित रहा।

सीता के विरह में 'नरयाण' मे राम उन सब वस्तुओं से दूर होना चाहते हैं जो सीता के संयोग में सुखकर थीं और अब उनकी स्मृति उत्पन्न करती है। इसलिये राम केवड़े, पलंग आदि को नष्ट करते दीख पड़ते हैं—

खोद फंकायो रै सूदो केवड़ो, अरै कुटिया घरी जळाई।
जीं पालक्या सीता पोढ़ती, ते जोनैं नंदी में दीनूं राळ।

विरह की व्यंजना का यह ढंग पागलपन की सीमा को छूता सा प्रतीत होता है और जिस प्रकार 'मानस' के राम 'मधुकर, खग, मृग-श्रेणी से मृगनयनी सीता' के सम्बन्ध में पूछते हैं उसी प्रकार यहां भी वे सारस, जटायु, पीपल, हिरण, चकवा आदि पशु व पेड़ आदि से सीता का पता पूछते हैं और कोली, हनुमान आदि मनुष्यों से भी सीता सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है गाथा की कथा का आधार 'मानस' ही है। वर्णनों मे अनेक स्थलों पर कवि 'मानस' से प्रभावित दीख पड़ता है। वर्षा ऋतु में बिजली चमकने का वर्णन गाथा में इस प्रकार है—

चोऊ दस चमकै जी साईं म्हारा बीजळा, ते आपण लां चोमासा छाय।

या 'आगे चलै बहुरि रघुराया रिष्यमूक परवत नियराया' के समान ही गाथाकार कहता है—

रमीमुख परवत का सोखर वे'रैवां रै हणवत सुगरीव।

'नरयाण' में देशकाल की उपेक्षा मिलती है। राम वन में है। तुलसी के राम भी वहां तृणों को डाल कर बिछौना बनाते हैं पर 'नरयाण' की सीता चारपाई पर सोती है, जिसे राम उनके विरह मे तोड़ कर फेंक देते हैं। राम का काल त्रेता-युग माना जाता है और तोपें भारत में सर्व प्रथम बाबर के साथ आईं, पर 'नरयाण' में हनुमान पर अशोक-वाटिका में तोपों के द्वारा आक्रमण किया गया है—

गरर-गरर तो गोळा माळ बरै, अर बाण बरै सरणाट।

युद्ध का वर्णन सभी गाथाओं में परंपरागत है। अन्य वर्णनों की शैली भी अन्य गाथाओं के समान है।

हीरामनजी

'हीरामनजी' हाड़ौती की एक लघु गाथा है। हीरामनजी गूजर जाति के देवता हैं और इनके गीत पुरुषों द्वारा विशेषतया उस समय गाये जाते हैं जब किसी व्यक्ति का शरीर इनसे भावित करवाया जाता है। वैसे भी अवकाश के समय २-४ व्यक्ति बैठकर इस गाथा को गाया करते हैं। दीपावली के पूर्व का काल इसके लिए विशेष उपयुक्त होता है। गूजरों का ऐसा विश्वास है कि हीरामनजी पर ब्राह्मणों की छोत (छूत) पड़ती है। अतः इस लेखक को इस लघु कथा को लिखने में अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा है। गाथा की कथा इस प्रकार है।

सूंसला ग्राम में बाबा राज के घर पुत्र-जन्म हुआ जिसका ज्योतिषी ने सूरपाल नाम रखा। सूरपाल में बचपन से ही देव गुण विद्यमान थे। बालक सूरपाल ने एक दिन कुम्हार से कहा कि मुझे अपने मामा के लीलागर अश्व के समान एक मिट्टी का घोड़ा बना दे, पर कुम्हार तो अन्धा और कुष्ठ रोगी था। अतः जब उसने असमर्थता प्रकट की, तो सूरपाल ने कुम्हार को दृष्टिदान की और रोगमुक्त किया—

> हाथ पगां को खमरा झड़गी थारी खोड़,
> खुलगी थारी जनम की आख।

और तब कुम्हार ने मिट्टी का घोड़ा बना दिया, जिसमें सूरपाल ने प्राण-प्रतिष्ठा एक उड़ते पक्षी को मार कर की—

> उड़तो तो पखेरू देव मार लियो आसमान में
> ऊंका जीव घुड़ला में मेल,
> घुड़लो तो सूरपाल बांध दियो ठाण में
> नीर दी नागरबेल।

एक दिन सूरपाल गौचारण के लिए वन में जा रहा था। वहाँ उसे गुरु गोविन्दसिंह मिले जिन्होंने उसे टोडा भाव का राज्य और मालड़ की दौड़ वरदान स्वरूप दिये—

> राज तो दे दियो बालक टोडा भाव को,
> पदवा ने दे दी बालड़ दौड़।

जब सूरपाल ने बालड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया, तो माता ने यह कह कर मना किया कि वहां तो अनादी बहिन का ससुराल है, पर उसने एक न सुनी

श्रौर बालड़ पर आक्रमण करने की ठान ली। माता द्वारा बालड़ का चित्र इस प्रकार दिखाया गया था—

बालड़-बालड़ मत करो, म्हे बालड़ हंसी को ख्याल।
बालड मैं बसे छै सूरपाल धोली नरपां का रांगड़ा।
नव उठ मांडे राड़।

बालड मैं तकलीगरां का घर छोड़ सै, घर घर चलै सुरताण।
नवा तो सडै, पराणा ऊजळै, सरोवां के लागै मयूरया बाड़।

फिर भी सूरपाल ने कुछ शूरवीरों को साथ लिया और आक्रमण के लिए प्रस्थान कर दिया। मार्ग में मंगली पठान ने पहाड़ की चोटी पर उसे रोक दिया तब वह हताश होकर अपने घर लौट आया। माता के पूछने पर उसने अपनी उदासी का उक्त कारण बताया तो माता ने कहा—

म्हारा पेट में जनमतो सूरपाल छोकरी।
देती भलां घरां परणाय।

फल यह हुआ कि सूरपाल की सुप्त शूरवीरता जागृत हो गई—

घोड़ो तो खोल्यो सूरपाल ठाण सूं,
होग्यो लीला पै असवार।

× × ×

जातांई भाग्यो मंगली पठाण को
गियो बालड़ की टेक।

और परकोटों से सुरक्षित बालड़ में वह अपने अश्व को उड़ाकर घुस गया तथा कचहरी के कामदार का अन्त कर दिया और सारा माल लूट कर ले आया—

लूट कोस सूरपाल बारै नक्लयो।
ले आयो वुवारी फेर।

तत्पश्चात् बरसात में उमड़ी नर्मदा नदी में अपना घोड़ा डाल कर पार हो गया। जब वह घर पर आया तो उसका स्वागत हुआ। बहिन ब्लादी ने उसकी आरती

कड़ी—

मैल की गंगाजल भारी मारत्यो उतारयो,
सूरपाल सूरज पोल पै ।
पांच मो'रां तो सूरपाल मारत्या मैं मैल दी,
बेण ने उड़ा दो चीर ।

यहाँ ही गाथा समाप्त हो जाती है ।

गाथा में अलौकिक तत्वों को स्वीकृति मिली है जो कुम्हार को वरदान और रोगी को कुष्ठ से मुक्ति, पक्षी के प्राणों की मिट्टी के अश्व में प्रतिष्ठा और गुरु गोविन्द से वरदान प्राप्ति आदि प्रसंगों में देखी जा सकती है। कथा का विस्तार स्वाभाविक तथा आकर्षक हुआ है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से केवल सूरपाल (हीरामनजी) उल्लेखनीय है। यह बाल्यकाल से ही अलौकिक शक्तियों से युक्त और उत्साही तथा साहसी बालक है। उसके उत्साह की सुपुष्टि माता द्वारा समाप्त किये जाने पर वह निर्भीक और मंगली पठान को मार डालता है। उसका निश्चय कुछ प्रसंगों में आग्रह की सीमा पर पहुँच गया है। लूट के माल में गौ की लूट और फिर उसका यथोचित पालन उसकी गो-सेवा की वृत्ति के परिचायक है।

रुकमणीजी को व्यावलो

'रुकमणीजी को व्यावलो' हाड़ौती की लोकगाथा है। यह 'बड़ो व्यावलो' कहलाता है। एक अन्य 'छोटो व्यावलो' भी हाड़ौती में मिलता है, पर उसमें कथा-क्रम के समुचित विकास का अभाव है। यह 'व्यावला' स्त्रियों द्वारा पाणिग्रहण के अवसर पर गाया जाता है। कभी-कभी ग्रीष्मकाल के लम्बे दिनों में भी स्त्री-समूह इसे गाता रहता है। यद्यपि इस 'व्यावला' की कथा रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की घटनाओं से सम्बन्धित है तथापि विवाह के मंगलमय अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाए जाने के कारण वे प्रसंग इसमें नहीं मिलते, जिनका सम्बन्ध करुण भावों से है। अतः युद्ध और रक्त-पात के वर्णनों से यह गाथा शून्य है और इसी हेतु यह लोक गाथाओं से भिन्न भी है। व्यावला की कथा इस प्रकार है—

कथा का आरम्भ गणेश-वंदना से है—

परथम मनाऊं गणपती देवता ।
गौरा-नन्दन दो भी पूरण देवता ।

तत्पश्चात् रुकमणी तथा कृष्ण के परिचयात्मक वर्णन मिलते हैं। रुकमणी के कृष्ण से विवाह की चर्चा पर उसका भाई रुक्मैया यह कहकर विवाह-प्रसंग को

समाप्ति कर देता है—

काळो कबरणों कान्ह ग्वाळयो, भेस छै जी नट मावण्यो।
सबली ग्वालण्यां को चीर कोस्यो, मही तो दै छै गूजरी।
धेनू चरावै बंसी बजावै, नन्द घर वासो बसै।

अतः रुकमैया शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह करने का निश्चय कर लेता है। शिशुपाल बरात बनाकर आता है, तो उसे मार्ग में अनेक अपशकुन होते हैं—

काळा तो बळदां सूं हाळी मल गयो सुण तो भी मूंडा होया।
माथै तो मोळो तरिया मलगी, सुण तो भी मूंडा होया।

उधर रुक्मिणी शिशुपाल का आगमन सुनकर पश्चाताप की अग्नि से जल उठती है और अपने भाग्य को कोसने लगती है—

म्हूं थनै बूझूं म्हारी बैण बराना, ऊंळा तो भाखर तनै वरूं लख्या।
क्यूं रे जाई री माता री म्हारी, क्यूं न रही तू तो बांझड़ी।
कै म्हने बाड़ी का बनफळ तोड़्या, कै रे सतायो हरियो रूंखड़ो।

अब वह किसी ब्राह्मण को 'पांच सुपारी व हळदी को गांठ्यो' देकर कृष्ण के पास भेजती है। ब्राह्मण द्वारका पहुंच कर कृष्ण से इस प्रकार संदेश कहता है—

खेम कुसल राजा भीसम की रानी, बो'त दुखी छै जी बा को लाडली।

इस पर कृष्ण विधिवत् विवाह की तैयारी करके बरात सजाकर चलते हैं। बरात में गंगा, यमुना, शिव, ब्रह्मा, चंद्र, सूर्य आदि देवता जाते हैं, पर गणेश को वहीं छोड़ने का निश्चय किया जाता है। इस पर गणेश अप्रसन्न हो जाते हैं जिसके विषम परिणाम निकलते हैं—

धारा टूट, पाइला टूट्या; टूट्या रथ का पाया जी।
हाथी पड़या, घोड़ा पड़या, मूंड करै सरणाटा जी।

अतः गणेशजी को मनाया जाता है और ऋद्धि सिद्धि से उनका विवाह किया जाता है। तब कृष्ण की बरात प्रस्थान करती है। यह गणेश कथा गाथा में प्रासंगिक कथा है।

जब बरात कुण्डिनपुर पहुंचती है तो सारे नगर में हर्ष की लहर दौड़ती है और रुक्मिणी की वेदना प्रसन्नता में परिणत हो जाती है। अब विवाह उन रीति-रिवाजों के आधार पर सम्पन्न होता है जिनका उल्लेख विवाह के गीतों में किया जा चुका है। 'पधावना' का प्रसंग बड़ा रोचक है जिसमें लोक-मानस की [illegible]

रूप का परिचय मिलता है—

गोरा ई वासुदेव जी रे सांवरा गोरा ई बलराम ।
तू काळो कैसे होयरो रे सांवरा तरै तरै का नाम ।

× × ×

भुवा दो थांकी कुंती जी सांवरा, थ्वांरी करण खलाया ।
बैं'ण सोदरा लाडली जी सांवरा, गई अरजन की लार ।

'ब्यावला' के विदाई के अंश भी बड़े मार्मिक है। उनके भाव हाड़ौती या भारतीय परिवार भावना से उद्‌भूत हैं। अतः लोक-बाह्य और ऐकांतिक नहीं है। गाथा के अन्त में विभिन्न अवस्थाओं की स्त्रियों द्वारा इसे गाने पर प्राप्य फल भी उल्लिखित है।

'ब्यावला' पूर्ण रूप से स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली गाथा होने से इसमें युद्ध के प्रसंग बचाये गये है। इसीलिये शिशुपाल की कथा किसी परिणाम तक नहीं पहुंच पाई है। इसे बीच में छोड़ दिया है। इस प्रकार यह प्रासंगिक कथा अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रतीत होती है। 'ब्यावला' में स्त्री-हृदय से सम्बन्धित प्रसंगों की प्रचुरता होने से यह स्त्रियों का कंठहार बना हुआ है। यह गाथा उन लोकगाथाओं से भिन्न समझी जाना चाहिये, जो पुरुषों द्वारा गायी जाती हैं। इसीलिये इनमे वर्णन और भाव भी उन चेष्टाओं के नहीं मिलते हैं, जो वीर गाथाओं में भरे पड़े हैं।

समाप्ति कर देता है—

> काळो कबरणों कान्ह ग्वाळयो, भेस रूँ औ नट नागच्यो।
> गबली ग्वालणां को चीर कोस्यो, मही तो दे छै गूजरी।
> धेनू चरावे बंसी बजावे, नन्द घर बासो बसे।

अतः रुकमैया शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह करने का निश्चय कर लेता है। शिशुपाल बरात बनाकर आता है, तो उसे मार्ग में अनेक अपशकुन होते हैं—

> काळा तो बळदा यूं हाळी मल गयो सूण तो भी मूंडा होया।
> माथे तो मोळी तरिया मलगी, सूण तो भी मूंडा होया।

उधर रुक्मिणी शिशुपाल का आगमन सुनकर पश्चाताप की अग्नि से जल उठती है और अपने भाग्य को कोसने लगती है—

> म्हूं थने बूझूं म्हारी बैण बराना, ऊंडा तो भाखर तनें क्यूं लख्या।
> क्यूं रे जाई री माता री म्हारी, क्यूं न रही तू तो बांझड़ी।
> के म्हने बाड़ी का बनफळ तोड़्या, के रे सतायो हरियो रूंखड़ो।

अब वह किसी ब्राह्मण को 'पांच सुपारी व हळदी की गांठ्यां' देकर कृष्ण के पास भेजती है। ब्राह्मण द्वारका पहुंच कर कृष्ण से इस प्रकार संदेश कहता है—

> खेम कुशल राजा भीसम की रानी, बो'त दुखी छै जी बां को डावड़ी।

इस पर कृष्ण विधिवत् विवाह की तैयारी करके बरात सजाकर चलते हैं। बरात में गंगा, यमुना, शिव, ब्रह्मा, चंद्र, सूर्य आदि देवता जाते हैं, पर गणेश को वहीं छोड़ने का निश्चय किया जाता है। इस पर गणेश अप्रसन्न हो जाते हैं जिसके विषम परिणाम निकलते हैं—

> आडा टूट, पाछला टूट्या; टूट्या रथ का पाया जी।
> हाथी पड़्या, घोड़ा पड़्या, सूंड करे सरणाटा जी।

अतः गणेशजी को मनाया जाता है और ऋद्धि-सिद्धि से उनका विवाह किया जाता है। तब कृष्ण की बरात प्रस्थान करती है। यह गणेश-कथा गाथा में प्रासंगिक कथा है।

जब बरात कुण्डिनपुर पहुंचती है तो सारे नगर में हर्ष की लहर दौड़ती है ... की वेदना प्रसन्नता में परिणत हो जाती है। अब विवाह उन रीति- ... आधार पर सम्पन्न होता है जिनका उल्लेख विवाह के गीतों में किया जा ... का गाळ-मंड बड़ा रोचक है जिसमें लोक-मानस की नयी-नयी

युद्ध का परिचय मिलता है—

मोरा ई वासुदेव जी रे सांवरा मोरा ई बलराम।
तू काढो हँसे हीयरो रे सांवरा वरे हरि का नाम।

× × ×

छुवा तो बांधी कुंठो जी सांवरा, क्वांरी करता खमाया।
बैंरा सोदरा साहनो जी सांवरा, मई मरजन की मार।

'ब्यावला' के विदाई के अंश भी बड़े मार्मिक हैं। उनके भाव हाड़ौती या भारतीय परिवार भावना से उद्भूत हैं। अतः लोक-बाह्य और ऐकांतिक नहीं है। गाथा के अन्त में विभिन्न अवस्थाओं की स्त्रियों द्वारा इसे गाने पर प्राप्य फल भी संकेतित है।

'ब्यावला' पूर्ण रूप से स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली गाथा होने से इसमें युद्ध के प्रसंग बचाये गये हैं। इसीलिये शिशुपाल की कथा किसी परिणाम तक नहीं पहुंच पाई है। इसे बीच में छोड़ दिया है। इस प्रकार यह प्रासंगिक कथा अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रतीत होती है। 'ब्यावला' में स्त्री-हृदय से सम्बन्धित प्रसंगों की प्रचुरता होने से यह स्त्रियों का कंठहार बना हुआ है। यह गाथा उन लोकगाथाओं से भिन्न समझी जाना चाहिये, जो पुरुषों द्वारा गायी जाती हैं। इसीलिये इसमें वर्णन और भाव भी उन शैली के नहीं मिलते हैं, जो वीर गाथाओं में भरे पड़े हैं।

हाड़ोती लोककथा

लोककथा के लिए हाड़ोती में 'बात' और 'क्याणी' शब्द प्रचलित हैं। हाड़ोती कहानी जीवन के सभी क्षेत्रों से निकलती है और मानव की सभी वृत्तियों पर आधारित है। उसका क्षेत्र व्यापक है। कहानी कहने[1] और सुनने की प्रवृत्ति मानव में चिरकाल से विद्यमान है। क्या बालक, क्या युवक तथा क्या वृद्ध सभी में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। पर लोक-कथा में बूढ़ी नानी या दादी को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। वे बालकों को कहानियां सुनाती हैं। यह पद्धति मानो एक पीढ़ी का किसी धरोहर को आगामी पीढ़ को सौंपने का अनुष्ठान है। इसीलिये लोक-कथाओं में मानव-मन का इतिहास मिलेगा। भूतप्रेतों और देवों के भय से त्रस्त प्राचीन मानव-मस्तिष्क को भी इनमें देखा जा सकता है। सामंतीय युग की चकाचौंध से हूबा मन भी यहां देखने को मिलेगा। इन्हीं कहानियों में ठगों की धूर्तता भी रक्षित है। हमारी धार्मिक आस्थाओं को भी इनमें स्वीकृति मिली है और व्यावसायिक जीवन के छल-प्रपंचों का भी भावी जीवन के लिए उपादेय समझ कर संजोया गया है। पशु-पक्षी-जगत के निरीक्षण के उपरांत कुछ सारगर्भित निष्कर्ष यहां प्राप्त किये गये हैं।

---

१. कहानी कहने के सम्बन्ध में एक रोचक कहानी हाड़ौती में प्रचलित है — एक पटेल को चार कहानियां ज्ञात थी, जिन्हें वह किसी से कहता नहीं था। इससे कहानियां बड़ी दुःखी थी और सोचती थीं कि किसी प्रकार इस दुष्ट से मुक्ति पावें। अतः उन्होंने एक दिन विचार-विमर्श करके पटेल से बदला लेने की सोची—उसे मार डालना चाहा। एक ने बेर की गुठली, दूसरी ने छावणा, तीसरी ने नागिन और चौथी ने सार की सुई (आलपिन) बनने का निश्चय कर लिया तथा जिस समय वह ससुराल जावे तब बदला लेने की सोची। पर ये सब बातें एक नाई भी सुन रहा था। अतः उसने यथा-समय बेर को निन्दा करके, गिरते छावणे को किसी लकड़ी पर संभाल कर, नागिन को मार कर और आलपिन को शय्या से अलग करके पटेल को तो बचा लिया, पर साथ ही उसे उन कहानियों को कहने के लिए भी विवश कर दिया।

अभिप्राय यह है कि कहानी को कहने-सुनने की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण है। व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति को दबाले तो उसे कितनी संकट-ग्रस्तता अनुभव होती है। दबाकर रखना असाधारण व्यक्ति का काम है।

हाड़ौती कहानियों को विषय के आधार पर इन वर्गों में रखा जा सकता है—

१. धार्मिक तथा व्रत-सम्बन्धी कहानियां।
२. उपदेशात्मक कहानियां।
३. पारिवारिक-सामाजिक कहानियां।
४. पशु-पक्षी-जगत की कहानिया
५. हास्य-रस की कहानिया।
६. साहस और प्रेम की कहानिया।
७. तिलस्मी कहानियां।
८. ठगों की कहानिया।
९. विविध-कुतूहल, मौत सम्बन्धी कहानिया आदि।

लोक-कथा का महत्व उसकी कथन-प्रणाली मे निहित है। उसके प्रारम्भ, मध्य और अन्त की भी कुछ विशेषताएं होती हैं।

आरम्भ

हाड़ौती कहानियों का प्रारम्भ प्रायः एक ही प्रकार मे होता है। 'एक राजो छो' या 'एक बाण्यू छो' अथवा 'एक कबूतो, एक कबूती छी' आदि शब्दों में कहानी कहने वाला कहानी का प्रारम्भ करता है। यह कहानी प्रारम्भ करने का ढंग चाहे रूढ़ि ग्रस्त हो, पर कुछ ही क्षणों मे कहानी की घटनाओं का विकास जिस रूप में होता है वह श्रोता को बरबस बैठाये रखता है। इस प्रारम्भ मे पूर्व की एक भूमिका है, जो तरह-तरह से विविध कथाओं से सुनने को मिलती है—

बात सरीखी झूठी नै।
खांड सरी खी मीठी नै।
बात चालै बारा कोस।
फांगो चालै अठारा कोस।
बात में हूंकारो।
फौज मे नगारो।

इस पद्यात्मक प्रारम्भ के अतिरिक्त एक गद्यात्मक भूमिका भी मिलती है—

एक उजाड़ में एक बड़ पै कबूतो पर कबूती ग्याड़ी ग्याड़ी हल्ला दे बैठ्या छा, दोनी बयोव में दुखी छा। तो कबूती नै की, 'ऐ कबूता बात तो कहै रात।' तो कबूतो बोल्यो, 'घाप बीती कूं या परबीती।' यदि परबीती कहानी सुनाई गई तो वह ऐतिहासिक होगी और आप-बीती कही गई तो वह वास्तविक होगी।

हाड़ोती लोककथा

लोककथा के लिए हाड़ौती में 'बात' और 'क्याणी' शब्द प्रचलित हैं। हाड़ौती कहानी जीवन के सभी क्षेत्रों से निकली है और मानव की सभी वृत्तियों पर आधारित है। उसका क्षेत्र व्यापक है। कहानी कहने[1] और सुनने की प्रवृत्ति मानव में चिरकाल से विद्यमान है। क्या बालक, क्या युवक तथा क्या वृद्ध सभी में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। पर लोक-कथा में बूढ़ी नानी या दादी को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। वे बालकों को कहानियां सुनाती हैं। यह पद्धति मानो एक पीढ़ी का किसी धरोहर को आगामी पीढ़ी को सौंपने का अनुष्ठान है। इसीलिये लोक-कथाओं में मानव-मन का इतिहास मिलेगा। भूत-प्रेतों और देवों के भय से त्रस्त प्राचीन मानव-मस्तिष्क को भी इनमें देखा जा सकता है। सामंतीय युग की चकाचौंध से डूबा मन भी यहां देखने को मिलेगा। इन्हीं कहानियों में ठगों की धूर्तता भी रक्षित है। हमारी धार्मिक आस्थाओं को भी इनमें स्वीकृति मिली है और व्यावसायिक जीवन के छल-प्रपंचों का भी भावी जीवन के लिए उपादेय समझ कर संजोया गया है। पशु-पक्षी-जगत के निरीक्षण के उपरांत कुछ सारगर्भित निष्कर्ष यहां प्राप्त किये गये हैं।

---

१. कहानी कहने के सम्बन्ध में एक रोचक कहानी हाड़ोती में प्रचलित है — एक पटेल को चार कहानियां ज्ञात थी, जिन्हें वह किसी से कहता नहीं था। इससे कहानियां बड़ी दुःखी थीं और सोचती थीं कि किसी प्रकार इस दुष्ट से मुक्ति पावें। अतः उन्होने एक दिन विचार-विमर्श करके पटेल से बदला लेने की सोची—उसे मार डालना चाहा। एक ने बैर की गुठली, दूसरी ने छावरा, तीसरी ने नागिन और चौथी ने सार की सुई (आलपिन) बनने का निश्चय कर लिया तथा जिस समय वह ससुराल जावे तब बदला लेने की सोची। पर ये सब बातें एक नाई भी सुन रहा था। अतः उसने यथा-समय बैर की निन्दा करके, गिरते छावरा को किसी लकड़ी पर संभाल कर, नागिन को मार कर और आलपिन को शय्या से अलग करके पटेल को तो बचा लिया, पर साथ ही उसे उन कहानियों को कहने के लिए भी विवश कर दिया।

अभिप्राय यह है कि कहानी को कहने-सुनने की आवश्यकता अति महत्वपूर्ण है। व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति को दबाले तो उसे कितनी संकट-ग्रस्तता अनुभव होती है। उसे दबाकर रखना असाधारण व्यक्ति का काम है।

हाड़ौती कहानियों को विषय के आधार पर इन वर्गों में रखा जा सकता है—

१. धार्मिक तथा व्रत-सम्बन्धी कहानियां।
२. उपदेशात्मक कहानियां।
३. पारिवारिक-सामाजिक कहानियां।
४. पशु-पक्षी-जगत की कहानियां
५. हास्य-रस की कहानियां।
६. साहस और प्रेम की कहानियां।
७. तिलस्मी कहानियां।
८. ठगों की कहानियां।
९. विविध-बुझौवल, यौन सम्बन्धी कहानियां आदि।

लोक-कथा का महत्व उसकी कथन-प्रणाली में निहित है। उसके प्रारम्भ, मध्य और अन्त की भी कुछ विशेषताएं होती हैं।

आरम्भ

हाड़ौती कहानियों का आरम्भ प्रायः एक ही प्रकार से होता है। 'एक राजो छो' या 'एक बाण्यूं छो' अथवा 'एक चकवो, एक चकवी छी' आदि शब्दों से कहानी कहने वाला कहानी का आरम्भ करता है। यह कहानी आरम्भ करने का ढंग चाहे रूढ़ि ग्रस्त हो, पर कुछ ही क्षणों में कहानी की घटनाओं का विकास जिस रूप में होता है वह श्रोता को बरबस बैठाये रखता है। इस आरम्भ से पूर्व की एक भूमिका है, जो तरह-तरह से विविध वक्ताओं से सुनने को मिलती है—

बात सरीखो झूठो नै।
खांड सरी खो मीठो नै।
बात चालै बारा कोस।
फांगो चालै अठारा कोस।
बात में हूंकारो।
फोज में नंगारो।

इस पद्यात्मक प्रारम्भ के अतिरिक्त एक गद्यात्मक भूमिका भी मिलती है—

एक उजाड़ में एक बड़ पै चकवो अर चकवी न्याळी-न्याळी डाल पै बैठ्या छा, दोनी बजोग में दुखी छा। तो चकवी नै खी, 'खे चकवा बात, तो कटै रात।' तो चकवो बोल्यो, 'आप बीती लूं या परबीती।' यदि परबीती कहानी सुनाई गई तो वह ऐतिहासिक होगी और आप-बीती कही गई तो वह काल्पनिक होगी।

वक्ता और श्रोता

हाड़ौती कहानियों के वक्ताओं में बूढ़ी नानी, दादी प्रमुख हैं और श्रोता प्रायः बालक-बालिकाएं होते हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रत्येक गांव में एक दो 'बतरहे' होते हैं जिन्हें अनेक कहानियां याद होती हैं। ऐसे कहानी कहने वाले शीतकाल की लम्बी रातों में सिगड़ी के सहारे बैठकर अपनी मंत्रमुग्ध करने वाली शैली में कहानी को कहते हुए आधी रात तक निकाल देते हैं। कहानियां रात्रि में कही जाती हैं, क्योंकि हाड़ौती में ऐसा अन्ध-विश्वास है कि यदि कहानी दिन में कही जावे तो मामा या अतिथि मार्ग भूल जाता है। सभी वक्ताओं की श्रोताओं से एक शर्त होती है कि जहां तुमने 'हूंकारा' देना बन्द किया वहां ही मैं कहानी समाप्त कर दूंगा। इसलिए कभी-कभी अरोचक कहानी से ऊंघते-जंभाते बच्चे भी 'हूं हूं' करते देखे जाते हैं।

वस्तु व पात्र

कहानी की कथावस्तु प्रायः कल्पित होती है। उसमें आधिकारिक और प्रासंगिक दोनों प्रकार के कथानक मिल जाते हैं। प्रासंगिक कथानक के लिए 'ग्यान्' शब्द का प्रयोग मिलता है। कभी-कभी कहानी इतनी विशाल होती है कि दिनों तक चलती रहती है। हाड़ौती कहानी का नायकत्व सामान्य व्यक्ति के हाथ में न रहकर असाधारण व्यक्ति को ही सदैव मिलता है। वह व्यक्ति किसी भी वर्ग का हो सकता है, पर अधिकांश में राजा या राजकुमार से सम्बन्धित कहानियां ही अधिक सुनने को मिलेंगी। सभी नायकों में अद्भुत धैर्य और क्षमता दिखाई पड़ती है। प्रत्येक विषम परिस्थिति में फंस कर भी वे सफलता के साथ निकल जाते हैं। यही कारण है कि प्रायः सभी कहानियां सुखांत हैं। विघ्न-बाधाओं से जूझते हुए वे फल की प्राप्ति कर लेते हैं। इस प्रकार भारतीय साहित्य की सुखांत प्रवृति इन लोक-कथाओं में भी मिलती है।

कहानी का मेरुदंड—आश्चर्य-तत्व

ऐसी समस्त कहानियों का मेरुदन्ड कौतूहल या विस्मय होता है। कभी-कभी आश्चर्य-तत्व इसे सहारा दिये रहता है। यह कौतूहल घटना-परक होता है। कथारम्भ में ही घटना-क्रम इस प्रकार विकसित होता है कि श्रोता जिज्ञासु बनकर परिणाम जानने को उत्सुक हो जाता है। राजा के पुत्र को निर्वासन मिल गया या एक बालिश्त-भर के मनुष्य ने राजकुमारी से विवाह करने की ठान ली या तीन मित्र अपनी पत्नियों को

लेने ससुराल चल दिये आदि प्रसंगों से कहानी को आरम्भ किया जाता है। ऐसे आरंभ से श्रोता प्रारंभ से ही दत्तचित्त होकर कहानी सुनने लगता है। उसका कौतूहल जागृत हो जाता है।

आश्चर्य-तत्व को ऐसी कहानियों में अति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'हात्यो-बेंत्यो' कहानी में एक फुट लम्बा मनुष्य अपने कान में भेड़िया, सिंह, चींटी व अग्नि को बैठाकर उनकी सहायता से एक राजा को अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर देने के लिए विवश कर देता है। 'पट्टू पहलवान' की घटनाओं का विकास भी इसी आधार पर हुआ है। सत्य तो यह है कि बालकों से सम्बन्धित होने के फलस्वरूप आश्चर्य-तत्व लोक कथाओं का आवश्यक अंग बन गया है। क्योंकि बालकों में आश्चर्य-वृत्ति की प्रधानता रहती है, वय-प्राप्ति के बाद तो काम-वृत्ति का व्यापक विस्तार जीवन में दिखाई देता है, इसीलिये अधिकांश कहानियों में कुछ ऐसे प्रसंग अवश्य मिलते हैं जिनमें यह तत्व विद्यमान रहता है।

अलौकिक तत्त्व

कुछ कहानियां तो साद्यन्त अलौकिक तत्त्वों के आधार पर ठहरी होती हैं पर ऐसी कहानियों में, जो हमारे वस्तु-जगत की होती हैं, अलौकिक तत्व को इसलिये स्वीकृति मिल जाती है कि उससे घटना का विकास निश्चित मार्ग पर चलने लगता है और नायक का गतिरोध दूर हो जाता है। कभी शिव तो कभी कोई साधु आकर नायक की सहायता करते हैं, कभी किसी पशु-पक्षी से दैववशात् सहायता मिल जाती है।

उद्देश्य

हाड़ौती लोक-कथाओं का उद्देश्य मूलतः मनोरंजन करना ही होता है, पर इस उद्देश्य के अतिरिक्त अनेक कहानियों में उपदेश देने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। यह प्रवृत्ति धार्मिक और व्रत-सम्बन्धी कहानियों मे स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वहां उद्देश्य मथित दही (छाछ) के ऊपर संतरण करने वाले मक्खन के समान होता है, दही मे घुल मिल कर रहने वाले मक्खन के समान नहीं मिलता है। साहित्यिक कहानियों मे तो उसकी स्थिति दधिगत मक्खन के समान होती है। ऐसी कहानियों में कभी-कभी श्रोता के ज्ञान की वृद्धि करने का भी लक्ष्य रहता है। इसीलिये कभी-कभी ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर भी कहानियां चलती है।

कथन-शैली

कहानी कहने की शैली व्यक्ति-परक होती है। सभी वक्ता सभी प्रकार की कहानियां भली प्रकार से नहीं कह सकते। कोई हास्य-रस की कहानी इतनी सुन्दरता

से कह सकता है कि सुनने वाले लोट-पोट हो जाते हैं और हंसते-हंसते पेट में बल पड़ने लगते हैं। किसी वक्ता में तिलस्मी कहानियों को कहने की प्रतिभा होती है, जिसकी उलझनों और रहस्यों को वह कल्पना के बल पर क्रमशः बढ़ाता चलता है। कोई राजसी ठाट-बाट का वर्णन बड़ी कुशलता से कर सकता है। फिर भी सभी वक्ताओं की शैलियों में कुछ समानता एं मिलती हैं। 'एक राजो छो' आदि से आरम्भ से हुई कहानी मध्यगत विस्तारों में निम्न कथन-प्रणालियों को प्राप्त कर चलती है—

चलने के लिए :   घर मंजलां घर कूंच, ऊ चली जारयो छो।
मर बारा र बारा चोईस कोस की बनी में फूग ग्यो।

दुःख प्रकट करने के लिए : १. फूटा म्हलां में जा पड़यो।
२. काळा कपड़ा पैर ल्या।

सेना की विशालता सूचित करने के लिए :   आगै कांई फाग्यो, पाछै कांई कीच ई कोई नै।

कथा में नवीन प्रसंग प्रस्तुत करने के लिए :   अब यां को कस्सो तो यांई रैग्यो अर ऊं राजा को भी ई सुणो ज्यो बनी में सो रयो छो।

सबसे बड़ी विशेषता तो वक्ता की अपनी व्यक्तिगत टीका-टिप्पणी की ही है, जिससे कहानी में चार चांद लग जाते हैं। इन टिप्पणियों को आकर्षक बनाने योग देने वाले लोकोक्तियां और मुहावरे होते हैं। कोई व्यक्ति बुरी बात कह कर का बिगाड़ना चाहता है तो वक्ता कहेगा—अर अब ऊनें भस में तणग्यो पटक्यो (और अब उसने भूसे में अग्नि डाली)।

अंत

कहानी को अन्त भी इस प्रकार के मिलते हैं। धार्मिक कहानियां इस प्रका समाप्त होती है—

१. जस्या गणेश जी महाराज यां पै तूठ्या (तुष्ट) उस्या सब पै तूट ज्यो

२. हे गणेश जी महाराज, जस्यां यांका घर-बार बस्या छै बस्या सबका घर-बार बस ज्यो।

अनेक कहानियों का अन्त इस प्रकार पद्य द्वारा प्रकट किया जाता है—

याई स्याणी, याई बात ।
हूंकारा देवा हाळा के दो-दो लात ।

शैली के प्रकार

शैली की दृष्टि से लोक कथा को दो भागो मे विभक्त कर सक
कहानियां पद्यात्मक होती है और कुछ गद्यात्मक । प्रथम प्रकार की कहानि
में मिलती है । एक तो ऐसी जिनमे साद्यन्त पद्य मिलता है, ऐसी कहानिय
है और दूसरी वे जिनमें बीच-बीच में गद्य मिलते हैं, पर मूल प्रसंगो का
में ही मिलता है । द्वितीय प्रकार की कहानी का उल्लेख आगे के प
यहां प्रथम प्रकार की कहानी का एक उदाहरण दिया जाता है—

स्याणी सूं आछी, रूपा की दूं नाची ।
रूपा ने बजाई थाळी, खटीक की मरगी छाळी ।
खटीक ने पकाई खोपड़ी, भाड़ के जा छाटी ।
भाड़ से छूट्या दो बोर, ढोली का घर मे उळाया
ढोली ने घा दो डांका, खड़

बहिन को भूखी प्यासी देखकर भाई चालीको कन्दरा, वन की अग्नि को प्रकाश और चलनी के छिद्रों को तारे रूप में दिखा देते हैं, तब उसका प्रभाव बहिन पर पड़ता है। उसके पति की मृत्यु हो जाती है। एक वर्ष उपरांत जब बहिन पुनः विधिवत् करवा-चौथ का व्रत करती है तब उसका मृत पति जीवित हो जाता है। इसी प्रकार अनंत चतुर्दशी की कहानी में 'अणत भगवान' ब्राह्मण पर अणत या सूत्र को जला देने पर कुपित हो जाते हैं और 'दसै डोरा की कहानी' में राजा द्वारा उसे तोड़ फेंके जाने पर रानी को अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

ऐसी सभी कहानियों का सम्बन्ध स्त्री-वर्ग से है। व्रत रखना और कहानी सुनना समाज ने मानों केवल उसे सौंप रखा है, पुरुष अधिकांश में मुक्त हैं। नारी यह सब कुछ करती है अपने भाई, पति और पुत्र की मंगल-कामना से। 'भाईदूज' की कहानी की बहिन पगली बनकर क्या क्या नहीं करती और अपने पागलपन का रहस्य तब तक प्रकट नहीं करती जब तक वह उस सर्प को नहीं मार देती जो उसके भाई को 'राती-जगा' की रात में काटने आया था। पति की मंगल कामना से प्रेरित होकर उपेक्षिता रानी 'आठ सोभागवती' का व्रत रखती है और कहानी सुनती है जिसका फल यह होता है कि उस रानी के गोबर की पुड़ियां राजा की डूबती नौका को उबार लेती हैं।

वस्तुतः ऐसी अधिकांश कहानियां किसी देवता के व्रत के माहात्म्य-स्वरूप होती हैं। ये सभी 'सत्यनारायण व्रत कथा' की परंपरा में आती हैं। एकादशी की व्रत-कथा, रविवार की व्रत-कथा आदि सभी इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। इसलिये ये कहानियां सुखांत होती हैं। संकट-ग्रस्त व्यक्ति व्रत रखता है व देवता की पूजा करता है और देवता प्रसन्न होकर उसके संकट का निवारण करते हैं। ऐसी कहानियों का अंत भी फल-संकेत से होता है।

ऐसी कहानियो में गणेशजी सम्बन्धी कहानियां कुछ भिन्न प्रकार की हैं। एक कहानी में गणेशजी की तोंद पर तीन तिल चिपक जाने पर उन्हें राजा के यहां नौकरी करनी पड़ी। उस काल मे गणेशजी ने रानी को तीन बार पीटा और राजा देखता रहा। एक अन्य कहानी में एक बहू ने श्मशान में जाकर साम द्वारा दिये आटे की बाटियां बनाईं और गणेशजी के तोंद के घी को चुपड़ कर खा गई और सो रही। इस पर गणेशजी ने नाक पर अंगुली रख ली। राजा ने अनेक प्रयत्न किये, पर सब व्यर्थ रहे। निदान वह एक दिन लकड़ी लेकर गणेशजी के पास पहुंची और कहा, 'मैंने अपने घर का आटा खाया, श्मशान की अग्नि काम में ली और तेरी तोंद का घी, जो लोगों ने लगाया था काम में लिया, इनमे तेरा क्या बिगड़ा। अच्छा हो तू नाक से अंगुली

हट ले, नहीं तो ऐसी पिटाई करूंगी कि जन्म भर याद रखेगा।' तब गणेशजी ने अंगुली उतार ली। यह कहना कठिन है कि इस कहानी का हाड़ौती धार्मिक जीवन में क्या महत्व है। 'सरग सांकड़ो मोडा घणा' कहावत पर विचार करते समय एक कहानी हाड़ौती कहावतें अध्याय में संकेतित है।

यहां नमूने के लिए 'सनीचर की कथा' का कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है। यह कथा कोटा संग्रहालय के सरस्वती भंडार मे सुरक्षित है और सम्वत् १८५२ की लिखी हुई है—

'सनीचर देवता जी मोटा गरह छः। ए जी पुरष की रासे ऊपर करूर आव तो कसर फल द। म्हा पंडत पीडाएत कर। मु ते कर हीन करः बुध। राजा जागीरी छीन कर परदेस चलावः। तीक माण बड़ा बड़ा मानस्या करता आया छः। मन सुध होए मनाव तो मना मना पावः। अरोध कीया दुख की परापत होय। एता म श्री सनीचरजी कोवाण बैठ आकास मारेग जाव छाः। सु राजा सु आकास बाणी बोली, 'हो राजा बकरमादीत तु मुर जाए मह छः। म्हाका मावठ्या काढ छः। सु तु ई बात को फल भुगतसी।' एठी सी कह रै श्री सनीचर जी तो पधारया अर राजा की बारही रासे ऊपर सनीचरजी आया। सु राजाजी का मन मे चंता हुई। मु ते कर बुधे कर हीण होबा लागी। राजा का डील न रोग की ऊतपत होबा लागी। राजा न बदा की गोडे अनेक अनेक जतन कराबा लागो पण रोग मटो नही। अस मी बैटो पंड पीडाएत होबा लागो। सारा के सोच ऊपजो। सारा न जाणी राजा बावलो हुवो। पीडाएत चको परदेस एकलो चालो। परदेस म बोहोत दुख पायो। स्याहां साहा एक श्रीपत सेठ छो। तीकी हाट न राजा क्या बठो। त वे श्रीपत सेठ न देख्यो अर कही यो नर छः जो कोई औतार छः। ऊत्तम छः। तद वे सेठ न जाणी कोई दीया पंड जाणी पीडाएत राज हु, साहा आपण घर ले गीयो। आदरणा आदर सनमान कर भोजन करायो। अर साहा की चत्रसाली छी स्याहां राजा पोढायो। ऊठ चत्रसाली म खुंटी न हार सुवा करोड़ को धरो छो मोत्यां को। अर ऊठ चत्रसाली म चत्राम को हंस मडो छो। चत्राम को हंस मोत्यां को हार गणन कीदो। हार नंगमडो राजा बकरमादीत न देखो त वे राजा के सोच ऊपज्या, अर कही, "या बात कोई सु काहाणा तो मानणा कोई नई।" इसके पश्चात् कहानी इस प्रकार बढ़ती है। राजा तब वहां से चल दिया और हार को चुराने के आरोप मे पकड़ा गया। अतः वहां के राजा मनोराम ने उसके हाथ पैर कटवा दिये। एक तेली को दया आई और वह विक्रमादित्य को उपचार करने के लिए घर ले गया। राजा अच्छा होने पर कोल्हू चलाने लगा। एक बार राजा ने सुन्दर राग गाया जिसे सुनकर स्थानीय राजा की पुत्री पदमावती ने उसे अपने पास बुलाकर रखा। तब राजा के साढ़े सात

वर्ष के पति समाप्त हो गये थे। फलस्वरूप राजा के हाथ पाँव स्वतः ही जुड़ गये। राजकुमारी ने विक्रमादित्य को वरमाला पहनाई और विवाहित राजा उज्जयिनी लौटा।

हाड़ौती व्रतों की कहानियों में प्रमुख है—गणेश, आठ सोभागवती (अष्ट सौभाग्यवती), भाई-दूज, सोमवती-मावस, दर्स-डोरो, अणतचोदस (अनन्त चतुर्दशी), नरजला-ग्यारस (निर्जला-एकादशी), बछवारस (वत्स-द्वादशी), करवा–चौथ, सूरजनारायण, सनीचर, डाळी (दीपावली) नाग पांचे (नाग पंचमी) आदि की कहानियां।

उपदेशात्मक कहानियां

वैसे तो अधिकांश लोक कथाएं उपदेशात्मक होती है, किन्तु यहां उपदेशात्मक कहानियों से तात्पर्य ऐसी कहानियों से है, जिनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति सीधी और स्पष्ट दिखाई देती है, किसी कहानी में तो ऐसे उपदेश बेचे तक जाते हैं। 'फकीर अर सेठ को छोरो' वाली कहानी में श्रेष्ठि-पुत्र ने फकीर से तीन उपदेश एक-एक सहस्र कार्यों से खरीदे, जो ये थे—

(१) किसी पराई स्त्री के साथ नहीं जाना।
(२) कहीं भी जाना तो वस्त्र झाड़ कर बैठना।
(३) प्रत्येक कार्य सोच-विचार कर करना।

जब वह विदेश गया तो उसे एक ऐसी स्त्री मिली जो घर से भाग कर आई थी और उसके साथ चलना चाहती थी। श्रेष्ठि-पुत्र ने पहले उपदेश का स्मरण करके उसे साथ नहीं लिया तो वह संकट से त्राण पा गया। एक अन्य व्यक्ति ने उसे साथ ले लिया तो उसे जेल जाना पड़ा। वेश्या के भाने लगे पलंग से दूसरे उपदेश का ध्यान आने से बच सका और अनेक वर्षों बाद जब वह लौटकर घर आया और अपनी पत्नी के साथ एक युवक को सोता पाया तो तीसरे उपदेश ने उसको अपने ही पुत्र का सिर तलवार से काट देने की भयंकर भूल से बचा लिया।

ये सभी उपदेश जीवन-पथ पर निरापद बढ़ने में सहायक होते हैं। 'लोभ गळो कटावै छे', 'काया काना गार लागै छै' आदि उपदेश हाड़ौती में कहावत रूप में प्रयुक्त होते हैं। लोभ करने के फलस्वरूप एक कहानी में तीन मित्र मृत्यु को प्राप्त हुए। कहानी के अनुसार तीन मित्रों को वन में सोने के सिक्कों की थैली मिली। समीप के गांव में पहुंचने पर एक मित्र तो भोजन लेने गांव में चला गया और शेष दो मित्रों ने लोभवश उसे मारने का षड्यन्त्र रच लिया। उधर उस मित्र ने भी लोभ से प्रेरित होकर मिठाई में विष मिला लिया। जब वह लौटकर आया तो दोनों ने अपने निश्चया-

नुसार उसको गंडासे से मार दिया और बाद में विषमय भोजन कर लेने से वे स्वयं भी मृत्यु को प्राप्त हुए। इसी प्रकार एक अन्य कहानी मे बुढ़िया से प्रोत्साहित बालक क्रमशः महत्तर चोर बनता चला गया और अन्त में फांसी पर लटकाया गया। इसीलिये उपदेश-रूप में कहा जाता है कि कच्चे घड़े के ही मिट्टी लग सकती है अर्थात् सुधार-काल बाल्यावस्था में ही संभव है।

उपदेशात्मक कहानियों में कुछ कहानियां इस प्रकार की भी मिलती हैं जिनमें उपदेश तो देवे गये हैं, पर उनका जीवन में प्रतिफलन नहीं दिखाया गया। अतः वे नीति-शास्त्रों के नीतिवचनों के समान बनकर प्रभाव-हीन हो गये हैं। एक कहानी में में ब्राह्मण की दीनता के कारण पारिवारिक क्लेश दिखाया गया है जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण सुदूर वन में चला जाता है और एक साधु की सेवा करता है। साधु को समाधि अवस्था समाप्त होने पर वह ब्राह्मण से वरदान मांगने को कहता है तो ब्राह्मण अपनी २० वर्षीय पुत्री के विवाह के लिए धन की याचना करता है। इस पर साधु उसे एक कागज पर निम्न बातें लिख कर देता है, जिसे एक सेठ को बेच कर दो सौ रुपये प्राप्त कर लेता है—

> *होत की बैण, कुहोत को भाई।*
> *पीर बेटी, नार पराई।*
> *जागै सो नर जीवै।*
> *सोवै सो नर मरै।*
> *गम राखै सो आणंद करै।*

यहां ही कहानी समाप्त हो जाती है।

पारिवारिक और सामाजिक कहानियां

हाड़ौती कहानियों में अनेक वर्गों के परिवारों के दर्शन होते हैं। इनमें से प्रमुख राज-वर्ग, ब्राह्मण-वर्ग और वणिक्-वर्ग हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न जातियों के परिवारों से सम्बन्धित लोककथाएं भी मिलती है। प्रत्येक वर्ग के परिवार की अपनी विशेषता दिखाई गई है। राज-वर्ग का परिवार विलासिता और पारिवारिक षड्यन्त्रों से उत्पीड़ित है। ब्राह्मण-वर्ग के परिवार में दीनता का ताडंव है, जिसको किसी देव का आशीर्वाद ही मुक्ति दिलाता है। वणिक्-वर्ग के परिवार की दौड़ धन के पीछे है। पर सब में समानताएं भी विद्यमान हैं।

सौतिया-डाह के उदहरण सभी परिवारों में मिल जाते हैं। इसका भयंकर रूप राजवर्गमें मिलता है, जहां बहु विवाह की प्रथा विद्यमान थी। फलस्वरूप एक रानी दूसरी रानी को अपदस्थ करने का प्रयत्न करती है और इसके पुत्र के लिए घातक बन

जाती है। एक कहानी मे राजा को किसी प्रिय रानी के पुत्र-जन्म के उपरांत पुत्र के स्थान पर अन्य रानियों द्वारा पिल्ला (कुत्ते का बच्चा) रखवा दिया जाता है और रानी को चील बनवाकर उड़वा दिया जाता है। पर जब राजा का साला इन शब्दों से उद्‌बोधन करता है तब वस्तुस्थिति राजा के सामने आती है—

> भाई—उड उड री बगनी कांवळी रोवै राजकुमार।
> बहिन—कांई उड़ूं रे लोड़क्या वीर तनै मांग्यो कंवळ को फूल।

सास-बहू की पारस्परिक कटुता, देवरानी-जेठानी का अनमनापन, भाभी व ननंद की कहा-सुनी आदि पारिवारिक विषमताओं को ऐसी कहानियों में स्थान मिला है। कुछ कहानियो में पुत्र-पुत्रियों के प्रति माता-पिता के अनुदार दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। एक कहानी मे पिता अपने पुत्र-पुत्री को जंगल मे अकेला इसलिये छोड़ आता है क्योंकि उनकी विमाता उन्हें नही चाहती।

हाड़ौती-समाज की स्थापना का आधार भारतीय समाज के समान धर्म है। धर्म के उचित रूप मे परिपालन न होने से उसमें सहज शांति नही रह पाती। इसीलिये अनेक कथाओं में दंपती का जीवन धर्म के अभाव मे दुखद दिखलाया गया है। धर्म का तात्त्विक रूप तो लोक की दृष्टि से ओझल है, पर अंध-विश्वास, धार्मिक रूढ़ियों और विधि-निषेधों में उसकी रक्षा मिलती है। इसका एक रूप धार्मिक व व्रत सम्बन्धी कहानियों में दिखाया जा चुका है।

ऐसी कहानियों में मित्र-वर्ग की मैत्री का स्वरूप आर्थिक दशा, व्यावसायिक-आर्थिक दम-प्रपंच, बाल-विवाह आदि विषय आ जाते हैं। एक कहानी मे एक सेठ का जीवन आर्थिक विषमता से दुर्वह हो गया तो उसने अपनी पुत्रियों को वन में छोड़ दिया जिसके फलस्वरूप लड़कियों को अनेकानेक कष्ट झेलने पड़े। दूसरी कहानी में तीन मित्र अपनी-अपनी पत्नियों को लेने एक ही गांव में पहुंचे। वे थे राजकुमार, मंत्री-पुत्र और वणिक् पुत्र। वहां रात्रि में मंत्री पुत्र ने उस साधु का वध किया जो वणिक्-पुत्र की वधू की नाक इसलिये काट चुका था कि वह रात्रि में नियमित समय से विलंब करके आई थी। चोरों से चुराई राजकुमार की पत्नी को जब मंत्री-पुत्र द्वारा बचा लिया गया तो वह उसी से प्रेम प्राप्ति चाहने लगी और अस्वीकृति पर उसे लांछित किया। इस प्रकार स्त्री-चरित्र की विषमता को भी अनेक कहानियों में दिखाया गया है।

पशु पक्षी-जगत की कहानियां

हाड़ौती कहानियों में पशु-पक्षियों का वर्णन प्रमुख और प्रासंगिक दोनों रूपों में [illegible] है। ऐसी कहानियां अनेक उद्देश्यों को लेकर कही जाती है। कुछ का उद्देश्य तो

'पचतंत्र' व 'हितोपदेश' की कहानियों के समान शिक्षा प्रदान करना होता है। कुछ कहानियों में बाल-मनोरंजन ही लक्ष्य दिखाई देता है और कुछ कहानियों मे पशु-पक्षी मानवीय क्रिया-व्यापारों मे सहायता अथवा बाधा प्रस्तुत करते हैं । ऐसी कहानियो मे पशु-पक्षियो की प्रवृति को सदैव ध्यान में रखा गया है । लोमड़ी और सियार चालाक हैं हाथी प्रशंसा में फूलकर अपने अज्ञान से शृ'गालो का भक्ष्य बनता है, ऊंट कहीं मूर्ख है, तो कहीं विवेकशील बताया गया है, पर प्रतिशोध की भावना उसमें प्रबल है, चूहे का मस्तिष्क अप्रौढ़ है, कौआ चालाक भी है और परिस्थितिवश दीन भी मगर और गधा मूर्ख हैं, गाय और अश्व स्वामिभक्ति से युक्त हैं । इसी, प्रकार तोते, सर्प आदि की क्रमशः स्वामिभक्ति, उदारता आदि दिखलाई गई हैं।

ऐसी कहानियों की परिधि में प्रायः सभी प्रकार के पशु-पक्षी आ जाते हैं। चीटी से लेकर हाथी तक के पशु-पक्षियो का वर्णन हाड़ौती कहानी में मिलता है । प्रतिशोध की भावना पशु-प्रवृति कही जावे तो वह एक कहानी में दाम्पत्य-प्रेम से उद्भूत होकर एक दर्जी द्वारा की गई चिड़ी की हत्या के प्रतिशोध-रूप में चड़े मे विद्यमान है । कहानी के अनुसार जब एक चिड़ी कपड़ा लेकर कंचुलिका सिलाने दर्जी के यहां पहुंची तो दर्जी ने उसे मार दिया। इस पर चड़े ने मेंढको को जोतकर गाड़ी बनाई जिसमे बिच्छू सर्प, गोबर और पत्थर को बैठाकर ले गया । बिच्छू ने दर्जी को डंक मारा, पत्थर ने सिर तोड़ा, सर्प ने काटा और अंत में उसका गोबर मे पैर फिसला तो वह ऐसा गिरा कि फिर न उठ सका। एक अन्य कहानी 'कबूतर और कौआ' में कौवे द्वारा कबूतर का मोती छीन लिये जाने पर वह प्रतिशोध-भावना से कितने ही व्यक्तियो से अनुनय-विनय करता है जिसका आभास कबूतर के इस अंतिम पद्यात्मक कथन मे मिल जावेगा—

गांव डांग बाळै नै ।
डांग ठेगड़ो ताड़ै नै ।
ठेगड़ो बल्ली मारै नै ।
बल्ली ऊंदरो मारै नै ।
ऊंदरो रानी-कपड़ा काटै नै ।
राणी राजा रूठै नै ।
राजा खाती दंडै नै ।
खाती लीम काटै नै ।
लीम काग उडावै नै ।
कबूतरी रोसो रेवै नै ।

और उसकी अंतिम प्रार्थना हाथी से सुनकर अपनी सूंड में पानी भर कर आग को समाप्त करना चाहा तब सभी प्राणी कबूतर की प्रार्थना के अनुसार कार्य करने लगे और उसे फल-प्राप्ति हो गई।

मित्र-अमित्र के भाव को प्रकट करने वाली कहानियां 'पंच-तंत्र'[1] और 'हितोपदेश'[2] में अनेक मिलती हैं। ऐसी कहानियों में मित्र का निःस्वार्थ प्रेम और समयानुसार सहायता करना प्रतिपाद्य विषय होते हैं। ऐसे विषयों की पुष्टि में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं। 'बंदर और मगर' की मैत्री की लोक-कथा प्रायः समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित है जिसमें बंदर द्वारा दिये गये मधुर जामुन फलों को खाकर मगर-पत्नी के कहने से मगर बंदर को पीठ पर बिठा कर नदी में खाने के लिए ले गया और बंदर अपने बुद्धि-कौशल से यह कहने पर मुक्ति पा सका कि अपना कलेजा तो, जिसे तुम खाना चाहते हो, मैं पेड़ पर ही भूल आया। एक अन्य कहानी में एक सियार का मगर ने पैर पकड़ लिया तो उसने मगर को यह कहकर चकमा दिया, "क्या हुआ तुम्हारा प्रयास निष्फल रहा, मेरा पैर न पकड़ कर तुमने पेड़ की जड़ पकड़ी है" तो मगर ने झट से पैर छोड़ कर जड़ पकड़ ली और सियार भाग गया। इस प्रकार मगर की मूर्खता और मैत्री-निर्वाह में नीचता के उदाहरण मिल जाते हैं।

लोमड़ी और सियार की चालाकी प्रसिद्ध है। इस विशेषता में तो वह मनुष्य को भी पीछे छोड़े हुए है। एक कहानी में लोमड़ी ने उस खाती की जान बचाई थी जो अपनी मूर्खता-वश सिंह के पिंजड़े के फाटक को खोल देने से उसका भक्ष्य बनने जा रहा था। इसी प्रकार सियार ने किसी बनिये की दूकान में प्रवेश करके न केवल उसकी दूकान के गुड़-घी का ही आनंद लूटा, अपितु अपनी चालाकी से राजा तक को इस कथन से डरा दिया—

छूं छूं रे छूं छूं।
रींग रींगाळो, सींग सींगाळो,
बारा भैंस्या को छूंकण हाळो।
एक सींग रोलूं ने खोलूं।
दूजा सींग से परवत फोड़ूं।
तीजा सींग से राजा की दूंद फोड़ूं।

गौ का सेवा भाव एक अन्य कहानी में दिखाया गया है, जिसमें विमाता के दुर्व्यवहार से भूखा रहने वाला राज-पुत्र गायें चराता है और गायों की प्रार्थना पर भगवान के घर से उसके लिए नित्य-प्रति भोजन आने लगता है। यहां तक कि इसी

१— पंचतंत्र, प्रथम तंत्र, मित्रभेद, पृष्ठ १३ से १३० तक।

२— हितोपदेश, पहला खंड, मित्रलाभ, पृष्ठ ११ से ४१तक।

ानी में जब वह व्यक्ति दुख की बांसुरी बजाता है तब मृत गायों की अस्थियां जुड़कर य बनकर आ जाती है। एक दूसरी कहानी में चकवा तथा चकवी एक राजा की इकी को, जो पाषाण की बन गई थी, पुनः मानव-देह प्राप्ति का रहस्य प्रकट करते तो दूसरी में एक चिड़ी द्वारा अंधे को नेत्रदान की औषधि और गड़ा खजाना ाया जाता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि पशु-पक्षियो के विविध रूप इन कहानियो मे देखने मिलते हैं, जिनमें मनुष्य के दीर्घकालीन अध्ययन व निरीक्षण का पता चलता है। ह अध्ययन-निरीक्षण उस समय कितना उपयोगी रहा होगा, अब मनुष्य का जीवन ही पशु-पक्षियो के बीच व्यतीत होता था। बाल-विनोद के लिए बनी 'चूहे की हानी' मे चूहा अपने साथियो में खेलने की कामना से अपनी लम्बी पूंछ तो कटा ता है, पर जब रक्त लग जाने की आशंका से साथियो द्वारा पूंछ जोड़ कर आने का देश दिया जाता है और वह उसे जोड़ने के असफल प्रयत्नों मे इधर-उधर व्यक्तियों पास दौड़ा-दौड़ा फिरता है, तब उसे खाती, बुढ़िया, ग्वाले व ढोली के पास जाते त बाल-विनोद बढ़ता है। यहां कहने की आवश्यकता नही कि यह कहानी हाड़ौती हानी-वर्णमाला को 'क' है।

ास्यरस की कहानियां

हास्य मानव-जीवन का आवश्यक अंग है। इसीलिये उसको प्रत्येक देश के माजिक स्तर तक से स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। होली के अवसर पर होने वाले ल तमाशे इसके उदाहरण हैं। यही कारण है कि समाज ने अपनी इस वृत्ति का ालम्बन परिवर्तनशील समाज में किसी न किसी को बनाये रखा है। कभी पेटू ाह्मण हास्य के आलम्बन थे, तो कभी विकलांग और कंजूस। कभी शेखचिल्ली ालम्बन बने, तो कभी प्राणियों के मानसिक भ्रमों-द्वारा हास्य को प्रेरणा मिली। भी सरदारों को इसका श्रेय प्राप्त हुआ, तो कभी मन्त्रियों ने इसका भार वहन या। समय-समय पर कुछ जातियों ने भी इसे संभाला है और गूजर, जाट, जुलाहा ादि हास्य के आलम्बन बने हैं। अकबर-बीरबल के विनोदों की कभी देश मे धूम मची ी। हास्य और व्यंग्य के अंतर को समझ कर कुछ अवस्थाओं मे हास्य की पवित्रता ी रक्षा भी अनेक कहानियो में की गई है।

हाड़ौती कहानियों में 'टपूरड़ो' और 'अंधेरी' कहानियां लगभग एक प्रकार आधार पर बनी है। बुढ़िया से यह सुन लेने पर कि मैं केवल "टपूरड़े" या अंधेरी डरती हूं, सिंह, हाथी आदि किसी से नहीं; सिंह की जो दुर्गति होती है वह कल्पना-

सीत है। अंधेरी से भयभीत सिंह तीन चोरों का वाहन बनता है और शृगाल, बन्दर व रीछ से सहायता लिये जाने पर भी उसका भ्रम दूर नहीं होता। 'टपूकड़ा' में मस्त सिंह कुम्हार का वाहन बनता है। घर पहुंचने पर कायर कुम्हार भी वीर समझा जाकर राजा-द्वारा सेनापति-पद पर नियुक्त किया जाता है। उसके सेनापति बनते ही देश पर दूसरा राजा आक्रमण कर देता है। अब उसे जीवन में पहली बार घोड़े पर बैठना पड़ता है। अतः वह अपना संतुलन बनाये रखने के लिए पैरों पर चक्की के पाट लटका लेता है। पाटों की टक्कर से घोड़ा तीव्रतम दौड़ने लगता है। इस पर कुम्हार भयभीत होकर एक पेड़ को पकड़ लेता है। अब तो पेड़ उखड़ कर उसके साथ चलने लगता है, जिसे देखकर विपक्षी सेना भाग खड़ी होती है।

एक अन्य कहानी में अविवेकी गूजर अपने स्वामी की आज्ञा का अक्षरशः पालन करने—पीछे गिरने वाली वस्तुओं को उठा लाने की आज्ञा के फलस्वरूप घोड़े की लीद भी एकत्र करता चलता है और पान मगवाने पर बड़ के पत्तों का ढेर सभा में जाकर लगा देता है तथा सीढ़ियों पर उसके तनिक सा धक्का लगने पर इस क्रिया को तत्स्थानीय रीति समझ कर अपने स्वामी को पूरी शक्ति से धक्का देता है। एक अन्य कहानी मे 'विस्मृति' का रोचक वर्णन मिलता है, जिसमे एक भुलक्कड़ वैद्य के द्वारा बताये पथ्य 'खीचड़ी' को 'खावड़ो' रटकर, खेत के रखवाले से 'उड़ चड़ो' सीखकर, बहेलिये से 'आता जाओ फंसता जाओ' प्राप्त कर, चोरों से 'लाते जाओ, ढोते जाओ' ग्रहण कर, शव-वाहकों से 'भगवान करे, तो ऐसी कोई कभी न करे' अपना कर अंत में विवाह के घर के समीप पहुंच जाता है, तो पीटा जाता है।

'सेकचल्ली' या शेखचिल्ली की अनेक कहानियां मिलती हैं। हाड़ौती की एक कहानी मे शेखचिल्ली चोरों के साथ लगकर अपनी मूर्खता और सनक से ही उनका आधा धन ले आता है। दूसरी कहानी में वह तेल के घड़े को मस्तकपर रखे हुए प्राप्य दो पैसों से मुर्गी, बकरी, गाय, भैंस खरीदता हुआ और फिर बीबी-बच्चों की कल्पना करता हुआ, बच्चों को पीटने के अभिनय में लकड़ी द्वारा सिर पर रखे घड़े को फोड़ कर तैल-स्नान कर लेता है। दूसरा शेखचिल्ली इसलिये कब्र में जाकर लेट जाता है कि एक व्यक्ति को भविष्यवाणी के अनुसार दो दिन पहले उसकी मृत्यु हो गई है।

मृत का कृत्रिम भय भी कुछ कहानियों का वर्ण्य-विषय रहा है। एक कहानी में जीवित पिता को पुत्रों तथा ग्रामवासियों द्वारा तब तक मृत समझा गया, जब तक एक अन्य सम्बन्धी ने यह नहीं बता दिया कि उसके साथ यात्रा गया पिता यही है और मृत नही बना है, जीवित ही है।

हास्य-रस की कहानियों का आनन्द-लाभ कहानी कहने वाले की शैली से अधिक सम्बन्ध रखता है। शैली की वर्णनात्मकता और आवश्यक छोटे-मोटे चुटकले कहानी में जुड़कर वस्तु-विस्तार में रोचकता ला देते हैं।

साहस और प्रेम की कहानियाँ

लोककथाओं में साहसिक कहानियों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऐसी कहानियों का नायक प्रायः उपेक्षित राजकुमार होता है, जो अपने वीरतापूर्ण कृत्य के द्वारा किसी दानव या सिंह को मार गिराता है या स्वयंवर के समय अपनी अमित शक्ति का परिचय देता है। ऐसा वीर उपेक्षित जीवन में स्वयं अपना भाग्य निर्माण करता है और तब वह किसी अन्य राज्य का राजा बन जाता है या अन्य राजा की पुत्री से विवाह करके घर लौटता है। एक कहानी में जोरावरसिंह और बहादुरसिंह दो भाई हैं, जो राजा के पुत्र हैं और जिनमें हार्दिक प्रेम है। एक बार अपने उद्यान को नष्ट करने वाले प्राणी का पता जब किसी से न लगा तो बहादुरसिंह ने तत्परता दिखलाई और उद्यान को नष्ट करने वाले घोड़ों की पूंछ के बाल लेकर छोड़ दिया। तदनन्तर जोरावरसिंह ने एक युवती के घड़े को गुलेल से फोड़ दिया तो राजा द्वारा उसे निष्कासन मिला। अतः दोनों भाई दूसरे राज्य में जाकर रहने लगे। वहाँ भी राजकुमारी के स्वयंवर में तोरण को गिराने के प्रयत्नों में जब अनेक राजा असफल रहे तो बहादुरसिंह ने इन्द्र के घोड़ों पर बैठकर उसे गिरा दिया और राजकुमारी से विवाह कर लिया। इस प्रकार कहानी में साहस-पूर्ण कृत्यों का वर्णन है।

दूसरी कहानी 'रूप बसंत' में विमाता रानी के कहने पर रूप को देश से निर्वासन दिया गया तो बसंत भी साथ हो लिया। दूसरे राज्य में जब वे जो रहे थे तभी एक भयंकर सिंह आया जिसका बसंत द्वारा अंत कर दिया गया। राजा की यह शर्त थी कि जो उस सिंह को मारेगा उसको आधा राज्य दिया जायेगा। अतः उसे आधा राज्य मिला। इसी प्रकार एक अन्य कहानी में किसी भयंकर दानव के संहार की चर्चा मिलती है।

यहाँ प्रेम की कहानियों से तात्पर्य ऐसी कहानियों से जिनमें विवाह से पूर्व प्रेम की प्रतिष्ठा दिखाई गई हो, जिसमें प्रेरित होकर नायक साहसिक कार्य करने के लिए प्रवृत्त होता है अथवा अन्य किसी प्रकार से प्रेमिका को प्राप्त करना चाहता है। ऐसी कहानी के नायक प्रायः राजकुमार होते हैं और नायिका कोई भी सुन्दर स्त्री हो सकती है। कुछ कहानियों में वह राजकुमारी है, एक में कुम्हार की कन्या है और अन्य में [illegible] तक बन गई है। इस प्रेम का उदय स्वप्न-दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन या

गुण-श्रवण से होता है। कभी-कभी नायक अज्ञात नायिका के बालों को नदी में बहता देखकर उसके प्रेम में तड़पने लगता है। प्रेम के उदय के उपरांत प्रवृत्ति या निवृत्ति-पथ पर अग्रसर होने वाले नायक मिल जाते हैं। निवृत्ति-पथ गामी नायक टूटे महलों में पड़कर अपना विषाद प्रकट करता है तब राजा को विवश होकर प्रयत्नशील बनना पड़ता है और राजकुमार का विवाह उसकी प्रेमिका से करना पड़ता है। एक कहानी में राजकुमार ने एक कुम्हार की पुत्री से विवाह कर लिया, यद्यपि पिता चाहता नहीं था। तब उसने चोर बनकर राजकुमार से बदला लिया और उसने चक्की तक पिसवाई। एक अन्य कहानी में राजा द्वारा निष्कासित भाई-बहन बिछुड़ गये और कुछ काल उपरांत अपनी बहिन की सुन्दर आकृति पर आसक्त होकर राजकुमार ने उससे विवाह कर लिया, पर जब दोनों को यह ज्ञात हुआ कि वे भाई-बहिन हैं तब दोनों ने आत्महत्या कर ली।

तिलस्मी कहानियाँ

हाड़ौती में तिलस्मी कहानियां बाल-श्रोताओं को विशेष प्रिय रहती हैं, क्योंकि इनमें अलौकिक, जादूमय और चमत्कार पूर्ण कृत्य होते हैं। ऐसी कहानियों में नायक कुछ भी करने के लिए शक्ति-सम्पन्न होता है। जिन साधनों को अपनाता हुआ वह अपना पथ-निर्माण करता है और जिस प्रकार उसे लक्ष्य प्राप्ति होती है, उन्हें किसी तर्क की तुला पर नहीं तोला जा सकता है, केवल विश्वास के द्वारा गले उतारा जा सकता है। एक कहानी में साधु को भीख न देने पर किसी साधु ने राजकुमारी को पत्थर की बना दिया तब उसको पुनः स्त्री बनाने के अनेक प्रयत्न किये गये, पर असफल रहे। अन्त में एक अन्य राज्य की राजकुमारी ने प्रतिज्ञा की कि वह उसे जीवित कर देगी। एक रात्रि में जब वह किसी पेड़ के नीचे विश्राम कर रही थी तब चकवा-चकवी राजकुमारी को जीवित करने का रहस्य बता रहे थे। वह उसने सुन लिया। वह पश्चिम दिशा में चली गई। वहां उसे एक गुफा दिखाई दी। गुफा में एक साधु तपस्या कर रहा था वह वहां देवी के सामने पहुंच गई और जब साधु ने प्रणाम करने के लिए कहा तो उसने बताया कि वह तो यह जानती ही नहीं। इस पर साधु ने ज्यों ही झुक कर प्रणाम करना सिखाया राजकुमारी ने उसका सिर तलवार से काट दिया और उसका रक्त लाकर पाषाण-स्त्री के छींटे दिये। उसी समय पाषाण की राजकुमारी जीवित हो गई।

इसी प्रकार की एक अन्य तिलस्मी कहानी में किसी राजकुमारी की सहेली ने उससे पूछा कि तेरे प्राण किसमें हैं तो उसने मणि में बताये, जो अमुक पीपल के पेड़ के नीचे निवास करने वाले सर्प के पास है। कुछ दिनों बाद राजकुमारी का विवाह

होने लगा तो सहेली उस मणि के पास पहुंची और उसे पहन लिया। इस पर राजकुमारी मृत्यु को प्राप्त हो गई। तत्पश्चात् मृत राजकुमारी का विवाह विधिवत् कर दिया गया। अब शव को एक महल में बन्द करके रख दिया। एक दिन राजकुमार वहां पहुंचा और राजकुमारी के मुंह में कुछ डाल आया। कुछ काल उपरांत एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र ने अपनी माता से सारा रहस्य जान लिया। राजकुमारी रात्रि में जीवित हो जाती थी, क्योंकि सहेली उस हार को रात में उतार देती थी। जब राजकुमार को सारा रहस्य प्रकट हुआ तो सहेली से हार मंगवा कर उसे अपनी पत्नी को पहना दिया और वह जीवित हो उठी। उधर सहेली को मरवा दिया गया।

तिलस्मी कहानियों में एक अत्यन्त रोचक कहानी है जिसमें कोई ब्राह्मण पुत्र गुरु से शिक्षा प्राप्त कर घर जाता है। वह अपने पिता से कहता है कि मैं घोड़ा बनूंगा, मुझे १००० रु० में बेच देना पर लगाम मत देना। यह घोड़ा राजा ने खरीद लिया पर दूसरे दिन वह मर गया और पुनः पुत्र पिता को प्राप्त हो गया। इस प्रकार वह रुपया कमाने लगा। शिष्य का यह कार्य गुरु को असह्य रहा। अतः दूसरी बार जब वह ऊंट बना तो गुरु ने उसे १५००० रु० देकर नकेल सहित उसे खरीद लिया और उसके शरीर को क्षत-विक्षत करके मकान में बन्द कर दिया। एक दिन गुरु की अनुपस्थिति में दूसरा शिष्य, जो ब्राह्मण-पुत्र का भाई ही था ऊंट, को पानी पिलाने ले गया। गुरु यह देखते ही कुपित हो गया। शिष्य ऊंट से मछली बन कर नदी में कूद गया तब गुरु खातीचड़ा (मत्स्य-भक्षी पक्षी) बना। फिर शिष्य बाज बन गया। तब गुरु भी बाज बनकर गया। शिष्य मोती का हार बन कर राजा की लड़की पर जा गिरा। अब गुरु ने नट बनकर राज दरबार में अच्छा खेल किया और पुरस्कार रूप में हार मांगा। राजकुमारी ने प्रसन्नता से हार को आंगन में फेंका अब गुरु मुर्गा बनकर उसे ही चुगने लगा। जिस मोती में शिष्य का प्राण था वह खिसक कर मोरी में चला गया। जब मुर्गा मोती को चुगना ही चाहता था तब शिष्य ने बिल्ली बन कर मुर्गे को मार दिया। फिर ब्राह्मण-पुत्र स्वशरीर धारण करके घर आ गया और आनंद से पिता तथा भाई के साथ रहने लगा।

ऐसी ही अनेक कहानियां मिलती हैं। कुछ में सात समुद्र की बात मिलती है, किसी में नायक या नायिका के प्राण तोता-मैना में बताये जाते हैं और किसी को विविध पशु-पक्षियों में बदल दिया जाता है। इस प्रकार हर असंभव बात यहां संभव बन जाती है।

ठगों की कहानियां

हाड़ौती में ठगों की कहानियों का पहले अत्यधिक प्रचार था पर अब कुछ कम सुनने को मिलती है। ऐसी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता ठग की चालाकी और धूर्तता

प्रकट करना होती है जिनके द्वारा वह भोले-भाले मनुष्यों को ठगता है। साधन-रूप में वह अनेक युवतियों का उपयोग करता है। कभी उसके कमरे में पानी बरसता है तो कभी आग जलती है, कभी चारपाई के नीचे भाले होते हैं तो कभी कूप और कभी वह अपनी बुद्धि की चतुराई से व्यक्ति को मूर्ख बनाकर ठग लेता है। पर मनुष्यों में सभी सीधे-सादे नहीं होते। इसलिये ठगे व्यक्ति का कोई सम्बन्धी, मित्र या पत्नी पुनः ठग के हथकंडों से उसे ही परास्त कर विपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति को मुक्त कराते हैं। कभी-कभी ठग परिवार में ही कोई करुणा से प्रेरित होकर जालग्रस्त व्यक्ति को मुक्त कर देता है। ऐसी कहानियों में कुछ कहानियां इस प्रकार की भी मिलती हैं जिनमें दो ठग परस्पर धोखा देता देने के प्रयत्न करते हैं। उनकी चालाकियां और बुद्धि-कौशल पारस्परिक होड़ मे बढते जाते हैं और श्रोता मंत्र-मुग्ध सा विस्मय-पूर्वक कहानी को सुनता चलता है। ठगों सम्बन्धी सभी कहानियों का अंत सुखमय ही होता है। दुःखमय अंत तो ऐसी कहानियों मे सरलता से प्राप्त हो सकता, पर उसमे नायक का कर्तृत्व छिन जाता है अतः ग्राह्य नही है।

यहां ठगों की कहानियों में से कुछ पर विचार किया जाता है—

एक वणिक्-पुत्र था जो निरा अज्ञानी और आलसी था। जब उसका विवाह हो गया तो उसकी पत्नी के कथनानुसार उसको दो सौ रुपये देकर व्यापार करने भेजा गया। जब वह बंगाल में अकेला जा रहा था तो उसे एक ठग लंगड़े के वेश में मिला और कहा कि तेरे पिता ने मेरी टांग गिरवी रखी थी, अतः तू अपने रुपये ले ले और मेरी टांग लौटा दे। पर जब वणिक्-पुत्र ने असमर्थता दिखलाई तो दंड-स्वरूप उसका सब-कुछ छीन कर उसे भगा दिया गया। जब वणिक्-पुत्र घर लौटा तो फिर २०० रुपये लेकर व्यापार करने निकला। मार्ग में एक काने द्वारा वह पहले प्रकार से ठगा गया। तीसरी बार ठग ने उसे रात्रि मे घर ठहरा कर सब कुछ उसका अपहरण कर लिया तथा उसे नौकर बनाकर रख लिया। अब उसकी पत्नी पुरुष-वेश बना कर निकली। वह उस ठग के पास पहुंची तो उसने ठग के पिता पर ५०० रुपये का अपना ऋण बताया और न देने की दशा में आजीवन नौकरी करने की शर्त बताई। अतः ठग ने सकपका कर उसके नौकर पति को लौटा दिया। मार्ग में वही लंगड़ा मिला और गिरवी रखी अपनी टांग मांगी तो पत्नी ने कहा, "हमारे पास बहुत सी टांगें गिरवी की हैं अपनी दूसरी टांग की तोल की तोल कर ले जाओ।" वह टांग काटने में असमर्थ था। अतः उसने ५०० रुपये ब्याज स्वरूप लिये और वह चल दी। काने ने भी ५०० रुपये देकर मुक्ति पाई। घर लौटकर उसने अपने पति को अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और भविष्य में घर पर ही रहने का आदेश दिया।

एक अन्य कहानी में ठगों की पारस्परिक चालाकियों का वर्णन है—

एक ठग दूसरे ठग के यहां अतिथि-रूप में जाता है। दूसरा ठग उसका बहुत सत्कार करता है और उसे सोने की थाली मे भोजन कराता है। पहला ठग रात्रि मे उस थाली को चुराकर नदी मे गाड़ आता है। रात्रि में जब थाली नही मिलती तो दूसरे ठग को संदेह होता है कि थाली का चोर यही ठग है। उसके भीगे पैरो और धोती को देखकर अनुमान लगा लेता है कि थाली नदी मे छिपाई गई है और वह जाकर थाली निकाल लाता है। दूसरे दिन पहले ठग को उसी में भोजन कराया जाता है और रात्रि मे पानी भर कर थाली को छीके पर रख देता है और उसके नीचे सो जाता है। पहला ठग रात्रि मे उठता है तो वस्तुस्थिति समझ जाता है। वह राख लाकर थाली मे भर देता है और उसे ले जाना ही चाहता है कि इसी बीच दूसरा ठग जाग जाता है। अब दोनो मित्र बनकर संयुक्त ठगी के लिए निकल पड़ते हैं।

एक गांव के पास आकर एक ठग एक सेठ की कब्र में घुस जाता है और दूसरा ठग उस सेठ के परिवार के व्यक्तियों को बुला लाता है। दूसरा ठग परिवार वालो से कहता है उसके सेठजी पर २५००० रु० ऋण थे, वे लौटाने हैं। कब्र में घुसा पहला ठग उसका समर्थन कर देता है। अतः दूसरा ठग २५००० रु० सेठ के परिवार से लेकर गधे पर रख कर चल पड़ता है। पहला ठग इस बात को समझकर तलाश मे निकलता है, पर इसी बीच ५०० रु० का एक जोड़ी जूते बना लाता है। मार्ग में जाते हुए दूसरे ठग के सामने दोनों जूते कुछ दूरी पर डाल कर छिप जाता है। दूसरा ठग ज्यों ही दूसरे जूते को देखकर पहले जूते को लेने जाता है अवसर की ताक में बैठा पहला ठग गधे को अपने घर लेकर चला आता है। वह घर पहुंच कर सारा धन एक चक्की के नीचे गाड़कर किसी समीप के कुएं में रहने लगता है। अब दूसरा ठग वहां पहुंचता है और परिस्थिति को समझ कर एक दिन खाली घड़ा लेकर कुएं पर पहुंचता है। खाली घड़ा देखकर पहला ठग कहता है, "आज घड़ा खाली क्यों लाई, अभी तो चक्की के नीचे धन गड़ा पड़ा है।" इधर तो पत्नी कुएं पर अपने पति को रोटी देने आई, उधर दूसरा ठग धन खोद कर भाग गया और ज्वार के खेत मे धन गाड़कर वही रहने लगा। अब पहला ठग बात को समझ गया और एक हाथ में घण्टा लेकर खेत में घूमने लगा। जब वह दूसरे ठग के पास पहुंचा तो उसे भैंस समझ कर डांटा। तब दोनों ठग मिले। दोनों ने समझौता किया और आधा-आधा धन बांट लिया।

विविध

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त कुछ कहानियां इस प्रकार की शेष रह जाती है जिन्हें उल्लिखित वर्गों में नहीं रखा जा सकता। बुझौवल, यौन-सम्बन्धी कहानियां आदि इस प्रकार की हैं। 'बुझौवल' में किसी उलझन को सुलझाने का प्रयास मिलता

है। ये एक प्रकार की पहेलियां होती हैं। जिस प्रकार पहेलियों में सही उत्तर देने पर पारितोषिक का लोभ होता है उसी प्रकार कुतूहल में भी शर्त या पण का लोभ भी प्रायः रहता है। ऐसी कहानियां कभी-कभी किसी विचार या उपदेश-सूत्र की व्याख्याएं होती हैं। ऐसी कहानियों का आकर्षण तब तक बना रहता है जब तक घटना-क्रमों द्वारा उस तथ्य का उद्घाटन नहीं कर दिया जाता, जिसका संकेत आरम्भ में था अथवा उस विचार-सूत्र की पुष्टि नहीं हो जाती जो आरम्भ में प्रस्तुत किया गया था।

हाड़ौती की ऐसी कहानियों में तिलस्मी तथा अलौकिक तत्व भी विद्यमान रहते हैं। एक कहानी में राजा विक्रमादित्य को स्वप्न आया कि उसके दरबार में एक कबूतर आकर वजीर की कुर्सी पर बैठ गया। तब एक बिल्ली आई और बाज को खाने के लिए लपकी। अब कबूतर तो उड़कर राजा की गोद में बैठ गया और बिल्ली दौड़ कर बाज को खा गई इस पर राजा का स्वप्न भंग हो गया। दूसरे दिन राजा ने दरबारियों के मध्य में इस स्वप्न को प्रकट किया और बताया कि जो कोई इस स्वप्न को सच्चा कर देगा उसे आधा राज्य दिया जायेगा तथा अपनी पुत्री का उससे विवाह किया जायेगा। १५ दिन में स्वप्न सच्चा करने का बीड़ा किसी गरीब बाप तथा उसके बेटे ने उठाया। अब दोनों चले। बाप तो गांव में रहने लगा और बेटे ने हलवाई के यहां नौकरी कर ली। हलवाई के अति ठंडे और अति उष्ण जल से आपूरित होने वाले कमरों से वह उसकी पुत्री की सहायता से रक्षा पा सका। एक दिन अवसर देखकर वह निकल भागा। जब जाने लगा तो पिता ने पैसों का उपाय बतलाया। अब पुत्र अश्व बन गया और जिसे राजा ने १००० रु० में खरीद लिया। उस पर चढ़कर राजा सीधा आक्रामक राजा के डेरे में रात्रि में पहुंचा और धमका कर उसे भगा आया। दूसरे दिन वह भेड़ बन गया जिसने पागल हाथी को गिरा दिया। ऊंट बनने पर हलवाई ने सारे रहस्य को समझ कर लगाम सहित ऊंट को पिता से खरीद लिया। अब पुत्र हलवाई के अधिकार मे आगया। मुक्ति पाने के लिए पुत्र मच्छर बना और हलवाई मक्खी। तब लड़का मेंढक बना और हलवाई सांप। जब लड़का मछली बना और हलवाई मगर। फिर लड़का कबूतर बन गया हलवाई बाज। कबूतर उड़ता-उड़ता राजदरबार मे पहुंच कर कुर्सी पर बैठ गया और बाज कुर्सी के नीचे। अवसर देखकर कबूतर राजा की गोद में आ पड़ा और उधर बिल्ली आकर बाज को खा गई। इस प्रकार स्वप्न साकार हुआ और प्रतिज्ञानुसार पिता-पुत्र को आधा राज्य दिया गया तथा पुत्री का विवाह लड़के से किया गया।

यही कहानी प्रकारान्तर से तिलस्मी कहानियों में दी गई है। लोक-कथाओं में विभिन्न कहानियों की घटनाओं को लेकर नवीन कहानी बना देने की प्रवृत्ति भी मिलती है।

एक अन्य बुझौवल में किसी पटेल के साथ कोई नाई इस शर्त पर यात्रा करने गया कि उसकी प्रत्येक शंका का समाधान पटेल को करना होगा। मार्ग में अनेक प्रश्न और शंकाएं तथा उनके उत्तर और समाधानों को लेकर अनेक कहानियां प्रचलित हैं। कभी-कभी इन कहानियों में बुद्धि-परीक्षा भी ली जाती है। उपदेशात्मक कहानियां उपशीर्षक में भी ऐसी कहानी दी जा चुकी है जिसमें कुछ उपदेशों को खरीद कर प्रस्थान करने वाला व्यक्ति उन पर चलकर अनेक विपत्तियों से बच पाया है।

वस्तुतः बुझौवल-प्रकार शैली से सम्बन्ध रखता है। इसका विषय-विस्तार विभिन्न क्षेत्रों में है।

हाड़ौती में अनेक कहानियां यौन-सम्बन्धी भी प्रचलित है। ऐसी कहानियां समवयस्कों में कही-सुनी जाती हैं। इन कहानियों का आधार मूलतः यौन-अंगों के आकार की विशालता और विलास की प्रवृत्तियों का वर्णन होता है। कुछ कहानियों में कामेच्छा तृप्ति के लिए जादू-टोना का प्रयोग मिलता है। कोई पुरुष किसी स्त्री पर आसक्त होकर दिन में तो उसे मोम की मक्खी बनाकर कहीं चिपका देता है और रात्रि में उससे विषय-भोग में लिप्त रहता है। कभी-कभी भूत और दैत्य भी इस प्रवृत्ति से सम्बन्धित मिलते हैं। ऐसी कहानियों में से किसी एक का भी उल्लेख करना उचित नहीं प्रतीत होता है।

कहानियों का यह वर्गीकरण यथा-संभव पूर्ण बनाया गया है। इनके अतिरिक्त भी कुछ कहानियां ऐसी मिलती है जो आकार में स्वल्प होती हैं और मनोरंजन के उद्देश्य से कही जाती है; जिन्हें चुटकले कहना अधिक उपयुक्त होगा। हाड़ौती बोली में एक कहानी इस प्रकार प्रचलित है—एक राज राजो छो, ऊं का नांका में तागो छो। तागो खांच्यो, अर राजो हांस्यो।

हाड़ौती लोकनाट्य

प्रत्येक प्रदेश की सामान्य जनता को मनोरंजन की आवश्यकता होती है। मनोरंजन के अनेक साधनों में लोक-नाटक प्रिय साधन रहा है। हाड़ौती लोकनाट्य अतीत से ही जन-समुदाय के मनोरंजन का साधन बना है। लोक ने उसे मनोरंजन का सस्ता नुसखा ही नहीं समझा है, उसे अपने लिए उपयोगी भी समझा है। यदि उसे सस्ता नुसखा समझता तो संघर्ष-त्यागमयी लम्बी दौड़ में वह इसे भी बहुत समय पूर्व ही उसी प्रकार छोड़ चुका होता जिस प्रकार अनेक ऐसे साधनों को छोड़ चुका है। हाड़ौती लोकनाटक यहां के लोक-जीवन का पथ-प्रदर्शक बनकर उसे संभाले रखने में अद्‌भुत कार्य कर चुका है। यहां की अशिक्षित जनता तक राम, प्रह्‌लाद, मोरध्वज आदि के जीवन-आदर्शों को उसी ने पहुंचाया है। शताब्दियों की उथल-पुथल में भी उसने हंस-हंस कर उसे आगे बढ़ने का बल दिया है। इसीलिये लोक ने लोक-नाटक को कंठस्थ ही नहीं रखा उसे लिखित रूप भी प्रदान किया है।

वर्ण्य-विषय की विविधता इन नाटकों में न रही हो, पर जनता की उन भावनाओं को अवश्य पोषण मिला है, जो युग की परिस्थितियों ने उसे प्रदान की हैं। वस्तुतः शताब्दियों से हाड़ौती-प्रदेश के लोक-मानस में वीरता, प्रेम और भक्ति की त्रिवेणी प्रवाहित है। जिससे संगीत की लहरें उठकर उसे अभूतपूर्व आकर्षक बना देती है। संगीत ही वह तत्त्व होता है जो सारे लोकनाट्यों का मेरुदण्ड है। अनुकरण या अभिनय की अपेक्षा संगीत-साधना ही लोकनाटकों में प्रमुख होती है।

हाड़ौती लोक-नाटकों की विशेषता उनके अभिनय की सरलता और बाह्याडंबर-हीनता में भी है। उसके अभिनय में अभिनेताओं को न किसी पूर्वाभ्यास की आवश्यकता होती है और न विशेष साज-सज्जा और अलंकरण की। उसका रंगमंच भी उतना ही अकृत्रिम होता है। इसीलिये तो हाड़ौती क्षेत्र के प्रत्येक बड़े गांव में वर्ष में एक-दो लोकनाटकों का अभिनय होता रहता है। अभिनय-काल में जो उमंग अभिनेताओं में होती है, दर्शक भी उनसे कम उमंग के नहीं होते हैं। अतः समीप के अनेक गांवों के व्यक्ति दर्शक रूप में आकर किसी सांस्कृतिक अखंडता के रचाव में योग देते रहते हैं और समाज-भावना को गांव की सीमा से विशाल बनाकर दूर दूर तक प्रसारित करते रहते हैं।

हाड़ोती लोक नाटक दो प्रकार के हैं—१. खेल २. लीला। 'खेल' शृंगार रस प्रधान नाटक होते हैं। इनमें बीच-बीच में शेष रस भी पाये जाते हैं। 'लीला' में भक्ति रस की प्रधानता होती है, जिनमे भगवान अवतार लेकर आते हैं। प्रसंगवश अन्य रसों की सामग्री भी बीच में मिल जाती है।

लेखक

हाड़ौती के नाटक लोकनाट्यों की परंपरा में आते हैं। इनकी लिखित प्रतियां, जो मुझे प्राप्त हुई हैं, किसी लेखक-विशेष की कृतियां नही है। इनमें से किसी भी प्रति में लेखक का नाम नही दिया हुआ है। इन नाटकों की रचना किन्ही अज्ञात लेखकों ने की है और समय-समय पर अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने इनमें हेरफेर किये हैं। फल यह हुआ कि आज इन्हें किसी लेखक-विशेष की रचना नही कहा जा सकता। इसलिये विभिन्न स्थानों से प्राप्त पोथियों में लिपिकार-जनित भिन्नता ही नहीं दृष्टिगत होती, अपितु ऐसे अन्तर भी दिखाई देते हैं जिनसे एक ही नाटक की दो प्रतियां दो भिन्न लेखकों की प्रतीत होने लगती है। मुझे 'गोपीचन्द लीला' की तीन प्रतियां देखने को मिली हैं। एक कनवास से, दूसरी सकतपुर से और तीसरी बुंदी से। तीनो प्रतियों में न केवल कथोपकथन सम्बन्धी भिन्नता है, अपितु एक प्रति मे यदि कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया गया है तो दूसरी में कुछ नवीन प्रसंगों की मौलिक उद्भावना की गई है। बुंदी से प्राप्त पोथी मे प्रथम कथोपकथन में गोपीचन्द का हलकारा कहता है—

आया हलकारा गोपीचन्द का, रह गोड़ बंगाला।

और कनवास से प्राप्त पोथी मे सर्वप्रथम कथोपकथन मे गोपीचन्द फौज से कहता है—

आयो गोपीचन्द गोड बंगाल सूं राज करे छो देस।

कनवास की पोथी मे गोपीचन्द की बहिन का नाम चंद्रावल बताया गया है जब कि बुंदी की पोथी मे सामान्य शब्द 'राजा गोपीचन्द की बैण' शब्द मिलता है। फिर भी तीनो पोथियों मे कथा का आधार एक ही चरित-नायक होने के फलस्वरूप व्यापक साम्य है।

उस्ताद-परम्परा

खेलों या लीलाओं की पोथियों मे लेखक का नाम न मिलकर 'उसताज' (उस्ताद) का नाम मिलता है, पर 'उसताज' का नाम भी सभी पोथियों में देखने को नहीं मिलता है। कुछ ही पोथियों में 'उसताज-परम्परा' का उल्लेख है। 'उसताज' से तात्पर्य लेखक का न होकर उस व्यक्ति का होता है जिसके सबल कंधो पर नाटक के

अभिनय का सारा दायित्व निर्भर रहता है। यह उस्ताद नाटक के अभिनय का सूत्रधार होता है। यही नहीं वह टोना, जादू आदि में भी दक्ष होता है। बूंदी से प्राप्त 'रंभा-हीर' नाटक में उस्ताद परंपरा का इस प्रकार निर्देश नाटक के प्रारंभ में मिलता है—

बूंदी अखाड़ा मंदर कानजी केसरिया घनश्याम।
बछराज उसताज हमारा गोपीनाथ छै नाम।

एक अन्य नाटक 'कुवांरे' में उसताज-परम्परा का उल्लेख नाटक के प्रारंभ में न होकर अन्त में दिया गया है—

बूंदी सर का से'र है सबी सब लालन का लाल।

× × ×

गोपाल लाल का चरणां मांई रैता गोपीलाल।

बूंदी में किसी बच्छराज नामक व्यक्ति ने, जिसकी उस्ताद-परम्परा आज से तीन पीढ़ी पुरानी है, नाटक जगत में स्तुत्य प्रयास किया प्रतीत होता है। अतः एक-दो अन्य नाटकों में भी उसका नाम मिलता है। कनवास से प्राप्त 'फैलाद-लीला' में किसी रामलाल उस्ताद और उसके शिष्य केसरीलाल का उल्लेख मिलता है।[1] सकतपुर से प्राप्त 'ढोल-मरवण' में केवल मदनलाल उस्ताज का नाम मिलता है।[2]

कथावस्तु

इन नाटकों का वस्तु-चयन पुराण और इतिहास से हुआ है। पौराणिक कथाएं सीधी पुराणों के श्रवण या पठन से आई हैं, पर ऐतिहासिक कथाओं का आधार कोई ऐतिहासिक अध्ययन न होकर जनश्रुति रहा है। लीलाओं का आधार पुराण हैं और 'खेलों' की आधार जनश्रुतियां हैं। जनश्रुति के आधार पर लिखे गये नाटक ऐतिहासिक सत्य से बहुत दूर नहीं पड़े हैं, यह आगे के पृष्ठों में दिखाया गया है। इसी प्रकार पौराणिक कथाओं को भी कुछ परिवर्तित रूप से ग्रहण किया गया है।

---

१. रामलाल उसताज हमारा रखो ख्याल की लाज।

× × ×

खेल तमासो करयो सै'र मैं कंवर केसरीलाल।

२. मदनलाल उसताज को र यो माहावीर रखवाळो।

'खेल' शृंगार प्रधान रचनाएं हैं। शृंगार प्रधान रचनाओं की घटनाव[illegible] प्रायः एक ही प्रकार की देखने को मिलती है। कोई नायक नायिका को प्राप्त करने [illegible] लिए प्रयत्नशील होता है, पर मार्ग में उपनायिका या खलनायक द्वारा बाधा प्रस्तुत क[illegible] दी जाती है। तत्पश्चात् किसी देव-कृपा या नायक के प्रयास के फलस्वरूप बाधा[illegible] दूर हो जाती हैं और नायक को नायिका की प्राप्ति होती है। तब दोनों का विव[illegible] हो जाता है और वे सुख से जीवन व्यतीत करने लगते हैं। हडौती के खेलों की कथा[illegible] भी कुछ इसी प्रकार की हैं। 'सेंवरा', 'रज्या-हीर', 'ढोलामरवण' आदि स[illegible] नाटकों में तनिक हेर-फेर के साथ कथा-क्रम उपर्युक्त प्रकार का ही हैं। इसलिये नाट[illegible] की कार्यावस्थाओं—प्रारम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम का सम्य[illegible] निर्वाह इन सभी खेलों में मिल जाता है। 'फूलादे' में कार्यावस्थाएं स्पष्ट उभर न[illegible] पाई हैं, क्योंकि कथा पूर्ण विकसित नहीं हो पाई है। लीलाओं की कथावस्तु में प्रार[illegible] में नायक को धार्मिक प्रवृत्ति का बताया जाता है। यह प्रवृत्ति कभी तो संस्कार-ज[illegible] होती है, कभी परिस्थिति-जन्य। कथा के विकास के साथ-साथ इस धार्मिक प्रवृति [illegible] कसौटी भी प्रस्तुत की जाती है। नायक की धार्मिकता की परीक्षा होती है। यह परीक्[illegible] कभी भगवान के द्वारा ली जाती है तो कभी खलनायक की दुष्टता के समक्ष इस प्रवृ[illegible] का वास्तविक रूप सामने आता है। सभी नायक इस परीक्षा में खरे उतरते हैं त[illegible] या तो स्वयं भगवान उन्हें दर्शन देते हैं या उसका भावी जीवन निरापद बन जाता है[illegible] अन्य सब लीलाओं में तो यही क्रम मिलता है, पर 'गोपीचन्द-लीला' में परीक्षा ले[illegible] की दूसरी प्रणाली दिखाई देती है। नायक को अपनी विरक्ति को सिद्ध करने के लि[illegible] अपनी पत्नी, माता और भगिनी से भिक्षा-याचना करनी पड़ती है। 'रामलीला' [illegible] किसी परीक्षाक्रम का निर्वाह नहीं हुआ है। यह तो भगवान राम की नर-लीला [illegible] चित्रण है जिसका घटना-विकास उपर्युक्त घटना-विन्यास के ढंग का नहीं है। लीला[illegible] में नायक की धीर वृत्ति से कथा एक सरल प्रवाह में आगे बढ़ने लगती है पर परीक्[illegible] की बाधाओं से उनमें मोड़ प्रस्तुत हो जाता है और यहां से ही 'लीलाओं' में आकर्ष[illegible] उत्पन्न हो जाता है। वस्तुगत यह विरोध बाह्य द्वन्द्व अथवा अंतर्द्वन्द्व में प्र[illegible] फलित होकर नाटक में कलात्मक आकर्षण उत्पन्न कर देता है।

पर नाटक में चित्रित अंतर्द्वन्द्व पुनः किसी घटना को जन्म देने वाला बन[illegible] उस सूक्ष्म कथा-विन्यास का परिचय नहीं देता, जो किसी श्रेष्ठ कृति के लिए आवश्य[illegible] है। जहां किसी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तथ्य को लेकर किसी आने वाली घटना की योज[illegible] होती है, ऐसी घटना-विन्यास अत्यन्त कलात्मक एवं मनोहारी होता है। 'सेंवरा' [illegible] नायिका आबलदे उद्यान में गई और वहां उसने प्रसव-पीड़ा से किसी मालिन को क्रन्[illegible] करते हुए देखा। इससे आबलदे के मन पर एक झटका लगा। आमोद-प्रमोद के लिए आ[illegible]

हुई नायिका का जीवन बदल गया और वह जगन्नाथ की यात्रा की तैयारी करने लगी तथा आजन्म विवाह न करने का निश्चय भी कर लिया। इस निश्चय और यात्रा-प्रस्थान का मनोवैज्ञानिक आधार है, पर है स्थूल।

हाड़ौती के नाटकों में घटनाओं में कार्य-कारण-शृंखला है, चुस्ती है। किसी एक घटना को निकाल दीजिये, समस्त नाटक में एक त्रुटि सी दिखाई देगी। आधिकारिक कथा में जिन घटनाओं का योग है, उनको ही क्यों, किसी प्रासंगिक घटना 'प्रकरी' तक को ही निकाल दीजिये, शेष कथा के निर्वाह में सदोषता आ जायगी। साहित्यिक कथानक भले ही किसी अनावश्यक घटना को मृत वानर-बालक के समान छाती से चिपकाए रखे पर लोक-कथानकों में तो ऐसी अनावश्यक घटनाओं को लोक मरने ही हित के लिए छोड़ देता है।

'गोपीचन्द-लीला' में 'नाटकीय विडम्बना' का भी उपयोग किया गया है, जो बड़ा सूक्ष्म है। राजा गोपीचन्द शिकार को गया और सिंह का शिकार कर लाया। तब रानी ममणावती के मन में एक आशंका उत्पन्न हुई।

ऊं सींगणी को खांडंद मारयो, पीव बना करयां करसी।
बदया थानै क्यूं कर म्हाको, छीज छीज आ मरसी।

× × ×

थासै बदलो सींगणी लेवैगी, मत थां राजी होवो।
धार करयां सूं रहतो, सरी न नींद भर सोवो।

× × ×

जोड़ी थानै क्यूं अलगाई, ऊंका सराप थानै पड़सी।

और जब दोनों नायक-नायिका की जोड़ी बिछुड़ते देखते हैं तब हमें इस व्यंग्य भाव का प्रमाण मिलता है।

पात्र व चरित्र-चित्रण

हाड़ौती नाटकों के पात्रों में नायक और नायिका राज-वर्ग के हैं। यदि नायक या नायिका कभी एक-वर्ग के मिलते हैं और कहीं जनसाधारण में से मिलते हैं। इनके अतिरिक्त शेष पात्र वे हैं, जो एक-प्रकार से सम्बन्धित हैं—दास, दासी, सैनिक आदि। कोई नाटकों में साधु-वर्ग के पात्र भी मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि पात्रों का चयन

प्रायः जनसाधारण से न होकर ऐसे वर्गों से हुआ है जो राज-वर्ग के हैं या उससे सम्बन्धित हैं या जो साधुवर्ग के हैं।

राज-वर्ग सदैव ही जनसाधारण की दृष्टि में आदर्श रहा है और अपनी कतिपय विशेषताओं से जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। इन्हीं विशेषताओं को नाटकों मे सामान्य रूप से दिखाया गया है। इसलिये पात्र अधिकांश में जाति-परक हैं, व्यक्ति-परकता कुछ ही पात्रों मे पाई जाती है।

'खेलों' के नायक तथा नायिका वर्ग की जीवन-शैली एक प्रकार की है। सभी प्रेमी और प्रेमिकाएं हैं। सभी के जीवन में विलासिता है। सभी को मदपान करना प्रिय है। सभी नायकों को आखेट प्रिय है। नायिकाओं के आंसू भी सभी खेलों में देखने को मिलते हैं। इस प्रकार सूत्र-रूप में नायक-नायिका का जीवन आसक्ति-मय जीवन है। रंझ्या हीर पर आसक्त है, केसरीसिंह को फूलादे प्रिय है, खेंवरा की प्रेयसी आलबदे है तथा ढोला का मरवण से प्रेम है। प्रत्येक नाटक में एक नायिका के अतिरिक्त एक उपनायिका भी प्रायः मिल जाती है, जो नायक और नायिका के पारस्परिक प्रेम में बाधा उत्पन्न करती है। 'ढोला-मरवण' में वह रेवा है और 'फूलादे' में वह ठगिनी है। जहां उपनायिका यह बाधा उत्पन्न नहीं करती वहां कोई पुरुष-पात्र युद्ध के लिए आ धमकता है। तात्पर्य यह है कि पात्रों की रेखाएं लगभग समान सी है। कहीं रंग गहरे हैं और कहीं हल्के, इतना ही अन्तर है।

'लीला' के नायक भी राज वर्ग के हैं। अन्तर इतना ही है कि यहां वे विलासी न होकर भगवद्भक्त है। इन भगवद्भक्तों की भक्ति में व्यवधान उत्पन्न करने वाले अलग-अलग पात्र होते हैं। 'गोपीचन्द-लीला' मे वह ममणावती है। 'फैलाद लीला' मे फैलाद का पिता हरणाकुस है। 'मोरध्वज-लीला' में पदमावती की भक्ति में स्वयं पिता बाधक है और मोरध्वज की भक्ति की परीक्षा लेने वाले अरजन तथा करसण (अर्जुन व कृष्ण) हैं।

पात्रों का चरित्र-चित्रण कथा-विकास के साथ स्पष्ट होता चलता है, पर उसमें कथोपकथनों का भी कम महत्वपूर्ण हाथ नहीं है। इन कथोपकथनों मे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों शैलियों से चरित्र-चित्रण हुआ है। प्रत्यक्ष-शैली में 'धूम की तानों' में पात्र स्वयं अपने सम्बन्ध में कहता है। 'मोरध्वज लीला' में पदमावती अपना परिचय इस प्रकार देती है—

> पदमसेन राजा की बेटी पदमावत छ नाम।
> उतर खंड में रेवती सरै, म्हारो चंदकला छै नाम।

ईंको राजा भेद बूकसी, सारी बात बरवाणी।
म्हादेव संग सोवै पारवती, बावां संग समाणी।

गोपीचन्द यदि कच्चा योगी होता तो ठहर नहीं सकता था। एक अचूक बाण था, जो टकराकर वापिस लौट आया। गोपीचन्द का अविचल भाव से दिया गया उत्तर कितना सुन्दर है, जो उसकी प्रकृति के अनुकूल है—

थई बरमा, थई री बीसनू, थई री संकर देव।
अगम पदम की सारी सूझै, बांसे लाग्या नेव।
के तो अंतर चढ़े छा राणी, अब तो उड़ती खेव।
हाथ जोड़ म्हूं करूं बीनती, गरू देवन का देव।
ग्यान बताया सत गरू, आया सुण ले भोळी माई।
म्हादेव पारवती नैं सारी सरस्टी उपाई।
म्हांसै कांई ग्यान पूछती, आछी बातां लगाई।
बोहत देर सूं खड़ो दुवारै, अब भगस्या मैलो माई।

उत्तर चाहे ठीक न मिला हो, चाहे शंका का समाधान न हुआ हो, पर तर्क-पद्धति भाव-पद्धति के समक्ष हलकी सिद्ध हुई। एक ही 'माई' शब्द ने सब कुछ निर्मूल कर दिया। मां बन कर तर्क करना ही बेकार है। तर्क द्वारा पुत्र मिलेगा, तो क्या लाभ, उसे तो पति चाहिये। अतः वह बिलख कर कह उठती है—

माता तो कंवरां म्हासैं ना कहो, म्हां राणी थांकी।

और उसी की पुष्टि में इस प्रकार कहती है—

बालपणां मैं फेरा खाया, म्हूं छूं थांकी नार।
म्हलां मांई जोग उतारो, पैं म्हांका भरतार।
जोगी बणकर फरै एकला, कोई न थांकी लार।
राजपाट के आग लगाई, जोबा मैं धरकार।

अविवेक शील बुद्धि की कितनी मधुर युक्ति है—'आओ चुपके से महलों में योगी का वेश बदलकर राजसी वस्त्र धारण करलो, किसी को पता थोड़े ही चलेगा।' ऐसा तर्क भाव की गहनता मे ही संभव है।

तात्पर्य यह है कि चरित्र-चित्रण अनेक स्थलो पर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पद्धति पर हुआ है। उसे हम केवल वर्ग-गत कहकर उसके सौंदर्य से आंख नहीं मूंद सकते। इतनी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक शैली साहित्यिक नाटकों मे भी कम ही देखने को मिलती

प्रधानता ग्रहण करती जा रही थी कि उससे पारिवारिक जीवन की एकता छिन्न-भिन्न हो रही थी। राजा भीसम ग्रौर पुत्र रूकमैया का विरोध इसका प्रमाण है। 'ढोला-मरवण' मे तत्कालीन बाल-विवाह-प्रथा का परिचय मिलता है।[१] 'फूलादे' में उस समय देश में व्याप्त ठग-विद्या को चित्रित किया गया है, जिसका देश में ग्रातंक छाया हुग्रा था।

पर जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इन नाटकों में किसी देशकाल को चित्रित करने का प्रयास प्रमुख नहींरहा है। इसीलिये कुछ नाटकों में ऐतिहासिकता व पौराणिकता से विरोधी बातें मिलती हैं। 'रूकमणी-मंगल' मे सुनपाल की ग्रोर से लड़ाई की तैयारी हो रही है ग्रौर उसमें तोप, तमंचा, रेखळा ग्रादि का उल्लेख मिलता है।[२] कहने की ग्रावश्यकता नहीं कि भारत में सर्व प्रथम तोपो का उपयोग बाबर ने किया था ग्रौर उन्हें ग्रपने साथ बाहर से लाया था। राजा गोपीचन्द के हलकारे से ग्राधुनिक ढंग की सेना तैयार करने को कहता है—

फोजां में हलकारो भेजो, ग्रफसर लेवा बुलाई।
बुगल करो फोजां के ताईं, सारा जवान सजाई।

ग्रफसर तथा बुगल (बिगुल) शब्द ग्रति ग्राधुनिक है। इनका उपयोग प्राचीन काल में भारत में नही होता था।

कथोपकथन

हाड़ौती नाटकों में पद्यात्मक कथोपकथन ही मिलते हैं। कथोपकथन नाट्य-शास्त्र में चार प्रकार के माने गये हैं—सर्व श्राव्य, नियत श्राव्य, ग्रश्राव्य तथा ग्राकाशभाषित। हाड़ौती नाटकों में दूसरे प्रकार के कथोपकथन नही मिलते तथा पहले ग्रौर तीसरे प्रकार के कथोपकथन ही प्रायः प्रयुक्त होते हैं।

तान

एक नाटक मे एक पात्र प्रायः ग्रनेक बार रंगमंच पर ग्राकर ग्रनेक प्रसंगों में गाता है या बोलता है। इनमे से प्रत्येक बार की कथोपकथन-समष्टि को 'तान' कहते हैं। इस प्रकार एक पात्र की ग्रनेक 'तानें' एक नाटक में होती है ग्रौर ग्रनेक पात्रों की समस्त तानें मिलाकर नाटक का निर्माण करती हैं। एक पात्र की ऐसी सभी तानें एक साथ एक पोथी या 'खरड़ा' मे लिखी होती हैं। कभी-कभी ये तानें नाटक के कथाक्रम के ग्रनुसार पोथियों में लिखी मिलती हैं।

१—बावरणां परणाइया बाई जी, पे ढोला के तांईं। —ढोला-मरवण
२—तोप, तमंचा, रेखळा, सरे, सारा ल्हूं ले जाऊं। —रूकमणी-मंगल

घूम की तान

हाड़ोती नाटकों में स्वगत-कथन को 'तान घूम की' संज्ञा दी जाती है। इस घूमकी तान का उपयोग जब होता है जब पात्र या तो स्वयं नाटक के प्रारंभ में आकर अपना परिचय देते है ; यथा—

> पदमसेन राजा की बेटी, पदमावत छै नाम।
> उत्तर खंड में रैवती सरै, म्हारो चंद्रकला छै नाम। —मोरध्वज-लीला

अथवा किसी विपत्ति में पड़कर वह अपनी मनोव्यथा को व्यक्त करता है या ईश्वर से प्रार्थना करता है—

> तूप सहूं रण खेत मैं सरै, पाछी कदी न आऊं। रुकमणी-मंगल
> करुणा तो सुण लीज्यो दोनी कान सूं, करुणानन्द स्वामी।
> करुणानन्द करतार हो सरै, तीन लोक में छायो।
> भगत वछल भगवान को सबो, दीनानाथ कहायो। कैलाद-लीला

सर्व श्राव्य कथनों का उपयोग नाटकों में सर्वत्र मिलता है। पद्य का माध्यम होने से इन कथोपकथनों में जीवन की व्यावहारिकता को व्यक्त करने के लिए कम अवकाश रहता है। हाड़ोती में जो नाटक मिलते हैं वे व्यावहारिक जटिल जीवन की अभिव्यक्ति करने वाले नहीं हैं, अपितु किसी काव्यात्मक जीवन की अभिव्यक्ति उनमें मिलती हैं। ऐसी अभिव्यक्ति इन पद्यात्मक कथोपकथनों में सरलता के साथ हुई है।

'गोपीचन्द-लीला' का नायक गोपीचन्द विरक्त हो गया है और भगवा वस्त्र पहन कर अपनी पत्नी के पास भिक्षा-याचना करने आया है। उस समय उसकी पत्नी के हृदय पर क्या-क्या बीत रही होगी—करुणा, क्रोध, प्रेम, मति, वितर्क न जाने किन-किन भावों का जमघट होगा। सौभाग्यवती होकर भी वह विधवा है। रानी होकर भी भिखारिन से दयनीय है, पानी उसके समक्ष हैं, पर प्यासी है। वह आंसू भी नहीं बहा सकती, तो हंस भी नहीं सकती। आखिर कब तक आंसू को रोके रहे। कब तक जीभ पर ताला रखे। नाटककार कौनसी बात उससे कहलवाये और किसे छुड़वा दे। अतः लीला का लेखक एक दो नहीं पूरी पांच छोटी-छोटी तानों द्वारा उसके हृदय को खोलकर रखता है। गोपीचन्द की पत्नी उसे कोसती है और साथ ही भाग्य छीनने वाले ब्रह्मा, विष्णु को भी तथा तर्क द्वारा गोपीचन्द को परास्त करना चाहती है—

> बरमा के बरमाणी सोवे, बिसनू के घर राणी।
> × × ×
> महादेव संग सोवे पारबती बायां अंग समाणी।

गोपीचन्द भी जो-कुछ कहता है उसमें उसके चरित्र की विशेषताएं प्रकट होती हैं। वह कच्चा योगी नहीं था, मंज चुका था। अतः बात को समझता है। पर युक्ति से काम लेकर बात टाल देता है। उसे 'मां' शब्द से संबोधन करता है। तब उसकी रानी को कहना पड़ता है—

माता तो कंवारां म्हांसे ना कहो, म्हे राणी थांकी।

और रानी-सुलभ हृदय और मस्तिष्क गोपीचन्द को यह परामर्श देते हैं कि 'म्हला भीतर जोग उतारो'— वेश परिवर्तन चुपचाप एकान्त में कर लिया जावे कोई देखेगा थोड़े ही। कितने भावुक तथा सरल हृदय की युक्ति है।

सारांश यह है कि हाड़ोती नाटकों में प्रसंगानुसार कथोपकथनों की सुन्दर योजना मिलती है। यहां पात्रानुकूलता है, प्रसंगानुकूलता है और स्वाभाविकता है।

किसी-किसी नाटक में ऐसे अनावश्यक कथोपकथन भी मिल जाते हैं जिनको न रखा जाता तो नाटकीय कथा की दृष्टि से उचित होता। 'फूलादे' में पंडित कहता है—

कुलदेवी गणेश पुजावां, कुंभ कळस की पूजा।
म्हां पंडत म्हाराज का रे, म्हे सभी देवता पूजां।

हाड़ोती के नाटकों के कथोपकथन पद्य में ही है। प्रत्येक नाटक में प्रत्येक पात्र को अन्य प्रस्तुत पात्र के बराबर छंदों में बोलना पड़ता है। सभी पात्र समान वाचाल तथा समान मूक मान लिये गये हैं। 'रामलीला' में तो यहां तक देखने को मिलता है कि प्रत्येक पात्र ४ छन्दों में ही प्रत्येक अवसर पर बोलता है, इससे कम या अधिक में नहीं। 'रंझ्या हीर' और 'सेंवरा' के कथोपकथनों में एक और विशेषता देखने में आती है कि कोई पात्र प्रत्येक बार बोलते समय अपने या दूसरे पात्र के कथोपकथन के अन्तिम शब्दों से अपने कथन का आरंभ करता है; जैसे, रंझ्या की मां एक छंद की चतुर्थ पंक्ति में इस प्रकार बोलती है—

रंझ्या बना जीने की नांई जे'र खार मर जाऊं

और इसके उत्तर स्वरूप बीरबल ने जो कुछ कहा उसका उत्तर फिर इस पंक्ति से आरम्भ करती है—

जे'र खार मर जाऊं बीरबल, मारूं और कटारी।

संगीत

हाड़ोती लोकनाट्यों का संगीत एक अपरिहार्य अंग है। हारमोनियम या सारंगी और ढबला या ढोलक वाद्यवृन्द-रूप में पर्याप्त होते हैं। कभी-कभी अन्य वाद्य भी प्रयुक्त होते हैं। संगीत में वादकों को प्रत्येक अभिनेता के स्वर के

साथ चलना पड़ता है और जब वह 'टेक' गा लेता है तो उसे बार बार यंत्रों पर दुहराया जाता है। इसके पश्चात् दूसरा पात्र गाकर उत्तर देता है। साधारणतया तो प्रत्येक पात्र को गाना प्रारम्भ करने से पूर्व "आ ऽ ऽ ऽ" करके वाद्यवादकों को अपना स्वर बताना पड़ता है, पर कुशल वादक होने पर ऐसा नहीं करना पड़ता।

'रामलीला' में संगीत की योजना एक विशेष प्रकार की होती है। अभिनेताओं के अतिरिक्त एक मंडली तान झेलने वालों की भी होती है। जब अभिनेता अपने कथन को गा चुका होता है तब वादकों और तान झेलने वालों की बारी आती है। पात्र के ठीक पश्चात् वादक एक बार अन्तिम चरण को दुहरा देते हैं और तत्पश्चात् तान झेलने वाले कुछ अंश को गाकर दुहराते हैं। एक चौपाई लीजिये—

सोभा अपरम्पार सखी री, देखो नैण पसार। १
रूप इनको को उपमा नांय। २
इनके रूप के ऊपरें सरी कोटिक काम लजाय। ३

जब अभिनेता इस दोहे को गा चुकेगा तब वाद्ययंत्रों पर तृतीय पंक्ति दुहराई जावेगी। अब तान झेलने वालों की बारी आती है, वे 'कोटिक काम लजाय' अंश को गाकर दुहरावेंगे और तत्पश्चात् 'टेक' को गावेंगे, इस प्रकार नाटक का एक कथन संगीत की दृष्टि से समाप्त होता है।

छंद

'रामलीला' को छोड़कर शेष सभी नाटकों में एक ही छंद का प्रयोग प्रायः मिलता है। वह छंद है—

ऽ। ।ऽ ऽऽ।। ऽऽ।। ऽ।।ऽ ऽ।
प्यार दगां के भीतर लाग्यो मन का करग्यो देर। २७

ऽऽ ।ऽऽ ऽ ।। ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ।
थारै सतावै अंगना मांई, लागू लाडै मेर २७

ऽ।ऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ।ऽ ।।। ऽ ऽ।
जोबन म्हारो भोला लावै, उठै बदन में लै'र २७

ऽ। ऽ। ऽ ऽऽ ।ऽऽ ।।ऽ ऽऽ ऽ।
एक बार तो आवो मनाई, महला आवो फेर। २७

यह २७ मात्राओं के चरण का मात्रिक छंद 'दोहा' कहलाता है। लोकसाहित्य [illegible] छंद अति प्रचलित है और स्त्रियों के गीतों में भी इसका प्रयोग मिलता [illegible] की एक टेक को पकड़ कर स्त्रियां उसमें 'दोहे' जोड़ती रहती हैं।

'दोहा' छंद हिन्दी के दोहे से सर्वथा भिन्न सा प्रतीत होता हैं। दोहे मे कुल ४८ मात्राएं होती हैं और इसमें कुल १०८ मात्राएं।

अनेक छंदों में कुछ निरर्थक शब्द देखने को मिलते है। वे निरर्थक शब्द 'रे' तथा 'सजी' हैं—

पढ़वा चालूं साळ मैं सरै, लियां सखा सब लार।
वीर विया म्हूं नई पढूं सरै, राम नाम ततसार।
हरदे तो सुरसती सरै, देसी बुद्द बच्यार।
सांचा मन से सुमरण करता सहूं, कोण सकेगा मार।

यदि उपर्युक्त छंद से से 'सरै' की ३ मात्राएं निकाल दें तो प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएं शेष रह जाती हैं। दोहा छंद में भी प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएं होती हैं। इन नाटकों का दोहा हिन्दी दोहे से दुगुना है। इसने इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि इन नाटकों का दोहा छंद हिन्दी का दोहा छंद ही है, पर आकार मे दुगुना है। दोहा छंद का निर्माण अति सरल होता है और हाड़ौती में आकर तो वह और भी सरल बन गया है। संगीत का आश्रय पाकर अंतिम ऽ। का नियम भी उसने तोड़ फेंका है।

'रामलीला' में छंद-विधान निम्नलिखित है—

ऽऽ ।ऽ।। ऽ। ।ऽ ऽ ।। ऽ ऽ।। ऽ।
माया उतारण भार जमीं को सुण ले रावण बात। २८

ऽ। ।। ऽ। ।ऽऽ ऽऽ
दुस्ट मत्र प्राण तुमारा जावे। १७

।।ऽ ऽऽ ।।। ऽ।ऽ ।।ऽ ऽ। ।ऽ ऽऽ
छलके साया जनक-नंदनी हरदे रोस नईं मारे। २६

यह भी 'दोहा' छंद ही है। इसे हाड़ौती मे 'ढाई कड़ी का दोहा' कहा जाता है।

इनके अतिरिक्त किसी-किसी नाटक में गीत भी मिलते हैं। कभी-कभी किसी पात्र के कथनों के प्रारंभ मे एक सुन्दर सा काव्यमय कथन देकर शेष कथोपकथनों को बाद मे दिया जाता है। यह कथन, 'चंद्रायणो'[१] छंद मे कहा जाता है जो हिन्दी का दोहा छंद है—

गणपत सबका लाडला, सुनो हमारी बात।
थानै घूंजू प्रेम सूं, सबनै लेकर सात।

१. यह 'चंद्रायणो' हिन्दी के चन्द्रायण छंद से भिन्न है, जिसके प्रत्येक चरण में ११, १० मात्राएं होती हैं।

सभी नाटकों में छंदों का विधान दोषपूर्ण है। छंद-शास्त्र की दृष्टि से मात्राओं की ठीक संख्या तो कम ही छंदों में मिलेगी। इन मात्राओं की न्यूनता या आधिक्य को संभाल कर चलने वाला संगीत है जिसमें आवश्यकतानुसार स्वर को ह्रस्व या दीर्घ करके गा लिया जाता है। इन नाटकों के छंद पिंगल-शास्त्र की अपेक्षा संगीत-शास्त्र से अधिक प्रभावित हैं।

अभिनय

हाड़ौती नाटकों में अभिनय की कला विकसित नहीं दिखाई देती। गाकर अपने भावों को प्रकट करने के अतिरिक्त हस्तपादादि संचालन द्वारा ही भाव-प्रदर्शन होता है। पात्रों की अधिकांश शक्ति अपने स्वर को वाद्य-यंत्रों के अनुरूप बनाये रखने में लगी रहती है। फिर भी क्रोध की अवस्था में गायक का स्वर तीव्र और वेगमय हो जाता है व हस्तपादादि के संचालन में त्वरा आ जाती है। करुण दशा के अभिनय में स्वर गिरा हुआ, मुंह लटका हुआ और हाथ-पांव गतिहीन से रहते हैं। आकृति तथा विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों पर भावना का जो प्रभाव पड़ता है उसके द्वारा भाव-प्रकाशन करने को इन नाटकों में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता।

अभिनय करते समय प्रसंगगत उभय पक्ष के पात्र एक दूसरे के समक्ष खड़े रहते हैं। अभिनेताओं में से वक्ता का मुंह सामने बैठे दर्शकों के समक्ष होता है और श्रोता की पीठ उनके सामने होती है। जब वक्ता अपने वक्तव्य को गाकर प्रकट कर चुकता है, तब श्रोता वक्ता बन जाता है और वह वक्ता से अपना स्थान बदल लेता है। अभिनय करते समय यदि किसी अभिनेता को नृत्य का शौक है, तो वह पैरों में घुंघरू बांध लेता है और स्थान-परिवर्तन करते समय हल्का सा नृत्य भी दिखा देता है, पर गौरवशाली पात्रों की भूमिका में उतरे अभिनेता ऐसा कभी नहीं करते; जैसे, रामलीला में राम, लक्ष्मण आदि में से किसी के पैर में घुंघरू नहीं बांधे जाते। शेष सभी पात्र नाचने देते जाते हैं। स्त्री-पात्रों में तो यह रीति बहुतायत से प्रचलित है।

वेशभूषादि

लोक-नाटकों में वेश-भूषा का मुख्य लक्ष्य वातावरण की सृष्टि करना नहीं होता, अपितु तड़क-भड़क द्वारा पात्रों को आकर्षक बनाकर मंच पर लाना होता है। हाड़ौती नाटकों के प्रायः सभी पात्र कुलीन राजवर्ग के हैं, अतः उनकी वेशभूषा में तड़क-भड़क हो तो कोई आश्चर्य नहीं, पर आश्चर्य तब होता है जब गोपीचंद भेगवा -पहिन कर योगी बन जाता है, पर सिर पर तो मुकुट लगाये हुए रहता है अथवा

अशोक-वाटिका में भी सीता की तड़क-भड़कमयी साड़ी दर्शक को चकाचौंध करती रहती है।

स्त्रियों की भूमिकाओं में भी पुरुष ही कार्य करते हैं, पर स्त्री का सा रूप धारण करने की दिशा में उनको तनिक भी चिंता नहीं होती हैं। साड़ी के घूंघट में से उनकी लम्बी मूछें दिखाई देती रहती हैं। वे शेष अंगों पर स्त्रियों के सभी आभूषण धारण करते हैं। स्त्रियों की भूमिका के लिए अभिनेता का चुनाव कंठ के लोच और नृत्य-कौशल के आधार पर होता है।

प्रायः सभी पात्रों के मुंह को एक ही प्रकार की रामरज मिट्टी से पोता जाता है और उस पर आवश्यकतानुसार बेंदी या तिलक लगा लिया जाता है। कभी-कभी एक अन्य प्रकार का लेप भी तैयार किया जाता है जिसके लगा लेने पर पात्रों की आकृतियां चमकने लगती हैं।

राजावेश धारी पात्र को पगड़ी या साफा, लम्बा कोट या अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहिनाया जाता है। साफे या पगड़ी पर कलंगी, तुर्रा व सरपेंच बाधे जाते हैं। कमर में एक चमड़े का 'पड़चला' बंधा होता है, जिस पर तलवार लटकती रहती है। क्रोध या जोश के अभिनय में पात्र तलवार घुमाता है उसके हाथ में एक सुन्दर सी छड़ी भी होती है।

जहां पात्र अमानव होते हैं वहां उनके अनुरूप मथुरा की किसी कंपनी से मुखौटे या चहरे मंगा लिये जाते हैं। ये चेहरे वानर, रीछ और राक्षसों के होते हैं, जिनका 'रामलीला' के अभिनय में उपयोग होता है। राम, लक्ष्मण व सीता के वनवास-काल मे सुन्दर-सुन्दर जटायुक्त 'टोपियां' होती हैं, जो इतर काल के मुकुटों के समान झलमलाती तो है, पर उतनी विशाल नही होती।

जो पात्र इस प्रकार सजधज जाता है उसे 'सरूप' (स्वरूप) कहा जाता है। इस प्रकार राम का सरूप, लक्ष्मण का स्वरूप, रावण का सरूप आदि बनकर अभिनय किया जाता है।

अभिनय-काल

अधिकांश मे सभी नाटक चैत्र तथा वैशाख मासो मे खेले जाते हैं। इसके दो कारण हैं। प्रथम, इस समय किसान के पास कृषि-सम्बन्धी कोई विशेष कार्य नहीं होता; द्वितीय, मौसम भी अनुकूल होता है। उन्मुक्त गगन के नीचे दर्शकों के लिए बैठने का प्रबंध होता है, यह तभी संभव हो सकता है। पर कभी-कभी उन दिनों में भी वर्षा हो जाती है।

इन्हीं मांचों के ठीक सामने से हट कर पार्श्व में तान-झेलने वाले गायक तथा वाद्य-वादक वृंद बैठते हैं, जिनके मध्य में अभिनेता अपना अभिनय दिखाते हैं।

मांचों के पीछे कोई पर्दा होता है। उस पर्दे के पीछे अभिनेताओं का अलंकरण, वेश-भूषा-धारण आदि होते है। कभी-कभी इस कार्य के लिए किसी कोठरी या तिवारी को, जो समीप हो, चुन लिया जाता है।

अखाड़ा

प्रत्येक नाटक को खेलने के लिये गांव में एक स्थान-विशेष होता है जिसे 'अखाड़ा' की संज्ञा दी जाती है—

> बूंदी अखाड़ा मंदर कामती बैठ सीष पर आई।
>
> —गोपीचंद-लीला।

तथा—

> बछराज उसताज हमारा, कड़ा बगस्या भाई।
>
> बीच अखाड़ा करां तमासो, गजानंद नै ध्याई।
>
> —खेंवरा।

अखाड़े की रक्षा के लिए 'लोबान' जलाकर उसे अभिमंत्रित किया जाता है। नाटक प्रारंभ होने के पूर्व और उसकी रक्षा के लिए किसी देवी या देवता से प्रार्थना की जाती है, क्योंकि अखाड़े वालों में आपस में प्रतिद्वन्द्विता चलती है। यदि किसी अखाड़े में खेल का बहुत अच्छा अभिनय हो रहा है, तो दूसरे अखाड़े वाले ईर्ष्या करने लगते हैं और कभी-कभी 'मूंठ' मार देते हैं, जिससे अभिनेता या नट मूर्छित होकर गिर पड़ता है। इसलिये 'मोरध्वजलीला' के प्रारंभ में भवानी की इस प्रकार स्तुति मिलती है—

> दुसमण का करजे खंगो चूरमा, म्हारी मात भवानी।
>
> × × ×
>
> आए अखाड़ा माईनै रै तू, खबर गंठ की लीजे।
>
> डूंट, मूंठ और जादू-टोणा, भर खप्पर में पीजे।

इसी प्रकार 'खेंवरा' में भी सरस्वती से प्रार्थना की गई है—

> हाथ जोड़ अरजी करां छां, दुसमण को खै कीजो।
>
> जो कोई म्हांनै घात करै तो जीको ई भक्ष लीजे।
>
> बावन भैरू, चोसट जोगण्यां वानै लारां लीजे।
>
> हाथ जोड़ अरज करां छां, माता तू सुण लीजै।

को अपने पति को लाने के लिए यह कह कर भेजा—

गुण रे चारण बात हमारी, बरतर बड़ में जावो।
म्हूँ जोवन में छक गई सरै, म्हारो पराण बचावो।

चारण ढोला को लाने में तो असफल रहा पर यह पता लगा आया कि वह रेवा के जाल में फंसा है और रेवा जादूगरनी है—

रेवा नै बरमाया बाई जी, राजकंवर नै भासी।
ऊं रेवा के कारणै सखी, जान हमारी जासी।
पर नारी सूं प्रीत लगाई, कोई न आडो आसी।
पामामी को डांव नईं छै, उडन पखेरू जासी।

इसलिये एक शुक को पत्र देकर मरवण ने ढोला के पास भेज दिया। पत्र को पढ़ कर ढोला वस्तुस्थिति समझ गया और रेवा को तड़पती छोड़ कर शुक के साथ मरवण के उद्यान में पहुँचा। उद्यान में एक भयंकर दानो (दानव) रहता था, जिसका ढोला ने वध कर दिया। दूसरे दिन ढोला की परीक्षा ली गई। एक दासी मरवण के रूप में आई, पर ढोला को पहले ही शुक ने संकेत कर दिया था—

कंवरा झारी मत लोज्यो, या बांदी की ज्यात।

× × ×

ईंके मारो छापका जसी, सांची केती बात।

अतः यह लक्ष्य में असफल रही और ढोला परीक्षा में सफल हुआ। तत्पश्चात् मरवण झारी भर कर लाई और फिर विरहित तृषित दंपती का मिलन हुआ। यहीं नाटक की कथा समाप्त हो जाती है।

वस्तुतत्त्व

'ढोला-मरवण' की कथा में घटनाओं का विन्यास सरल है तथा कार्य-कारण सम्बन्ध पर आधारित है। किसी अनावश्यक घटना को नाटक में स्थान नहीं मिला है। अति बाल्यकालीन विवाह और उसकी विस्मृति से ही ढोला रेवा के चंगुल में फंस जाता है, जो जादूगरनी है। इस प्रारम्भिक घटना से नाटक में आकर्षण उत्पन्न जाता है। मरवण का चारण द्वारा संदेश भेजना और उसमें असफलता से कौतूहल और तीव्र हो जाता है। अब शुक द्वारा संदेश से जाकर ढोला को उद्यान में लाया जाता है तब नरभक्षी दानव से ढोला द्वारा मोरचा लेने की घटना दर्शक की उत्कंठा को चरमसीमा

पर ले जाते है। ढोला की विजय से कथा में उतार आ जाता है और अन्त में दोनों का मिलन दिखाकर नाटककार कथा का अन्त कर देता है।

यदि शास्त्रीय दृष्टि से इस नाटक की कथावस्तु पर विचार करें तो सर्वप्रथम यह प्रश्न प्रस्तुत होता है तो कि नाटक का कार्यरूप परिणाम क्या है? नाटक का फल प्रेमियों का संयोग दिखाना है। इस संयोग-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील कौन है? ढोला या मरवण? ढोला की ओर से आरंभ में इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं मिलता कि वह मरवण को प्राप्त करना चाहता है। इसके विपरीत मरवण ढोला को स्वप्न में देखकर तथा अपनी सहेलियों से पूछकर उसे प्राप्त करना चाहती है। इसलिये इस नाटक को नायिका-प्रधान नाटक कह दें तो कोई आपत्तिजनक बात न होगी। इतना अवश्य है कि नायिका मरवण के प्रथम दर्शन लगभग नाटक के मध्य में होते हैं। फिर भी फल का स्वामित्व मरवण के हाथ में है। उसके स्वप्न-दर्शन और सखियों से पूछने मे 'आरंभ' कार्यावस्था को देखा जा सकता है तथा चारण और शुक को भेजना 'यत्नावस्था' के सूचक हैं। ढोला का उद्यान में पहुंच जाना 'प्राप्त्याशा' है। दानव वध की घटना को विघ्न मान लें तो 'नियताप्ति' और 'फलागम' अवस्थाएं एक ही साथ नाटक में आ धमकती हैं।

'ढोला-मरवण' में उपर्युक्त ढोला और मरवण की आधिकारिक प्रेम-कथा के अतिरिक्त प्रासंगिक कथाएं भी है। ढोला और रेवा की प्रेम-कथा, मालिन और ढोला का प्रसंग तथा दानव और ढोला का द्वन्द्व प्रासंगिक कथाएं हैं; जो 'प्रकरी' के अंतर्गत आवेंगी। ये सब कथाएं आधिकारिक कथा को सहायता पहुंचाती हुई, उसे क्रमशः आगे बढ़ाती हैं।

चरित्र-चित्रण

'ढोला-मरवण' में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। ढोला, मरवण तथा रेवा कुल तीन प्रधान पात्र हैं और दोस्त, चारण, मालिन, रेवा तथा शुक गौणपात्र हैं। कथानक सरल और परंपरागत है और पात्रों का चरित्र जाति (टाइप) रूप में चित्रित हुआ है।

ढोला

नाटक का नायक ढोला राजकुमार राजा नल का पुत्र है। वह बाल्यकाल में चंचल और शैतान है। इसलिये जब पनिहारिन घड़ा फोड़ने पर उपालम्भ देती है तो

उसके उत्तर में कहता है—

दूर गी पास में आया, तेने पानी नईं पाया।

यह एक सच्चा वीर है जिसे सिंह का शिकार प्रिय है। उसमें सच्चे वीर की निर्भीकता है। अतः दानव-मय मरवण के उद्यान से उसे दूर नहीं हटाता—

यां बागां में दागू मारूं, म्हूं तो कदी न हारूं।
जो घरके चढ़ आवै म्हारै, बना मौत म्हूं मारूं।
ईमें झूंठी नांई दरोगा, सनमुख होके मारूं।
खांडो खाऊं सीस पै र म्हूं, टुक टुक कर डारूं।

उसका सहज रीझने का स्वभाव है। एक सुन्दर उद्यान को देखकर वह अपनी सहज रीझने की प्रवृत्ति का परिचय देता है। यही सहज रिझवार प्रकृति रेवा के इस सौंदर्य वर्णन पर ढोला को उसकी ओर आकर्षित कर देती है—

सूरत ऊंकी चांद सरीखी, ऊंमूं कारज्यो यारी।

उसकी यह प्रवृत्ति यहां तक उसके व्यक्तित्व को प्रभावित किये हुए है कि वह चट से रेवा की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जाता है और अपनी विवेकहीनता का परिचय देता है। इसी प्रकार मरवण का संदेश लेकर शुक के पहुंचने के साथ ही वह पुंगल जाने के लिए उद्यत हो जाता है और अपनी भूल को इन शब्दों में स्वीकार करता है—

तोल नईं छो पंछी म्हानै, नै तो बेगा आता।
म्हां तो जाणां राणी याई, या तो खड़ी बदाता।

ढोला अज्ञान अवस्था में तो एक पत्नी व्रती ही दिखाई देता है क्योंकि वह स्पष्ट कह देता है कि पर-स्त्री का क्या प्रेम है और उसमें क्या सार है—

पर नारी की कांई दोस्ती, ईमैं कांईं सार।

इसलिये अपनी पत्नी को प्राप्त करके एकान्ततः उसी में तन्मय हो जाता है और अपनी जीवनगाथा संक्षेप में इस प्रकार मरवण के सम्मुख प्रकट कर देता है—

ऊंके कागद मायनै सजी, [illegible] ओ बांको।

मरवण

नाटक की नायिका मरवण पुंगल गढ़ की राजकुमारी है और बालविवाहिता है। अब उसका यौवन नाग के समान 'उमंग' भरने लगता है, तब दासी से पूछ बैठती है कि मैं विवाहिता हूं या कुमारी हूं ?

परणी छूं क कंवारी दासी, मांसी खै समचार।

अबला मरवण में विरह को सहन करने की न क्षमता है, न धैर्य। अतः वह चारण से प्रार्थना करती है—

जोबन सतावै गमती रात मैं, म्हारा कंत मला रे।

यौवन की उद्दाम तरंगों में आंदोलित मरवण केवल कामुक स्त्री का ही परिचय नहीं देती, अपितु उसमें ढोला के प्रति सच्चा प्रेम भी है। उसके अभाव में उसे खाना पीना, सोना, यहां तक कि अपना अस्तित्व तक फीका लगता है—

काई भोजन खाऊं चारण, मनभावणी नै भावै।
सपना में म्हूं तड़पूं चारण, जान घणी दुख पावै।
पिया बना फीको लागू रे, म्हारी जान घणी दुख पावै।
कुंवर साव मैं बेगो लाजे, मोड़ूं बीर सम्भावै।

इस तीव्र विरह में मरवण का विवेक खोता नहीं है। इसी से तो मिलन की जो उत्कट लालसा उसके हृदय में परिव्याप्त थी उसे भी वह दबा कर एक बार दासी से ढोला की परीक्षा लिवा लेती है, जिसमें सफल होने पर ही उसे वह स्वीकारती है। वह चतुर भी है, जिसका परिचय उसने चारण तथा शुक से संदेश भेजकर दिया है।

रेवा

इस नाटक में रेवा एक अद्भुत सुन्दर नर्तकी के रूप में चित्रित हुई है। 'चार नदीती गुजर' वाली बाहर से जितनी सुन्दर है, अंदर से उतनी ही काली है। इसीलिये सुन्दर से राजकुमार ढोला को देखकर उसपे रीझ कर आती है—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

वह अपनी चतुराई से ढोला को फुसला लेती है। उड़ती चिड़िया पहचानने वाली वह रेवा शुक को देखकर सब-कुछ ताड़ लेती है और अपना सब कुछ बिगड़ता देखकर शुक को फटकारती है। उसकी फटकार चालाकी से भरी हुई है—

> अरे-तरे मत बोलै पंछी, म्हूं ढोला की राणी।
> झूठो संदेसो लायो सुवटो, म्हनै म्हलां में जाणी।
> कुण सोकड़ नै बला संदाया, थारी बात पछाणी।
> थारी बात पछाणी पंछी, बोलै कड़वी वाणी।

ढोला को जाता हुआ देखकर उसका जो अंतिम प्रयत्न होता है, जिसमें उसकी चालाकी व चतुराई भरी हुई हुई है—

> चालो म्हारा म्हैलां मांई, मद को प्यालो पीवो।
> पंछी यो तो छल करे स थानै, सही न मरवण पावो।
> ईं पंछी की बात में रे कबरां, जान तुमारी जासी।
> पराण जायगो थांके ऊपर, थाकू सार मरजाऊं।

इस प्रकार रेवा एक सच्ची प्रेमिका रूप में नहीं, एक विषम वासनाओं में भीगी चतुर, चालाक रमणी के रूप में चित्रित है।

अन्य पात्रों में दोस्त बीर, साहसी तथा विवेकशील व्यक्ति है। चारण चतुर संदेश-वाहक और सूझ-बूझ वाला व्यक्ति है। शुक एक पक्षी है फिर भी उसमें निर्भीकता, चतुरता और साहस है। वह कर्तव्य का कुशलतापूर्वक निर्वाह करता है।

रस

'ढोला-मरवण' शृंगार रस का नाटक है, जिसमें नायक-नायिकाओं का एक विशेष है। नायक ढोला है और नायिका मरवण है, जो शृंगार रस के लिए परस्पर आलम्बन और उद्दीपन है। रेवा के प्रति ढोला की रति रस-दशा तक नहीं पहुंच पाती, है। क्योंकि उसमें आलम्बनत्व का औचित्य नहीं है, उसके हावभाव व चेष्टाएं रसाभास के समान हैं।

शृंगार रस के दोनों पक्ष—संयोग और वियोग 'ढोला मरवण' में मिलते हैं। ढोला मरवण का बाल्यावस्था में विवाह होने के उपरान्त प्रवास हेतु वियोग और मरवण को युवावस्था प्राप्त करने पर होता है। प्रिय से मिलने के लिए वह संदेश भेजती है।

उसके हृदय की तड़प है, पीड़ा है। वह कहती है कि जाते ही पहले मेरा यह कहना। अरे शुक, मेरे भाग्य की दयनीयता तो देख कि तुम तू ही तो कहना

था और तू भी हाथ में जारहा है। मेरे कंठ से ग्रास भी नहीं उतर पा रहा है। दिन-प्रति दिन मेरा यौवन भर रहा है। कठिनाई से एक मास और जी सकूंगी। माता-पिता ने मेरा विवाह क्यों किया। नरवर का निवास बुरा है—

> जातां फैली कागज दीजै, जद आवै बसवास।
> थू भी चाल्यो हाथ सूं र, म्हारै कंठां अटकै गास।
> दन-दन म्हारो जोबन चूवै, नैं जीऊं एक मास।
> माई-बाप नैं क्यूं परणाई, खोटो नरवर बास।

'थू भी चाल्यो हाथ सूं' तथा 'कंठा अटकै गास' में विरह की कितनी दीनता भरी करुण व्यंजना है।

विरह के दुख को दूर करने के लिए कभी 'महादेव का हरदा में' ध्यान लगाती है और पूजा का फल पाना चाहती है और कभी मिलन समीप जानकर कह उठती है—

> दासी जलदी होजा त्यार, भर लारी मोत्यां को थाळ
> म्हारा मन मैं बड़ी उमंग, खूब सोऊं राजा के संग।

कभी अपनी सहेलियों को तीज मनाते देखकर तड़प उठती है—

> म्हूं तीजां में खदीं न जाऊं, दासी खंजर खा मर जाऊं।

वियोग के कथनों में जितनी मार्मिकता है, उतनी संयोग में नहीं है। संयोग शृंगार में वासनात्मक चित्रों की प्रधानता है। संयोग के समय मरवण का सुख प्रिय ढोला को निज अंगों से लपेट लेने और इसी प्रकार की चेष्टाओं में सीमित हो गया है —

> कंवरां लपटो नै म्हारा अंग सूं, म्हारो स्याळू भीजै।

इन चित्रों में अश्लीलता है और इन्द्रियता है। वियोग-वर्णन की तुलना में संयोग-वर्णन बौना और पंगु सा लगता है। संयोग के समय पारस्परिक हृदय की उमगों का जो चित्रण किया जाना चाहिये उसकी ओर लोक नाटककारों का ध्यान गया ही नहीं; इसलिये उन्होने संयोग-शृंगार की इति-श्री अश्लील प्रसंगों या कथनों की सृष्टि में ही कर दी है।

रंज्या-हीर

'रंज्या हीर' हाड़ोती का सर्वश्रेष्ठ कलात्मक नाटक है जिसमें रंज्या (रांझा) तथा हीर की प्रेम-कथा कही गई है। इस नाटक में काव्य-सौंदर्य जितना निखरा है उतना अन्य नाटकों में नहीं निखर पाया है। साधारण लौकिक कथा के अतिरिक्त यह सूफियों की प्रतीक-पद्धति के ढंग पर लिखी गई रचना भी प्रतीत होती है। इसमें प्रेम भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। हीर-साहित्य ने पंजाबी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है। वहां के लोक-जीवन और साहित्य में रंज्या और हीर की प्रेम कथाओं और गीतों की प्रचुरता है। वहां से ही हाड़ोती लोक-साहित्य में यह प्रेम-कथा आई है।

कथानक

रंज्या, जो नाटक का नायक है, एक बार हीर के अलौकिक सौंदर्य को स्वप्न में देख लेता है और उसने इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि अपने मंत्री बीरबल से स्वप्न की बात कहता है और हीर से मिलने के लिए आतुर हो उठता है—

> कद मलैगी हीर दीवाणी, नत उठ रऊं उदास।
> बीजळी सी वा चमकती स, म्हारी नत-नत टूटै सांस।
> चनो बीरबल, हीर मला दो, जद आवै बसवास।
> देख स्वाब मैं सुतो ज्यो होग्या, म्हारै लगी हीर की आस।

बीरबल रंज्या को स्वप्न की बात पर विश्वास न करने तथा प्रेम मार्ग की दुरूहताओं को समझाकर उससे दूर रहने का आग्रह करता है, पर रंज्या इससे अप्रभावित रहता है। जब यह समाचार मां के पास पहुंचता है तो वह अपने पुत्र को राज्य-सुख भोगते हुए अपने पास रहने के लिए समझाती है, पर वह भी असफल होती है। रंज्या की भाभी भी रंज्या को समझाने का असफल प्रयत्न करती है। उसका क्रोध तो बीरबल पर भी होता है, क्योंकि रंज्या की मां तथा उसका ऐसा विश्वास है कि रंज्या को यह मार्ग बतलाने वाला बीरबल ही है—

> रंज्या खरी न जावै प्रेमा, हुकम करो दिल खोल।
> हराम जादा उजीर मैं या, मना रखी है पोल।
> जादू करकै मगन खड़ो छै, तुझे पड़ा नईं सोल।
> पटरया फंद लाल पै ऊनै, पास जादू की मोळ।

अंत में, रंज्या बीरबल को लेकर हीर से मिलने के लिए चल पड़ता है। मार्ग में विशाल समुद्र आता है, जिसमें बिना पोत की प्रतीक्षा किये दोनों अपने घोड़े डाल

देते हैं और उस स्थान पर पहुंच जाते हैं, जहां हीर का बंगला किसी सुरम्य उद्यान के मध्य में बना हुआ है। जग सोवाला की निवासिनी हीर का निश्चित आवास कहां है और वहां कैसे पहुंचा जा सकता है, इनकी सूचना बीरबल से प्राप्त कर रंज्या हीर से मिलने के लिए चल पड़ता है। वह मालिन को रिश्वत देकर उद्यान में प्रवेश कर लेता है। जब मालिन दरोगा से फटकारी जाती है तो वह कुपित होकर रंज्या की शिकायत राजा फतमल से जाकर कर आती है—

> रंज्या तो हीर मिलण कूं आया, छोड़ र तगत हज्यारी।
> *कली-कली पुसबन की तोड़ी, बाग बगाड़यो सारो।*
> लडो लड़ाई करो तयारी, लीज्यो बैर हमारो।

इस पर फतमल विशाल सेना लेकर चढ़ आता है। रंज्या और फतमल के द्वन्द्व में रंज्या घायल होता है। घायल अवस्था में संज्ञा प्राप्त करने उपरात वह लौंडी से प्रार्थना करता है कि तू मुझे हीर से मिला दे—

> हीरो हीरो पुकारूं लौंडी, खुप रई कलेजा मांई।
> खुदा तुमारा भला करेगा, मला हीर के ताई।

जब किसी प्रकार उधर हीर को रंज्या के सच्चे प्रेम का पता लगता है तो वह भी रज्या से मिलने के लिए तड़पने लगती है। रंज्या हीर के पास पहुंचता है तो वह उस पर अत्यधिक क्रोधित होती है और वहां उसे भाग जाने के लिए कहती है—

> दे मारूं तलवार बोलिया, किस बद आगो जावै।
> × × ×
> नकलो बागा बारै मुसाफिर, किस बद मूंड पचावै।

रंज्या की 'पाक मोहब्बत' का प्रस्ताव तथा दीनता-प्रदर्शन हीर को रज्या की ओर आकर्षित कर लेते हैं। *अब वह तन्मय होने के लिए अधीर हो उठती है*—

> बालम नरमोई कर लो दोसती, म्हानै मत तरसावो।

तत्पश्चात् दोनों का मिलन होता है। दोनों चौपड़ खेलने में और आनन्द-क्रीड़ा में लीन होते हैं। यहीं नाटक समाप्त हो जाता है।

वस्तुतत्त्व

'रंज्या-हीर' का कथानक अति सरल और अविकसित है। नाटककार का ध्यान नायक नायिका की भावाभिव्यक्ति की ओर ही रहा है। रंज्या के प्रस्थान करने के उपरांत उसका समुद्र में घोड़ा डालना और युद्ध में मूर्छित होकर गिरना-दो ऐसी घटनाएं

है, जिससे नाटक में कथात्मक पारंपर्य उत्पन्न हो जाता है। यहाँ दर्शक की उत्सुकता शीघ्र हो जाती है और परिणाम जानने की लालसा भी। इस नाटक में कार्यावस्थाओं का उभार स्पष्ट दिखाई नहीं देता। फिर भी स्वप्न-दर्शन से प्रेम के उदय में नाटक की 'प्रारंभ' कार्यावस्था को देखा जा सकता है। 'यत्न' अवस्था भाभा-भाभी से विदा लेकर समुद्र पार जाना तथा उद्यान में प्रवेश तक देखी जा सकती है। इसके पश्चात् 'प्राप्त्याशा' का स्वरूप बनने ही लगता है कि फरमान से युद्ध और मूर्छित होने के प्रसंगों के उपरांत, जो 'फल-प्राप्ति' से दूर ले जाते हैं, हीर में विरह-वेदना की जागृति 'नियताप्ति' अवस्था की सूचक है और अंत में दोनों के मिलने में 'फलागम' को देखा जा सकता है। 'प्राप्त्याशा' का स्वरूप अत्यन्त धुंधला और क्षीण है।

प्रतीकात्मकता

'रंज्या हीर' की कथा सांकेतिक कथा भी है। नाटककार ने इन संकेतों को जायसी के समान स्पष्ट नहीं किया है, पर नाटक की कथा का निर्वाह तथा पात्रों की चित्रण-शैली से समस्त घटनाओं तथा पात्रों को एक अन्य रूप में समझने की प्रेरणा भी मिलती है। नाटककार जिस प्रेम की प्रतिष्ठा इस नाटक में करना चाहता है वह 'पाक मुहब्बत' है, जिसमें किसी वासना की गंध नहीं है। वह सूफियों का 'इश्क-हकीकी' है, 'इश्क मजाजी' नहीं। इस प्रेम की उत्पत्ति स्वप्न-दर्शन से हुई है। प्रेम के उदय होने के उपरांत नायक-नायिका को प्राप्त करने के लिए राज्य-सिंहासन का त्याग करके अंगों में 'भभूत' लगाता है और फकीरी वेश धारण करता है—

तखत हजारा छाडी तुझ पर, अंग भभूत लगाया।
कई तरे समझाया ओलिया, लिया फकीरी जामा।

यह कथन प्रेम-मार्ग की साधना में सांसारिक आकर्षण से मुक्त होने की ओर संकेत करता है। जिस मार्ग में वह चलता है, उसमें ओरबल के अतिरिक्त अन्य कोई साथ नहीं होता, वही उसे 'हीर' के निवास का मार्ग दिखलाता है। उसी ने रंज्या को लौकिक रंग-रसों से पृथक् किया है। उसी ने सारा फंदा डाला है और वह स्वयं रंग-भीना है तथा जादू करके दूर खड़ा है—

पटक्या फंद उजीर ने, रंज्या को बस कीना।
भूल्या घर की बाट, लाल ने रंग-रस सब तज दीना।
उजीर डाल्या फंद लाल पै, समझो जी रंग भीना।
जादू करके अलग खड़ा छै, तुझे पड़े नईं हीना।

यह बीरबल जायसी का गुपा है–गुरु है, जो साधक या जीवात्मा को मार्ग-प्रदर्शन करता है। रंज्या में जीवात्मा या साधक का प्रतीकत्व मिलता है और हीर परमात्मा की प्रतीक है। रंज्या हीर के स्वप्न-दर्शन के उपरांत उससे मिलने को उत्कंठित हो जाता है। तब माता और भाभी तथा राज्य-सुख उसे फुसलाने वाले 'गोरख-धंधे' के रूप मे चित्रित किये गये हैं। जो स्थिति 'पद्मावत' मे नागमती की है वही यहा उपर्युक्त वस्तुओं की है, समुद्र प्रेम का प्रतीक बनकर आया है, जिसमे तैर कर रंज्या हीर के समीप पहुंच जाता है। उपवन के अनेकानेक आकर्षण, मालिन का रोकना आदि साधना-मार्ग मे पड़ने वाली विघ्न-बाधाएं हैं। इन विघ्न-बाधाओं या परीक्षाओं में जो साधक सफल होता है, वह ही 'वस्ल' को प्राप्त कर सकता है। हीर के सम्मुख पहुंचने पर भी रंज्या के प्रति अकरुण व्यवहार लौकिक काव्य की दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखता, पर प्रतीक पद्धति मे परमात्मा-द्वारा साधक को अंतिम परीक्षा लेने की ओर संकेत करता है। वहां उसके सच्चे प्रेम की परीक्षा होती है। इसीलिये मिलनोपरांत भी हीर कहती है कि रे रंज्या, दूर हट, अन्यथा तलवार से प्रहार कर दूंगी। तू कैसे आगे बढ़ रहा है। तू ऐसा अनुनय-विनय किसमे करता है और किससे प्रेम करता है। यहां बड़े-बड़े सम्राट भी प्रवेश नहीं कर पाते हैं। यात्री, तू यहां से निकल भाग। व्यर्थ में क्यों खोपड़ी चाटता है—

> रंज्या फरो सरक जा यार, मूंत कै दे मारूं तरवार।
> दे मारूं तरवार बोलिया, कस बद आगो आवै।
> ऐसी बंदगी करता कुण से, कुण से नेह लगावै।
> बड़ा-बड़ा गुलजार बादसा, जरा पास नई आवै।
> नकळो बागां बारै मुसाफिर, बस बद मूंड पचावै।

सारांश यह है कि नाटककार ने रंज्या-हीर की कथा में एक रूपक का निर्वाह भी किया है, जो साद्यन्त मिलता है। इस रूपक के निर्वाह में नाटककार ने सूफियों की प्रतीक-पद्धति को अपनाया है। यद्यपि नाटक के अंत या मध्य में इन प्रतीकों को स्पष्ट करने के संकेत नहीं दिये गये हैं, किन्तु प्रारंभ में रज्या अपने स्वगत-कथन में अपनी मित्रता या प्रेम का आदर्श 'लैला मजनूं' का प्रकट करता है।

> लैला मजनूं करी दोसती, भाव खुदा का रक्या।

'लैला-मजनूं' फारसी मसनवी-शैली में लिखी गयी एक प्रसिद्ध कथा है, जो हमारे नाटककार को भी प्रेरणा दे रही है। इन कथा-रूपकों का वास्तविक उद्देश्य 'इश्क मजाजी' के द्वारा 'इश्क हकीकी' का प्रतिपादन करना रहा है। इनमें प्रेम-भावना की उत्पत्ति स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण या साक्षात् दर्शन से होती

है। नायक नायिका के सौंदर्य पर विमोहित होकर मिलन के लिए आतुर हो जाता है और फिर लक्ष्य-प्राप्ति के हेतु सर्वस्व त्याग कठिनतम बाधाओं को सहर्ष सहने को सन्नद्ध हो जाता है। विघ्न-बाधाओं को झेलता हुआ अग्रसर होता है और सफलता प्राप्त कर पुनः अनेक अड़चनों को पार कर वह स्वदेश प्रत्यावर्तन करता है।[1] पंजाबी में सूफी कवि वारिसशाह का 'हीर-रांझा' काव्य ऐसी ही लोकगाथा है, जिसका लिखित रूप भी है और लोकगाथा रूप में भी प्रचलित है।[2]

आधार

"हीर की कथा सबसे पहले दामोदर ने अकबर के शासन में लिखी थी। दामोदर हीर के जन्म स्थान झंग (पश्चिमी पाकिस्तान) के रहने वाले थे। उनका लिखना है कि हीर का वृत्तान्त उनका आखो देखा हाल है। हीर-रांझा की घटना अकबर के राज्यकाल से करीब ४४ वर्ष पूर्व की थी। तब भारत में बाबर आ चुका था। घोड़ों की टापों से देश की धरती उखड़ रही थी।[3]

इसके पश्चात् वारिसशाह ने हीर की प्रेम-कथा को अपनी प्रेम की पीर में रंग कर अमर बना दिया। वारिसशाह स्वयं प्रेम की पीर से पीड़ित थे। धीरे-धीरे रांझा और हीर की लौकिक कथा में पाया जाने वाला अलौकिक प्रेम भाव गुरुनानक को प्रभावित कर गया और उन्होंने कहा :

> रांझा हीर बखानिये।
> ओह पिरम पिराती।

तथा गुरु गोविंदसिंह ने हीर के प्रेम की सांकेतात्मक रूप में सराहना की है—

> यारड़े दा सानूं सथ्थर चंगा।
> भट्ठ खेड़ियां दा रहणां।

और सूफी कवि बुल्लेशाह का भी ध्यान इस प्रेम-कथा पर गया। उन्होंने दोनों

---

१. डॉ० सरला शुक्ला, जायसी के परवर्ती हिंदी सूफी कवि और काव्य, पृष्ठ २८५।

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि, हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८४२।

३. सत्यार्थी, बेला फूले आधी रात, पृष्ठ १७१।

के प्रेम का इस प्रकार वर्णन किया—

रांझा रांझा करदी नी ।
मैं आपे रांझा होई ।
सद्दो नी मैनू धीदो रांझा ।
मैनू हीर न आखे कोई ।

कुछ काल बाद हीर रांझा की कथा मे दो-एक स्थल अश्लील भी आकर मिल गये।[1]

हाड़ौती नाटक की कहानी और पंजाबी लोक-साहित्य मे मिलने वाली कहानी[2] में अत्यधिक अन्तर है। हाड़ौती कहानी सीधे-सीधे लक्ष्य तक पहुँच कर समाप्त हो जाती है। यह सुखात है। पंजाबी कहानी में काफी उतार-चढ़ाव व घुमाव-फिराव है और वह दुःखान्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि हाड़ौती के नाटककार के पास यह पंजाबी लोककथा सीधे न पहुँचकर किसी ऐसे माध्यम से पहुँची, जिसमे इतना घुमाव-फिराव न हो।

इस विवेचन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं–प्रथम 'रंज्या हीर' नाटक के नायक और नायिका ऐतिहासिक हैं और ये दोनों मुस्लिम परिवारो मे पैदा हुए थे।[3] पर बीरबल की सृष्टि कल्पना द्वारा हुई है। फतमल को भी ऐतिहासिक पात्र स्वीकार कर लेने के लिए कोई आधार नही मिलता है।

द्वितीय, समुद्र में घोड़ा डालना, उद्यान आदि के वर्णन सूफी काव्यों के प्रभाव से हुए हैं। सूफी काव्य मे समुद्र प्रेम का प्रतीक है। उसे साधक तैरता है या उसमे डूबता है, तब अपने प्रिय से उसकी भेंट होती है। यह हाड़ौती नाटक मे भी मिलता है।

चरित्र-चित्रण

यह नाटक प्रतीक-पद्धति पर लिखा होने के फलस्वरूप चरित्र-चित्रण में नाटककार ने लौकिक और अलौकिक दोनों पक्षों का समाहार किया है। अतः पात्रों को रेखाएं कहीं कहीं दुहरी हैं। नाटककार का झुकाव आदर्श की ओर है।

रंज्या

नाटक का नायक रंज्या–नाटक मे एक प्रेमी के रूप मे चित्रित किया गया है। रंज्या ने प्रेम का उदय स्वप्न-दर्शन से होता है और वह दीवाना हो जाता है—

१. विशेष जानकारी के लिये देखिये, वे लाफूने आधी रात, पृष्ठ १७६।
२. वही, पृष्ठ १७४
३. वही, पृष्ठ १७४।

मर दीवाना हो रीया रै, न्हूं पड़ूं समंदर मांई।
एक दीना सरना के मांई, हीर दीवानी मांई।

वह उसके सौंदर्य पर मासक्त है। यह ग्रासक्ति ही प्रेम में परिणत हो जाती है। उसका प्रेम सच्चा प्रेम है। उसमें किसी प्रकार का जादू-टोना नहीं है तथा खुदा का हुक्म भी इस प्रेम के पक्ष में है—

मे हीरो से करां दोसती, हुक्म खुदा का पाई।
पाक दोसती करी हीर सूं, क्या दुष दीक्या तोई।
जादू करके परीत लगावै, वो मूरख नर होई।

इस सच्चे प्रेम का प्रादर्श लैला-मजनूं का प्रादर्श है। उसकी लगन इतनी सच्ची है कि माता, भावज और बीरबल सबके विरोध की वह उपेक्षा कर देता है—

उस भावज का लिया न माना, प्राग लगो सब थांके।

प्रेम की सच्ची लगन होने के वह मार्ग के कष्टों की चिंता नहीं करता है। इसलिये समुद्र को तैर जाता है। फतमल की ललकार उसे पथ-विचलित नहीं करती, प्रपितु उसके उत्तर में उसकी निर्भीकता व साहस झलकता है—

सारी फोजां मारूं थारी, जंग जीत नई' जावै।
झटका सूं बटका करूं थू, तड़त-तड़प मर जावै।

बीरबल ने जिस प्रेम का उदय उसमें किया है उसी प्रेम का विरोध करते देखकर वह उसको भी भला-बुरा कहता है। अंत मे, जिस हीर को प्राप्त करने के लिये वह प्रयत्नशील है उसके समीप पहुंच कर ही उसे तृप्ति नहीं मिलती, प्रपितु उसमें तन्मय हो जाना चाहता है।

हीर

नाटक की नायिका हीर रंज्या की प्रेमिका है और अपूर्व सुन्दरी है। बारह वर्षीया हीर के नेत्र बाण के सम्मान हैं। भौंहें कमान (धनुष) के समान हैं, जिससे उसने रंज्या को शीतल तीर मारा है। वह दखनी चीर ओढ़ती है। वह बिजली सी चमकती है, जिससे रंज्या का निरन्तर श्वास सूखता जा रहा है। उसके कंठ में पान का पीक तक दिखाई देता है और कोकिल कंठी है। वह चन्द्रवदनी है तथा नेत्रों में सुरमा लगा रखा है। उसकी लम्बी चोटी है जैसे भुजंग हो। उसके सारे शरीर पर कुंकुमी आभा है,

उसका सिर नारियल के समान है और अंगुलियां मूंगफली के समान है तथा छाती दीपक के समान जगमगाती है।

नैण बाण भौंरा कुबाण, म्हारे सीतल देगी हीर।
बारा बरस की बोलता, वो ओडयां दखणी चीर।

×   ×   ×

बीजळी सी वा चमकती, म्हारो नत-नत मूसे सांस।

×   ×   ×

हीर देल की गरव पान को पीक कंठ मे झलके।
कंठ कोकला कोयल बोले, मोर मेह जनमन के।

×   ×   ×

चंद बदन गुलजार नैण में सुरमा सीना मांह।

×   ×   ×

लम्बी चोटी लटक रही थारे, जैसे नाग भुजंग।
देखे नाग भुजंग बदन पर लूब कसूमल रंग।

×   ×   ×

सीस बणया नारेळ हीर का पेड़ मलाई मेल।
मूंगफली सी आंगळ्यां, सीना पै दीपक का मेल।

जिस प्रेम का उदय रंज्या के हृदय में होता है वही प्रेम हीर के हृदय में पहुंच कर रंज्या के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न कर देता है। हीर के प्रेम का आधार रूपासक्ति नहीं है, अपितु वह आकर्षण है जो दो प्रेमियों के हृदयों में मिलता है। उस प्रेम की चरमावस्था को पहुंच कर वह पूर्ण आत्मसमर्पण करने को विह्वल हो उठती है, यद्यपि प्रारंभ में उसमें स्त्री-सुलभ लज्जा और तज्जन्य रंज्या के प्रति कठोरता के दर्शन होते है। उसका समर्पण शारीरिक और मानसिक दोनों है—

जद होवैली रात स्याम मेरी, तुझ पर चानण होई।
या मूरत लटकी रच मांई, ज्यूं तरवार सजोई।
जद रहो थारा के भीतर, नजर न आवा कोई।
बैठी बाळो करी धारने, आंसू भर-भर रोई।

मिलने की सर्वथा संभावना है। हीर को बर्र का छत्ता बताने में हास-विलास के समय छोड़ा गया एक तीक्ष्णतम व्यंग-बाण का बोध होता है। उत्प्रेक्षा के उदाहरण भी अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं।

कभी-कभी एक पूरे व्यापार के समानान्तर दूसरा व्यापार चुनकर भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है—

मरगा तरसै नीर बना ज्यूं तरसावै प्यारी।

किन्हीं स्थानों पर यह प्रवृत्ति यहां तक बढ़ जाती है कि उत्तर-प्रत्युत्तर का क्रम अन्योक्ति-पद्धति पर चलने लगता है—

रंज्या— संगणी नै ईसक करयो मरगा सै दोसती कीनी।
घर की तरया तुज दीनी, सुण भावज रंग भीनी।
मरगो तो छल सै भर पो, वा पकड़ फंद लीनी।
नई तड़पती ज्यान भापणी, मरगा तुज दीनी।

भावज— खिया हमारा मानना रै, वा करता मन का छाया।
दादर प्रीत करी ठलड़ी सै, फिर मन पछताया।
सींग पलट सींगणी सूं मरगां नै गैण भड़ाया।
बालक दे मर गया रंगीला सीस कटा घर आया।

वास्तव में, 'रंज्या हीर' नाटक में कथन-शैली के ऐसे-ऐसे चमत्कारों को देखकर आश्चर्य होता है।

अनेक स्थलों पर शब्द-स्थापन इतना सुन्दर है कि अनुरणनात्मकता द्वारा भी अर्थ का बोध होता है और पदावली भावानुरूपता ग्रहण कर गई है—

झटका सूं बटका करूंस, यू तड़प-तड़प मर जावै।

'झटका सूं बटका करूं' में काटने की ध्वनि सुनाई देती है और 'तड़प-तड़प मर जावै', में तड़पने का भाव मूर्तिमान हो जाता है।

—:०:०:०:—

फूलांदे

'फूलांदे' शृंगार रस प्रधान नाटक है । हाड़ौती नाटकों में इस नाटक का घटना-विन्यास सबसे सरल और ऋजु है। कला-दृष्टि से भी यह नाटक अन्य नाटकों की अपेक्षा कम उत्कृष्ट है। औपचारिकताओं और प्रथाओं के निर्वाह से सम्बन्धित अनेक कथोपकथन इस नाटक में मिलते हैं जिनसे न कथा आगे बढ़ती है और न चरित्र पर किसी प्रकार का प्रकाश पड़ता है ।

कथानक

नेपाल कोट का राजा केसरीसीग (केसरीसिंह) स्वप्न में चकरगढ़ की राजकुमारी फूलांदे के दर्शन करता है और उसके रूप-गुण पर आसक्त हो जाता है । फूलांदे उसकी भाभी की भगिनी है। अतः भाभी से प्रशंसित फूलांदे से विवाह करने के लिये वह उद्यत हो जाता है—

> मर समना में दरसन दिये छो, फूलांदे न लाऊं।
> ऊंचा म्हल अलग दरवाजा, बांई जार मलाऊं ।
> बड़ा-बड़ा राजा धरया कदम पै, म्हूं तो परण घर लाऊं।
> ऊं राणी के धणूं जापतो, थांसूं आण मलाऊं ।

और भाभी के मना करने पर भी वह चकरगढ़ के लिए प्रस्थान कर देता है। वह अकेला मार्ग में जा रहा था कि उसे एक सुन्दर ठगिनी मिलती है, जिससे पहले तो वह सावधान हो जाता है, पर जब ठगिनी सौंगध खाती है तो एक रात वहां निवास करने के लिए उद्यत हो जाता है—

> घणा दनां ठैरू नईं र थू, सुण फणग्यारी बात ।
> फूलांदे न परणस्यां र मे, दनां च्यार के जान।
> मजमानी जोमां हाथ की र, मैं चाला थारी साथ।
> म्हलां मांई चाला सुन्दर मत न खोबो रात।

महल में प्रवेश करने के साथ ही ठगिनी एक छुरी से राजा की हत्या करने के लिए उद्यत हो जाती है। राजा को एक युक्ति सहसा सूझ पड़ती है । वह ठगिनी से कहता है—

> माई बाप साबा का साथी, नईं पापका माई।
> साहब की दरगा के मांईं, जबाब देगो काईं ।

और इसी बात की पुष्टि जब विशा द्वारा की जाती है तो वह राजा को छोड़ देती है। पहले तो वह दासी रूप में साथ चलने के लिए उद्यत हो जाती है, पर राजा के समझाने पर वह उसे अकेला जाने देती है। चकरगढ़ पहुंच कर केसरीसिंह वहां के गुरम्य उद्यान में मालिन को दिखता देकर घुस जाता है। उधर रानी को स्वप्न में दिखाई देता है कि राजा केसरीसींग उससे विवाह करने के लिए आया हुआ है तो वह भी मिलन के लिए आतुर हो उठती है। इसी समय मालिन आकर यह समाचार देती है कि केसरीसींग उद्यान में विश्राम कर रहे हैं। रानी फूलांदे उनके पास पहुंचती है और दोनों एक दूसरे के निकट आते हैं। दोनों का विधिवत् विवाह होता है और वे चौपड़ खेलते हैं। यहीं नाटक की समाप्ति हो जाती है।

वस्तुतत्त्व

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है इस नाटक का कथानक अविकसित और सरल है, पर समस्त घटनाओं में कार्य-कारण-शृङ्खला है और किसी अनावश्यक घटना का नाटक में समावेश नहीं मिलता है। कथावस्तु में कौतूहल उत्पन्न करने वाले बहुत ही कम स्थल हैं। ठगिनी के प्रसंग में कथावस्तु में हलका सा आकर्षण उत्पन्न हो गया है।

इसीलिये नाटक की वस्तु में नाटकीय कार्यावस्थाओं का सम्यक् निर्वाह नहीं मिलता। 'प्रारम्भ' कार्यावस्था को नायक के स्वप्न और भाभी द्वारा प्रशंसा सुनने के प्रसंगों में देखा जा सकता है और चकरगढ़ की ओर प्रस्थान से उद्यान में पहुंचने तक 'यत्न' का स्वरूप बनता है। 'प्राप्त्याशा', 'नियाप्ति' और 'फलागम' पृथक्-पृथक् नहीं दिखाई देते। फूलांदे की राजा से मिलने की लालसा में 'प्राप्त्याशा' बनने लगती है। 'प्राप्त्याशा' के ठीक पश्चात् 'फलागम' हो जाता है, 'नियाप्ति' जैसी किसी अवस्था के दर्शन 'फूलांदे' में नहीं होते हैं।

चरित्र-चित्रण

इस नाटक में केवल दो पात्र प्रमुख हैं। केसरीसींग और फूलांदे। शेष पात्र-भाभी, ठगिनी, मालिन आदि हैं। प्रथम प्रकार के पात्रों ने पात्रों के जीवन के भी केवल एक पहलू के दर्शन होते हैं और द्वितीय प्रकार के चलचित्रवत् झलक दिखाई है।

केसरीसींग

नाटक का नायक केसरीसींग नेपाल कोट का राजा है और हणोवतसींग राठौड़

का पुत्र है। आकृति और प्रकृति से वह शूरवीर है—

कमर कटारो मांकड़ो र, बांकी पीठ गैंडा की ढाल।
तुर्रों तो झक झक करै र, बांका नैणा लाल गुलाल।
उडणाख घोड़ा पै आया, नरखो कानैं चाल।

'सन्मुख नाहर को मारने वाला' केसरीसींग एक सम्पन्न तथा यशस्वी शासक है—

पांच करोड़ का राज हमारे, संपत का र उजाला।
फोजां म्हांरैं रंग-रंगीली, हुकम उठाऊं लाला।

वह एक सच्चा प्रेमी भी है। फूलांदे के दर्शन उसने स्वप्न में किये और उसके सौंदर्य पर इतना आसक्त हो गया कि भाभी का समझाना निष्फल हो गया। उसके हृदय में उत्पन्न प्रेम ने उसे हठी सा बना दिया है। तब वह तनिक विवेक भी खोये हुए है। इसी से भाभी के समझाने पर भी वह ठगिनी के चंगुल में फंस जाता है, पर विपत्ति के समय उसकी बुद्धि घन-विद्युत के समान चमकती है। ठगिनी के समक्ष निम्नलिखित पहेली रखकर वह न केवल स्व मुक्ति प्राप्त करता है, अपितु ठगिनी की जीवन दिशा भी परिवर्तित कर देता है—

एतो पाप करै छै ठगणी, एक जीव कै ताई।
धरमराई जी लेखो मांगै, जबाब देगी कांई।
माई-बाप खाबा का सायो, नईं पाप का माई।
साहब की दरगा के मांई, जबाब करैगो कांई।

उसके प्रेम में अल्हड़ता है। फूलांदे के सौंदर्य पर आसक्त राजा उसे सामने पाकर भी 'दूध का जला छाछ को फूंक-फूंक कर पीता है'—वाली उक्ति को चरितार्थ करता है और उसे जब विश्वास हो जाता है कि यह ठगिनी के समान धोखा नहीं है, वास्तव में यह फूलांदे ही है तो वह शारीरिक निकटता के लिए अधीर हो उठता है। मद पीकर वह रंगीली दुनियां में प्रवेश कर जाता है—

मे र नसा मैं हो रया र, थां सुण लो सुन्दर नार।
चंद बदन गुलजार नैण का, कोल किया सरणार।
केसर बरणो रंग तुमारो, बाजै नैण कटार।
फैली रंग मंगावो सुन्दर, करूं र सगावो बार।

फूलांदे

नाटक की नायिका फूलांदे राजा सोन की पुत्री और चकरगढ़ की राजकुमारी है। वह केसरीसींग की भाभी की भगिनी है और अत्यन्त सुन्दरी है। केसर जैसा रूप

खेंवरो

'खेंवरो' 'एक शृंगार-रस-प्रधान रचना है, जिसकी कथा काल्पनिक प्रतीत होती होती है। कुछ स्थानों और व्यक्तियों के नामों का उल्लेख नाटक में मिलता है, पर वे किसी ऐतिहासिकता की ओर संकेत करने में असमर्थ हैं। ये नाम नाटक के प्राप्ति-स्थान बूंदी के समीप के स्थानों से सम्बन्धित है। एक स्थान पर मांडूगढ़ का उल्लेख मिलता है, पर घटनाक्रम में अलौकिक तत्व की स्वीकृति कथानक को ऐतिहासिक के स्थान पर काल्पनिक प्रमाणित करती है।

कथानक

खेंवरा अपने मित्र के साथ शिकार खेलने जाता है और सिंह का शिकार भाले के प्रहार से करता है। लौटने पर अपनी भाभी के द्वारा उसकी बहिन आवलदे की रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर वह यह निश्चय करता है कि वह उसी से विवाह करेगा—

अब भोजाई लाडली, सुणो हमारी बात।
वैरण आपकी परणस्यां, सोलो दीन की बात।

इसीलिये वह उसके दर्शन की अभिलाषा करता है। उधर आवलदे उद्यान की सैर के लिए निकलती है। वहां वह सुनती है कि उद्यान की एक मालिन प्रसव-पीड़ा से क्रन्दन कर रही है। उसके रहस्य को समझ कर वह निश्चय कर लेती है कि वह विवाह नहीं करेगी—

दामी मांका कांई देसूं, म्हूं तो सोगन खाऊं।
परणूं नांई बींद मैं सरी, म्हूं जातरा जाऊं।
दामी तू हठ मत करै सरी, अन्न-जल कदी न खाऊं।
देर दणो थू म्हाने लाई, म्हूं दिन में पचताऊं।

और पिता के मना करने पर भी जगदीश की यात्रा के लिए निकल पड़ती है। मार्ग में वह खेंवरा के ग्राम के समीप उद्यान में डेरा डालती है। जब उसकी भाभी उससे मिलने जाने लगती है, तब खेंवरा भी अपनी भाभी की अनुमति से स्त्री वेश बनाकर आवलदे के रूप दर्शन कर आता है। बाद में भी वह स्त्री-वेश बनाकर आवलदे के पहरा (हंडुरी) को रिश्वत देकर उसके पास पहुंच जाता है और धीरे धीरे दोनों में प्रेमांकित हो जाता है। अब खेंवरा विवाह करने का प्रस्ताव करता है जिसे

आबलदे स्वीकार तो कर लेती है, पर विवाह का सम्पादन यात्रा से लौटने पर होगा, *ऐसा भी कह देती है—*

> सोम लियो छै जगन्नाथ को, जीं सूं करती नांईं ।
> आपण दोन्यूं चोपड़ खेलां, चलो म्हल के मांईं ।

उधर आबलदे के भाई बाला को स्वप्न में दिखाई पड़ता है कि खेंवरा ने मेरी बहिन के साथ अनधिकार चेष्टा की है—

> सूतो छो भर नींद में भाई नींद अपार ।
> देख्यो राणू खेंवरो आबलदे दरबार ।

तो वह आग-बबूला हो जाता है और पिता की आज्ञा पाकर ससैन्य खेंवरा से युद्ध करने चल पड़ता है । फूल सागर पर दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध होता है जिसमें खेंवरा बुरी तरह घायल होकर मरणासन्न होता है । रानी आबलदे के पास मित्र द्वारा जब खेंवरा की मरणासन्नता के समाचार पहुंचते हैं, तो वह शीघ्र पहुंचकर उससे अंतिम भेंट कर लेती है । अब वह सती होने के लिए उद्यत हो जाती है पर उसकी *दासी सहमति प्रकट नहीं करती और भगवान शिव से प्रार्थना करने को कहती है—*

> क्यूं रै लगाओ आग बाई जी, मानो बात हमारी ।
> सो शंकर को नेचो राखो, साय करैगा थारी ।
> *सारी दुनियां बुरा कवै छै, बात मान लो म्हारी ।*
> टेक बुरी छै आपकी सजी, म्हूं जी लै कै हारी ।

अकस्मात् शिव-पार्वती उधर से निकलते हैं और पार्वती के आग्रह से मृत खेंवरा शंकर द्वारा जीवित कर *दिया जाता है । जीवन-प्राप्ति के उपरांत दोनों का विवाह हो* जाता है—

> स्यो जी नै म्हां अमर करया, थारा जीवन कै तांईं ।
> *गरजोड़ा सूं फेरा खालां, रणखेतां कै मांईं ।*

यहीं नाटक समाप्त हो जाता है ।

वस्तु-तत्त्व

नाटककार ने प्रारंभिक शिकार के प्रसंग का उल्लेख खेंवरा की वीरता सूचित करने के लिए किया है । यह घटना मूल कथा से विशेष सम्बन्ध नहीं रखती है । वस्तुतः नाटक का प्रारंभ भाभी के द्वारा आबलदे के रूप-गुण-कथन से होता है । नाटककार

सँवरा में प्रेम का उदय दिखाकर आबलदे का परिचय देने लगता है और मालिन की प्रणय-वेदना के श्रवण से उत्पन्न उसकी विरति दिखाकर कथानक में एक आकर्षण का सृजन कर देता है। दर्शक सोचने लगता है कि दो विरोधियों—भोगी और योगी का का संयोग कैसे होगा। तत्पश्चात् आबलदे को सँवरा के पास लाकर रखने से दर्शक की उत्सुकता और तीव्र हो जाती है। स्त्री-वेशधारी सँवरा को आबलदे के दर्शन कराकर नाटककार कथा में रोचकता तो ला देता है पर उसे दृढ़ संकल्प आबलदे को प्राप्त करने में सफलता कैसे मिलेगी, यह विचार दर्शक की उत्सुकता को बढ़ा देता है। भादा को रिश्वत देकर धीरे-धीरे आबलदे में अनुरक्ति उत्पन्न कर लेने पर नाटक का अंत समीप दिखाई देने लगता है, पर विवाह अभी नहीं हुआ है।

बाला के युद्ध से इस प्रेम कथा में एक नया मोड़ उत्पन्न हो जाता है। युद्ध में सँवरा के धराशायी होने से नाटक प्रेम-कथा न रह कर शोक-कथा बन जाता है। रंग-रंग की परिणति आबलदे के सती होने के निश्चय से देखकर पाठक विशेष उत्सुकता से परिणाम तक पहुंचने का संकल्प कर लेता है। शंकर-पार्वती के अकस्मात् आगमन से भारतीय दर्शक में हर्ष की लहर दौड़ जाती है तथा इस हर्ष का निर्वाह दोनों के विवाह के संपादन तक दिखाया गया है। इस प्रकार नाटक की कथावस्तु अत्यन्त रोचक तथा कलात्मक है। भाभी के कथन से प्रेम के उदय में 'आरंभ' कार्यावस्था को देखा जा सकता है। तत्पश्चात् नायक का स्त्रीवेश बना कर जाना तथा दर्शन करना, भादा को रिश्वत देने आदि प्रसंगों से 'यत्न' का स्वरूप बनता है, जिससे आबलदे में प्रेम का उदय होता है और वह विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। यहां 'प्राप्त्याशा' है। बाला का आक्रमण और सँवरा के धराशायी होने से 'प्राप्त्याशा' मिटने लगती है, पर शंकर-पार्वती की कृपा से सँवरा के जीवित हो उठने पर 'नियताप्ति' अवस्था प्रकट होती है और विवाह संपन्न होने से 'फलागम' देखा जा सकता है।

चरित्र–चित्रण

सँवरा

'सँवरा' नाटक का नायक सँवरा एक सच्चा प्रेमी और वीर है। वह सिंह का शिकार भाला हाथ में लेकर करता है।[1] इसी वीरता का परिचय युद्ध-भूमि में भी देता है।[2] इसलिये सारी सेना नष्ट हो जाने पर भी वह लड़ता रहता है। सँवरा के प्रेम

---

१. करा लड़ाई संग सूं र, म्हा लेर हाथ में भालो।

२. कायर हो सो दूरा भागे, सूरा कदीं न भागें।

में वासना की गंध है व कामुकता है, जिनके फलस्वरूप अपनी भाभी की मर्यादा के प्रतिकूल उसके समक्ष निर्लज्ज प्रस्ताव रख देता है। उसका स्त्री-वेश बनाकर आना भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। संयोग के चित्रों में भी इसी के दर्शन होते हैं। यही वासनामय जीवन पुनर्जीवन प्राप्ति के उपरांत भी नाटककार ने दिखाया है। सॅंवरा के जीवन में मल्हड़ता, फक्कड़ता और मस्ती है। उसमे जीवन के किसी गंभीर दायित्व को वहन करने की क्षमता नहीं है। जो यत्किंचित् सूझ-बूझ उसमें दिखाई देती है वह प्रेमी जीवन के आसपास लिपटी है।

आबलदे

आबलदे का चरित्र भोगी और दार्शनिक रूप में चित्रित हुआ है। प्रारंभिक जीवन मे उसमे राजसी विलासिता मिलती है [1] पर साथ ही दार्शनिक भावुकता भी उसमे विद्यमान है। इसीलिये मालिन की प्रसव-वेदना को देखकर वह विवाह न करने का निश्चय कर लेती है। [2] यात्रा-गमन उसकी भक्ति-प्रवृत्ति का द्योतक है, जो कदाचित् उसके हृदय में गहरी जड़ें जमाये हुए है। इसलिये उसकी करुण याचना से शिव पार्वती उसके पति को जीवित कर देते हैं। विलासिता संस्कार रूप मे उसमें भी भी विद्यमान हैं, जो परिस्थिति की विषमता के ओझल होने के साथ ही पुनः जागृत हो जाती है और तब वह विलास तथा वासना के रंग में रंग जाती है। [3] इस प्रकार आबलदे का चरित्र एक रहस्यमयी नारी का चरित्र बन गया है। यह नाटक की नायिका है और रूप-सौंदर्य मे अद्वितीय है।

बाला

बाला प्रतिनायक रूप मे नाटक में दिखाया गया है। उसमे वीरता, मर्यादा के प्रति प्रेम व निर्भीकता विद्यमान है। वह आज्ञाकारी भी है। सात्विक हृदय भी उसे मिला है। यद्यपि नाटककार ने जीत सत्पक्ष की दिखाई है, पर बाला को प्रतिनायक के रूप मे रखकर इस पात्र के साथ नाटककार ने न्याय नहीं किया है। शेष पात्रों का चरित्रचित्रण अनुल्लेखनीय है।

---

१. सैल करागां बाग की रै, यू सुण री चतुर सुजान।
अंतर बोत सुगंदी लाज्यो, मीठा लाज्यो पान।
एक जोड़ी भगतण की लाज्यो, सुंदर तोड़े . . ।

२. परणूं नांई बीद नै सरै

३. हवा म्हैल मैं सेज

रस

नाटक का प्रधान रस शृंगार है जिसके दोनों पक्ष संयोग और वियोग सुन्दर चित्रित हुए हैं। सँवरा तथा आबलदे परस्पर आलम्बन व आश्रय हैं। मिलन के चित्रों में संयोग शृंगार भरा पड़ा है, पर वहां मग्नीनता और यौन भावनाओं को अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः दर्शक रस-दशा तक नहीं पहुँच पाता, वासना के धरातल पर लड़खड़ाने लगता है। वियोग-शृंगार का निर्वाह सुन्दर हुआ है। यह वियोग मरण-हेतुक है। सँवरा की मृत्यु में स्थायी शोक की ध्वनि इसलिये नहीं निकलती कि शंकर-पार्वती की प्रार्थना से सँवरा जी उठता है, इसलिये वहा भी रति स्थायी ही ध्वनित है। आबलदे की पार्वती से की गई प्रार्थना से 'रति' स्थायी ध्वनित है, जिसके 'विषाद' और 'दैन्य' संचारी है।

> गोरा सूं आबल करती बंदगी, म्हारै संकट मेटो।
> सुहाग-भाग था म्हांनै बगसो, अरज करूं छूं पांयूं।
> कंत जीवतो कर दो सुंदर, लेर बळूं म्हूं सो सूं।
> अरज करूं छूं आपसूं, म्हारो खेम पड़यो रणखेत।
> म्हारो दुख पांयूं कटै सरी, म्हं पर कीज्यो हेत।

'सँवरा' में शृंगार के साथ-साथ वीर रस भी विद्यमान है। युद्ध वीर सँवरा तथा बाला दोनों परस्पर आलम्बन और आश्रय हैं। पारस्परिक गर्वोक्तियां उद्दीपन हैं और युद्ध करना, परस्पर फटकारना, शस्त्र चलाना अनुभाव हैं, जिनमे 'धृति', 'गर्व' 'औत्सुक्य' आदि संचारी ध्वनित होकर वीर रस की निष्पत्ति करते हैं।

रामलीला

'रामलीला' की रचना 'रामचरितमानस' के आधार पर हुई है। यही कारण है कि उसकी कथा-योजना 'मानस' के अनुसार है, 'कथा' के प्रारंभ में शिव-पार्वती-संवाद इस प्रकार मिलता है—

> एरी उमा भला पूछया समाचार।
> राम अवतार कहूं विसतार।

और तत्पश्चात् तुलसी के समान ही 'रामलीला' का रचयिता कहता है—

> जद-जद दुख पड़यो भगतां पै हुयो धरम को नास।
> असुर जन्म्या धरती पै भार।
> दुखी होया गुरु बरामण, सीनो औतार।

ये पंक्तियां 'रामचरित मानस' की निम्नलिखित पंक्तियों का भावानुवाद है—

जब जब होइ धरम के हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं विप्र, धेनु, सुर, धरनी ।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।[1]

यह अनुवाद 'रामलीला' में साद्यंत दिखाई देता है। कुछ प्रसंग मंच की आवश्यकता के फलस्वरूप छोड़ भी दिये गये हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा का प्रसंग रंगमंच पर दिखा सकना कठिन है, अतः 'लीला' में नहीं मिलता है।

कुछ प्रसंगों को लोक-रुचि के अनुसार अधिक विस्तार दिया गया है। 'रामचरित मानस' का कवि अंगद के लंका-प्रवेश पर किसी रावण-पुत्र से उसकी भेंट का इस प्रकार वर्णन करता है—

पुर पैठत रावन कर बेटा । खेलत रहा सो होई गै भेंटा ।
बातहिं बात करषि बढ़ि आई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ।
तेहि अंगद कहुँ लात उठाई । गहि पद पटके भूमि भवाई ।[2]

'मानस' महाकाव्य में 'बातहिं बात करषि बढ़ि आई' पर्याप्त था, पर 'रामलीला' में तो कथोपकथन-पद्धति की प्रमुखता होने के फलस्वरूप दो तानों की सृष्टि हो गई। प्रथम में अंगद-द्वारा बालक से रावण के महल का पता पूछा जाता है तो वह विस्तार से उसे बता देता है। पर दूसरे कथोपकथन में जब पूछता है—

लंक करस्यां रै म्हां सैल।
बालक रावण का बता रै म्हैल।

तो बालक का उत्तर होता है—

बींदर जी नईं करवा दां सैल।
क्यों कर पूछया रावण का म्हेल।

दोनों ओर बाल-प्रवृत्ति ठहरी। इसलिये बात भी बढ़ गई और परिणाम 'रामचरित मानस' के समान निकला।

'रामलीला' के पात्रों का चरित्र-चित्रण भी, मानस, के पात्रों के समान ही हुआ है। पात्रों की रेखाएं वही हैं और रंग भी 'मानस' के समान ही हैं। इतना अवश्य

---

१. रा० च० मा०, बालकांड, १२०, ३ से ४ ।
२. रा० च० मा० लंकाकांड, १७, २, ३ ।

है कि 'मानसकार' ने मर्यादा की जो कठोर प्राचीरें खड़ी की थीं उनमें यहाँ कहीं-कहीं छोटे-छोटे छेद हो गये हैं। 'रामलीला' में सीता को अशोकवाटिका से लौटा लाने के लिए लक्ष्मण जाते हैं और अपनी प्रकृति के अनुकूल सीता से कह देते हैं—हे माता सीता, तुमने बुरी बात सोची कि मर्यादा को समाप्त करके रावण के साथ चली आई। फलस्वरूप कुलदेवता हँस रहे हैं—

मात थनै बड़ी बच्यारी बात।
घर छोड़ आई रावण के साथ।

× × ×

हँसी करै कुल का देवता, हँस रया संसार।

पर तुलसी ने ऐसे कथोपकथनों से 'मानस' को बचाया है। यही कारण है कि तुलसी राम या राम-पक्षीय पात्रों की प्रतिष्ठा की रक्षा विषमतम परिस्थिति में भी कराते हैं। राम-रावण-युद्ध का प्रसंग है। राम को बोलने की पूरी छूट तुलसी ने दी है और रावण के मुँह पर ताला सा लगा हुआ है, पर 'रामलीला' का रावण निर्भीक है। पत्थर का जवाब पत्थर से देता है: राक्षस ठहरा। अतः अन्य अवगुणों के साथ वाक्‌संयम भी उसमें नहीं है, जिसे तुलसी कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे—

खोऊँ थांको नाम आज देशी के दूंगो चढ़ाई।
दुष्ट होय मत बोलो रे बोल।
अब आ जा म्हारे सामने, अब पड़ जासी तोल।

रावण के चरित्र की एक विशेषता 'रामलीला' में द्रष्टव्य है। वह एक 'धूम की तान' में अपना वास्तविक रूप इस प्रकार प्रकट करता है।

हमारा मन में यो ही बच्यार।
राम नै लियो मनुज अवतार।
सुर, नर, असुर होय जमींपै नहीं उसके समान।
भ्रात खरदूषण छो बलवान।
परयो भार उतारण कारण परगट्या छै भगवान।

× × ×

भगत होत परगट भया सजी, परयो भार उतार।
बीर असुरों को लेगा भार।
उनसे जाकर करूँ लड़ाई, मेरा हो उद्धार।

और इसी के आधार पर सारी योजना बनाता है—

> जो नर रूप भूप सुत होई, हरस्यूं उनको नार।
> हमारा मन में बड़ो बच्यार।
> यां दोन्यां ने जीत के सजो लाऊं वांकी नार।

इस प्रकार 'रामलीला' की कथा एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। उधर राम ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया और इधर रावण ने निज उद्धार का निश्चय किया।

'रामलीला' में कथोपकथनों की सृष्टि करने मे कथा की रूपरेखा को ही ध्यान मे रखा गया है। तुलसी ने उसके भीतर चरित्र की तथा भावों की जो गहराई प्रदर्शित की है उस तक उतरने का प्रयास 'रामलीला' में नहीं मिलता है।

संक्षेप मे, हम कह सकते हैं कि 'रामलीला' की रचना 'मानस' के आधार पर हुई है, जिसके पश्चात रचयिता ने मंच की आवश्यकताओं और लोक-प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर कहीं-कहीं कथा में और पात्रों में परिवर्तन कर दियाहै, पर प्राण 'मानस' के हैं। भक्ति की प्रतिष्ठा करना ही इस 'लीला' का भी लक्ष्य रहा है तथा उसे जन-जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया गया है।

गोपीचंद–लीला

'गोपीचन्द-लीला' हाड़ौती का अति लोकप्रिय नाटक है। इसका अभिनय अनेक गावों में होता है और इसकी प्रतियां भी अनेक स्थानों पर देखने को मिलती है।

कथानक

बंगाल देश का राजा गोपीचन्द इस नाटक का नायक है। वह नव-विवाहिता रानी पाटमदे की इच्छा के प्रतिकूल एक दिन शिकार खेलने के लिए वन को चला जाता है और वहां सिंह का शिकार करता है। इस पर रानी को यह आशंका होती है कि सिंहनी को विधवा बनाकर राजा ने अच्छा कार्य नहीं किया। उसका शाप अमंगलजनक होगा—

> कोड़ी थाने बयूं बदनाई ऊंचा सरार थारे पड़सी।
> ऊं सीगणी को सांवंद मारयो, पीव बना कस्यां करसी।
> बदया थाने म्यूं पर म्हारी, छीज छीज या मरसी।

उधर गोपीचन्द की माता मैणावती (मैनावती) गोपीचन्द पर यह तथ्य व्यक्त करती है कि मैं परमात्मा से पुत्र के लिए बारह वर्ष का जीवन उधार मांग कर लाई हूं, उसके पश्चात् तो उसका भी वही परिणाम होगा जो उसके पिता के नश्वर शरीर का हुआ है। अतः वह उसे वैराग्य लेने का आग्रह करती है—

हुकम हमारो मान लो लरे, सुण ज्यो गोपीचन्दा।
राजो पाटणा, म्हल-खजाना, ये सब झूंठा धंधा।
प्रेम-पियाला जोग का रे, तू पीले ने रे बंदा।
भीतर-बाहर का जाल टूटेगा, चोरासी फंदा।

सोलह सौ रानियां गोपीचन्द के वैराग्य धारण करने का विरोध करती हैं, पर गोपीचन्द तो अपने मामा भरतरी (भर्तृहरि) के पास वैराग्य की दीक्षा लेने पहुँच जाता है। मामा ज्ञान-मार्ग के अवगुणों का वर्णन करते हैं, पर गोपीचन्द अपने निश्चय से विचलित नहीं होता है। अतः भरतरी (भर्तृहरि) गोपीचन्द को जालंधर योगी के पास ले जाकर योग-मार्ग की दीक्षा दिला देते हैं।

अब गोपीचन्द अपने को सच्चा योगी सिद्ध करने के लिए परीक्षा देता है। वह सर्वप्रथम अपनी माता के पास भिक्षा प्राप्त करने के लिए जाता है। पुत्र को भगवां वेश में देखकर माता का हृदय दुख-विह्वल हो उठता है और वह अपने पुत्र से पुनः राज्यभार ग्रहण करने की प्रार्थना करती है—

आज रवो म्हलां के मांई, ताता भोजन खाज्यो।
सुख-दुख की दो बात लाल म्हारा, मैं म्हांसे कर ज्याज्यो।

पर गोपीचन्द तो अपने निश्चय पर अडिग रहता है। तत्पश्चात् वह अपनी पत्नी पाटमदे के समक्ष भिक्षा ग्रहण करने के लिए उपस्थित होता है। रानी के आंसू और करुणा-याचना गोपीचन्द को पथ से विचलित करने में असफल रहते हैं। वह भिक्षा-ग्रहण करके अपनी बहिन के पास जाता है। बहिन को इसका विश्वास भी नहीं होता कि गोपीचन्द योगी बन गया है। पर जब वह अपनी आंखों से उसे योगी-वेश मे देखती है तो फूट-फूट कर रोने लगती है। वह गोपीचन्द को अपना वेश-परिवर्तित कर फिर से राज्य ग्रहण करने के लिए फुसलाती है—

केसे कर लियां भगवां कपड़ा, जोगण का जामा।

× × ×

भाई बना कुण वैरा छवैगो, 'सुण'गोपीचन्द लाल'
कपड़ा खोलो जोग का रे बीरा, म्हेलो माई' वाल।

पर वह असफल रहती है। तत्पश्चात् गोपीचन्द वन को लौट जाता है। यहीं कथा समाप्त हो जाती है।

आधार और ऐतिहासिकता

गोपीचन्द के मार्मिक कथा-प्रसंग को लेकर किसी काव्य की सृष्टि अब तक नहीं हो पाई है। फेरी वाले पुस्तक विक्रेताओं के पास गोपीचन्द-लीला की एक-आध प्रति देखने को मिल जाती है। पर वह न तो प्रामाणिक ही है और न प्राचीन ही। जनश्रुति के आधार पर जिस प्रकार हाड़ौती 'गोपीचन्द लीला' की सृष्टि हुई है उसी प्रकार की ऐसी पुस्तकें भी पद्य-बद्ध रचनाएं हैं। वस्तुतः गोपीचन्द और भर्तृहरि की कहानियां काव्य के बहुत सुन्दर उपादान हैं, पर यह आश्चर्य है कि वे केवल लोक-चित्त पर अपनी अमिट छाप छोड़ गई है, किसी कवि का ध्यान इन कहानियों की ओर नहीं गया। केवल कुछ सूफी कवियों ने यथा प्रसंग इनकी चर्चा कर दी है।[1]

'गोपीचन्द लीला' में गोपीचन्द के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख मिलते हैं। राजा स्वयं अपने ही मुंह से परिचय देता है कि मैं बड़ा राजा हूं और मेरा राज्य गौड़-बंगाल में है।[2] मेरे पिता विश्व-विख्यात हैं तथा उनका नाम तिलोकीचन्द है।[3] मैं उज्जैन नगरी के अन्तर्गत निवास करता हूं।[4] मैं राजपुत्र हूं और सूर्यवंशी शाखा का हूं।[5] पर इस नाटक के तथ्य विश्वसनीय नहीं माने जा सकते, क्योंकि इन्हीं तथ्यों में पारस्परिक विरोधी बातें मिलती हैं। एक ओर तो गोपीचन्द स्वयं को बंगाल का राजा घोषित करता है और दूसरी ओर अपनी राजधानी उज्जयिनी बतलाता है। वह अपने पिता का नाम तिलोकीचन्द बता रहा है, जो काल्पनिक प्रतीत होता है। अतः गोपीचन्द की ऐतिहासिकता पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

'लीला' में गोपीचन्द को भरथरी (भर्तृहरि) का समकालीन माना है। भरथरी वैराग्य-पंथ के प्रवर्तक और उज्जैन के राजा हुए हैं। भरथरी की बहिन

---

१. हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड, पृष्ठ ६४।
२. गोपीचन्द बड़ा नरेश मेरा गौड़ बंगाला देश।
३. पिता हमारा जाणे पीरथी, नाम तिलोकीचन्द।
४. नगर ऊजैण मांईने सजी, रहता गोपीचन्द।
५. सूरज बन्सी जात हमारी, म्हूं राजा का पूत।

मयनामती थी जिसका विवाह बंगाल के राजा मानिकचन्द के साथ हुआ था। मानिकचन्द पालवंश का शासक था, जो सन् १०१५ में शासनारूढ़ हुआ।[1] इस तथ्य को डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है। तारानाथ ने राजा गोपीचन्द को चटगांव का राजा बताया है[2] और 'हिन्दी साहित्य कोश' में उन्हें रंगपुर (बंगाल) का प्राचीन राजा माना है।[3] इससे 'लीला' के अनुसार गोपीचंद को बंगाल-नरेश होना स्पष्ट हो जाता है। 'लीला' मे गोपीचन्द के पिता तिलोकीचन्द का उल्लेख है। बंगाल में त्रैलोक्यचन्द्र चन्द्र राजाओं की वंशानुक्रमणी में तो आते हैं, पर गोपीचन्द के साथ उनका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।[4]

बिहार में भी कुछ पालवंश के राजाओं के नाम मिलते हैं, जिनमें गोविन्दपाल एक है। यह गोविन्द पाल आधुनिक गया जिले का राजा बताया गया है। कुछ हस्तलिखित प्रतियों एवं शिलालेखों से इसे 'गौड़ाधिपति' कहा गया है तथा यह भी उल्लिखित है कि उनका राज्य सन् ११६२ ई० में समाप्त हो गया। श्री मजूमदार का कहना है कि पालवंश के अन्तिम राजा मदनपाल का सम्बन्ध गोविन्दपाल से अभी तक स्थापित नहीं हो सका है। यदि उपर्युक्त प्राप्त तथ्य सत्य है तो मदनपाल के पश्चात् ही गोविन्दपाल सिंहासनारूढ़ हुए होंगे और इनके राज्य का विस्तार गया जिले तक रहा होगा।[5]

गोपीचन्द का काल-निर्णय करने में सिद्धों से सहायता मिल सकती है। 'लीला' में गोपीचन्द को जालंधर का शिष्य बताया गया है, पर डा० धर्मवीर भारती गोपीचंद को 'कण्हपा' के शिष्य बतलाते हैं।[6] *जालंधरीपा और कण्हपा दोनों दसवीं शताब्दी* के उत्तरार्द्ध में माने जा सकते हैं।[7] गोरखनाथ का समय भी यही माना जा सकता है। ये भरथरी के गुरु थे और जालंधरीपा और कण्हपा के समकालीन थे। गोपीचंद की माता 'मयनामति, प्रसिद्ध सिद्ध हाड़िपा—हालिपाद या जालंधर नाथ की शिष्या

---

१. देखिये-हिन्दी साहित्य, द्वितीय खंड, पृष्ठ ६३।

२. डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृष्ठ ७१।

३. डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८५०।

४. डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृष्ठ ७१।

५. डा० सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोकगाथा, पृष्ठ २००।

६. डा० धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृष्ठ ७१।

धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृष्ठ ४२।

बताई जाती है।[1] जालंधर नाथ के समय का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि बंगाल के राजा गोपीचन्द का काल दसवीं शताब्दी ठहरता है।

'गोविन्द पाल' के बंगाल के अधिपति होने में इतिहासकारों को अभी तक संदेह है, किन्तु यदि यह सत्य है कि गोबिन्दपाल गौडाधिपति थे तो वे ही निश्चित रूप से 'लीला' के नायक गोपीचन्द है। 'इनके राज्य का अन्त ११६२ ई० में बताया गया है। अतः गोपीचन्द का समय बाहरवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध या मध्य भाग ठहरता है।[2]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोपीचन्द का समय ग्यारहवीं शताब्दी माना है और अपने निर्णय की पुष्टि के लिए तिरुमलय की शैल-लिपि तथा 'गोपीचन्दर गान' नामक ग्रंथ के आधार पर राजेन्द्र चोल से गोपीचन्द के युद्ध का संकेत किया है। राजेन्द्र-चोल का समय १०६३ से ११११२ तक था[3]

इस प्रकार गोपीचन्द का काल दसवी, ग्यारहवी और बारहवी शताब्दियों मे फैला हुआ है। गोपीचन्द के काल के सम्बन्ध में अभी इतिहासकारो से और खोज की अपेक्षा हैजिसमे किसी निर्णय पर पहुंचा जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों से गोपीचन्द के ऐतिहासिक व्यक्तित्व और योग लेने के तथ्य तो प्रमाणित हो पाते हैं, पर इससे अधिक प्रकाश 'लीला' की ऐतिहासिकता पर नही पड़ता है।

वस्तुतत्व—

'गोपीचन्द लीला' का कथानक बड़ा ही मर्मस्पर्शी तथा काव्यमय है। जीवन के दोनो छोरो-भोग और योग के मध्य में नवनीत सा कोमल कथानक पाठक या दर्शक को गलदश्रु किये बिना नहीं रह सकता। सिंह के शिकार की प्रारंभिक घटना गोपीचन्द में संस्कार-रूप में विद्यमान विरक्ति को प्रकाश में लाकर शेष कथानक से अत्यन्त क्षीण सम्बन्ध स्थापित कर समाप्त हो जाती है। यह घटना गोपीचन्द के चरित्र की रेखाएं निर्माण करती हैं। उधर माता जब गोपीचन्द को राज्य का परित्याग करके वैराग्य को अपनाने का उपदेश देती है तब कथा के विकास में रोचकता आने लगती है और फल-

---

१. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खंड, पृष्ठ ६३।

२. डा० सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोक गाथा, पृष्ठ २०१

३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ संप्रदाय, पृष्ठ १६८

स्वरूप राजा-द्वारा विशाल साम्राज्य का परित्याग किये जाने पर कथात्मक आकर्षण चरम सीमा पर पहुँच जाता है। तत्पश्चात् कथा में विशेष आकर्षण नहीं रह जाता। गुरु जालंधर के आदेश से गोपीचंद की अपनी माता, पत्नी और बहिन के पास भिक्षा-याचना के लिए जाना काव्य की दृष्टि से बड़ा करुणापूर्ण प्रसंग है, पर घटना-विन्यास की दृष्टि से विशेष आकर्षक नहीं है।

वस्तुतः 'गोपीचंद लीला' की कथावस्तु अविकसित और सरल है। इसका कारण यह है कि प्रस्तुत 'लीला' घटना प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान है। मूल रूप से गोपीचंद और उसके केन्द्र-बिन्दु से अन्यान्य पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालना नाटककार का मुख्य लक्ष्य प्रतीत होता है। 'लीला' का सारा कथानक भावों से छलछला रहा है। उसमें काव्य अधिक है, नाटकीयता कम। घटनात्मक कौतूहल और उत्सुकता दर्शक को अधिक प्रभावित नहीं करते। इसलिये नाटकीय कार्यवस्थाओं के आधार पर इस नाटक की अविकसित कथावस्तु का मूल्यांकन करना व्यर्थ होगा।

चरित्र-चित्रण

'गोपीचंद-लीला के प्रमुख पात्र है। गोपीचंद, माता ममणावती, रानी पाटमदे और भरथरी। गोपीचंद का चरित्र विकासशील है। ममणावती के चरित्र में परिस्थिति का अनुरोध अधिक है। शेष दोनों पात्र वर्गगत(टाइप) रूप में चित्रित हैं।

गोपीचंद

'गोपीचंद लीला' का नायक गोपीचंद सच्चा शूरवीर है और सिंह का शिकार उसे प्रिय है :-

सूरा हो ज्यो आगै चालो, कायर रीज्यो मांई।

× × ×

कर लो नै तैयारी, मारां सेर नै, बड़ चालो सारा।

वह प्रारंभिक जीवन में भोगी है, जिसके यहाँ सोलह सौ रानियाँ महलों में निवास करती है। सिंह के मारने के साथ ही सिंहनी के भाग जाने की घटना उसके हृदय के गहन अंधकार में छिपी विरक्ति की भावना को तनिक प्रकाश में ला देती है। वह संसार का रहस्य समझकर अपनी भावना को इस प्रकार व्यक्त करता है—

तरया को मोबत खोटी छे, जोवै जतनै प्यार।,
खावंद के मरयां पाछै, सीगणी और करैगी यार।
भाई-बंद और कुटम-कबोला, कोई नै लागै लार।
भजन करां भगवान का सरी, जीवूं उतरां पार।

ममणावती-द्वारा ठीक समय पर इसी भावना को प्रोत्तेजित किये जाने पर गोपीचंद संसार से विरक्ति ले लेता है।

गोपीचंद के चरित्र का दूसरा पक्ष वैराग्यमय जीवन है, जिसके निर्वाह में ह दृढ़व्रती और सच्चे योगी रूप में सामने आता है। गुरु-द्वारा दीक्षा न दिये जाने पर ह उनसे काफी अनुनय-विनय करता है और उन्हीं के कहने पर वह अपनी परीक्षा ता है। परीक्षा-काल में उसकी एक निष्ठा और दृढ़व्रतता सामने आती है। वह अपनी त्नी के समक्ष स्व-परिचय इस प्रकार देता है। –

नाथ जलंधर गरू हमारा, माता नै दिया बताय।
जैसे रैण अंधेरी मांई, चंदा दीखै नांई।
चेला होग्या नाथ का रै, म्हांको जोग सफल कर माई।
अम्मर कर ली काया म्हानै, अमरापुर मैं जाई।

तब उसे न माता की करुणयाचना डगमगा सकती है, न पत्नी का विरह-क्रंदन और न बहिन के अविरल बहते अश्रु। गोपीचंद का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक शैली पर हुआ है, अतएव उसमें स्वाभाविकता आ गई है।

ममणावती

गोपीचंद की माता ममणावती के व्यक्तित्व में एक ओर तो जीवन के तात्विक सत्य को समझने की गूढ़ दृष्टि है तो दूसरी ओर माता के ममतामय हृदय की धड़कन विद्यमान है। वह अपनी गूढ़ दृष्टि से समझ जाती है कि ऐहिक जीवन नश्वर है और प्रत्येक व्यक्ति इसमें लिप्त होकर काल का ग्रास बनता जा रहा है—

सांच कऊं तो सत डगै सरै, भूठ सियां पत जावै।
थारा पिता नै काळ खा गियो, ऊंकी याद मनै आवै।
बारा बरस कै कारणै र लाई छी उधार।

× × ×

राज पाट सपना की माया, भूंठो सब संसार।

इसलिये वह अपने पुत्र को राज्य छोड़ देने का उपदेश देती है तथा प्रेम प्याला पीने की लालसा उत्पन्न करती है—

थारो मन होवै तब ही, राज नै म्हारा लाल चंदरमा ।

× × ×

प्रेम पियालो जोग को, तू पीले मे रे बेटा ।

वह बड़ी चतुर भी है। इसलिये अपनी बहू रानी पाटमदे को बड़ी युक्ति से समझा देती है—

कुंवरा पुरस के पास बहू तू, कद्यो पलंग पर सोई ।

राजा गोपीचंद को विरक्तों के वेश में देखकर उसका मातृत्व जागृत हो जाता है। तब वह पुत्र-प्रेम से विह्वल और कातर दिखाई देती है—

कुण दुश्मां नै जोगी मोह ल्या, म्हारा लाल चंदरमा ।

× × ×

कुण नै कादया कान गुरुजी सूं, कुण ने राह बताई ।

हृदय के द्वन्द्व से युक्त ममताभरी 'आंचल में दूध और आंखों में पानी' लेकर बनाई गई बड़ी कलात्मक कृति है। भले ही उसका चरित्र ऐतिहासिक सत्य से दूर हो पर मानव-हृदय के सत्य से भरपूर है।

भरथरी

भरथरी में विरक्त-जीवन की विशेषताएं विद्यमान हैं। वन में निवास, परमात्मा के ध्यान में तल्लीनता और प्रत्येक नवीन शिष्य को अपने मार्ग की दुरूहता समझाना आदि उनके चरित्र की विशेषताएं हैं। ये गोपीचंद के मामा भी हैं।

पाटमदे

वह संवेदन-शील और पतिव्रता नारी है। सिंह का शिकार उसके ममतामयी स्त्री के रूप को प्रकट करता है। अतः वह सिंहनी के विधवा जीवन की कल्पना से आशांकित है। पाटमदे की विरहिणी में अश्रुओं का सतत प्रवाह है और वह अपने पति को [illegible] ने की ओर भी प्रयत्नशील है।

रस

'गोपीचंद-लीला' शांत रस प्रधान रचना है। नायक का स्थायी भाव विरक्ति है। संसार की नश्वरता और वैषम्य को उत्पन्न करने वाले हैं और माता का उपदेश इस भाव को उद्दीप्त करता है। इसी विरक्ति की स्थायी वृत्ति के फलस्वरूप गोपीचंद को स्त्री-प्रेम का बीभत्स-रूप दिखाई देता है।

> तरया की मोबत खोटी है, जीवें जतनें करे प्यार।
> *खावंद के मरयां पाछे, सौंगणी वौर करैगो यार।*

यही विरक्ति स्वार्थ-परायण संसार के अन्यान्य सम्बन्धों में भी दिखाई गई है।

> भाई बंध बोर कुटम कबीला कोई न लागै लार।
> भजन करां भगवान का सरी, जीसूं उतरां पार।

अतः नायक को सांसारिक सम्बन्धों से 'निर्वेद' हो जाता है। दीक्षा-उपरांत माता को देखकर वह कह उठता है—

> दूर खड़ी रै वैरण पापणी, ममणावत माता।

और गुरु-द्वारा जब उसकी परीक्षा ली जाती है तो वह 'धृति' का परिचय देता है। 'धृति' के उदाहरण नाटक के उत्तरार्द्ध में भरे पड़े हैं। अपनी पत्नी से भिक्षा-याचना के समय गोपीचंद में इसी 'धृति' के दर्शन होते हैं।

> मनस्या घला दे बादल म्हूल सूं पाटमदे राणी।

इस नाटक का एक विस्तृत अंश पाटमदे रानी के अश्रुओं से गीला है उसमें *वियोग-शृंगार मिलता है। इस नाटकका वियोग-शृंगार एक अद्भुत प्रकार का है।* वियोग-शृंगार के अंतर्गत शारीरिक दूरी प्रधान नहीं होती, प्रधान होती है मानसिक दूरी। गोपीचंद सामने खड़ा है, पर उसका नहीं है। सौभाग्यवती होकर भी वह विधवा-सी है पति को सामने पाकर भी वह उसे अनन्तकाल के लिए खो चुकी है। यही उसके विरह का आधार है अतः उसमे कहीं 'दीनता' है, तो कहीं 'चिंता' और कहीं' अमर्ष' 'अमर्ष' का एक उदाहरण देखिये—

> थांका मामा की संगत बैठ्या, ये गुरुजी, नै भाई।
> सासू थारो नाश जायगो, झूठ बोलती नांई।

मां तो जोगी हो कर जास्या, म्हूं है कठै की नांई।
कोई करागा बाने साथ सूं सुखी भी सी कांई।

एक भारतीय पतिव्रतिनी की इसमें लगन और इससे करुण विरह की अभिव्यक्ति और बढ़ा दी जाती है।

वात्सल्य-रस के दर्शन माता के कथनों में किये जा सकते हैं। यहाँ माता का वात्सल्य साधारण माताओं से भिन्न तात्विक आधार पर खड़ा है। प्रत्येक माता यह चाहती है कि मेरा पुत्र सुखी रहे। भगवद्भक्तों की सदा सुखी रहने की भावना आध्यात्मिकता का आश्रय पाकर निज पुत्र के शाश्वत कल्याण की कामना करती है। नाटक में वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को स्थान मिला है।

मोरधज-लीला

कथानक—

'मोरधज लीला' की कथा के प्रारम्भ में पदमसेन राजा की पुत्री पदमावती की दृढ़ भक्ति तथा कठोर तपस्या दिखाई गई है, जिससे कृष्ण का सिंहासन प्रकंपित हो उठता है। अतः कृष्ण पदमावती के पिता पदमसेन की मति परिवर्तित कर देते हैं। एक दिन राजा पदमसेन पदमावती से पूछता है कि तू किसके भाग्य का खाती है ? तब पदमावती का उत्तर होता है कि मैं तो अपने भाग्य का ही खाती हूं—

> थां बाबो का घर दूरा छै, ये पुत्री थी कांई।
> लाज सरम म्हूं कछू नांई राखूं, से दूं गी सांच्यांई।
> सांची करती अरज पिताजी, झूंट बोलती नांई।
> खाऊं म्हारी किस्मत को, थांको खावी न खाई।

इस पर अप्रसन्न हो कर राजा अपनी पुत्री का विवाह मोर पक्षी से कर देता है। अब पदमावती मोर के साथ जंगल मे रहने लगती है। एक दिन कृष्ण-प्रेरित मेघ मूसलाधार वृष्टि करते हैं। जिससे पदमावती का पति मोर मृत्यु को प्राप्त होता है। अब पदमावती सती होने का निश्चय करके लकड़ी चुनने लगती है और सूर्य से प्रार्थना करती है—

> अगनी लगा दो सूरज देवजी, सती हो जाऊं।
> जंगल-जंगल चंदण ढूंढया, चता करी अब त्यार।
> हरी हरी चूड़यां पहन के सजी, की नो सब सणगार।

इसी समय शिव-पार्वती उधर आ निकलते हैं और पार्वती के आग्रह से मृत मोर शिव द्वारा जीवित कर दिया जाता है। मोर अब मोरधज राजा का रूप ग्रहण करता है। राजा मोरधज के एक पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका नाम रतनकुमार रखा जाता है।

जब मोरधज की भक्ति से इंद्रासन कांप उठता है तब कृष्ण तथा अर्जुन मोरधज को 'छलने' के लिए साधुवेश धर कर सिंह सहित उसके पास आते हैं और वे राजा से कहते हैं कि यदि तुम रतनकुमार को चीरकर सिंह को खिला दोगे तो हम तुम्हारे यहां भोजन कर सकेंगे—

म्हां जीमा मजमानी राजा, म्हां को हुकम उठावो।
रतन कंवार नै चीर नीर दो, सगां नै रै धरावो।
राजा-रानी हाथा मारो, आसू मत ना लावो।
फिर चौका दिलवावो राजा, अर सामान मंगावो।

इस पर राजा-रानी सहमत होते हैं तथा वे स्वकरों से निज पुत्र को चीर कर दाहिना अंग तो सिंह को खाने के लिए डाल देते हैं और बांयां अंग महल में रख आते हैं। तत्पश्चात् भोजन करने के समय जब पुत्र को पुकारा जाता है तो वह ऐसे उठकर चला आता है मानो गहरी निद्रा से उठकर आया हो, यहीं कथा समाप्त हो जाती है।

म्हला मैं आई गै रो नींद जो म्हूं हाजर आयो।

आधार

इस समस्त कथा के स्पष्ट रूप से दो भाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। उत्तरार्द्ध कथा पौराणिक है और पूर्वार्द्ध की कथा के सृजन में 'मोरध्वज' शब्द के मोर अंश ने प्रेरणा दी है। लोक-कथाओं में तकदीर और तदबीर-भाग्य और पुरुषार्थ को लेकर अनेक कहानियां समय-समय पर रची गई हैं। इन्हीं कथाओं में से एक मोर नाम के *आस-पास बिखरा दी गई है। पिता द्वारा अपनी पुत्री का विवाह मोर से करने की बात* कल्पनातीत और अवास्तविक है, पर भगवान ने जब राजा की मति ही फेर दी हो, तो लोक-मानस को कैसे अग्राह्य हो सकती है। लोक कथाओं में जब सरजन भयंकर संकट-ग्रस्त हो जाते हैं तब शिव-पार्वती आकर उन्हें संकट मुक्त करते हैं, यह प्रायः सुना जाता है।

कथा का उत्तरार्द्ध पौराणिक है। यह अंश 'श्री जैमनियाश्वमेधपर्व' से प्रभावित है। 'व्यास देव के समान ही महर्षि जैमिनि ने भी एक विशाल काय 'महाभारत' नामक ग्रंथ की रचना की थी। वह 'जैमिनीय महाभारत' के नाम से

प्रसिद्ध था। किन्तु काल-प्रभाव से अनेक बहुमूल्य ग्रंथों के समान उसका लोप हो गया और आज उसका एक मात्र 'आश्वमेधिक पर्व' ही हमारे बीच अवशिष्ट रह गया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हाड़ौती लोक-साहित्य ने ऐसी अमूल्य रचना को चिरकाल से अपना रखा है।

'जैमिनीयाश्वमेध पर्व' में मयूरध्वज के पुत्र ताम्रध्वज-द्वारा अर्जुन व कृष्ण द्वारा संरक्षित अश्व को पकड़ने की घटना सर्वप्रथम आई है। ताम्रध्वज और अर्जुन की सेनाओं में युद्ध होने के उपरांत अर्जुन तथा कृष्ण को बंदी बनाकर ले जाने के कारण मयूरध्वज के अप्रसन्न होने की घटना पर्व में बाद में वर्णित है। यहां तक तो हाड़ौती 'लीला' और 'पर्व' की घटनाएं पृथक्-पृथक् चलती हैं। अब 'पर्व' में कृष्ण तथा अर्जुन मयूरध्वज को, जो अश्वमेध यज्ञ कर रहा था, छलने की योजना बनाते हैं—

पार्थ पश्य नृपस्यास्य चरितं मानसं तथा।
प्रतारयितुमायाते मयि सत्यं न मोक्ष्यति[२]।

'लीला' में इंद्र की प्रेरणा से अर्जुन भगवान कृष्ण को मयूरध्वज को छलने के लिये ले जाता है—

छलबा ले जाऊं करसन मुरारी, म्यात म्हूं उमे छलाऊं।

तत्पश्चात् दोनों गुरु-शिष्य का वेश बनाकर जाते हैं। 'लीला' में उनके साथ सिंह भी होता है, पर 'पर्व' में सिंह की बात राजा से कुछ दूसरे ही प्रकार से कही गई है। वह अपने में एक कहानी है, 'पर्व मे कृष्ण ने कहा कि मेरे पुत्र को सिंह ने मार्ग मे पकड़ लिया और वह उसे तभी छोड़ सकता है जब राजा अपना पुष्ट शरीर उसे भक्षणार्थ दे दे। इस पर राजा सहमत हो जाता है। 'लीला' के अनुसार कृष्ण अपने भूखे होने की बात कहते हैं और यह प्रतिबन्ध लगाते हैं कि जब तक तुम्हारे पुत्र के दक्षिणांग से हमारा सिंह पेट नहीं भर लेगा तब तक हम भोजन नहीं करेंगे, पर साधुओं के साथ सिंह के होने का उल्लेख 'कल्याण'[३] और 'हिन्दी-विश्व-कोष'[४] में मिलता है।

'पर्व' के ब्राह्मण वेशधारी कृष्ण चतुर हैं और कुमुद्वती अर्द्धांगिनी होने के नाते

---

१. श्री जैमिनीयाश्वमेधपर्व, पृष्ठ २।
२. श्री जैमिनीयाश्वमेध पर्व, अध्याय ४८, श्लोक ४०।
३. देखिये, कल्याण, जनवरी, १९५२, पृष्ठ १६३।
४. देखिये—हिन्दी विश्वकोष, सोलह भाग, पृष्ठ ५२२।

स्वयं को सिंह के भक्ष्यार्थ अर्पित करना चाहती है तब वे कहते हैं—

> सिंहेन कथितं राजन् वामाङ्ग स्त्री महीपतेः ।
> दक्षिणाङ्ग प्रदेयं मे वामाङ्ग नीयते कथम् ।[1]

और ताम्रध्वज भी अपनी माता के समान ही प्रस्ताव करता है तब श्री कृष्ण उसे चतुराई से टाल देते हैं । इस प्रकार 'पर्व' मे पुत्र और पत्नी का मोरध्वज के प्रति प्रेम सुन्दरता से व्यक्त कर दिया गया है ।

'लीला' मे राजा द्वारा स्व-पुत्र चीर कर देने की स्वीकृति के उपरांत मोरध्वज और उसकी पत्नी पदमावत में उठने वाले मानसिक द्वन्द्व का चित्रण मिलता है । इससे दोनों प्राणियों की भक्ति व धैर्य की प्रतिष्ठा होती है । प्रभाव की दृष्टि से दम्पति-द्वारा स्वकरों से पुत्र चीरने का प्रसंग 'पर्व' की अपेक्षा अधिक हृदय-विदारक है, जिसमें नायक की परीक्षा को चरम सीमा पर पहुंचा दिया गया है ।

'पर्व' में साधुवेश-धारी ब्राह्मण राजा के वाम नेत्र में अश्रु देखकर उस दान को अश्रद्धा-पूर्वक दिया गया दान बतलाते हैं[2] और चल देते हैं—

> एतावदुक्त्वा वचनं परित्यज्य महीपतिम्
> प्रययो पश्यतां तेषां पार्थयुक्तो जनार्दनः ।[3]

'लीला' में इस प्रसंग की भाव-छाया है । यहां भगवान चले तो नहीं जाते, पर कथन में कठोरता व्यक्त करते हैं—

> देख्यो सत्त तुमारो राजा, यू क्यूं बात भणावै ।
> पेट में म्हानै भूख सतावै ।
> यू तो खड़ो सामनै म्हांकै ।
> रोनै जरा दिया नई आवै ।

'पर्व' में राजा की देह चीरने की क्रिया के मध्य ही कथा समाप्त हो जाती है । भगवान व अर्जुन साधुवेश त्याग कर अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं, पर हाड़ौती नाटक में कथा आगे बढ़ती है । पुत्र चीर डाला जाता है । सिंह उसके कोमल-कोमल

१. जैमिनीयाश्वमेध पर्व, अध्याय ३६, श्लोक २३½ ।
२. अप्रमावोपहृतं दानं न गृह्णन्ति विपश्चितः—जैमिनीयाश्वमेधपर्व, अध्याय ४१, श्लोक ४६ ।
३. जैमिनीयाश्वमेधपर्व, अध्याय ४६ श्लोक, ४८½ ।

मांस को थाल में लाता है और अंत में भोजन करते समय साधुओं-द्वारा जब पुत्र को पुकारा जाता है तब वह सहसा आ जाता है। इससे घटना-विन्यास में नाटकीय आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। चीरने की वीभत्स क्रिया का रंगमंच पर दिखाया जाना प्रभाव व शास्त्र की दृष्टि से सुन्दर प्रतीत नहीं होता, पर भक्त हृदय को इससे क्या। यह तो भगवान की लीला है।

मूल पौराणिक कथा और हाड़ौती 'लीला' के पात्रों के नामों में अन्तर है। नायक तो दोनों में एक ही नाम वाला है। पर 'पर्व' की कुमुद्वती और ताम्रध्वज 'लीला' में क्रमशः पद्मावती और रतनकुंवार हैं। पद्म और कुमुद की पर्यायवाचकता ने मोरध्वज की पत्नी के नाम में परिवर्तन ला दिया और ताम्रध्वज का कठिन नाम लोक मानस से लुप्त हो गया। फिर जिस प्रकार मयूरध्वज के नाम पर मोरनगर की[1] कल्पना की गई, उसी प्रकार मयूरध्वज की राजधानी रत्नपुर[2] के नाम पर रतनकुंवर नाम की कल्पना भी मूल नाम की विस्मृति में सहज संभाव्य हुई। आधार और आधेय के पात्रों के रूप, रंग व रेखा समान ही हैं। 'मोरधज लीला' में पूर्वार्द्ध के पश्चात् पद्मावती के सशक्त दर्शन होते हैं। तब ऐसा प्रतीत होता है कि उसके सबल व्यक्तित्व के साथ उत्तरार्द्ध में न्याय नहीं हुआ है। उत्तरार्द्ध में मोरध्वज का व्यक्तित्व इतना उभरा है कि पद्मावती का व्यक्तित्व पीछे ढकेल दिया गया है, वह उपेक्षित सा बन गया है। अतः पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की दो स्वतन्त्र कथाएं दिखाई देती हैं। दोनों को मिलाने का प्रयास कृत्रिम सा बन जाता है। पूर्वार्द्ध का नायकत्व पद्मावती को मिला है और उत्तरार्द्ध का नायक मोरध्वज है।

'पर्व' में स्वयं मोरध्वज को चीरने के प्रसंग के स्थान पर 'लीला' में पुत्र को चीरने की कथा के होने की संभावना दो कारणों से प्रतीत होती है। प्रथम, मूल में ब्राह्मण-वेशधारी कृष्ण का स्वपुत्र को सिंह-द्वारा पकड़े जाने की कथा का उल्लेख है। 'लीला' का वह अंश लोक-मानस से लुप्त हो गया और एक दूसरे रूप में प्रकट हुआ। इस स्पष्टीकरण में द्वितीय कारण कार्य कर रहा था। लोकमानस में हरिश्चन्द्र की दानशीलता की कथा चल रही थी, जिसमें नायक के पुत्र की मृत्यु वर्णित थी। अतः मोरध्वज कथा का लुप्त अंश इस कथा के सहारे पुनर्जीवित होकर आ गया।

---

१. मोरधज नै भगती कीनी, देखो दुनियां मांई।
मोर नगर सै जाकर छलग्यो, म्हूं खै तो सांच्यांई।

२. हयो रत्नपुरं पाय गतो मध्ये महाहवाद्।
तत्र गच्छामहे सर्वे मयूरध्वज पालिते। जैमिनीयाश्वमेधपर्व ४४, ३६।

वस्तुतत्त्व

'मोरधज-लीला' की घटनाएं कार्य-कारण सम्बन्ध से ग्रथित हैं और उनका विन्यास ऐसा है कि क्रमशः आकर्षण बढ़ता चलता है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, इस 'लीला' में घटनात्मक आकर्षण मे शिथिलता तब दिखाई देती है जब पूर्वार्द्ध घटनाओं का प्रधान स्त्री-पात्र-पदमावती उत्तरार्द्ध मे गौण होकर अपना पृथक अस्तित्व तक खो देती है। पर पूरी 'लीला' की कथा का नायक मोरधज है और वही फल का अधिकारी है। अतः उससे सम्बन्धित कथा आधिकारिक कथा कहलावेगी और जो उससे दूर पड़ी है वे सब प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत आयेंगी। इस प्रकार राजा पदमसेन और पदमावती की कथा, कृष्ण और अर्जुन की कथा प्रासंगिक कथाएं हैं जो 'प्रकरी' के अन्तर्गत आती हैं। ये प्रासंगिक कथाएं मुख्य कथा से सर्वथा पृथक् नहीं पड़ी है, अपितु उसे आगे बढ़ाती चलती है।

मोरधज 'लीला' का नायक है। उसका वास्तविक कर्त्तव्य तो मनुष्य-देह धारण करने के बाद से प्रकट होता है पर इससे भी पूर्व वह प्रारम्भिक कथांश मे विद्यमान अवश्य है, चाहे गौण रूप मे हो। इस प्रकार आधिकारिक कथा 'लीला' मे आदि से अन्त तक फैली हुई है। इस नाटक को कथा का विकास द्वन्द्व में हुआ है। बाह्य द्वन्द्व की अपेक्षा अन्तर्द्वन्द्व नाटक में अधिक मिलता है। यह द्वन्द्व जहां समाप्त हो जाता है, वहां ही कथा भी समाप्त हो जाती है। आरम्भ से राजा और पदमावती में द्वन्द्व दिखाया गया है। राजा चाहता है कि पदमावती यह कहे कि वह मेरे भाग्य का खाती है और पदमावती सत्य के स्थान पर असत्य को किसी दशा मे नहीं अपनाना चाहती है। अतः वह पिता को प्रसन्न करने के लिए झूठ कैसे बोल दे। इसी का प्रतिफलन पदमावती और मोर के विवाह मे होता है।

मोरधज में भी यह द्वन्द्व चल रहा है कि वह पुत्र के मोह में पड़कर अपने चिर-संचित धर्म और सत् को छोड़ दे या धर्म की रक्षार्थ अपने पुत्र को स्वकरों से चीरकर साधुओं के सिंह को डाल दे। जहां इस द्वन्द्व का अन्त होता है—राजा और रानी अपने हाथ से स्व-पुत्र को चीर कर सिंह को डाल देते हैं वहीं कथा की चरम-सीमा है और उसके पश्चात् 'नियति' और 'अन्त' आ पहुंचते हैं। इस प्रकार अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य-द्वन्द्व में विकसित 'मोरधज लीला' की वस्तु का निर्वाह आकर्षक बन पड़ा है।

चरित्र-चित्रण

'मोरधज-लीला' मे दो प्रमुख पात्र हैं–मोरधज और पदमावती। गौण पात्र हैं–राजा पदमसेन, कृष्ण, अरजन, (अर्जुन) और मन्दर (इन्द्र)। नाटक के सभी पात्र सद्प्रवृत्ति वाले हैं, केवल इन्द्र ईर्ष्यालु और स्वार्थ-लोलुप है। पात्रों का चरित्र चित्रण घटनाओं द्वारा अधिक और कथोपकथन द्वारा कम हुआ है।

मोरधज

'लीला' का नायक मोरधज रानी पदमावती का पति है। प्रारम्भिक जीवन मे वह केवल एक अबोध एवं निरीह पक्षी है। जिसे पदमावती के पिता के दुराग्रह के फलस्वरूप उसकी पुत्री पदमावती का पति बनने का अवसर मिला है। मनुष्य-देह धारण करने पर वह एक परम भगवद्भक्त राजा के रूप में सम्मुख आता है। नर-रूप धारण करते ही उसका प्रथम संकल्प होता है—

भगती तो करस्यां सरीकसन की, म्हां मरत लोक में।

और उसकी भक्ति यहां तक बढ़ जाती है कि वह अपनी ही भाव-धारा जनता में भी देखना चाहता है। अतः उसकी कामना होती है कि प्रत्येक नागरिक धार्मिक हो—

फेरो दुवाई सारा से र, मैं ना करे अधरमी।

उसकी भक्ति दृढ़ है और अविचल है। वह सदैव भगवद्भक्ति मे तल्लीन रहता है—

आठ फेर चौसठ घड़ी रै म्हे, ध्यान राम को धरनो।
साधू संत की करे बंदगी, पगां बारणे पड़नो।
राम–नाम नव चीज छै साची, जो बेतो सो तरनो।

वह आत्मत्यागी भी है। उसमें इस आत्म त्याग का उदय दृढ़ भक्ति के फल-स्वरूप ही हुआ है। साधुओं के समक्ष अपने पुत्र को चीर कर उसने सबसे बड़े आत्मत्याग का परिचय दिया है—

म्हारा पुत्तर नै चीरां हाथ सूं, देखो सब संसार।
भाई बेटा सब म जावै, सब जावेगी नार।
ज्यों-ज्यों हूंसी राणी म्हारी, जिस दीना करतार।

उसके हृदय में पुत्र और पत्नी के प्रति अटूट प्रेम है, पर सत् का प्रेम उनसे भी बढ़ कर है। वह इन्द्रिय-भोगों को भोगता हुआ दिखाई देता है, पर उनमें लिप्त नहीं होता—

> थाला म्हूला माईनै जी, लियो तुमारो मान।
> करो हार-सणगार सिधारी, थानै गनै लगावा।

पद्मावती

नाटक की नायिका पदमावती राजा पदमसेन की पुत्री है और बाल्यकाल से भगवद्भक्त है तथा संसार को मिथ्या समझती है —

> भगती करूं भगवान की स म्हारै, और नई छै काम।
>
> ×   ×   ×
>
> बेटा, बेटी, कुटम, कबीला झूठी जग की माया।

इसीलिये वह निर्भीक तथा सत्यवादिनी है। पिता का कोई प्रलोभन या क्रोध उसे सत्य कहने से नहीं रोक सकता। उसके पिता चाहते थे कि वह यह कहे कि मैं तो आपके भाग्य का खाती हूं, पर उसका उत्तर तो दूसरा ही होता है—

> लाज सरम म्हूं कुछ नाईं राखूं, लै दूंगी साच्चाईं।
> सांची कहती सरम पिताजी झूंठ बोलती नाईं।
> खाऊं म्हारी किसमत को, थारी सदी न खाईं।

उसको अपने पुरुषार्थ पर पूर्ण भरोसा है। भारतीय आदर्श को लेकर वह एक आदर्श पतिव्रता धर्म का निर्वाह करती देखी जाती है। इसलिये वह अपने पति और की मृत्यु पर सती होने के लिए उद्यत दिखाई देती है—

> रखनी राज कंठ सू लगी, मरूँ बना थारैं साथ।
> ओखा आवंद मर गया सखी, होगो नाईं सुहाग।
> घोड़ बना थारैं बाल्टी सखी, मरण बना थारैं साथ।

वह पति की इच्छा को अपनी इच्छा समझती है और पति का संकेत मिलते ही अपने पुत्र को मारने के लिए उद्यत हो जाती है। पुत्र-प्रेम से बढ़कर धर्म को

रक्षा करना उसके भी जीवन का आदर्श है—

> रतन कंवार नै चीर मीर दां, नाईं करां बच्यार।
> सायब का सत् ऊपरै सभी, सबका सिरजनहार।

जीवन का भोग-पक्ष पदमावती में आसक्ति उत्पन्न नहीं करता है। वह तो जल मे कमल के समान रहती है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि मोरधज और पदमावती के चरित्र एक-दूसरे के प्रतिबिम्ब हैं। राजा-पदमसेन अविवेकी और दुराग्रही पिता के रूप में चित्रित हैं। भगवान कृष्ण भक्तों की परीक्षा लेने वाले और उनके गर्व को नष्ट करने वाले हैं। अर्जुन भक्त है, पर उसकी भक्ति उसमें गर्व को जन्म देती है। वह भगवान का सहायक भी है। अंदर (इन्द्र) ईर्ष्यालु और स्वार्थ-परायण राजा है, जिसे दूसरे की उन्नति असह्य है।

रस

'मोरधज' का प्रधान रस वीर है। वीर चार प्रकार के होते हैं—युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर और दयावीर। इस नाटक का नायक धर्मवीर है। धर्म-कार्यों के अवसर पर उसके उत्साह का उभार देखा जा सकता है। मोरधज इस नाटक में नायक है और साधुओं या अर्जुन और कृष्ण द्वारा अपने सिंह के भक्षणार्थ उसके पुत्र को मांगना आलम्बन है। पदमावती के ये वचन उद्दीपन का कार्य करते हैं—

> पुत्तर दे दीज्यो सत् मत छोड ज्यो, सुण स्वामी म्हारा।

और साधु के वचन भी उद्दीपन का कार्य कर रहे हैं—

> देख्यो सत्त तुमारो राजा, थू क्यूं बात बणावै।
> पेट में म्हां के भूख सतावै।
> थू तो खड़ो सामनै म्हांके,
> तोनै जरा दिया नईं आवै।

पुत्र को चीरना, सिंह को खिलाना आदि अनुभाव हैं। 'धृति', 'मति' और 'औत्सुक्य' आदि संचारियों की व्यंजना के अनेक उदाहरण नाटक में मिलते हैं। पुत्र को चीरते समय राजा के इन कथनों मे 'औत्सुक्य' और 'मति' की कितनी सुंदर व्यंजना है —

जल्दी आवो, लाग्रो करौती, मती लगावो बार ।
आपणा पुत्तर नै मारूं हाथ सूं, देखै सब संसार ।
भाई बेटा संग न जावै, सत् जावैगा लार ।
ज्यों ज्यों होसी राणी म्हारी, लिख दीनी करतार ।

वीररस के अतिरिक्त भक्ति-रस के भी अनेक स्थल इस 'लीला' मे विद्यमान है।

फैलाद-लीला

कथानक

'फैलाद-लीला, की कथा का आरंभ हरणाकुस के पूर्व-जन्म की कथा से होता है, जिसके अनुसार विष्णु भगवान के द्वारपाल अज व बज (जय तथा विजय) सनकादिक मुनियों से शापित होकर हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु (हरणाकुस) की राक्षस-योनि ग्रहण करते है । हरणाकुस ब्रह्मा की भक्ति से यह वर प्राप्त कर लेता है—

हाथ जोड़ म्हूं करूं बीनती, देवो मोय बरदान ।
धरती, अगन, पवन, फाणी में, मरूं नईं असमान ।
सुर, नर, असुर मोई नईं मारसी, सस्तर लगै न बाण ।
बायर-भीतर रात मरूं नईं, मरूं न उगंता भाण ।

और वह राम-विरोधी बन जाता है । हरणाकुस का पुत्र फैलाद उसके आदेशानुसार *राम-विरोधी-प्रचार के लिए दूत के साथ निकल पड़ता है । वह देखता है कि किसी* कुम्हारी के 'आवे' से राम-कृपा के फलस्वरूप बिल्ली के बच्चे जीवित निकल आये । इस घटना से प्रभावित होकर वह राम-भक्त बन जाता है । अतः उसका पिता उसे अपना विरोधी समझने लगता है—

आठ पहर म्हारी छाती बाळै, यो सतरू सुत म्हारो ।
नस-दिन राम उचारै मुख से, जद मोहि लागै खारो ।

जब पिता तथा गुरु अनेक प्रयत्न करते हैं कि वह राम-भक्ति छोड़ दे, पर फैलाद तनिक भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होता है । उसे समुद्र में डुबाया जाता है । अग्निकुंड में डाला जाता है, होलिका में जलाया जाता है । पर्वत से गिराया जाता है, विष पिलाया जाता है और संघकूप में डाला जाता है । अंत मे, जब उसे संतप्त स्तम्भ

से चिपकाने के पूर्व हरणाकुस तलवार लेकर उसे मारना चाहता है तब स्तम्भ से सिंह गर्जना सुनाई पड़ती है—

> खड़ग खाड तामै गयो सरै, लेऊं दुस्ट थई मार।
> जद फैलाद पै खड़ग उठायो, जद होयो हौंकार।

इस पर हरणाकुस खंभे पर तलवार का प्रहार करता है, जिससे नृसिंह भगवान प्रकट होकर उसका वध कर डालते हैं। अंत में, फैलाद तथा विभिन्न देवताओं द्वारा भगवान की स्तुति की जाती है। यहीं 'लीला' की समाप्ति हो जाती है।

आधार

इस कथा का आधार 'भागवत' तथा 'विष्णु पुराण' है। कथा की रेखाएं 'भागवत' के अनुकरण पर है, पर 'लीला' की कथा मे परीक्षाओं का वर्णन विस्तार से मिलता है। भागवतकार तो सब परीक्षाओं को दो श्लोकों में ही गिना देता है, पर 'लीला' में ये इस छोर से उस छोर तक फैलती हुई हैं। 'भागवत' के परीक्षा-सम्बन्धी श्लोक इस प्रकार हैं—

> दिग्गजैर्दन्दशूकेश्च अभिचारावपातनै।
> मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनै।
> हिम वायावग्नि सलिलः पर्वताक्रमणैरपि।
> नशशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम्। भागवत, ७,५,४३-४४

इन्हीं समस्त यातनाओं और परीक्षाओं का सारी 'फैलाद-लीला' मे प्रसार है। वस्तुतः जिस उद्देश्य से इनका अभिनय होता है, उसके लिए यह आवश्यक भी है। हरणाकुस के पूर्व जन्म की कथा 'भागवत' के सप्तम स्कंध के कथांश के समान ही है। 'भागवत' के सप्तम स्कंध के सप्तम अध्याय के अनुसार प्रह्लाद की माता कयाधू को गर्भावस्था में नारद के यहां रहना पड़ा है। जहां नारद ने उसे अनेक उपदेश दिये हैं। इन्हीं उपदेशों के फलस्वरूप प्रह्लाद जन्म से ही भक्त है। यहां प्रह्लाद की भक्ति परिस्थिति-जन्य नहीं है। 'फैलाद-लीला' में भक्ति का उदय पाटे में लिखने के प्रसंग के [illegible] की घटना से होता है। इस प्रकार 'लीला' का आधार 'भागवत' की [illegible] स्वरूप है, जो लोक-जीवन में अधिक उपादेय हो सकता है।

[illegible]'ला' के अनेक भाग 'भागवत' के अनुवाद हैं। 'भागवत' में फैलाद-कथा विस्तार नहीं मिला है, जितना 'फैलाद-लीला' मे मिला है। अतः 'लीला'

के कवि की कल्पना को अधिक सक्षम बनना पड़ा है। 'लीला' का ढांचा, प्राण और रक्त 'भागवत' के हैं, पर उसमें मांसलता लाने के लिए कवि-कल्पना ने योग दिया है। 'फैलाद लीला' का यह कथन देखिये—

> वह हरी. सब में व्यापक तुझे पड़ेगा गम्म।
> तो में, मो में, खड्ग, खंभ में, वोर बताऊं खंभ।

उपर्युक्त पद्यांश की सृष्टि 'भागवत' के इस श्लोक के उत्तर-स्वरूप हुई सी प्रतीत होती है—

> यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः।
> क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते।
>
> भागवत ७,८.१३.

वस्तुतत्व

'फैलाद-लीला' का प्रारम्भ हरणाकुस की पूर्व-जन्म की कथा से होता है। पूर्व-जन्म से वह तथा उसका भाई भगवान के द्वारपाल हैं। हरणाकुस शापित होकर इस जन्म में राक्षस बनता है और ब्रह्मा की भक्ति से जब उसे वर प्राप्त हो जाता है तब वह निरंकुश व मदांध राजा-रूप में सामने आता है। 'फैलाद-लीला' के प्रतिनायक हरणाकुस से सम्बन्धित उपर्युक्त घटनाएँ उसके राक्षस-जीवन की भूमिका है। इस अंश का 'लीला' में इतना ही महत्व है।

पिता हरणाकुस के आदेशानुसार राम-विरोधी प्रचार का साधन बनने वाला, फैलाद कुम्हारी के आवे से जीवित बिल्ली के बच्चों के निकल आने पर अपनी धारणाओं को बदल देता है और इसी के साथ कथानक में मोड़ उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् फैलाद की अनेक भयंकर परीक्षाएं होती हैं। इन सबको दर्शक सांस रोककर देखता चलता है। फैलाद के लिए मानों विष अमृत बन गया, पहाड़ की ऊंचाई मानो समतलता ग्रहण कर गई, होली जली तो स्वयं को जलाकर जली और उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकी। अन्त में, फैलाद को खम्भे से चिपकाया जाता है। कथाजन्य दर्शक का कौतूहल यहां चरमता को पहुंच जाता है और इसी समय भगवान प्रगट होकर हरणाकुस का वध कर देते हैं।

इस प्रकार कथानक में अनेक ऐसे स्थल हैं जो दर्शक की उत्सुकता को कम नहीं करते, अपितु तेजतर बनाते चलते हैं। एक के बाद दूसरी परीक्षा का क्रम दर्शक को विस्फारित-दृग कर देता है। 'लीला' की कुछ घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध भले ही न हो, पर कथा में उनकी उपस्थिति अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होती है।

चरित्र-चित्रण

'फैलाद-लीला' में दो प्रकार के पात्र हैं। प्रथम वे जो सत्पक्ष का अनुसरण करने वाले हैं और द्वितीय वे जो असत्पक्ष के अनुसरण कर्ता हैं। दोनों प्रकार के पात्रों के चित्रण में नाटककार ने सहानुभूति से काम लिया है। असत्पक्ष के विरोध में सत्पक्ष की विजय दिखाकर उसने जीवन में सत्प्रवृत्तियों के पोषण को बल दिया है।

फैलाद (प्रह्लाद)

नाटक का नायक फैलाद हरणाकुस का पुत्र और भगवद्भक्त है। वह अपने वातावरण में 'पंकज' के समान है। प्रारम्भ में, वह राम-विरोधी प्रचार करता दिखाया गया है—

> *जाऊं पिताजी गसत फरूंगो, ओशा लेसूं मार।*
> राम नाम को सुमरसी सजी, जिनकूं म्हाकूं मार।
> जो कोई आकर पुकारै तुमको, तुम मत करज्यो सार।

और सचमुच जब वह देखता है कि एक *परजापत (कुम्हार) ने रामनाम कहा* है तो उसे पिता की आज्ञापालक के रूप में पाते हैं—

> पकड़ ले जाऊं तनै राज में, तनै राम लियो क्यों ?

फैलाद के चरित्र-निर्माण में संस्कार से अधिक परिस्थितियों का हाथ है। *कुम्हार के आवे से बिल्ली के बच्चों को जीवित निकलते देखकर* उसकी राम-विरोधी मान्यताएं ढह जाती हैं और वह भगवान का परम भक्त बन जाता है। उस पर *गुरु की राम-नाम-विरोधी विद्या का कोई प्रभाव नहीं होता, क्योंकि राम में* उसका अटल विश्वास उत्पन्न हो गया है। यह विश्वास गुरु को दिये गये इस उत्तर में स्पष्ट झलकता है :—

> *कोण सकेगा मार नाथ को, सांचो नेह छै म्हारै।*
> और सब विद्या भूट घड़ी छै, हिरदे भगती बच्यारै।
> जो ईस्वर का ध्यान धरै जो, नई किसी के सारै।

वह निर्भीक है। *जिस सत्य का अनुभव उसने किया है,* उसे बिना किसी भय

के पिता के सन्मुख प्रकट कर देता है। वह स्पष्टवादी है :—

गरब मरया काई बोलो पिताजी, तुम हो बड़ा अग्यान।

× × ×

सुणो पिताजी पढ़ रयो सरै, राम-नाम तत्सार।
मेरो सतगुरु है परजापत, वानैं दीना बिचार।
थों पंडत मोई भूठ सिखावै, ऊपर देवै मार।
राम-नाम नसदम ग्हूं समरूं, जींमें होवै उधार।

उसकी भक्ति इतनी दृढ़ है कि प्रत्येक विपत्ति उसकी जड़ें हिलाती नहीं है, अपितु उसे और सुदृढ़ करती हैं। वह झुकता है तो केवल ईश्वर के सामने—

करुणा तो सुण लोज्यो दोनी कान सें, करुणानंद स्वामी।

और फिर वह न पहाड़ पर से गिरने से डरता है, न मस्त हाथी से भयभीत होता है और न होलिका के साथ जलना उसमें किंचित दुर्बलता लाता है। वास्तव में फौलाद के रूप में एक परम भक्त का साक्षात्कार होता है। उसका चरित्र असत् से सत् की ओर जाने में दिशा-निर्देशक का कार्य करता है।

हरणाकुस

नायक का पिता हरणाकुस इस नाटक में प्रतिनायक रूप में चित्रित है। पूर्व-जन्म की कथा में वह तथा उसका भाई द्वारपाल के रूप में विद्यमान है। वहां वह एक आज्ञाकारी सेवक-रूप में चित्रित है, जो सनकादि मुनियों को भगवान के दर्शन करने नहीं जाने देता है और इसीलिये वह उनका कोप-भाजन बनकर राक्षस-योनि को प्राप्त होता है। राक्षस रूप में प्रारम्भ में हरणाकुस घोर तपस्वी है। वह तपस्या-बल से ब्रह्मा को प्रसन्न कर लेता है और ये वरदान प्राप्त करके रामनाम विरोधी निरंकुश राजा के रूप में सामने आता है—

धरती पवन अगन पाणी मैं, मरूं नईं असमान।
सुर नर असुर मोई नईं मारसो, सस्तर लगै न बाण।
बारै भीतर रात मरूं नईं, मरूं न उगंता भाण।

तब उसका विवेक लुप्त हो जाता है। वह राम-नाम-विरोधी बन जाता है।

आंसूं ढरती रा मुखी रुकमणी कुमर कर मींजतो।

तथा

रुकमणी ने यां सूं कहो रे, मैं गुण जरो काम मनाई।
सुपालजी चंदेरी रावा, बंध बरद रा भाई।

परिणामस्वरूप रुकमणी में कृष्ण के प्रति पूर्वानुराग उत्पन्न हो गया, किंतु माता व भाई लोक दबावों के कारण भी दिया न सके। रुकमैया (रुकम) कुलग्रही, अतः उसने अपने पिता तथा बहिन की इच्छा के विरुद्ध सुसपाल के साथ टीका भेज ही दिया। भाभी के मना करने पर भी उसने मामा जरासंध (जरासंध) के आग्रह पर टीकाशिकार कर लिया। आवश्यक वैवाहिक लोकाचार सम्पन्न करके बरात कुन्दणपुर (कुण्डिनपुर) आ पहुंची—

आई बरात साज री माता कुन्दणपुर माईं।

तब रुकमणी की चिन्ता बढ़ी और उसने भगवान् कृष्ण के पास ब्राह्मण द्वारा करुण संदेश भेज दिया—

कुन्दण पर बाबरो वेग पधार ज्यो, रुकमण की परिका।
परियो लिखूं म्हारी छतियां फाटे, कलम न ठेरे हाथ।
भाई म्हारे कपट कमायो, और मती म्हारी मात।
छल करके सुसपाल बनायो, बीन कपट के साथ।

कृष्ण प्रतीक्षा में थे ही। आवश्यक तैयारी के उपरांत कृष्ण भी बरात बनाकर चल पड़े। बरात में गणेश भी थे। कुरूपता के कारण उन्हें बरात में न ले जाने का *निश्चय किया गया तो वे क्रोधित हो गये और अपनी सेना (चूहों) से भूमि को खोखला* करा दिया। तब उन्हें मनाया गया और कृष्ण से पूर्व उनका विवाह पोरराव की कन्या से करना पड़ा। तत्पश्चात् वे कुन्दणपुर आ पहुँचे। यह समाचार सुनकर रुकमणी के हृदय में हर्ष का संचार हुआ। गौरी-पूजन के लिए जब रुकमणी मन्दिर में पहुंची तब कृष्ण उसे रथ में बिठा कर ले चले। पीछे सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। बलराम के मूसल के प्रहारों से सुसपाल का भाई (दंतवक्र) खेत रहा। सुसपाल को प्राण-रक्षा के लिए भाग कर चंदेरी जाना पड़ा, जहां भाभी के व्यंग-बाणों ने जले पर नमक का काम किया—

चंदड़ी देखण आई कंवरजी, कैसे मेल मिलाई।
थे तो परण रुकमणी लाया, ये सब मागे बधाई।
कहां तुमारी रंगडोलियां, कहां छै रुकमणबाई।
रुकमैया की मूंछ मुंडाई, अक्कल कहां गमाई।

रुकमैया सेना लेकर लड़ने पहुंचा तो पकड़ा गया, पर जब रुक्मणी ने सजल नेत्रों से अनुनय-विनय की तो वह कृष्ण-द्वारा छोड़ दिया गया। अब रुकमैया को सद्-बुद्धि उत्पन्न हुई। अतः भगवान कृष्ण से प्रार्थना की कि रुक्मणी का इस प्रकार अपहरण करके ले जाने से हमें अपयश का भागी होना पड़ेगा। अतः नियमपूर्वक वैवाहिक क्रिया सम्पन्न कर ली जावे तो हमें संसार को मुंह दिखाने की शक्ति रह जावेगी—

> अरज करूं छूं आप सै, यें सुणज्यो चत्त लगाई।
> रुकमण जावै लार कुंवारी, होवै घणी हलकाई।
> भीमसेन तो पिता हमारा, रुकमण को म्हूं भाई।
> परणी परण पधारस्यो, न तो होगी लोग-हंसाई।

कृष्ण की स्वीकृति के उपरांत विधिवत् विवाह सम्पन्न होता है। यहां ही कथा समाप्त हो जाती है।

आधार

'रुकमणी मंगल' की कथा अनेक पुराणों में-ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, भागवत-पुराण, ब्रह्म वैवर्त-पुराण आदि में तथा अनेक काव्य-ग्रंथों में—वत्सराज के रुक्मिणी-हरण और रुक्मिणी-परिणय, नंददास का रुक्मिणी मंगल, नरहरि बंदीजन का रुक्मणी-मंगल आदि में मिलती है पर हाड़ौती के नाटककार का आधार भागवत पुराण' तथा' ब्रह्म-वैवर्त-पुराण' ज्ञात होते हैं और अनेक स्थलों पर उसमें मौलिक उद्भावनाएं मिलती हैं, जिसमें लेखक की विनोद-प्रिय-प्रकृति और लोक रुचि दोनों का हाथ है।

'ब्रह्म वैवर्तपुराण' में रुक्मिणी के पिता *'गौतमस्य शतानंदो वेद वेदांगपारग'* पुरोहित से पुत्री के लिए उपयुक्त वर के लिए पूछते हैं, पर इस नाटक में यह नारद से पूछा गया है—

> रुकमण म्हूनो बाई को सजो, वर या दो बताई।

कृष्ण तथा रुक्मिणी के चरित्रों में जिस अलौकिक तत्व की स्वीकृति हाड़ौती के 'रुकमणी-मंगल' में है उसे 'ब्रह्मवैवर्त पुराणकार' इस प्रकार कहता है—

> 'भुवो भारावतरणे स्वयं नारायणो भुवि।
> वसुदेव सुतः श्रीमान् परिपूर्णतमः प्रभु।[1]

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण, द्वितीय भाग, १०५-२०

नारद का दो विरोधी पक्षों को भिन्न-भिन्न प्रकार के परामर्श देने की कल्पना नाटककार की निजी है, इससे नाटक में प्रारंभ से ही विरोध उत्पन्न हो गया है, जो अंत तक चलता है तथा नाटक के वस्तु-विस्तार में कलात्मकता ला देता है।

रुकमैया के व्यक्तित्व और कार्यों का वर्णन करने में हाड़ौती नाटककार 'ब्रह्म-वैवर्त पुराण' के अधिक निकट है। रुक्मि के शब्दों में ब्र० वै० पुराण में कृष्ण का चरित्र इस प्रकार चित्रित हुआ—

साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्ट भोजिने।

ब्र० वै० पुराण, द्वितीय भाग, १०५, १११।

और शिशुपाल को ऐसा बताया है—

कन्या देहि सुपुत्रां शिशुपालाय भूमिप।
बलेन रुद्रतुल्याय राजेन्द्र तनयाय च।

ब्र० वै० पुराण, द्वितीय भाग १०५-५४।

'रुकमणी मंगल' में कृष्ण और सुसपाल के चित्र उपर्युक्त चरित्रों से पर्याप्त साम्य रखते हैं। निम्नलिखित कथन भी इस पुराण के समान रुकमैया के ही हैं—

सखियां पाछे पड़यो रे छे, मांगे मई को दान।
गोकुल गऊ चरावतो स, धानें भलो सरायो खान।

और

आवे परणबा सुसपालो जीके नोबत लारां बाजे।
अस्यो राजा चंदेरी को, जाणे मंदर गाजे।

ये कथन क्रमशः कृष्ण और सुसपाल के संबंध में है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में कृष्ण के पास संदेशा रुक्मिणि के पिता ने भेजा है, पर हाड़ौती नाटककार तो 'भागवत' से प्रभावितहोकर रुकमणी के द्वारा पुरुषे से संदेशा भिजवाता है। संदेशवाहक ब्राह्मण के आदर सत्कार का वर्णन 'भागवत' के अनुसार हुआ है और वर्णन को पुनरह विस्तार भी मिला है।

सुसपाल तथा भाभी का कथांश और वैवाहिक तैयारियों की कथा नाटककार की मौलिक कल्पना है। जरासंध व दंतावक्र का बरात में आना तो दोनों पुराणों में वर्णित है, पर नाटकार ने सुसपाल को कायर बनाया है जो जरासंध की फूंक से बनता है। यह उनकी मौलिक कल्पना है।

युद्ध के वर्णन में 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' की छाया हाड़ौती नाटक पर स्पष्ट दिखाई देती है। दोनों में ही युद्ध का नेतृत्व बलराम के हाथ मे है। वे दंतापर (दंतवक्र) को मारते हैं, जरासंध को रण मे भगा देते हैं और रुकमैया को पकड़ लेते हैं। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' मे दंतवक्र के युद्ध के सम्बन्ध मे इस प्रकार मिलता है—

दंत वक्त्रस्य दंतंच बभञ्ज स हलेन च।
सु प्रवृत्तस्य युद्धे न ते सर्वे कुंडिनं वरयात्रिका। [१]

'भागवत' के अनुसार रुकमणी का हरण नाटककार ने कराया है, पर विवाह 'भागवत' के अनुसार 'द्वारावती' में सम्पन्न नही हुआ है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के अनुसार विवाह विधिवत् कुनणपुर मे ही हुआ है। नाटककार ने रुकमैया की मति परिवर्तित कर इस प्रसंग में नाटकीयता और औचित्य ला दिये हैं तथा नाटक को पूर्ण सुखात बना दिया है।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' मे कृष्ण के विवाह से पूर्व बलराम के विवाह का इस प्रकार उल्लेख है—

प्रददौ रेवती कन्या चाददासुरिथर यौवनाम्।
अमूल्य रत्न भूषाढ्यां त्रिपुलोकेषु दुर्लभाम्।
बलाय बलदेवाय संप्रदानेन कौतुकात्।
वयोवस्था गतं तस्ये युगानां सप्तविंशति। [२]

नाटककार ने इसके स्थान पर गणेश-विवाह के प्रसंग की सृष्टि की है और नाटक में हास्यरस का समावेश किया है। इससे इस नाटक मे रोचकता आ गई है। दर्शक की दृष्टि से हास्य-रस का प्रसंग अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है, जिसे नाटककार ने अत्यधिक कलात्मक ढंग से मूल कथानक की रक्षा करते हुए नाटक मे मिला दिया है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि हाड़ौती का प्राचीन नाटककार दोनों पुराणों से आवश्यकतानुसार सामग्री चयन करता है, विस्तार मे वह लोकरुचि की ओर देखता है तथा बीच-बीच में अपनी विनोद-प्रिय प्रकृति की झलक दिखाता हुआ चलता है, जिससे नाटक में कुछ मौलिक विशेषताएं उत्पन्न हो गई हैं।

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण, द्वितीय भाग, १०७-१६

२. ब्रह्मवैवर्त पुराण, द्वितीय भाग, १०६-२१

वस्तुतत्त्व

'रुकमणी-मंगल' की कथा का विकास अन्तर्द्वन्द्व और बाह्यद्वन्द्व में हुआ है जिसका सूत्रपात नारदीय क्रिया से हुआ है। द्वन्द्व की उपस्थिति से नाटक की कथा में उत्सुकता और कौतूहल आदि से अन्त तक बने रहते हैं। रुकमणी-परिवार में दो विरोधी-पक्ष हैं और दोनों का दुराग्रह दो बरातों को बुला लेता है। कुन्दणपुर में दो बरातों को देखकर दर्शक सांस रोककर परिणाम जानने को उत्सुक हो जाता है। तत्पश्चात् गौरी-पूजन के समय कृष्ण द्वारा रुकमणी के हरण से परिस्थिति और विषम हो जाती है—बाह्य द्वन्द्व प्रस्तुत हो जाता है। भयंकर युद्ध में कृष्ण का पक्ष प्रबल रहता है। कुछ योद्धा मारे जाते हैं, कुछ भाग जाते हैं और अन्त में रुकमैया पकड़ लिया जाता है। अब अंत समीप आकर भी दूर चला जाता है। दर्शक सोचने लगता है कि रुकमैया का क्या होगा? रुकमणी द्वारा प्रार्थना की जाने पर वह छोड़ दिया जाता है। अब पाठक सम्भवतः सोचता है कि नाटक समाप्त हो गया, पर रुकमैया की एक और प्रार्थना होती है कि विवाह शास्त्रीय विधि से सम्पन्न हो तो हमारी सम्मान-रक्षा हो सकेगी। इस प्रार्थना की स्वीकृति से नाटक का अन्त बदल जाता है। नाटक में सुखान्तता आ जाती है। सारांश यह है कि नाटककार ने आदि से अन्त तक कथात्मक आकर्षण बनाये रखने के सफल प्रयास किये हैं।

उपर्युक्त विवेचन आधिकारिक-कथा के सम्बन्ध में है। इसी नाटक में प्रासंगिक-कथा के अन्तर्गत गणेश के विवाह की कथा को ले सकते हैं जो आधिकारिक कथा को प्रभावित तो नहीं करती है, पर हास्यरसमयी होने के कारण नाटक को रोचक अवश्य बना देती है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे हम 'प्रकरी' के अन्तर्गत लेंगे।

यद्यपि कथा में आकर्षण अत्यधिक है, पर नाटक को पढ़ने पर उसमें कुछ प्रसंगों की उपस्थिति से व्याघात उत्पन्न हो जाता है। नारद का कृष्ण के सम्बन्ध में यह परिचय मनुष्य का परिचय नहीं है, अपितु अलौकिक शक्ति-सम्पन्न भगवान का परिचय है--

> मोर मुकुट का काना बीचै कुंडळ, ये हरी के सैंदाणी।
> म्हूं रकऊं छू सुण रे रुकमणी, थानै सांची जाण।
> संख, चक्कर दोर च्यार भुजा छै, गरुड़ासन असनाण।
> परी द्वारका कसन चंदर छै, यो सारो सहनाण।

इससे भी अधिक व्याघात उस समय उत्पन्न होता है जब रुकमैया के दुराग्रह [illegible] यह निश्चित सा हो जाता है कि रुकमणी का विवाह सुसराल में ही

सम्पन्न होगा। रुकमणी के लिए यह असह्य हो जाता है और वह जल में डूब कर आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। तब स्वयं भगवान कृष्ण प्रकट होकर कहते हैं—

ये क्यूं डूबो छो जल के माईने, सुण रुकमण प्यारी।

तत्पश्चात् आश्वासन-रूप में भगवान कृष्ण कह देते हैं—

में आवांगा परणबा सरी, कारज करस्या थारो।
थावा दे भीसम की कंवरी, म्हांके घरां पधारो।

इस पर भी रुकमणी को कहां विश्वास आता है। अतः वह 'रूप चतुर्भुज धारो' का आग्रह करती है। तब कृष्ण चतुर्भुज रूप धारण करके गरुडारोही निज रूप को दिखाते हैं—

थोरां नै तो घोड़ा सोवे, होवो गरुड़ असवार।

कलामर्मज्ञ दर्शक को ही क्या, एक साधारण दर्शक को भी यह ज्ञान हो जाता है कि तब कितने ही विघ्न आवें, पर रुकमणी का विवाह तो भगवान कृष्ण से ही होगा। परिणाम-संबंधी कोई उत्सुकता इस अंश का अभिनय देखने के उपरांत शेष नहीं रह जाती। 'आरम्भ' और 'अन्त' से परिचित दर्शक की उत्सुकता 'मध्य' में अवस्थित रह जाती है। हो क्यों नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का जीवन का आरम्भ होते ही अंत ध्रुव सत्य के रूप में सामने आ जाता है, फिर भी मध्य भी उन्मुक्तता, कौतूहल और जिज्ञासा का विषय बना रहता है। नाटक में रक्षित काव्यात्मकता और पद्यात्मकता 'अन्त' तक दर्शक की दृष्टि को उसकी प्राप्ति से पूर्व तक नहीं पहुंचने देती हैं।

चरित्र-चित्रण

रुकमणी:

'रुकमणी-मंगल' नायिका-प्रधान नाटक है। रुकमणी नाटक की नायिका है, जिसमें नारद द्वारा कृष्ण के रूप-गुण का वर्णन सुनकर प्रेम का उदय हुआ है। यह प्रेम *कायिक नहीं सात्विक और अलौकिक है, जो जन्म-जन्मान्तर से* उसमें तथा कृष्ण में चला आ रहा है। प्रेम की तीव्रता इतनी है कि वह भाई रुकमैया और माता के विरोध पर भी दृढ़ रहती है। पर रुकमणी का प्रेम लौकिक कृष्ण से नहीं, 'चतुर्भुज-धारी' और 'गरुडारोही' कृष्ण से है—

बावा हो म्हूं जब देऊंगी रूप चतुर्भुज धारो।
जब देस्यो बावा नई दूंगी, मोई नेम छै म्हारो।

अतः वह तब तक आत्महत्या के निश्चय को नहीं बदलती जब तक कृष्ण उसे स्वप्न में आके दर्शन नहीं करा देते हैं। नारी का कोमल हृदय प्राप्त करके भी वह धैर्यहीन नहीं है। विप्र को कृष्ण के पास भेजकर तथा उपयुक्त समय पर गौरी-पूजन के लिए पहुँचकर वह अपनी सूझ-बूझ का परिचय देती है। उसमें अपने भाई के लिए प्रेम विद्यमान है—

> बांग फाड़तो रुकमैया की, यो छै म्हारो वीर।
> साख गई, थांकै लाज गई, थां आणो कांई पीर।

और गुथपाल से वह घृणा करती है—

> म परणूं गुथपाल मैं स, यू गुण ले ध्यान लगाई।
> अरज करूं छूं आप सै सखी, सखियां दो र बुलाई।

कृष्ण

'रुकमणी-मंगल' के कृष्ण मनुष्य कम, ईश्वर अधिक हैं। भीसम उन्हें परब्रह्म मानते हैं और वे भी रुकमणी को आत्महत्या के प्रसंग में इस प्रकार अपना परिचय देते हैं :—

> रूप चतरभुज धारां आज जी, सुण रुकमणी प्यारी।

रुकमणी के प्रति उनके हृदय में अगाध प्रेम है। गौ ब्राह्मण तथा वचनों का पालन वे किसी भी अवस्था में करने का दृढ़ संकल्प लिये रहते हैं। वज्रादपि कठोर कृष्ण कुसुमादपि कोमल भी हैं। इसीलिये रुकमणी के आंसू की कुछ बूंदें रुकमैया को कृष्ण के हाथों से जीवन-दान प्रदान करा देती है। युद्ध-कौशल में अद्वितीय कृष्ण सच्चे वीर और महान् पुरुष हैं।

नाटक के शेष पात्रों का चरित्र कम सामने आया है। भीसम में कृष्ण के प्रति अटूट भक्ति है। इसीलिये पुत्र तथा पत्नी के विरोध के उपरांत भी वह अपने निर्णय को नहीं बदलता। गृहपति होकर भी उसका व्यक्तित्व इतना दुर्बल है कि पुत्र और पत्नी के सामने उसकी बिल्कुल नहीं चलती। रुकमैया दुराग्रही, कृष्ण-विरोधी और विवेकहीन है। पूज्यों की भावनाओं का सम्मान करना या गुरुजनों के प्रति उचित व्यवहार करना उसे नहीं आता। वह भीतर से कायर है और युद्ध-कौशल में निपुण नहीं है, पर अन्त में कृष्ण से अपनी बहिन का विधिवत् विवाह सम्पन्न करने के प्रस्ताव से उसकी सूझ-बूझ का भी परिचय मिलता है।

सुसपाल और जरासंद राक्षसीय प्रवृत्ति के पात्र हैं, जो प्रकट में वीर है, पर भीतर से कायर हैं। अतः युद्ध में माग खड़े होते हैं। सुसपाल तो प्रत्यक्ष में भी कायर है। जरासंद से प्रोत्तेजित किये जाने पर ही वह विवाह का टीका स्वीकार कर सका है।

नाटक के पात्रों की केवल स्थूल रेखाएं उभर पाई है। वे वर्गगत (टाइप) अधिक प्रतीत होते हैं, व्यक्ति कम। कुछ पात्र तो नाटककार के संकेत पर ही चलते हैं।

रस

'रुकमणी-मंगल' में प्रधान रस शृंगार है। वीर तथा हास्य रसों की सामग्री भी नाटक मे विद्यमान है। 'मंगल' नायिका-प्रधान नाटक है, जिसमें रुकमणी आश्रय है और कृष्ण आलम्बन। जिस 'रति' स्थायी को रुकमणी मे देखते हैं उसके संयोग और वियोग-उभय-पक्षों का चित्रण नाटक मे हुआ है। रुकमणी मे जिस पूर्वानुराग को 'मंगल' के प्रारम्भ में दिखाया गया है उसकी उत्पत्ति श्रवण से हुई। नारद के द्वारा कृष्ण के सौंदर्य तथा गुणों का वर्णन सुनकर रुकमणी के हृदय मे प्रेम का उदय हुआ है। वही प्रेम मिलने से पूर्व इस दशा को प्राप्त हो गया कि रुकमणी कृष्ण के न प्राप्त होने की सम्भावना से आत्महत्या करने तक के लिए उद्यत हो जाती है। रुकमणी का अश्रु-मोचन, आत्म-हत्या के लिए यमुना तट पर जाना, माता-भाई का विरोध करना, पत्र लिखकर प्रेषित करना, गुरु-द्वारा संदेश भेजना आदि अनुभाव हैं और कृष्ण के स्वरूप तथा कार्यों की 'स्मृति', मिलने की 'चिन्ता' 'व्याकुलता', 'अधीरता', 'ग्लानि', 'वितर्क' आदि संचारी हैं।

'आत्म-ग्लानि' तथा 'वितर्क' की कितनी मार्मिक व्यंजना रुकमणी के स्वगत-कथन में मिलती है। वह कहती है कि मैंने कौन सा पाप कमाया था कि सुसपाल मुझे वर रूप मे मिल रहा है। या तो मैंने भूखे ब्राह्मण को भोजन पर से उठा दिया होगा या निर्दोष को दोषी बना दिया होगा, या मैंने भगवान की भक्ति नहीं की होगी, या सत्संग नहीं किया होगा या मैंने चरती गाय को मारा होगा, अथवा कुमारी कन्या को मारा होगा या मैंने साधुओं की निंदा की होगी, अथवा झूठे ही किसी बात को स्वीकार कर लिया होगा—

> स्वामी कवण पाप कमायो, वर सुसपालो आयो।
> के भूका बामण उठाया, अणु दोस्यां दोस लगाया।

कै मैं हरी की भगती न जाणी, संत-संगत नांई' पछाणी।
कै मैं परती गऊ बिडारी, कै मैं कुंवारी कन्या मारी।

× × ×

कै साधां की नंदरा कीनी, म्हूं झूंठो चुगली खाई।

माता के समझाने पर रुकमणी के उत्तर में 'मति' की कितनी सुन्दर व्यंजना है—

मानसरोवर हंसा देख्या, काग नजर नईं आवै।
समंदरां सूं सीर पड्यो जब, नाडूल्या कुण न्हावै।
हसती ऊपर बैठ्या चाले, तुरंग कहा मन भावै।
दस मोतीयन की माळा फेरयां, थानैं बेई सुवावै।

'हंस तो मानसरोवर के तट पर ही जाते हैं वहां कौआ दृष्टिगत नहीं होता है। जब समुद्र ही बांट में आ गया तो छीलर में कौन स्नान करे। जो सदैव हाथी पर बैठा चले उसको अश्व कहां प्रिय लग सकते हैं, सुसपाल नहीं। शृंगार रस का संयोग-पक्ष उतना नहीं उभर पाया है जितना वियोग। क्योंकि जहां संयोग घटित होता है उसके ठीक पश्चात् ही नाटक समाप्त हो जाता है।

वीर रस के आश्रय बलराम हैं और आलम्बन सुसपाल, जरासंध, रुकमैया आदि शत्रुदल के योद्धा हैं। बलराम की युद्धवीरता के प्रसंगों से नाटक का उत्तरार्द्ध भरा पड़ा है। बलराम के हल-मूसल के प्रहार शत्रु की प्रबलता के साथ बढ़ते जाते हैं और वे अपने 'धृति', 'उत्साह', 'अमर्ष' आदि का परिचय देते हैं।

हास्य रस के आलम्बन गणेश बनाये गये हैं। उनकी विचित्र आकृति का नाटककार इस प्रकार वर्णन करता है :—

मोटी पींड्यां लागै थाम सी, यो छै दुंद दुंदाळो।

× × ×

साजै भीम गुमारी यागे, मलग मोटा कान।
भोजन भी यो गैरो म्हारै, म्हारी सींग्यो मान।
...यो मलग मूंग गुवार में मरग मावल, कार्यश का सामान।

...का प्रभाव भी यह हुआ कि हलधर ने गणेश को साथ न ले... लिया। नाटककार विकृत आकृति का ही वर्णन करके हास्य-

की सृष्टि नही करता है, अपितु परिस्थिति को और विकृत बनाकर दर्शक को रस-मग्न करना चाहता है। अतः नारद को गणेश के पास पहुँचाकर कहला देता है, यह भी कोई बात है कि पहले तो आपको निमंत्रण दे दिया और फिर लौटा दिया। यह तो आपका घोर अपमान किया है। अब आप टका-सा मुंह लेकर चले आ रहे हो। बताओ, आपने इसमें कौन सा दक्ष कमाया। तनिक सोचो तो-क्या आपको निमंत्रण-पत्र नही भेजा था? क्या आप स्वतः ही चले आये थे? और तो और, जब आप चल आये तो पीछे से सबने बड़े दांत निकाले—

> फैलो बलाया पाछा फेरया, थाको मान बगाड़यो।
> फैलो आप बलाया गणपत, फेर पाछा फरवाया।
> लाजां मरतां पाछा आया, कांई बड़ाई लाया।
> सोतो थाके दीनूं नांई, सपरयांई यें आया।
> थाके आया पाछे गणपत, सबनें दांत चलाया।

भक्ति रस के भी दर्शन भीसम के कथनो मे हो जाते हैं–जहां वह व्यथित होकर भगवान को रक्षा के लिये पुकारता है।

हाड़ौती कहावतें

हाड़ौती कहावतों में इस क्षेत्र के लोक जीवन के संचित अनुभवों का परिचय मिलता है। इनमें व्यापक अनुभवों का संचित भंडार है। जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित ये कहावतें उसे पग-पग पर मार्ग-दर्शन करती रहती हैं। ये हाड़ौती जनों के लिये नीति शास्त्र का कार्य करती हैं। इनमें जीवन के व्यावहारिक सत्य तथा शाश्वत सत्य अति सुन्दरता से रक्षित मिलते हैं। इनके अध्ययन से हाड़ौती लोक-जीवन का सर्वांगीण अध्ययन संभव है। जीवन का कोई अंश इनके दृष्टिपथ से परे नहीं है। शताब्दियों के अनुभवों को पद्य में भिन्न-भिन्न कर के ऐसी अनमोल मणियाँ बन गई हैं कि इन्हें धारण कर प्रत्येक व्यक्ति गौरवान्वित अनुभव कर सकता है।

हाड़ौती कहावतों का वर्गीकरण

सुविधा की दृष्टि से हाड़ौती कहावतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। यह वर्गीकरण वर्ण्य-विषय को लेकर किया है।

१. कृषि-सम्बन्धी कहावतें।

२. समाज-सम्बन्धी कहावतें।

(क) जाति-सम्बन्धी कहावतें।

(ख) नारी-सम्बन्धी कहावतें—

३. धर्म और नीति-सम्बन्धी कहावतें—

(क) धर्म-सम्बन्धी कहावतें।

(ख) नीति-सम्बन्धी कहावतें—

(१) श्रेय-मार्ग-सम्बन्धी कहावतें।

(२) प्रेय-मार्ग-सम्बन्धी कहावतें।

४. ऐतिहासिक कहावतें।

५. शिक्षा व ज्ञान-सम्बन्धी कहावतें।

(क) शिक्षा सम्बन्धी कहावतें।

(ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें।

६. विविध कहावतें।

(१) कृषिसम्बन्धी कहावतें

हाड़ौती का क्षेत्र प्रकृति की उदार क्रीड़ास्थली है । वर्षा की प्रचुरता और चिकनी काली मिट्टी की उर्वरता से यह भू-भाग कृषि-प्रधान रहा है। यहां अधिकांश में कृषि व्यवसाय ही पाया जाता है इसलिये कृषि और वर्षा सम्बन्धी अनेक कहावतें प्रचलित हैं ।

हाड़ौती में 'असाड़ी' शब्द से आषाढ मास मे खेती की जुताई का बोध होता है। ऐसा विश्वास है कि आषाढ में खेत को जितना अधिक जोता जावेगा उतनी ही फसल अच्छी होगी। अतः जो किसान इस अवसर का सदुपयोग नही करता उसको हानि ही उठानी पड़ती है—

डाळ को चूक्यो बानरो अर असाड़ी को चूक्यो करसाण न संभळै ।

वर्षा का खेती के लिये अति महत्व है । वर्षा-सम्बन्धी विस्तृत जानकारी इन कहावतो मे सुरक्षित है। यदि ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा तथा आषाढ कृष्ण-पक्ष प्रतिपदा को वृष्टि नही हुई तो ७२ दिन तक पानी नही बरसता--

पून्यूं पड़वा गाळै ।
दन बै'त्तर टाळै ।

एक अन्य कहावत में तीतर के रंगवाली बदली-द्वारा अवश्य ही वृष्टि की जाने का उल्लेख है—

तीतर बरणी बादळी, बदवा काजळ रेख ।
वा बरसै वा घर करै, ईं में मीन न मेख ।[1]

इसी प्रकार लाल बादल बरसने वाले तथा पीले न बरसने वाले होते हैं, इसे एक कहावत मे दिखाया गया है—

आभा राता, मे' ताता ।
आभा पैळा, मे' सेळा ।

---

१. मिलाइये—मोरपंख बादर उठै, रांडा काजर रेख ।
बह बरसै, वह घर करै, यामें मीन न मेख ।
घाघ और भड्डरी, पृष्ठ ११ ।

एक कहावत में पानी बरसने की सीमा आश्विन तक बतलाई गई है—

सामू जतरे सासरो, मामू जतरे मे'।

सारी खेती प्रकृति पर आश्रित है। अच्छी फसल तब होगी जब मृगशिर नक्षत्र में हवा चले, रोहिणी में भीषण गर्मी पड़े और आर्द्रा में वृष्टि हो। यदि ऐसा नहीं होता तो भगवान ही रक्षक होता है—

मरगसर बाज्या न बायरा, रोयणी तपी न जेठ।
आदरा जो बरसी नई, परभू जी राखै टेक।

यदि भरणी नक्षत्र में वर्षा हो तो भयंकर अकाल पड़ने की सम्भावना होती है—

बरसै भरणी, छोड़ो परणी।

खेती का लाभालाभ खेत में निर्णय नहीं किया जा सकता, पता नहीं कब क्या हो जावे। अतः घर पर अनाज आने पर ही उसके लाभालाभ का निर्णय हो सकता है—

हरी खेती अर ब्यावण गाय, घर आयां की छै।

यही नहीं, एक अन्य कहावत में सर्दी तक पर विचार किया गया है। माह मास की सर्दी फसल के लिए लाभकर और फाल्गुन की हानिकर होती है :

माह उबारे।
फागण बाळे।

फसल का अच्छा होना मौसम के अतिरिक्त खाद पर भी निर्भर होता है, इसे एक कहावत में दिखाया गया है—

खात पड़े तो खेत।
न तो कूड़ो रेत।

एक अन्य कहावत में बतलाया गया है कि कृषकों का फसल बोने का समय चाहे भिन्न हो पर सब फसलें पकती तो कातिक मास में ही है—

काती।
सब साथी।

इसी प्रकार खेती-विषयक अन्य अनुभव भी अनेक कहावतों में भरे पड़े हैं—

१. राड़ मे बाड़ भली।

(लड़ाई की अपेक्षा खेत में काढ़ कर लेना अच्छा है)

२. राम भरोसै खेती।

(खेती भगवान पर आश्रित है)

३. करम हीण खेती करै,
बैल मरै, कै सूखो पड़ै।

(भाग्यहीन खेती करेगा तो या तो बैल मरेगा या वृष्टि नहीं होगी)

४. आसोजां का तावड़ा।
जोगी होग्या बावड़ा।

(आश्विन की धूप से किसान का शरीर जोगियों के समान काला पड़ जाता है)

हाड़ौती में कुछ कहावतें भाव व मजूरी की भी प्रचलित हैं। उनमें से एक देखिये :—

असाढ़ मास पूनूं दिवस, बादल घेरे चंद।
तो भड्डर जोसी कहे, होवै घणूं आणंद॥

२. समाज-सम्बन्धी कहावतें

(क) जाति-सम्बन्धी कहावतें : हाड़ौती कहावतों में जाति-सम्बन्धी ज्ञान प्रचुर मात्रा में मिलता है। प्रत्येक जाति के सम्बन्ध में स्वतन्त्र तथा तुलनात्मक अनुभव हाड़ौती कहावतों में भरे पड़े हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जाट, नाई, गूजर, तेली, कुम्हार, सुनार आदि सभी जातियों-सम्बन्धी अनुभव इन कहावतों में मिलते हैं। इन सबके विस्तृत अध्ययन से जातिगत विशेषताओं को भली प्रकार समझा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जाति-सम्बन्धी कहावतों में लोक-दृष्टि जाति के समस्त की ओर न जाकर व्यक्तिगत पर ही प्रायः केन्द्रित है, जिसके परिणामस्वरूप एक व्यक्ति का अनुभव ही उस जाति के सम्बन्ध में प्रकट हो जाता है। यदि तथाकथित विस्तृत ज्ञान इन कहावतों से प्राप्त हो सका होता तो किसी जाति का व्यवस्थित अध्ययन करके कुछ सार्वभौम निष्कर्षों पर पहुंचा जा सकता था। नीचे विभिन्न जातियों-सम्बन्धी कहावतों पर विचार किया जाता है—

ब्राह्मण

ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों से उनकी व्यावहारिक मूर्खता, भोलापन, आलस्य और पारस्परिक द्वेष की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। मसला सम्बन्धी कहावतें प्रस्तुत हैं—

ब्राह्मण परम आलसी होता है, इसको इस कहावत में दिखाया गया है :

बाह्मण की बरात में बाट्यां की राड़।

ब्राह्मण की बरात में बाटियों की लड़ाई हो, यह आश्चर्यजनक बात है; जब कि उनमें से प्रत्येक पाक-शास्त्र-विशारद होता है—

दायमा ब्राह्मण किसी का आदर भी अस्वीकार करता है :—

दायमा की दारी जात।
आयां पाछे मारे लात।

ब्राह्मण में पारस्परिक शत्रुता रहती है :—

बामण, कुत्तो, नाती, न सुहावै आनै दूसरो साथी।

पर फिर भी ब्राह्मण शीर्षस्थ होता है—

मूसळ के घणी नै।
बामण के घणी नै।

यदि ब्राह्मण बोलता नहीं तो उसका अनादर हो जाता है—

बामण भाट, कुत्तड़िया, जो मुख मोटा होय।
गरयाळां रूल्या फरै, बात न पूछै कोय।

क्षत्रिय

क्षत्रिय अपनी वीरता व दृढ़ निश्चय के लिए प्रसिद्ध है। उसकी दृढ़ता का उल्लेख इस कहावत में देखिये—

गाडा टळे, पण हाडा न टळे।

एक अन्य कहावत में राजपूत के आस पास व्याप्त भय का इस प्रकार चित्रण है—

रांगड़ो तो कूंळै मंढ्यो ई दहै छै।

राठौड़ों की वीरता से सम्बन्धित एक कहावत इस प्रकार प्रचलित है—

रण-बांका राठौड़ ।

बनिया

बनिया-सम्बन्धी कहावतों में उसकी स्वार्थ-परता प्रकट होती है। उसकी विविध उपजातियों के सम्बन्ध में भी लोक धारणा अनुकूल नहीं है।

एक कहावत में परिचित व्यक्ति से भी बनिये की अधिक लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति दिखाई गई है—

बाण्यूं घर बैल पर्छाण र मारै छै ।

दूसरी कहावत मे यही भाव उसकी अमित्रता को लेकर दिखाया गया है—

बाण्यूं मित्र, न वेश्यां सती ।
कागो हंस न, गधो जती ।

वणिक्-वर्ग का एक प्रकार विजयवर्गीय होता है। उसके सम्बन्ध मे लोक-धारणा है कि वह बड़ा चालाक तथा शैतान होता है—

बीजो मूतै, वां बीछू ब्यावै ।

बनिया बुद्धि-द्वारा परिणाम को सोचकर कार्य करने वाला होता है—

अग्गम बुद्धि बाणिया, पाछली बुद्धी जाट ।
तुरत बुद्धी तुरकड़ा, बामण संपट पाट ।

जाट

जाट-सम्बन्धी कहावतों का मुख्य वर्ण्य-विषय उसकी मूर्खता रहा है। उसे अन्य जातियों की तुलना में कम बुद्धि वाला बताया गया है, जैसा कि बनिया-सम्बन्धी दी गई अन्तिम कहावत से प्रकट हो जाता है। एक अन्य कहावत भी इसकी पुष्टि करती है—

गंगाजी की बाट पर ऊंचे नीचे म्हारी खाट ।

इस कहावत के साथ एक कहानी भी इस प्रकार जुड़ी हुई है। एक समय ग्रीष्म-ऋतु में कोई जाट खुले आकाश के नीचे सो रहा था। उसके एक मित्र को एक मजाक सूझी और उसने कहा कि देख, तेरी खाट ठीक आकाश-गंगा के नीचे है, जो अच्छा नहीं है। जाट को इससे बहुत परेशान हुई। वह अपनी खाट को लेकर

सारे आंगन व छात पर फिरता रहा, पर उसे कोई ऐसा स्थान दिखाई नहीं दिया जो आकाश गंगा के नीचे न हो। अन्त में उसने घर के भीतर चारपाई बिछाई और सो रहा।

यह कहावत कई रूपों में प्रचलित है—

जाट रै जाट, थारी गंगा तळै खाट।

या जाट रै जाट थारै माथै गंगाजी की खाट।

जाट कभी अपना नहीं बनाया जा सकता, यह एक अन्य कहावत में बताया गया है—

जाट, जंवाई, भाणजो, रैबारी र सुनार।

एता होवै न आपणां, ज्यूं लाख करो सनमान।

जाट से मिलती-जुलती विशेषताओं से युक्त 'गूजर के ग्यान नै, दांतलो कै ग्यान नै' आदि कहावतें मिलती हैं, जिनमें गूजरों पर भी अज्ञानता का आरोप है।

नाई

नाई के सम्बन्ध में अनेक कहावतें मिलती हैं, जिनमें उसकी चतुरता, प्रत्युत्पन्न-मति, चालाकी, धूर्तता आदि विविध विशेषताओं को दिखाया गया है। ये सब विशेषताएं व्यवसाय जन्य हैं। वह भारतीय समाज-रचना का एक महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य अंग है, जिसके अभाव में हमारा कोई मांगलिक कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता।

एक कहावत में उसे अत्यधिक चालाक बताया गया है—

नरों मे नाई, पखेरू में काग।

काणी में को खावच्यो, तीनूं दगाबाज।

उसकी प्रत्युत्पन्नमति सम्बन्धी एक दूसरी कहावत है—

नाई नाई बाळ कतना?

जजमान, हांवैगा ज्यो आगै आ जावैगा।

एक अन्य कहावत में नाई का उपहास भी किया गया है:

चारण कर दे चतरभुज, नाई मत कर नाथ।

पग दाबे, पाद सूंघे, ऊंट्याड़ा में हाथ।

कायस्थ

कायस्थों के प्रति संस्कृत-प्राकृत में ऐसे छंद मिलते हैं जिनमें उनके प्रति सामाजिक अनुदारता का परिचय मिलता है—

कायस्थे नोदरस्थेन मातुर्मांसं न भक्षितम्।

मा जानीहि दयाभुत्वं तत्र हेतुरदन्तता।

---

१. चाणक्ये—नराणां नापितो धूर्तः।

पक्षीणां चैव वायसः।

इसी का गद्यानुवाद हाड़ौती में भी मिलता है जो कहावत रूप में प्रयुक्त होता है—

गरभ माईनै दांत पातो ।
तो माई को मांस खातो ।

एक अन्य कहावत में कायस्थ में जातीय संकीर्णता दिखाई गई है—

खायथ, खत्री, कूकड़ा, ज्यात ज्यात नै पाळै ।
बामण, स्वामी, सेवड़ा, ज्यात ज्यात न मारै ।

कुम्हार

कुम्हार की स्थिति का चित्रण-सम्बन्धी एक छंद मिलता है—

थापै, फोड़ै, खीद बुवारै; राखै थंता गारा की ।
उठतां सोतां रेवड़ो कुराळै, भूली जात कुंभारा की ।

यह दुराग्रही रूप में भी एक अन्य कहावत में बताया गया है—

खमार मे खै गद्दा पै बैठ, तो न बैठै ।

इसी प्रकार अन्यान्य जातियों के सम्बन्ध में भी अनेक कहावतें प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ तो उनकी ही विशेषताओं पर प्रकाश डालती हैं और कुछ का प्रयोग अन्योक्ति रूप में होता है जैसे, दण्डनीय सबल दोषी के स्थान पर अदण्डनीय निर्बल व्यक्ति को दण्ड मिलते देखकर प्रायः कहा जाता है—

धोबी धोबण नै तो न पूगै । अर गद्दी का कान एंठै ।

और 'खमार का घर में फूटो करवो' का प्रयोग तब किया जाता है जब किसी वस्तु का निर्माता ही उसका समुचित उपभोग न कर रहा हो ।

जातियों का तुलनात्मक अध्ययन

अनेक कहावतें ऐसी मिलती हैं जिनमें जातियों का अध्ययन तुलनात्मक ढंग से करने के प्रयत्न किये गये हैं । किसी एक विशेषता के आधार पर किसी कहावत में उनकी पारस्परिक तुलना भी मिलती है और किसी अन्य कहावत में समान स्वभाव वाली जातियों को एक वर्ग में भी रखा गया है । इस प्रकार का अध्ययन करते समय मनुष्य ही नहीं, कहावतों की ज्ञान-परिधि में पशु, पक्षी वस्तुएं आदि सब आ जाते हैं ।

एक कहावत में व्यावहारिक बुद्धि के आधार पर विभिन्न जातियों की तुलनात्मक जानकारी 'अगम बुद्धि बाणयां'''वाली कहावत में मिलती है ।

एक अन्य कहावत में दो प्रकार की जातियां बतलाई हैं । पहली वे, जो स्वसदस्यों को परस्पर सहायता पहुँचाती है और दूसरी वे, जिनके सदस्य परस्पर सहायक न होकर द्वेष करते हैं तथा हानि पहुँचाते हैं, जो 'खायथ खत्री कूकड़ो....' वाली कहावत से स्पष्ट हो जाता है ।

एक ही ब्राह्मण जाति की विभिन्न उपजातियों का तुलनात्मक अध्ययन इस कहावत में मिलता है–

मरयो बामणूं जीवतो गूजर गोड़ नै मारयो।

इस कहावत के पीछे एक कहानी है। दो ब्राह्मण मित्र थे। उनमें से एक गुर्जर-गौड़ ब्राह्मण था तथा दूसरा दाहिमा। दोनों विदेश में थे। दाहिमा के पास कुछ पैसा था। जब उसकी मृत्यु निकट आई तो उसे आशंका हुई कि मेरी मृत्यु के उपरांत यह मेरे समस्त धन को हड़प जायेगा। अतः उसने एक युक्ति सोची। उसने अपने मित्र से कहा, 'मित्र, हमारी जाति का एक नियम है कि मरने के उपरांत व्यक्ति के सिर में लोहे का कीला ठोक दिया जाता है। इस नियम का पालन तुम्हे मेरी मृत्यु के उपरांत करना है।' अन्त में, एक दिन दाहिमा चल बसा और गुर्जर-गौड़ मित्र ने वही किया जो उसके मित्र ने कहा था। कुछ समय पश्चात् पुलिस वहां आई और उसे पकड़ ले गई। दाहिमा की हत्या करने के अपराध में गुर्जर-गौड़ मित्र को मृत्यु-दण्ड मिला। इसी से उपर्युक्त कहावत चल निकली बताते हैं।

एक अन्य कहावत में यह गुर्जर गौड़ भी सरल नहीं, विकट बतलाया गया है, पर उसके साथी कुछ और भी हैं –

बीजावरगी बाणियां, बामण गूजर गोड़।
आभे आण मने दायमो, तो करे साह नै चोर।

ये जाति सम्बन्धी कहावतें लोक के अनुभवों पर आधारित होती हैं। अतीत में समाज-व्यवस्था का आधार जाति-प्रथा थी और व्यवसायों का निर्णय भी अधिकांश में जातिगत होता था। आज भारतीय समाज-व्यवस्था में काफी परिवर्तन हो गया है। हमारे व्यवसाय जाति-परक न होकर व्यक्ति की क्षमता और योग्यता के आधार पर निश्चित होते हैं। व्यक्ति के निर्माण में जहां संस्कारों का हाथ है वहां उससे कहीं महत्वपूर्ण हाथ परिस्थितियों का है। व्यवसाय-गत परिस्थितियां व्यक्ति के व्यक्तित्व को बनाने मे महत्वपूर्ण योग देती हैं। इस प्रकार आज के समाज में जाति के आधार पर किन्हीं निर्णयो पर पहुँचना भ्रामक सिद्ध होगा। अतः उपर्युक्त कहावतों मे दिखाई गई जातिगत विशेषताएं आज कोई विशेष महत्व नहीं रखती हैं।

(ख) नारी सम्बन्धी कहावतें––

नारी-सम्बन्धी कहावतें उसकी सभी अवस्थाओं से सम्बन्धित हैं। बाल्यावस्था को छोड़ शेष सभी अवस्थाओं की कहावतों में स्त्रियों की निरीहता व चरित्र हीनता का ही निरूपण मिलता है। पुत्री के प्रति भी अनुदार सामाजिक दृष्टिकोण मिलता

है। पिता का ममत्व भी कतिपय कहावतों का वर्ण्य-विषय है। इस कहावत में पुत्री के मंगलमय भविष्य की चिंता मिलती है :—

बेटी दीजे जाण र।
पाणी पीजे छाण र।

जब तक पुत्री का विवाह नहीं हो जाता तब तक उसके वाग्दान की चर्चा चलती रहती है। इसलिये कहा जाता है–

कंवारी कन्या का छत्तीस वर।

युवती स्त्री सम्बन्धी कहावतों में यह उदारता नहीं मिलती। उसके चरित्र को लेकर अनेक कहावतें प्रचलित हैं—

बेटी रैवै आप सै।
न रै तो कोई का बाप सै।

या

तिरिया चरित्र जाणै नईं कोई।
मणस मार के, सती होई।

इसी भाव से मिलता-जुलता भाव निम्न कहावत में भी है—

जमी, जोरू जोर की।
जोर घट्यां पै ओर की।

तेरह वर्ष की स्त्री में और पन्द्रह वर्ष के पुरुष में बुद्धि आई तो आई, अन्यथा वह मूर्ख ही रह जाता है, यह भाव इस कहावत में मिलता है—

तेरा बरस की तिरिया, पंदरा बरस को पुरख।
अक्कल आई तो आई, न तो रैग्यो जरख।

विधवा स्त्रियों के प्रति लोक ने सजग दृष्टि रखी है और दीर्घकालीनीन अनुभव-सिद्ध सत्य को इस कहावत में व्यक्त किया गया है—

तीतर वरणी बादळी, बधवा काजळ रेख।
वा बरसै वा घर करै ईं मैं मीन न मेख।

और एक अन्य कहावत में उसकी दयनीय स्थिति और स्त्री-सुलभ दुर्बलता का इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

रांडबेर रंडापो काटै, पण गांव का लोग न काटवा दे।

स्त्री के अंग-भंग को लेकर भी अनेक व्यंग्यमयी कहावतें प्रचलित हैं। काणी का ब्याव में सतरा नखरा, नकटी के लोऊ्यो होयो तो सारी रातई उठ-उठर पाणी पीवै, आदि ऐसी कहावतें हैं। 'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजो बार' वाली प्रसिद्ध लोकोक्ति हाड़ौती की ही नहीं समस्त उत्तरी भारत की निधि बन गई है। एक अन्य लोकोक्ति में स्त्री के खान-पान पर भी इस प्रकार विचार व्यक्त हुए हैं—

जेवड़ा खाणू बेल, अर सेवञ्या खाणी लुगाई, खरीं सावर मैं नै आवै।

तथा—

आदम्यां ईं खव्याई, अर लुगाई मठ्याई।

उपर्युक्त कहावतों के अतिरिक्त परिवार और समाज के अन्य रूप भी लोक-दृष्टि से छूट नहीं पाये हैं। प्रायः सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित कोई न कोई लोकोक्ति मिल जाती है। मामा के घर में भानजे की सुखद स्थिति इस कहावत में दिखाई गई है—

मामा को घर, अर मा परूसबा हाळी।

ससुराल में घर-जंवाई की स्थिति इस प्रकार मिलती है—

परदेस जंवाई फूल बराबर, गाम जवांई आधो।
घर जंवाई गधा बराबर, मन आवै जद लादो।[1]

सम्बन्धों में सबसे अधिक प्रिय सम्बन्ध साडू का और प्रिय भोजन लड्डू का बताया है—

सगा मैं साडू।
पकवान मैं लाडू।

भाई-बहिन के सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है—

होत की बैण, कुहोत को भाई।
फीर बेटी, नार पराई।
जागै, सो नर जीवै।
सोवै सो मरै।
गम खावै, सो आणन्द करै।

---

१. मिलाइये : आवत जात न जानहि, तेजहि तजि सियरानु।
घरह जंवाई लौं घट्यो, खरो पूस दिन मानु। बिहारी सतसई, दोहा १७१

भाइयों के पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ जाने पर भी उनका साथ रहना अच्छा है, यह सत्य इन लोकोक्तियों में व्यक्त हुआ है—

चालबो सड़क को, चाहे फेर ई होवै ।
रै'बो भायां को, चाहे बेर ई होवै ।

और

भायां भली दोखसी, दुनियां (बैरी) मानै काए ।

इसी प्रकार एक कहावत में ज्येष्ठ भ्राता के पुत्र के सम्बन्ध में मिलता है—

जेठ को, सो पेट को ।

एक अन्य कहावत में हमारी उदार आतिथ्य-भावना का कथन मिलता है—

भाटा को कांई घाटो ।

जातिगत ऊंच-नीच के उपरान्त भी किसी धरातल पर मनुष्य होने के नाते हम बराबर है, इस सत्य का अवलोकन 'आतमा, सो परमातमा' कहकर भी किया है और भावना के आधार पर भी । अत: इसी समता की भावना से प्रेरित होकर एक कहावत में ये भाव व्यक्त हैं—

मूंग से मूंग बड़ो कोई नै ।

तो दूसरी ओर सामाजिकों में व्यक्तिगत भिन्नता को भी स्वीकार किया है । आकार-भेद, बुद्धि-भेद, रंग-भेद आदि मनुष्य-द्वारा स्थापित किसी व्यवस्था से मिटाये नहीं जा सकते, इस सत्य का अनुभव एक कहावत में मिलता है—

पांचू आंगल्यां बरोबर न होवै ।

फिर भी व्यक्ति की अपेक्षा समाज की प्रधानता हमारे यहां रही है । हम सामाजिक अधिक हैं, वैयक्तिक कम । इसीलिये पांचों या समाज को सर्वोपरि समझने का संकेत इस कहावत में मिलता है—

पंच सो परमेसर ।

(३) धर्म और नीति सम्बन्धी कहावतें

(क) धर्म सम्बन्धी कहावतें

धर्म और जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतों के अन्तर्गत धर्म के तात्विक रूप तथा रूढ़िगत रूप व अंध-विश्वास आदि सम्बन्धी स्वीकृतियों

को देखा जा सकता है। इसी के अंतर्गत व्यावहारिक जीवन-सम्बन्धी लोकोक्तियों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

हाड़ौती-क्षेत्र में धर्म और नीति-सम्बन्धी वे ही मान्यताएं हैं जो समस्त भारत में व्याप्त हैं। इसीलिये एक कहावत में परमात्मा को सर्व व्याप्त माना है—

कण-कण भीतर रामजी, ज्यूं चकमक में आग।

उसे सर्व शक्तिमान भी एक कहावत में दिखाया गया है—

राम करै, सो होवै।

'नाम तो भगवान को' कहकर उसके नाम की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है। इससे भी अधिक राम नाम को मिश्री बताया गया है—

राम नाम लड्डू, गोपाल नाम घी।
हरी का नाम मसरी, घोळ-घोळ पी।

भाग्यवादिता की प्रतिष्ठा भी अनेक कहावतों में मिलती है। कुछ कहावतों में ईश्वर की उदारता, या न्याय-अन्याय की व्यवस्था मिलती है—

१. भगवान छप्पर फाड़ै र दै छै।
२. भगवान गंज्याई ई न्हूं न दे।
३. परमात्मा मरया ई मारे छै।
४. परमात्मा मरया ई भरे छै।

एक कहावत में भाग्यहीन व्यक्ति की दुर्दशा बतलाई गई है—

फूट्या करम फकीर का, भरी चलम ढुळ जाय।

अन्य में :

करम हीण खेती करै, कै काळ पड़ै, कै बळद मरै।

इस दुर्दशा पर संतोष 'बमाता का लख्या लेख सदां न मटै' कहावत से लोक-मानस करता आया है।

(ख) नीति-सम्बन्धी कहावतें

नीति-सम्बन्धी कहावतों को सुभीते की दृष्टि से दो वर्गों में बांट सकते हैं। प्रथम, वे कहावतें जिनमें पारलौकिक दृष्टिकोण रहता है। द्वितीय, वे कहावतें जिनमें भौतिक सफलता का ही प्रधान लक्ष्य रहता है। इन्हें हम क्रमशः श्रेय और प्रेय-मार्ग सम्बन्धी कहावतें कह सकते हैं—

(अ) श्रेय-मार्ग सम्बन्धी कहावतें

श्रेय-मार्ग सम्बन्धी कहावतों की संख्या कम दिखाई पड़ती है। पर जो हैं उनमें जीवन को नैतिक बल प्रदान करने की शक्ति निहित है। वे हमारे चरित्र को संभाले चलती है और पथ भ्रष्ट व्यक्ति को मार्ग प्रदर्शित करती है।

एक कहावत में सत्य की प्रतिष्ठा मिलती है—

सांच ई म्रांच कोई नै।

दूसरी कहावत सेवा-भाव को उचित महत्व देती है—

करोगा सेवा, पावैगो मेवा,

बड़ों की शिक्षा मानने का आग्रह एक अन्य कहावत में मिलता है—

जो न मानै बड़ां की सीख।
लेर ठीकरो मांगै भीख।

तत्काल पुण्य के महत्व को इस कहावत में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

तुरत दान, महा पुन्न।

हमें अपने कर्म अच्छे रखने चाहिये, क्योंकि उनका फल भोगना पड़ता है। यदि हमारे कर्म बुरे हुए तो उसका बुरा फल मिलेगा और यदि अच्छे तो अच्छा। इसी तथ्य को एक कहावत में अति संक्षेप में व्यक्त कर दिया है—

करन्ता, सो भोगन्ता।
खोदन्ता, सो पड़न्ता।

(आ) प्रेय-मार्ग सम्बन्धी कहावतें

प्रेय-मार्ग सम्बन्धी कहावतों की संख्या अत्यधिक है। ये कहावतें हमें लौकिक दृष्टिकोण प्रदान कर भौतिक सफलता प्राप्त करने के लिए मार्ग-प्रदर्शक का कार्य करती हैं। इनमें लोक के सभी क्षेत्रों के अनुभव संचित हैं। मनुष्य ने इन आंखों से जो कुछ देखा और इस शरीर से जो अनुभव किया, उन्हीं को इन कहावतों में व्यक्त कर दिया है। इसलिये कभी-कभी कुछ कहावतों में अनैतिकता की पुष्टि भी मिलती है—

१. करै करम, तो फूटै करम।
२. करो पाप, तो खावो धाप।

३. राम नाम जपना, पराया माल अपना।

४. सरग सांकड़ो मोडा घणा।

चौथी कहावत से सम्बन्धित यह कथा मिलती है—

एक अत्यधिक कृपण जब मरणासन्न था तब लोगों के कहने से उसने एक गाय दान की। गाय रुग्णा थी। अतः एक प्रहर उपरांत मर गई और उधर बनिया भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। जब यमराज के पास उसे ले जाया गया, तो उससे वहां अपने जीवन काल के धर्म-कार्यों के लिए पूछा गया और यह बताने पर कि उसने एक गाय दान की है उसे एक प्रहर मनोवांछित कार्य करने के लिए कहा गया। बनिये ने गाय से कहा कि तू सिंह बनकर यमराज को खाजा। अब यमराज आगे और सिंह पीछे और उनके पीछे बनिया जा रहा था। यमराज स्वरक्षार्थ विष्णु भगवान के पास पहुंचे। बनिया भी द्वार तक पहुंचा ही था कि एक प्रहर का समय व्यतीत हो गया। जब भगवान् को यह ज्ञात हुआ कि बनिया द्वार पर खड़ा है तब उन्होंने शरणागत के विचार से उसे वहां यह कहकर ठौर दे दी कि 'सरग सांकड़ो मोडा घणा'।

अनेक कहावतों में जीवन के व्यावहारिक अनुभव संचित है। ये अनुभव जीवन के समस्त क्षेत्रों के हैं। व्यवहार-कुशल आदमी सबकी सुनता है और अपने निर्णय के अनुसार कार्य करता है, यह इस कहावत में बतलाया गया है—

सुणो सबकी, करो मन की।

इसी प्रकार खेती, पत्र, विनती और सुजली को स्वयं ही संभालना चाहिये, किसी दूसरे पर नहीं छोड़ना चाहिये, यह इस कहावत में बतलाया है—

खेती, पाती, बीनती, घोड़ी मार खुजाल।
जो सुख चावै आपणू, आई आप संभाळ।

यदि कहीं से उधार दिये रुपयों में से कुछ भी प्राप्त न हो रहा हो तो जो-कुछ मिल जावे वही ले लेना चाहिये—

मांगता भूत की लंगोटी ही सही।

इसी के समानान्तर भाव एक अन्य कहावत में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

आधी छोड़ पूरी न पावै।
आधी मरै न पूरी पावै।

व्यापार के क्षेत्र की ही एक अन्य कहावत मे बतलाया गया है कि अल्प मजदूरी पर निर्वाह कर लेना अच्छा है, किन्तु अपनी प्रतिष्ठा कम नही करवानी चाहिये—

ओछो रुजगार रै'णू , पण ओछो कायदो न रै'णू ।

'भूल चूक लेणी देणी,' 'लोभ के थोब कोई नै', 'सूंगो रोवै एक बार, मंहगो रोवै बार-बार आदि ऐसी कहावतें है, जो व्यापारिक क्षेत्र मे सफलता के लिये मार्ग-प्रदर्शिका हैं। इनके प्रतिकूल आचरण करने पर आर्थिक लाभ के स्थान पर हानि ही होगी। 'लेणा एक न, देणा दो' कहावत के पीछे एक कहानी है जिसको महावीर प्रसाद पोद्दार ने अपनी 'कहावतों की कहानियां' पुस्तक मे दिया है। [1]

बहुत से मनुष्य अत्यधिक उदारता का परिचय बाहर वालो के लिये दिया करते हैं और परिवार की तनिक भी चिंता नही करते। इससे उन्हे संसार उदार तो कहता है, पर उनकी उदारता किस काम की जब उन्होने अपने परिवार को तो कष्ट मे छोड़ दिया। इसी भाव को लेकर एक कहावत मिलती है—

घर का पूत कंवारा डोलै, पाड़ोस्यां का फैरा थाडै ।

एक अन्य कहावत में बताया गया है कि जो तनिक उदारता से पैसे खर्च करता है, उसका सारा संसार सेवक रहता है—

जीको हाथ पोलो ।
ऊंको जगत गोलो ।

जो व्यक्ति अति कंजूस होते हैं, उनकी कंजूसी को दूर करने का संकेत भी एक अन्य कहावत में मिलता है जिसमें बताया गया है कि संग्रह करना व्यर्थ है। यह अपरिग्रह धर्म के पांच प्रमुख अंगो के रूप में नहीं आया है, अपितु व्यावहारिक सत्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया है—

जोड़-जोड़ मर जावेंगे ।
माल जवांई खांवैगे ।

जीवन मे सफलता-प्राप्ति के लिए भाइयो मे मेल होना भी आवश्यक है, क्योंकि संगठन में बल है—

भायां भलो दीखसो, बैरी मानै काण ।

---

१. देखिये, कहावतों की कहानियां, पृष्ठ १३ से १५ ।

एक अन्य कहावत में बताया गया है कि लड़ाई के मूल में हँसी-मजाक विद्यमान रहते हैं और खाँसी से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं—

लड़ाई को घर हाँसी ।
रोग को घर खाँसी ।

शकुन-सम्बन्धी कहावतें भी यहां पर ही विचारणीय है। मनुष्य उन्हें अपने लिये उपयोगी समझ कर प्राचीन से अपनाये हुए है। हाड़ौती की शकुन-सम्बन्धी कहावतें सभी क्षेत्रों में फैली हुई है। उठना-बैठना, नवीन-वस्त्र धारण करना, यात्रा-गमन आदि अवसरों से सम्बन्धित न जाने कितनी कहावतें प्रचलित हैं। शकुनों में सबसे अधिक महत्व छींक का है। उस पर एक कहावत देखिये—

छींकत खावै, छींकत पीवै, छींकत सो रेवै ।
छींकत पर घर सदी न जावै, आछ्या सदी न होवै ॥

यदि यात्रा-काल में कुछ दूर पर निम्नलिखित शकुन हों, तो बुरे माने जाते हैं—

बना तलक बामण मलै,
पाड़ा पै बैठ्यो ग्वाल ।
तीन कोस पै मलै तैली ,
नसलै काळ सीस पै झेलो ।

वस्त्र-धारण करने के दिन भी एक कहावत में इस प्रकार गिनाये गये हैं—

कपड़ा फेरै तीन बार,
बुद्ध, बरस्पत, सुक्करवार ।

यात्रा-प्रस्थान के समय दिशा-शूल को ध्यान में रख कर कहा जाता है, 'पूरब सोम सनीचर वारा' और इसी से आगे कहा जाता है—

दसाशूळ ले जावै बाऊं, राऊ जोगणी फूट ।
सनमुख राखै रंदरमूं, लावै लछमी लूट ।

(४)ऐतिहासिक कहावतें

अतीत से ही राजा प्रजा के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा है। लोक-जीवन उनकी गाथाओं से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। उनके अलौकिक वीरतापूर्ण पराक्रमों व चारित्रिक महानताओं को प्रजा ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यहां तक कि कुछ ऐतिहासिक सत्यों को तो उसने कहावतों के रूप में अपना कर सदैव के लिए अपने स्मृति-पटल पर अंकित कर लिया है। ऐसी कहावतें अतीत से चली आती प्रतीत होती हैं।

रावण दुराचारी था और सम्पन्नता में वह अपना सानी नहीं रखता था। उसकी वह सम्पन्नता और तत्पश्चात् उसका वह अंत देखकर लोक-जीवन ने इस कहावत को स्वीकार किया है—

अक लख पूत, सवा लख नाती।
रावण के घर, दियो न बाती।

ऐसी कहावतों में ऐतिहासिक तथ्यों को स्वीकार करके उन पर कल्पना द्वारा अतिशयोक्ति का रंग चढ़ा दिया जाता है। फलस्वरूप ये कहावतें अभिप्रेत अर्थ को प्रकट करने में तो समर्थ बन जाती हैं, पर इतिहास से दूर जा पड़ती हैं।

'तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार' वाली कहावत भी राणा हमीर के उस दृढ़ निश्चय की सूचना देती है जिसमें हमीर ने अपने द्वारा संरक्षित 'नये मुसलमानों' की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था।[1]

'खां राजा भोज, अर खां गांगली तेलण' में राजा भोज ऐतिहासिक व्यक्ति है और उसके साथ प्रयुक्त 'गांगली तेलण' शब्द को लेकर इतिहासकारों में काफी मतभेद है। काने गंगा तेली और भट्टाचार्य के शास्त्रार्थ प्रसंग की लोककथा भी इसके साथ जुड़ी हुई है।[2] गंगराज तैलप (९७३–९९७) द्वारा मुंज के वध कराने का उल्लेख भी 'महाराष्ट्र वाक् सम्प्रदाय कोश' के अनुसार किया गया है, किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण न मिले केवल इसी के आधार पर गंगा तेली को गंगराज तैलप और भोज को मुंज नहीं बनाया जा सकता।[3] इसी प्रकार मौलाना नियाज फतेहपुरी के अनुसार 'मालवा व गुजरात के राजा भोज ने अपनी लड़की गंगुवा तेली के लड़के से विवाह दी थी सिर्फ इसलिये कि उसने एक बार दीपक राग गाकर महल के चिराग रोशन कर दिये थे।[4] कलचुरी शासक महाराज गांगेदेव (१०१६ से १०४१ ई०) को अंत में राजा भोज परमार से परास्त होना पड़ा था। 'कहां राजा भोज मे तथा कहां गंगुवा तेली' की हिन्दी कहावत में राजा भोज से इन्हीं महाराज गांगेय तेलंग की कदाचित् तुलना की गई थी जो आज तक बिगड़े रूप में चल रही है।[5] इनमें से अंतिम मत अधिक सार गर्भित प्रतीत होता है।

---

१. देखिये—आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ १८६।

२. सहज राजस्थानी कहावतें, पृष्ठ ११० से ११२।

३. राजस्थानी कहावतें पृष्ठ ११०।

४. राजस्थानी कहावतें, पृष्ठ ११२।

५. धीरेन्द्र वर्मा, मध्य प्रदेश पृष्ठ १५५

हाड़ौती में गांगू या गांगो तेली के स्थान पर 'गांगची तेमलु' शब्द मिलता है। यह परिवर्तन 'गांगो' शब्द की ईकारान्त के फलस्वरूप है। ईकारान्त शब्द हाड़ौती में प्रायः स्त्रीलिंग होते हैं इसलिये गांगी से किसी स्त्री का भ्रम लोक-मस्तिष्क में उत्पन्न हो गया और फिर गांगी में स्वार्थे 'ची' प्रत्यय लगा, जिसने उसे 'गांगची' बना दिया।

हाड़ौती प्रदेश से सम्बन्धित कतिपय कहावतें भी मिलती हैं—

१. कोटा ज्यूं ई कोटड़ी, पाबर ज्यूं ई सींच।
भटवाड़ा का मोह में, जीत्यो जालम सींग।

२. हाड़ा खींची को बैर

३. हाड़ा ले डूबी गणगौर।

पहली कहावत का सम्बन्ध अगहन शुक्ला चतुर्थी सम्वत् १८१८ को जयपुर और कोटा के बीच भटवाड़े में हुई लड़ाई से है। इस लड़ाई में कोटा की सेना का संचालन जालिमसिंह के हाथ में था। जालिमसिंह ने केवल १५०० सैनिकों के द्वारा जयपुर के ६००० सैनिकों को मार भगाया। इस लड़ाई में विजयी होकर जब झाला जालिमसिंह आये तो उनकी ख्याति और प्रभाव बहुत बढ़ गया। उस समय जालिमसिंह की अवस्था २१ वर्ष की थी पर वीरता, कुशलता और नीतिज्ञता में वे अंतिम थे। विजय का सम्पूर्ण श्रेय जालिम सिंह को दिया गया। उनकी कीर्ति गीतों में गाई जाने लगी और इस घटना के बाद कोटा राज्य में वे प्रमुख व्यक्ति बन गये।[१]

'हाड़ा खींची को बैर' कहावत कोटा बूंदी के हाड़ा नरेशों और मऊ के खींचियों की दीर्घकालीन शत्रुता की ओर संकेत करती है। चम्बल की दाहिनी ओर पलायथा, रामगढ़,सीसवाली आदि तो हाड़ों का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, परन्तु मऊ के खींची कभी अधीन और कभी स्वतन्त्र हो जाया करते थे। अब रावरतन की शक्ति खूब बढ़ चुकी थी और उसको मुगल सम्राट की कृपा का भी बल था। अतः उसने मऊ पर चढ़ाई कर दी और खींचियों को हरा कर उनके महलों को तथा परगनों को अधिकृत कर लिया।[२] पृथ्वीराज की लड़ाई में घाटी के हाड़ा राव पर पृथ्वीराज का आक्रमण, गागरोण पर दोनों पक्षों का अधिकार और युद्ध इस कहावत की पुष्टि करते हैं। एक समय हाड़ौती की खानपुर, अकलेरा, असनावर आदि तहसीलें खींचियों के अधिकार में थी और अधिकृत प्रदेश, 'खींचीवाड़ा' कहलाता था।

---

१. डा० मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४४७।

२. वही पृष्ठ ८६।

'हाड़ो ले डूबो गणगोर' कहावत का आधार भी ऐतिहासिक है। घटना बूंदी नरेश महाराव बुधसिंहजी के काल की है। उन दिनों महाराव बुधसिंह जी काबुल गये हुए थे और उनके भाई जोधसिंह जी राजकार्य करते थे। उन्होंने 'गणगोरि' की सवारी निकाली। सवारी सुख महल में ठहरी और जोधसिंह जी सुभट सचिव तथा अनुचरों के साथ जल-विहार करने में लगे। तब अपने दहेज में उदयनेर से आये हुए मस्त हाथी ने नाव पर आक्रमण कर दिया और सुरा में डूबे हुए मस्त सरदार कुछ भी न कर सके। गनगोर सहित बड़े तालाब या जोधसागर तालाब में अधिकांश व्यक्ति डूब गये। तभी से उपर्युक्त कहावत प्रचलित हुई। 'वंश भास्कर' के कवि सूर्यमल्ल ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया है—

जब काबुल नृप बुद्ध हो, तब निज सोदर जोध।
चढि तरंड गुनगोरि दिन, किय जल केलि कुबोध।
सुभट, सचिव अनुचर सकल, बैठ पोतन तथ्थ।
नवि गावत पातुरि निकर, श्रुति स्वर तारन सत्थ।
गज इक्लिंग प्रसाद इक इहि अन्तर मय मत्त।
निज दायज आयो हुतो, उदयनेर तें प्रत्त।
यह वारन मति दान छक, जल पीवत तहं आय।
ताल विविक्ष पोतन तिरत, कुप्यि चल्यो प्रति काय।
सत्थ सकल आपान पित, किन्नो कछु न उपाय।
निज पोतहिं पकरी निठुर एतें मै गज आय।
धाई भ्रात निज सग हो, तारा भयो इक बार।
एतें विच उलटाई इम, बोरी नाव सु बार।[1]

(५) शिक्षा और ज्ञान सम्बन्धी कहावतें

(क) शिक्षा सम्बन्धी कहावतें :—

शिक्षा के प्रति हाड़ोती कहावतों में अनुरक्ति दिखाई देती है। यद्यपि इस क्षेत्र में साक्षरता कम ही दिखाई देती है, पर फिर भी शिक्षा के उपकारों को हाड़ोती निवासी भली प्रकार समझता है। अतः जितनी भी लोकोक्तियां मिलती हैं, उनमें शिक्षा के प्रति उपेक्षा नहीं, अपेक्षा दिखाई पड़ती है। यहां का लोक विश्वास है कि विद्या वह अच्छी है जो रट ली जावे—

घोकन्त वद्या, खोदन्त पाणी।

---

१. सूर्यमल मिश्रण, वंश भास्कर, चतुर्थ भाग, सप्तम राशि, एकविंश मयूख, २४ से २६ तक।

हाड़ौती में गांग्र या गांगी तेली के स्थान पर 'गांगली तेलण' शब्द मिलता है। यह परिवर्तन 'गांगी' शब्द की ईकारान्त के फलस्वरूप है। ईकारान्त शब्द हाड़ौती में प्रायः स्त्रीलिंग होते हैं इसलिये गांगी से किसी स्त्री का भ्रम लोक-मस्तिष्क में उत्पन्न हो गया और फिर गांगी में स्वार्थे 'ली' प्रत्यय लगा, जिसने उसे 'गांगली' बना दिया।

हाड़ौती प्रदेश से सम्बन्धित कतिपय कहावतें भी मिलती हैं—

१. कोटा ज्यूं ई कोठड़ी, चांवन ज्यूं ई सींच।
 भटवाड़ा का चोक में, जीत्यो जालम सींग।

२. हाड़ा खींची को बैर

३. हाड़ा ले डूबी गणगोर।

पहली कहावत का सम्बन्ध अगहन शुक्ला चतुर्थी सम्वत् १८१८ को जयपुर और कोटा के बीच भटवाड़े में हुई लड़ाई से है। इस लड़ाई में कोटा की सेना का संचालन जालिमसिंह के हाथ में था। जालिमसिंह ने केवल १५०० सैनिकों के द्वारा जयपुर के ६००० सैनिकों को मार भगाया। इस लड़ाई में विजयी होकर जब भाला जालिमसिंह आये तो उनकी ख्याति और प्रभाव बहुत बढ़ गया। उस समय जालिमसिंह की अवस्था २१ वर्ष की थी पर वीरता, कुशलता और नीतिज्ञता में वे अद्वितीय थे। विजय का सम्पूर्ण श्रेय जालिम सिंह को दिया गया। उनकी कीर्ति गीतों में गाई जाने लगी और इस घटना के बाद कोटा राज्य में वे प्रमुख व्यक्ति बन गये।[1]

'हाड़ा खींची को बैर' कहावत कोटा बूंदी के हाड़ा नरेशों और मऊ के खीचियों की दीर्घकालीन शत्रुता की ओर संकेत करती है। चम्बल की दाहिनी ओर पलायथा, रामगढ़, मौसवाली आदि तो हाड़ों का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, परन्तु मऊ के खीची कभी अधीन और कभी स्वतन्त्र हो जाया करते थे। अब रावरतन की शक्ति खूब बढ़ चुकी थी और उसको मुगल सम्राट की कृपा का भी बल था। अतः उसने मऊ पर चढ़ाई कर दी और खीचियों को हरा कर उनके महलों को तथा परगनों को अधिकृत कर लिया।[2] पृथ्वीराज की लड़ाई में घाटो के हाड़ा राव पर पृथ्वीराज का आक्रमण, गागरोण पर दोनों पक्षों का अधिकार और युद्ध इस कहावत की पुष्टि करते हैं। एक समय हाड़ौती की खानपुर, मनोहरथाना, असनावर आदि तहसीलें खीचियों के अधिकार में थी और अधिकृत प्रदेश, 'खीचीवाड़ा' कहलाता था।

---

१. डा० मथुरालाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४४७।

२. वही पृष्ठ ८६

गौर' कहावत का आधार भी ऐतिहासिक है। घटना बूंदी
के काल की है। उन दिनों महाराव बुधसिंह जी काबुल गये
सिंह जी राजकार्य करते थे। उन्होंने 'गणगोरि' की सवारी
ल में ठहरी और जोधसिंह जी सुभट सचिव तथा अनुचरों के
गे। तब अपने दहेज में उदयनेर से आये हुए मस्त हाथी
दिया और सुरा में डूबे हुए मस्त सरदार कुछ भी न कर
तालाब या जोधसागर तालाब में अधिकांश व्यक्ति डूब गये।
प्रचलित हुई। 'वंश भास्कर' के कवि सूर्यमल्ल ने इस घटना
है—

कुल नृप बुद्ध हो, तब निज सोदर जोध।
रंड गुनगोरि दिन, किय जल केलि कुबोध।
सचिव अनुचर सकल, बैठ पोतन तत्थ।
ावत पातुरि निकर, श्रुति स्वर तारन सत्थ।
इकलिंग प्रसाद इक इहि अन्तर भय मत्त।
दायज आयो हुतो, उदयनेर तैं अत्त।
रन प्रति दान छक, जल पीवन तहं आय।
विविध पोतन तिरत, कुप्पि चल्यो प्रति काय।
सकल आपान चित, किन्नो कछु न उपाय।
पोतहिं पकरी निठुर एतें मे गऊ आय।
भ्रात निज संग हो, तारा भयो इक बार।
विच उलटाई इभ, बोरी नाव सु बार।[1]

न सम्बन्धी कहावतें

ी कहावतें :—

ाड़ौती कहावतों में अनुरक्ति दिखाई देती है। यद्यपि इस क्षेत्र
ाई देती है, पर फिर भी शिक्षा के उपकारों को हाड़ौती
कता है। अतः जितनी भी लोकोक्तियां मिलती हैं, उनमें शिक्षा
क्षा दिखाई पड़ती है। यहां का लोक विश्वास है कि विद्या बह
ये—

घोकन्त बद्या, खोदन्त पाणी।

[1], वंश भास्कर, चतुर्थ भाग, सप्तम राशि, एकविंश मयूख, २४

इसलिये कंठस्थ विद्या को एक अन्य लोकोक्ति में भी महत्व प्रदान किया गया है—

माया अंट की।
विद्या कंठ की।

इस विद्या को पढ़ने में पिटाई भी खूब होती थी। ताड़ना आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान के प्रतिकूल भले ही हो, पर हाड़ौती लोक-जीवन में यह पद्धति आज भी प्रचलित है। इसीलिये एक कहावत में विद्यार्थी के माता-पिता गुरु से कहते हैं—

मांस मांस थांको।
हाड हाड म्हांरो।

एक अन्य लोकोक्ति में बताया है कि विद्या बाल्यकाल में ही प्राप्त हो सकती है। वय-प्राप्ति के उपरांत तो इसे प्राप्त करना अति कठिन है।

पाका हांडा गार न लागे।

पढ़ने से सम्बन्धित एक अन्य कहावत मिलती है जिसमें कम पढ़े व्यक्ति की हीनता की भावना व्यक्त हुई है—

ज्यां थां पढ्या होवैगा, वां म्हांनै भी खोर बांटी होवैगी।

(ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें

हाड़ौती की कहानियों में जो मनोविज्ञान मिलता है, उसमें किसी पाश्चात्य विद्वान का सूक्ष्म अध्ययन भले ही न हो, पर जो है वह महत्वपूर्ण है। इन कहावतों में बाल-मनोविज्ञान से लेकर असाधारण मनोविज्ञान के उदाहरण मिलते तक हैं। सम्भवतः हमारे यहां संस्कार पर अधिक बल दिया गया है, परिस्थिति पर कम। अतः बालक के सम्बन्ध में एक कहावत मिलती है—

पूत का लक्खण, पालणां ईं दीख्यावै छै।

यही संस्कार अवस्था प्राप्त करने के उपरांत दृढ़ हो जाते हैं तब वे स्वभाव का अंग बनकर जीवन-पर्यन्त चलते हैं—

ज्यां का पड्या सुभाव, जासी जीव सूं।

और यही बात एक दूसरी लोकोक्ति में इस प्रकार कही गई है—

कुत्ता की पूंछ बारावरस भूंगळी में राखो, जद काडो, जद टेडी की टेडी।

कुछ ग्रंथियों (कम्प्लैक्स) को लेकर किये गये कामों तक भी लोक-दृष्टि पहुंची है। जिसके पास कुछ नहीं होता वह हीनता की भावना के फलस्वरूप स्वयं को बढ़ाकर दिखाता है, यह इस लोकोक्तिमें मिलता है :—

थोथो चणू, बाजे घणू।

'नकटी के लोट्यो होयो, तो सारी रात उठ उठ र फाणी पीवै' वाली लोकोक्ति भी उपर्युक्त मनोवृत्ति की परिचायक हैं।

एक अन्य कहावत का भी उपयोग उस समय होता है जब हम छिछले आदमी से मजाक कर बैठते हैं और वह बिगड़ पड़ता है—

पतळा गू में भाटो पटकै, तो माथा तांईं छांटा आवै।

यदि किसी व्यक्ति के अस्वीकार करने पर भी उससे काम लिया जावे तो वह काम करके देगा नहीं, इस भाव को निम्न कहावत में व्यक्त किया गया है :—

रोवती टैंकड़े चडावै, तो बांळ्या घोड़ा ई उडावैगी।

कार्य-विहीन मस्तिष्क का अध्ययन इस लोकोक्ति में मिलता है—

बैठो बाण्यूं कांई करै. अंठी को दूगलो उंठी उठार धरै।

और

बैठो जाट कांई करै, कूळों पाडै अर चुगै।

(६) विविध

उपर्युक्त अध्ययन के उपरांत अनेक कहावतें ऐसी शेष रह जाती है जिन पर इस उपशीर्षक के अन्तर्गत विचार किया जावेगा। पशु, स्थान, बोली आदि अनेक विषयों सम्बन्धी अनेक अनुभव इन कहावतों में रक्षित हैं। सम्भवतः पशु-पक्षियों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में कोई न कोई कहावत मिल जाती है। पशुओं के सम्बन्ध में कितनी ही कहावतें उनकी विशेषता ही द्योतित नहीं करती हैं, अपितु उपमान-रूप में प्रयुक्त होकर मानव-पक्ष पर भी घटित होती है।

क—पशु सम्बन्धी कहावतें

हाथी : हाथी चलता जावै छै, कुत्ता भूंकता जावै छै।

ऊंट : (१) ऊंट तो भरड़ातां ई लदे छै।

(२) ऊंट मरै, तो ई मारवाड़ आडो मूंडो।

घोड़ा : घोड़ा की लात से घोड़ो न मरै ।

गाय : पुन्न की गाय का काँई सींग देखणा ।

बैल : बैल बैगो नै, तो बूढो तो होवैगो ।

कुत्ता : (१) कुत्ता की पूंछड़ी बारा बरस भूंगळी मैं मैलो,
जद काढो जद टेडी की टेडी ।

(२) एक टका की हांडी गी
कुत्ता की ज्यात पछाणी गी ।

शूकर : घायो सूर बारा बीघा को उजाड़ करै छै ।

पाडो : भोळो पाडो दी-दो चूंकै ।

गंडोळा : गंडोळा का जाया गार ई कुराळेगा ।

काक : कागलो बारा बरस मैं बोलै, पण ऊई कुरां-कुरां ।

इसी प्रकार अन्य-पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहावतें हाड़ौती में प्रचलित हैं।

ख—स्थान सम्बन्धी कहावतें

ऐसी कुछ ही कहावतें मिलती हैं। चित्तौड़ की प्रशंसा वाले पद्य में से एक पंक्ति हाड़ौती में कहावत रूप में प्रयुक्त होती है—

गढ तो चित्तौड़ गढ और सब गढैया है।

एक अन्य कहावत हाड़ौती क्षेत्र से ही सम्बन्धित है—

अणता की गूण तो पळायथे पटकणी छै ।

इस कहावत का प्रयोग तब होता है जब व्यक्ति किसी कार्य को भार स्वरूप समझ कर किसी न किसी प्रकार शिथिलता से करना चाहता है। अन्ता और पळायथा हाड़ौती में ४ मील की दूरी पर स्थित गांव हैं और इनका नाम समीपता के कारण युग्म-रूप में प्रयुक्त होता है।

बोली बाले बारा कोस ।
पाणी बालै अठारा कोस ।

इस कहावत में बोली की सीमा निर्धारित की है। बोली के अन्तर को भी निम्नलिखित कहावत में अति हास्यास्पद ढंग से समझाया गया है—

देसां-देसां घांघरो, अर बोली-बोली फरक ।
काकै सीकै फरदता, म्हां-कै सीकै अरथ ।

मनुष्य के आकार-प्रकार ने भी कहावतों के निर्माण मे प्रेरणा दी है। सिर और पैरों की दीर्घता के आधार पर क्रमशः व्यक्ति को सरदार और गंवार बताया जाता है—

सर बड़ो सरदार को।
पांव बड़ो गंवार को।

बालकों का अध्ययन भी कुछ कहावतों का विषय बना है। एक कहावत में 'बालक बंदर एक समाना,' दूसरी में 'हाथ सूखो, बाळक भूको', तथा तीसरी मे 'छोरा छोरयां ई' सू' घर बस जावै, तो वावो परणै क्यूं' के द्वारा बालकों की उच्छृंखलता, खाने की प्रवृत्ति और अनुत्तरदायित्व प्रकट होते हैं।

हाड़ौती कहावतों में अनेक जीवन-पहलुओं के अनुभव भरे पड़े हैं, विस्तार-भय से उन पर विचार नहीं किया जा रहा है। हाड़ौती की कहावतें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से निकलती है, कह नहीं सकते कि कौन सा क्षेत्र इनसे अछूता है।

हाड़ौती कहावतों का रचना-विधान

हाड़ौती कहावतें पद्य तथा गद्य रूप मे मिलती है। गद्यरूप मे मिलने वाली कहावतों का झुकाव भी पद्यात्मकता की ओर ही दिखाई देता है। कहावतों में पद्यात्मकता की इतनी अधिक व्याप्ति के मूल में इनकी लोकोपयोगिता है। कहावतें लोकोपयोगी होने के कारण व्यक्ति उन्हें कंठस्थ रखना चाहता है। कंठस्थता का गुण जितना पद्य में मिलता है उतना गद्य मे नहीं। लय, तुक और शब्द-विन्यास का सौंदर्य पद्य को स्मृति-पटल पर शीघ्र अंकित करा देते हैं। गद्य अपनी रुक्षता के कारण, जो रूप गत भी होती है, स्थायी रूप से स्मरण रखने में दुरूहता उत्पन्न करता है। गद्य का कोई निश्चित मापदंड न होने से कहावतों के शब्दों और वाक्य-विन्यास में परिवर्तन होते रहना भी सहज कल्पनीय है, जो कहावत की प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल है।

पद्यात्मक कहावतों की प्रवृत्ति संकोचशीलता की ओर है। इसीलिये छोटे से छोटे पद्य कहावतों मे मिलते हैं। आवश्यक एवं उपयोगी शब्दों को ही अपनाकर तथा अनावश्यक व अनुपयोगी शब्दों को छोड़कर संक्षिप्तता की ओर बढ़ने के प्रयास अनेक कहावतों में देखने को मिलते है—

जेठ को।
सो पेट को।

तात्पर्य यह है कि ज्येष्ठ का पुत्र स्वजात पुत्र के समान ही प्रिय होता है। इस कहावत में उसकी संक्षिप्तता की ओर प्रवृत्ति होने के लिये उभयपक्ष स्थित पुत्र शब्द को भी छोड़ दिया गया है। बोलने में द्वितीय पंक्ति के 'सो' शब्द का उच्चारण लघु होता है। यह प्रवृत्ति अनेक कहावतों में मिलती है। एक अन्य कहावत का आशय यह है यदि ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा और आषाढ़ मास की कृष्ण-पक्ष-प्रतिपदा पर वृष्टि न हो तो ७२ दिन तक पानी नहीं बरसेगा। इस भाव को कम से कम शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास इस प्रकार मिलता है—

पून्यूं पड़वा गाळै।
दन बहत्तर टाळै।

इस संकोच की प्रवृत्ति के फल स्वरूप 'देहली दीपक' अलंकार स्वाभाविक रूप से अनेक वाक्यों में आगया है—

१. वामी रै न कुत्ता खावै।
२. मारवा हाळा को ढांग सैवा हाळा की जबान थोड़ी पकड़ी जावै।

पद्यात्मक कहावतों में तुक का आग्रह भी एक प्रमुख प्रवृत्ति है। तुक के निर्वाह से भी छंद सरलता से याद हो जाता है। यह तुक छंद के अंत और मध्य में मिलती है। दोनों अवस्थाओं में श्रुति-मधुरता से यह सुग्राह्य तथा सुस्मरणीय बन जाती है—

१. जो न मानै बडा की सीख।
   लेर ठीकरो मांगै भीख।

२. पट मैं भी।
   पट मैं भी।

३. बगड़ै खेत खेत में खाळी।
   खातण बगड़ै, छाणाहाळी।

४. घोरन्त विद्या।
   खोदन्त फाणी।

लयात्मकता का निर्वाह ऐसे पद्यों में भली प्रकार किया गया है। लय तो मानों इन के श्वास-प्रश्वास हैं जिससे इसके प्राणों की रक्षा हो रही है। यह लय पद्य में तक में भी मिलती है जिससे गद्य में पद्य का सा प्रभाव उत्पन्न होने लगता

है। एक कहावत देखिये जो छंद-बद्ध नहीं है, गद्य में है। यह लय की दृष्टि से किसी छंद की एक पंक्ति सी प्रतीत होती है—

ज्यांका पड़्या सुभाव, जासी जीव सूं।

यह लय शब्द-स्थापन के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। इसीलिये गद्य की पंक्तियों में आवश्यकतानुसार शब्द में तोड़-मरोड़ या न्यून-पदता आ जाती है। क्रिया-विहीन वाक्यों से अनेक कहावतों का निर्माण होता है—

१. मागता भूत की लंगोटी ई सही।
२. काणी का ब्याव में सतरा नखरा।
३. ज्यो पंडत जी का पूंछा में।
   थाई वांका पतड़ा में।

तो दूसरी ओर क्रिया तो मिल जाती है, पर कर्त्ता या कर्म में से एक लुप्त हो जाता है—

१. खासी रै, न कुत्तो खावै।
२. छोड़ो ईस, बैठो बीस।

अनेक कहावतों में, जहां पूरे वाक्य बनाये जाते हैं वहां कभी-कभी रोचकता आ जाती है—

समार सै ले घरा पै बैठ, तो न बैठे।

पर ऐसे ही एक वाक्य वाली अन्य कहावतों में सवाक्यता है, जिससे उसमें रोचकता आगई है—

रोटी टंकड़े बढ़ावै, तो बाल्या थोड़ी ई उतारै छै।

उपर्युक्त वाक्य में लय का निर्वाह दो वाक्यों के कारण है, पर जहां केवल एक वाक्य मिलता है वहां भी यह लय मिलती है—

बावळ्या गोद में हाथी आयो।

हाड़ौती कहावतों में सदैव प्रस्तुत विषय पर ही विचार नहीं मिलता, किन्तु उसे स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुत विषय को सामने लाकर उसकी कुछ ऐसी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाता है। वस्तुतः कहावतों में तो ध्वनि-मन्द से व्यापक अर्थ तक पहुंचने का प्रयास रहता है, पूर्ण सत्य तक नहीं। इसके लिए अन्तर्लापिकों व अनुभूतों में से ऐसे उदाहरण चुने जाते हैं जो किसी व्यापक सत्य की ओर संकेत कर सकें।

ऐसे अप्रस्तुतों में उनकी प्रकृति का सदैव ध्यान रखा जाता है। हाड़ौती कहावतों से अप्रस्तुत के चयन में सूझ-बूझ का परिचय मिलता है—

धोबी धोबण नै तो न पूगै, घर गदी का कान एंठे।

एक ऐसी कहावत है जिसका प्रयोग किसी दंडनीय सबल दोषी व्यक्ति को अदंडित और अदंडनीय निर्बल व्यक्ति को अकारण दंडित होते देख कर किया जा सकता है। धोबी, धोबिन तथा गधी अप्रस्तुत हैं, जो उक्त प्रस्तुत की ओर संकेत करते हैं। अनेक कहावतों का निर्माण इस शैली पर भी हुआ है।

अनेक कहावतें सिद्धान्त कथन-रूप में सामने आती है। उनमें अप्रस्तुत नहीं होता है—

१. भायां भली दोलसी, बैरी मानै काण।
२. पांच मरज्यो, पण पांच को पाळबा-हाळो मत मरज्यो।

हम प्रथम प्रकार की कहावतों में प्राप्त रचना-शैली को 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलंकार कह सकते हैं। इस अलंकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में हाड़ौती कहावतों में मिल सकेंगे। कुछ प्रसिद्ध अलंकारों—उपमा, रूपक आदि के उदाहरण भी मिलते हैं, पर उनका यहां उल्लेख अनावश्यक प्रतीत होता है।

सारांश यह है कि कहावतों के संरक्षण में उनके रूप-विधान का भी दायित्व है। इनके पीछे शताब्दियों का इतिहास है। मानव को न जाने कितनी अज्ञात शक्तियां उनके संरक्षण में लगी हुई हैं, उनमें से एक उनके रचना-सौंदर्य से भी सम्बन्ध रखती है। जो कहावतें रचनागत दुरूहता के कारण ही स्मरण न रह सकीं, वे लोक-मानस से लुप्त हो गई हैं।

हाड़ौती पहेलियां

जिस प्रकार कहानी कहना-सुनना मानव-स्वभाव का एक अंग है उसी प्रकार पहेली पूछना-बताना भी उसकी एक विशेषता है। इसीलिये जहां लोकजीवन मे आनन्द और अवकाश के समय पुरुष, स्त्रियां और बालक पहेलियो के द्वारा विनोदमयी बुद्धि-परीक्षा लेते रहते हैं, वहां शिक्षित वर्ग मे भी 'पत्रों' के कुछ स्तम्भ पहेलियो से भरे रहते है—चाहे वे बालकों के लिए ही हो। पहेलियो में बात को स्पष्ट बनाने का प्रयास नही दिखाई पड़ता है और न स्पष्ट शब्दों मे अकथनीय तथ्यो का अस्तित्व ही इनमे मिलता है, अपितु बात को उलझाकर बुद्धि की परीक्षा लेने का प्रयास इनमे दिखाई देता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि पहेलियो का जन्म तब हुआ जब मानव के बौद्धिक विकास के उपरांत उसकी बुद्धि की परीक्षा लेने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। पहेलियों इस ढंग से प्रस्तुत की जाती है कि उनमे तथ्यो के संग्रह-त्याग मे सही उत्तर तक पहुंचा जाता है। सही उत्तर ज्ञात करने को वस्तुगत छानबीन में वैज्ञानिक संश्लेषण-विश्लेषण का प्रयास मिलता है जिसे पहेली मे व्याप्त सामान्य-तत्व (जनरल ऐलीमेंट) संभाले रहता है और उसे नितांत बौद्धिक बन जाने से बचा लेता है। अद्भुत तत्व ऐसी पहेलियों का मेरुदंड होता है। इसकी विद्यमानता से उनका अध्ययन साहित्य के अंतर्गत किया जा सकता है।

पहेलियों में मनोरंजन का तत्व भी उन्हे रोचक बनाये रखता है। इसी रोचकता के फलस्वरूप उन्हे बालक और स्त्रियां आज भी अपनाये हुए है। दूसरे को उलझाकर तमाशा देखने का विनोद [1] पहेली कहने वाले पक्ष को प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार के साहित्य के जन्म देने में स्वप्रभुत्व-स्थापना की भावना प्रेरक रूप में कार्य करती रही है।

पहेलियों में उपमेय-पक्ष गंतव्य होता है, जो प्रच्छन्न रहता है। अवत उपमान पक्ष साध्य का साधन होता है। उपमान पक्ष के रूप-क्रिया-व्यापारों का ऐसा स्पष्ट संकेत पहेली मे रहता है कि सही उत्तर तक सरलतापूर्वक पहुंचा जा सकता है। पर प्रारंभ मे जाति (जीनस) के सम्बन्ध मे कहकर फिर उपजाति के (स्पेसीज) के व्यावर्तक गुण (डिफरेंशिया) पर प्रकाश डालने की प्रक्रिया के साथ उत्तर देने वाले में किसी

---

१. क्रीडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैरा कीर्णमन्त्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेळिकाः। दंडी काव्यादर्श ३,९७

निर्णय तक पहुंचने के लिए जिस सूझ बूझ की आवश्यकता होती है, उसके अभाव में वह उलझ जाता है।

हाड़ौती में पहेली के लिए दो शब्द प्रचलित है-पराळी और फारसी। 'पराळी' शब्द सं. प्रहेलिका या पहेली शब्द से बना है। दूसरे शब्द 'फारसी' का भी इसी अर्थ में प्रयोग मिलता है।[1] इस शब्द का सम्बन्ध 'फारसी' भाषा-वाचक शब्द से प्रतीत होता है। जब भारत में फारसीभाषा मुसलमानों के साथ आई तब वह भारतवासियों के लिए एक उलझनरही होगी। यह उलझन लिखने व समझने दोनों में मिली होगी। अतः उसका सामान्य जनता में स्वागत न हुआ होगा। इसकी लिपि भी इस उलझन का कारण बनी होगी। अतः 'फारसी' शब्द के साथ उलझन या घृणा का भाव जुड़ जाना स्वाभाविक था। एक हाड़ौती लोकोक्ति में फारसी पढ़नेवालों की मजाक उड़ाई गई है।[2] आजकल 'हिन्दी करना' मुहावरा ऐसे लोगों में प्रचलित है जिनमें हिन्दी-विरोधी तत्व विद्यमान है। इससे यह स्पष्ट है कि किसी अन्य भाषा का विरोध करने की प्रवृत्ति के साथ उसके प्रति अनादरार्थकता का भाव जोड़ देने की प्रवृत्ति मानव-स्वभाव के अंतर्गत विद्यमान है।

प्रहेलिका के पर्यायवाची शब्द प्रह्लिका, प्रवहि्लका, प्रवह्लि, प्रहेलि, प्रश्न-दूती और प्रवह्लीका 'हलायुध कोश' में मिलते हैं।[3] इन शब्दों में से किसी शब्द का भी 'फारसी' शब्द से सम्बन्ध नहीं दिखाई देता है। अतः स्पष्ट है कि 'फारसी' शब्द किसी पहेली-वाचक संस्कृत शब्द से न बनकर विदेशी भाषा के 'फारसी' से आया है और लोक-मानस में इस शब्द के साथ दुरूहता, उलझन आदि अर्थ जुड़ जाने से 'प्रहेलिका' के अर्थ में इसे अपना लिया गया है।

हाड़ौती की पहेलियां का वर्गीकरण

हाड़ौती पहेलियों के प्रस्तुत-पक्ष के क्षेत्र को पांच भागों में बांटा जा सकता है—

(१) प्रकृति-विषयक वस्तुएं—चांद, सूर्य, तारे, आकाश, अमलतास की फली, सीता फल, आक की केरी, निबौली, अफीम का फूल, खरबूजा, रेंगियां, तुम्बिका, तेंदू, बंबूल के कांटे, वीर-बहूटी, बैर, जूं, मक्खियां, दीमक, करीर, शंख आदि प्रकृति से गृहीत प्रस्तुत पक्ष के अंतर्गत आते हैं। आगे कुछ ऐसी पहेलियां दी जाती हैं—

---

१. कही न बिचाई म्हांकी फारसी, यांको अरथ बताय।

२. पढ़े फारसी बेचे तेल, यो देखो करता को खेल।

३. देखिये, हलायुध कोश, पृष्ठ ४६८।

'तरबूज' उत्तरवाली एक पहेली देखिये, जिसकी कृषि-क्रिया का विचित्र विधान इस पहेली में मिलता है—

> रेत का तो खेत बणाऊं, फाणी की फुलक्यारी।
> सूरज चांद नै बैल बणाऊं, राम नै राखूं हाळी।

एक अन्य पहेली में 'अफीम' की कथा इस प्रकार वर्णित है—

> कोटे रोटी पोई, बारां जारै उथेली।
> आमल्यां को आमलबाणू मालवा में खाई।

(२) कृषि-विषयक वस्तुएं—बैल, गाय, हल, तिफाया, भूण (चरस का चक्र), चरस, लाण, पूले, गाड़ी कुआं आदि कृषि से सम्बन्धित वस्तुएं हैं और पहेलियों के प्रस्तुत पक्ष का निर्माण करती हैं। एक पहेली में 'लाण' की जीवन-गाथा इस प्रकार कही गई है—

> गोरी जो बेटी जाट की, सरवर न्हावा जाय।
>
> हाड़ बखेरया बाळू रेत में, खाल दसावर जाय।

'चरस'-विषयक निम्न पहेली में दो समान वस्तुओं को कहकर तीसरी उसी के समान वस्तु पूछी गई है—

> एक तो सूंड गजानन की, दूसरी सूंड हाथी की।
> तीसरी को अरथ बता दीज्यो, नतर थांकी लोटयां नै गैलो भलो जी।

(३) कृषीतर-व्यवसाय-विषयक वस्तुएं—कागज, कलम, दवात, मशक, तलवार, बंदूक, दंतुरिया, ताला, अश्वारोही, नाव आदि इस वर्ग में आते हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

एक पहेली में 'मशक' को जल से भर कर ले आने की क्रियाओं के पहेली के रूप में संकेत मिलते हैं—

> हाथ काटूं, पांव काटूं, कांधूं कमर बंध।
> उलटा टांग कूंडी पे बैठे, देखो रांड को गुण।

'तलवार'-उत्तरवाली इस पहेली में उसकी कुछ स्वरूपगत और स्वभावगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है—

> काळे की कोटड़ी में, धोळा बन बैठे रे लो।
> लाल फटी रीसै रो, काटे रे कटे रे लो।

(४) गृहस्थी-विषयक वस्तुएं—धनिया, चमचा, मेंहदी, सरोता, कांच, घड़ा, हुक्का, चारपाई, तवा, तम्बाकू, चलनी, मथनी, कवेलू, धोवणो (कपड़े धोने का डंडा), कपाट, कूंळा आदि गृहस्थी-विषयक वस्तुएं हैं। उनमें से एक पहेली में आश्चर्य-मय ढंग से 'तवा' उत्तर की ओर संकेत किया गया है—

बारा आया फावण, रोटी पोई एक।
जतना का जतना जीमग्या, रोटी रै'गी एक।

एक अन्य पहेली में विरोधाभास के सहारे मंथन-क्रियाओं का वर्णन करके 'मथनी' उत्तर का स्पष्ट संकेत दिया गया है—

चार चड्यां चक-चक बोली, बोली अमरत बाणी।
भरथा समंदर में आ पड़ी, ऊपर सै मांग्यो पाणी।

(५) खाद्य वस्तुएं—प्याज, पुवे, मिर्च, दूध, दही, मक्खन, छाछ, गेहूं, चना, आम, शहद, जलेबी, मक्का के भुट्टे, नारियल, जामुन, नारंगी, मूली, खजूर, सिंघाड़े आदि पहेलियों में संकेतित खाद्य वस्तुएं हैं जिनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

'रैणियो' को लेकर बनी इस पहेली में उसके स्वरूप और गुण का वर्णन मिलता है।

एक जणी परसी बणी, बणी हळद कै रंग।
तीन देवर कर चुकी, गई जेठ कै संग।

भैंसों को उपमान बनाकर 'पुवे' उपमेय तक पहुंचने का इस पहेली में कितनी सुंदरता से निर्वाह किया गया है—

काळो दै' धमका करे जी, भैंस्यां पड़ी पचास।
झोटया झोटयां छांटग्यो, ज्यांको दूध मठास।

(६) वस्त्राभूषण—पगड़ी, नथ, कंचुनिका, राखड़ी, बिछिया आदि ऐसे वर्ण्य-विषय होते हैं। 'पगड़ी को लेकर' बनी एक पहेली को देखिये—

मोटा मोटा हाथ की माड़ी म्हारै सराणै धरी।
सारी सारी रात रहूं तो क्यों हूं मरी।

इस वर्गीकरण से इतना स्पष्ट हो जाता है कि प्रहेलिका-साहित्य में विस्तृत निरीक्षण-क्षमता दिखाई देती है। अपने आसपास की समस्त वस्तुओं को लेकर उनके लिए उपयुक्त उपमान और उनके क्रिया-व्यापार जुटाने का प्रयास भी हाड़ौती पहेलियों में मिलता है। अभी तक प्रहेलियों के विषय प्राचीन ही है। उनमें नवीनता का समावेश नहीं हो पाया है। पुराने ग्रामीण-जीवन के आसपास बिखरी सामग्री को लेकर पहेली-साहित्य चला है।

जितना विस्तृत उपमेय पक्ष है उतना ही प्रसार अप्रस्तुत पक्ष का भी है। अप्रस्तुत पक्ष सर्वत्र प्रस्तुत से अधिक व्यापक और उत्कर्षयुक्त हो, ऐसा पहेली साहित्य में नहीं मिलता। दो पक्षों में साम्य होना ही उपमान-पक्ष के चयन के लिए पर्याप्त कारण है। साम्य दूरगामी और अल्पगामी दोनों प्रकार का हो सकता है। कभी-कभी किसी पहेली में यह साम्य होता भी नहीं है और उपमान-पक्ष का सर्वथा अभाव मिलता है। केवल वर्ण्य-विषय के कुछ ऐसे व्यापारों पर प्रकाश डाल दिया जाता है जो उससे सम्बन्धित हों। किवाड़-विषयक यह पहेली इसका उदाहरण है—

> आगै चालूं, पाछै चालूं, चालूं कमरकस।
> ईं फयाळी को फळ न ले तो, रप्या गण दो दस।

पहेलियों का एक अन्य वर्गीकरण

मोटे रूप से हम पहेली-साहित्य को वक्ता-श्रोता के आधार पर तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१—बाल-पहेलियां
२—स्त्री-पहेलियां
३—पुरुष-पहेलियां

बाल-पहेलियों के अंतर्गत बालकों की छोटी-छोटी पहेलियां आती हैं जो पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों प्रकार की होती हैं। गद्यात्मक पहेली के रूप में वे पूछ बैठते हैं, 'बड़ा फल को नाम कांई', 'म्हांकी भीत में भैरू जी खड़खड़ करै' और उत्तर देने वाले दोनों का उत्तर 'नारियल' बता देते हैं। पद्यात्मक पहेली का नमूना यह है—

> काली छी कोडाळी छी, काळा बन नै रै छी।
> लाल पाणी पीवै छी, मरदां के कांदे रै छी।
>
> —तलवार

बाल-पहेली का रूप-विधान सरल और विषय सामान्य होते हैं।

स्त्री-पहेली-साहित्य पद्यात्मक है जिसे स्त्रियां गाकर पूछती हैं। उनके साहित्य में कल्पना की ऊंची उड़ान, बौद्धिक उलझन, विचारात्मकता आदि मिलती है।

पुरुष भी कभी-कभी हंसी-मजाक में टाली बैठे पहेलियां पूछा करते हैं, पर हाड़ौती में पुरुषवर्ग में इसका प्रचलन नहीं के बराबर है।

पहेली पूछने का अवसर व पात्र

हाड़ौती क्षेत्र में स्त्रियां जंवाई और ब्याई दो प्रकार के व्यक्तियों से ही ऐसी पहेलियां पूछा करती हैं। जब समुराल में जामाता होता है या कोई 'ब्याई' अपने दूसरे 'ब्याई' के यहां होता है तब स्त्रियां प्रारम्भ में प्रायः 'गाळ' गाती हैं।[1] वे जंवाई से पहेली पूछते समय 'गाळ' के समान ही शिष्टता और मर्यादा का ध्यान रखती हैं, इसलिये प्रत्येक पहेली को कहने के उपरांत इस शब्दावली का प्रयोग करती हैं—

> जंवाई सा ईं'को अरथ बता दीज्यो जी।
> म्हांको पयाळी का फल ले दीज्यो जी।

पर ब्याई और ब्याण का सम्बन्ध मर्यादा-रहित माने जाने के कारण स्त्रियां पहेली के उपरांत इस प्रकार गाती हैं—

> कहो न बियाई जी म्हांकी फारसी, यांको अरथ बताय।
> अरथ बतायां पूरो न पड़े, हारो घर की नार।
> घर सूं पूरो न पड़े, रोटी पोवे घर कुण।

कहीं उनसे अपनी पत्नी को गिरवी रखने को कहा जाता है, कहीं सही उत्तर मिलने पर दस रुपये का पारितोषिक का प्रलोभन दिया जाता है, कहीं उत्तर न देने की दशा में दस रुपये देने को कहा जाता है, कहीं अपनी मां को हार जाने को कहा जाता है, कहीं उन्हें अरना चाकर बनाया जाता है तथा कहीं इस प्रकार कहा जाता है—

> अंतर कपटी छो बियाई जी, ब्याण जी सूं छोटा छो।
> वचन का झूंठा छो, बोलो असरत बोल।

पहेलियों का रचना-विधान

हाड़ौती पहेलियों का रचना-विधान अति सूक्ष्म आधार पर हुआ है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर यह-अप्रस्तुत-विधान हुआ है। कहीं उपमान और उपमेय

---

१. देखिये, पृष्ठ २४ से २६ तक

में समानता रहती है, जो समस्त पहेली में व्याप्त उपमान-पक्ष के व्यापारों में पाई जाती है और जिन्हें हम अज्ञात प्रस्तुत के व्यापारों पर भी चरितार्थ कर सकते हैं। निम्नलिखित पहेली में उपमान नारी के ऋतुमती होने से पुत्र-जन्म तक के व्यापारों का वर्णन मिलता है, जिन्हें गेहूं-चने की खेती के सम्बन्ध में भी देखा जा सकता है—

> मासाढ़ां दूरा होया, सावण नमट्या होय।
> कातो में म्हलां गया, वैसाख जाया नंदलाल।

जब इस समानता का आधार सादृश्य होता है तब पहेली सुन्दर चित्रात्मकता पद में मिलती है। 'टेंटू' उत्तरवाली इस पहेली में सादृश्य कितनी सफाई से निर्वाह हुआ है—

> पेळो भरत्यो जी काळी कांकणी, सीरो बड़ो सवाद।
> ठुठला ठुठला छांट दो, छांटो दोनी हाथ।

अनेक पहेलियों में रूप-समानता पहली पंक्ति में ही वर्णित होती है फिर उनके कतिपय गुणों का उल्लेख होता है जो अप्रस्तुत में अति प्रमुख होते हैं—

> धोळी जी धोळी बेलड़ी; धोळा आया फूल।
> फेरयां सूं दुख नीपजै, लागै घणो सरूप।

कान की मुर्की

> सूना पाळ घरपो गंदोड़ो, म्हानै आण्यो माथो।
> नीचै होर उठावा लागी, छोरा छोरयां को दादो।

—चमचा

अनेक पहेलियों का निर्माण विरोध के सिद्धांत के आधार पर भी हुआ है जिसके फलस्वरूप असंगति, विभावना, विरोधाभास अलंकार पहेलियों में पाये जाते हैं। एक पहेली में बिना पानी के महल बनाने वाले कारीगर का उल्लेख है—

> पत्थर फोड़ूं, पाथर फोड़ूं, फोड़ूं सोवन सीला।
> बना पाणी का महल बणा दे, ये कारीगर कैसा? —दीमक

'विभावना' पर आधारित एक पहेली देखिये—

> बना पगां को डावड़ो, लटाक म्हारा साथ।
> म्हाव गूढ़ चाल्यो साथो, बैठ्यो सुण्यां बीच।

—रेवड़ा का बोटा

एक अन्य पहेली में 'विशेषोक्ति' अलंकार है—

> *सोळा सोळा हाथ साड़ी म्हारे सरागे धरी।*
> *सारी सारी रात म्हूं तो रयी ई मरी।* —पगड़ी।

अनेक पहेलियां कबीर की उलटबासियां सी लगती हैं जिनकी रचना में आश्चर्य-तत्व का हाथ रहा है—

> फैली म्हांका माई होया, पाछे म्हांका माई।
> *सांच-सूंत बाप लड़िया, पाछे आरती माई।*
>
> *—दूध, दही, मक्खन तथा छाछ*

यही आश्चर्यतत्व तथा उलटबांसीपन इस पहेली में भी है—

> सल डूबे, लोढी तरै, जळ में छायो पाप।
> एक अचम्भो म्हनै सुण्यों, बेटी जायो बाप।
>
> —मक्खन व छाछ।

आश्चर्य-तत्व तो अधिकांश पहेलियों में भरा पड़ा है। इसी से श्रोता के मन में फल-विषयक उत्सुकता बढ़ती है और उसे 'जोमेट्री' के प्रश्न को हल करने की शुष्कता से बचा लेती है।

अनेक पहेलियों के पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध में से एक अंश केवल पादपूर्ति के लिये रखा जाता है—

> आवो कंवर जी, आवो कंवरजी, घणा दनां में आया।
> *बालक थांको बोलता, माता ई जंग मचाया।*
>
> वृश्चिक

इसमें पूर्वार्द्ध निरर्थक पादपूर्ति का कार्य कर रहा है। उत्तरार्द्ध की पाद-पूर्ति भी इस प्रकार मिलती है—

> सर पै तांबो ताणियो, बीच में खचो लकीर।
> जो याने ग्यान न ऊपजे, म्यारणां का चाकर होय जी राज।
>
> —कंचुलिका।

और

> ठोपली में ठोपली जी, ठोपली में कीणूं।
> ईं पयाळी को फल न खो तो, थांको बाप मीणूं।
>
> *—अफीम का फल*

हाड़ौती पहेलियों में शब्दों का खिलवाड़ कई प्रकार से होता है। कभी एक ही शब्द छंद की गति के साथ बैठकर आंतरिक तुक का आनंद प्रदान करता है—

एक जणी ग्रस्सी बणी, बणी हळद का रंग।
तीन देवर कर चुकी, गई जेठ के संग।

—रैण के फूल।

किन्हीं छंदों में विशेषणों या विशेष्यों में तनिक परिवर्तन कर दिया जाता है और शेष शब्दावली पूर्ववत् ही रहती है—

च्यार आंगळ की लाखड़ी, आठ आंगळ को खूंटो।
ई फयाली को फळ न खो तो, नाक कटार उठो।

—कुएं का चक्र

अस्सी गज को चूंतरो, नव्वे गज की डोर।
ब्याई जी चाल्या चाकरी, ब्याण जी नै लेग्या चोर।

—पलंग।

अंतिम दोनों पहेलियों में उत्तरार्द्ध निरर्थक है।

अनेक पहेलियां एक विशेष शैली पर बनी हैं। ऐसी पहेलियों में श्रोता को कहीं भेजकर कोई वस्तु मंगाई जाती हैं और उत्तरार्द्ध में उस वस्तु की विशेषताएं बता दी जाती हैं—

बाजार में जाणा, कपड़ा लाणा।
मोटा नही लाणा, पतळा नही लाणा।
कपड़ा लेकर जल्दी आणा। —कागज।

ऐसी पहेलियों मे संगीत का प्रभाव रहता है और गद्य का सा वातावरण प्रस्तुत करती है। दूसरी शैली की पहेलियों मे स्मृति और ज्ञान का परिचय प्राप्त करने के लिये एक वस्तु का दो स्थानों पर होना बतला दिया जाता है। तीसरा स्थान कौन सा है इसके लिये प्रश्न किया जाता है—

एक तो हीरो कलजुग को, दूसरो हीरो आंख्यां को।
तीसरा को ग्ररथ बता दीज्यो। —चूड़े का हीरा।

बाल-पहेलियां—

बालकों की पहेलियों में स्त्रियों की पहेलियों की झलक देखी जा सकती है। उनकी पहेलियां भी शर्त पर चलती है—

एक पहेली मे 'सिघाड़े' का वर्णन भी इसी क्षमता का द्योतक है—

रंग रंगियो, तीन सीगियो।
धोळी गाय, दूध मीठो। —सिघाड़ा

सारांश यह है कि हाड़ौती पहेलियों से यहा के लोक-जीवन के विविध पहलुओं का अध्ययन संभव है। इनमें उनके बौद्धिक विकास और अभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियों के दर्शन होते है। मनोरंजन का साधन बनकर ही ये पहेलियां बौद्धिक श्रम का परिहार करती रही है। अतः अतीत से लोक-जिह्वा पर बैठी है।

सिंहावलोकन

हाड़ौती बोली और साहित्य का यह अध्ययन देश की बोलियों, भाषाओं और लोक-साहित्य का भावी अध्ययन-शृंखला की एक कड़ी है। जब देशव्यापी बोलियों और साहित्यों के अध्ययन होंगे तब कई नृविज्ञान, इतिहास, समाज शास्त्र संबंधी प्रश्नों के समाधान उनमें खोजे जा सकेंगे और उनके द्वारा देश की राजनीतिक प्रसंहता को आधुनिक चर्चा को ठोस आधार मिल सकेगा।

हाड़ौती बोली पर विचार करते समय 'छे' क्रिया और अन्य कुछ व्याकरण सम्बन्धी विशेषताओं के आधार पर हाड़ौती को गुजराती के निकट बताया गया है और शेष सुप्-तिङ्० की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर खड़ी बोली और ब्रज-भाषा से उसका सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास भी हुए हैं। डा० ग्रियर्सन[1] ने अपने 'भारतीय भाषा-सर्वेक्षण' में ऐतिहासिक खोजों के द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि मध्यदेश, राजस्थान और गुजरात में परस्पर काफी आवागमन रहा। इस प्रकार मध्यदेशीय भाषा का प्रभाव राजस्थान की भाषा पर पड़ा और इसी प्रकार गुजराती का भी। पर हाड़ौती-क्षेत्र का सम्बन्ध मध्यदेश से अधिक रहा है। यहां पर निवास करने वाली अधिकांश जातियां मध्यदेश से ही होती हुई आई हैं।

लोक-जीवन को निकट से देखने पर ज्ञात होता है कि वह प्राचीन धार्मिक मान्यताओं और रूढ़ियों को नहीं छोड़ता। एक परिवार एक ग्राम से चलकर और एक शताब्दी पूर्व से दूसरे ग्राम में बसकर भी अपने पूर्वग्राम के कुल-देवता या देवी को श्रद्धा के फूल चढ़ाता जाता है। बच्चों के मुंडन-संस्कार के लिये लोग एक प्रांत के दो छोरों को मिलाते देखे गये हैं। यही बात तीर्थ-देवताओं के सम्बन्ध में भी है। शताब्दियों से मध्यदेश से आकर बसे हाड़ौती निवासियों के तीर्थ आज भी उसी भूमि पर हैं, जहां से वे चले थे। हाड़ौती का 'गंगोज' इस बात का परिचायक है। इन शताब्दियों में इनके पूर्वजों ने कितनी ही नदियों का पानी पी लिया, कितनी ही भूमियों की रमणीयता पर मुग्ध हो लिये, कितने ही मंदिर बनाये, जो बिगड़ गये, पर जो तीर्थ-भावना गंगा, ब्रज और बद्रीनारायण के साथ जुड़ गई थी, वह आज भी ज्यों की त्यों रक्षित है। आज भी 'बोद-गया' के धाड़ होते हैं। जगन्नाथ की 'लूट्यों' (हिलोरें) का आनन्द लूटने आज भी वे धार्मिक भावना से वहां

---

१. ग्रि०, लि० स० इ०, पुस्तक ६, भाग २, पृष्ठ २।

पहुंचते हैं। हाड़ोती लोक-साहित्य इन सब मान्यताओं को अपने में संजोए हुए है। जिस प्रकार रक्त की समानता समान वंशानुगतता की द्योतक होती है उसी प्रकार मान्यताओं की यह समानता एक ही समूहानुक्रम की सूचना देती है और इस प्रकार मध्यदेश की संस्कृति तथा भाषा से हाड़ोती की भाषा और संस्कृति का सम्बन्ध स्थापित करती है।

हाड़ोती साहित्य यहां की संस्कृति का प्रहरी है। वह यहां की धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक स्वीकृतियों, पारिवारिक आदर्शों, नैतिक मूल्यों आदि का अक्षय-भंडार है। उसमें अद्भुत जीवनी शक्ति है। उसमें इतने राजनीतिक उत्थान-पतन, सामाजिक हलचलें और धार्मिक क्रांतियां देखीं फिर भी वह अडिग हिमालय सा खड़ा होकर उनका तिरस्कार करता सा और मुस्करा कर दृढ़तर चरणों से आगे बढ़ता रहा है। बड़े-बड़े साहित्य-भण्डार शासकों की क्रोधाग्नि में भस्मीभूत हो गये, पर वह अक्षुण्ण रहा।

इसलिये वह रूढ़िग्रस्त नहीं है। समय के साथ चलकर उसने विभिन्न परिस्थितियों से अपने प्राणों को पुष्ट किया है। रूढ़िग्रस्त होना तो मानव अपने ही हित की दृष्टि से उसे कभी का छोड़ चुका होता। पुरातनता का मोह नवीनता से उसकी आंखें बंद नहीं करा सका है। जितनी आवश्यकता होती है उतनी शक्ति वह वर्तमान से संचित कर अग्रसर होता रहता है। इसीलिये वह प्रगतिवादी भले ही न हो, प्रगतिशील अवश्य है।

उसके प्राणों में कौनसी शक्ति है, शरीर में कौनसा बल है? साहित्य-शास्त्री इसके उत्तर में रस का विवेचन करेंगे और कलापक्ष की छानबीन करेंगे। पर हाड़ोती साहित्य में रस निर्दोष रूप में नहीं मिलता, यह अन्यत्र दिखाया जा चुका है। भाषा में कसावट और बनावट नहीं मिलती, सजीवापन अवश्य है, प्रत्येक युग में ढल जाने की क्षमता है। अलंकार की कृत्रिमता और शब्द-वैचित्र्य की सायास शब्द-जाल नहीं है, पर अभिव्यक्ति की सरलता है। यहां लोक-जीवन के प्राणों की भाषा है उसमें अभिव्यक्ति का वह माध्यम है जो उसने दूध के दांतों से अपनाया था। उसमें भाषा के वास्तविक रूप को अभिव्यक्ति है। शास्त्रों का अध्ययन-जन्य बहुज्ञापन नहीं है। आशय यह है कि हाड़ोती साहित्य में हृदय की विशदता है और अभिव्यक्ति की सरलता है।

ऐसे हाड़ोती साहित्य का अविच्छिन्न अनुसंधान हिन्दी के प्रसार में संवर्द्धक है। यदि उसका संरक्षण न हुआ तो एक अनमोल सम्पत् हाड़ोती के अंचल को

यह विश्वास होगा भी नहीं कि हमारा अतीत यह था। अपनी प्रगति पर उसे गौरव और विश्वास न होगा, अपनी दुर्गति पर उसे लज्जा और ग्लानि न होगी। हिन्दी साहित्य समूचे भारत के जन-मानस का प्रतिबिम्ब तो कहा जाता है, पर वहाँ तक पहुँचने के लिये उसे लोक साहित्य की प्रवृत्तियों को परखने तथा पहचानने की आवश्यकता है। जनपदीय बोलियों तथा उनके माध्यम से व्यक्त हुए जनमन को जाने तथा माने बिना हमारी राष्ट्र भाषा का साहित्य अमर बेल की तरह ऊपर ऊपर ही भले ही पसरता रहे परन्तु उसकी मूल 'धरती' से संजीवनी नहीं ग्रहण कर सकती। अतः इस प्रकार के अध्ययनों का एक राष्ट्रीय महत्व है।

प्रस्तुत विषय पर यह सर्वप्रथम कार्य होने से यहाँ मूल्य-निर्धारण में त्रुटि भी हो सकती है और मार्ग-भ्रम भी. परन्तु इस प्रयत्न से प्रेरणा लेकर यदि इस दिशा में कार्य हुआ, तो लेखक अपनी त्रुटि और भ्रम को भी गौरवशाली समझेगा।

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. कनउजी लोकगीत	संतराम अनिल
२. कबीर ग्रंथावली	श्यामसुंदर दास
३. कहावतों की कहानियां	महावीर प्रसाद पोद्दार
४. कोटा राज्य का इतिहास	डा० मथुरालाल शर्मा
५. ग्राम साहित्य	राम नरेश त्रिपाठी
६. घाघ भड्डरी	घाघ
७. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य	डा० सरला शुक्ला
८. ढोला मारूरा दूहा	नरोत्तम स्वामी आदि
९. तेज लीला	रामगोपाल शिवरामजी राव
१०. दिल्ली सल्तनत	आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
११. धूलिधूसरित मणियां	सीताराम
१२. नाथ सम्प्रदाय	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
१३. पंचतंत्र	अनु० सत्यकाम
१४. प्राचीन भारतीय लिपि माला	गौरी शंकर ओझा
१५. बिहारी रत्नाकर	जगन्नाथदास रत्नाकर
१६. बेला फूले आधी रात	देवेन्द्र सत्यार्थी
१७. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
१८. भारत के देशी राज्य	सुख संपत्तिराय भंडारी
१९. भोजपुरी लोक गाथा	डा० सत्यव्रत सिन्हा
२०. मध्य देश	डा० धीरेन्द्र वर्मा
२१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां	डा० सावित्री सिन्हा
२२. मारवाड़ का जाट इतिहास	ठाकुर देशराज
२३. मालवा और उसका इतिहास	श्याम परमार
२४. मालवी लोकगीत	श्याम परमार
२५. राजपूताने का इतिहास	गौरीशंकर ओझा
२६. राजस्थानी कहावतें	डा० कन्हैयालाल सहल
२७. राजस्थानी भाषा	डा० सुनीति कुमार चटर्जी
२८. राजस्थानी भाषा और साहित्य	डा० हीरालाल माहेश्वरी

यह विश्वास होगा भी नहीं कि हमारा अतीत यह था। अपनी प्रगति पर उसे गौरव और विश्वास न होगा, अपनी दुर्गति पर उसे लज्जा और ग्लानि न होगी। हिन्दी साहित्य सम्पूर्ण भारत के जन-मानस का प्रतिबिम्ब तो कहा जाता है, पर वहां तक पहुंचने के लिये उसे लोक साहित्य की प्रवृत्तियों को परखने तथा पहचानने की आवश्यकता है। जनपदीय बोलियों तथा उनके माध्यम से व्याप्त हुए जनमन को जाने तथा माने बिना हमारी राष्ट्र भाषा का साहित्य अमर बेल की तरह ऊपर ऊपर ही भले ही पनपता रहे परन्तु उसकी मूल 'धरती' से संजीवनी नहीं ग्रहण कर सकती। अतः इस प्रकार के अध्ययनों का एक राष्ट्रीय महत्व है।

प्रस्तुत विषय पर यह सर्वप्रथम कार्य होने से यहां मूल्य-निर्धारण में त्रुटि भी हो सकती है और मार्ग-भ्रम भी, परन्तु इस प्रयत्न से प्रेरणा लेकर यदि इस दिशा में कार्य हुआ, तो लेखक अपनी त्रुटि और भ्रम को भी गौरवशाली समझेगा।

अंग्रेजी

१. इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ इंगलिश लिटरेचर	हडसन
२. एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान	टॉड
३. एवोल्यूशन ऑफ अवधी	डा० बाबूराम सक्सेना
४. एनपीरेशन इन द हाड़ौती नौमीनल: लेस, स्टडीज इन लिंग्विस्टिक एनेलिसिस	डा० डब्ल्यू.एस एलन.
५. कम्पेरेटिव ग्रेमर ऑफ मॉडर्न इंडियन लैंग्वेजेज	बीम्स
६. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इन्डिया	ग्रियर्सन
७. लेक्चर इन लिंग्विस्टिक्स	ऑस्करलुइस चैवेरिया एगुलर
८. सेन्सस ऑव इंडिया पेपर १	
९. संस्कृत इंग्लिश डिक्शनेरी	वामन शिवराम आप्टे
१०. एस्टडी आफ दी गुजराती लैंग्वेज इन सिक्सटीन्थ सेंचुरी	टी. एन. दवे
११ हिन्दी ग्रामर	कैलाग

—

२९. राजस्थानी भाषा और साहित्य — डा० मोती लाल मेनारिया
३०. राजस्थानी लोकगीत — रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत
३१. रामचरित मानस — गोस्वामी तुलसीदास
३२. रूसी लोक साहित्य — वीर राजेन्द्र ऋषि
३३. लोक साहित्य की भूमिका — डा० कृष्ण देव उपाध्याय
३४. वंश भास्कर — सूर्यमल मिश्रण
३५. संस्कार विधि — दयानंद सरस्वती
३६. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका — डा० बाबू राम सक्सेना
३७. साकेत — मैथिली शरण गुप्त
३८. सिद्ध साहित्य — डा० धर्मवीर भारती
३९. हमारी लोक कथाएं — हंसराज रहबर
४०. हमारे त्योहार — डा० ब्रजमोहन
४१. हितोपदेश — अनु० आनंद
४२. हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचंद्र शुक्ल
४३. हिन्दी साहित्य कोश — डा० धीरेन्द्र वर्मा
४४. हिन्दी व्याकरण — कामता प्रसाद गुरु

संस्कृत-प्राकृत

१. अभिज्ञान शाकुंतलम् — कालिदास
२. कातन्त्र [illegible] — शर्ववर्मा
३. अष्टाध्यायी — पाणिनि
४. काव्यालंकार सूत्र — वामन
५. काव्यालंकार — रुद्रट
६. काव्यादर्श — दंडी
७. काव्यालंकार — भामह
८. श्री मद्भगवद्गीता — वेदव्यास
९. श्री जैमिनीयाश्वमेधपर्व — जैमिनि
१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण — वेदव्यास
११. श्री मद्भागवत महापुराण — वेदव्यास
१२. हलायुध कोश — हलायुध भट्ट

अंग्रेजी

१. इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ इंगलिश लिटरेचर	हडसन
२. एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान	टॉड
३. एवोल्यूशन ऑफ अवधी	डा० बाबूराम सक्सेना
४. एसपीरेशन इन द हाड़ौती नोमीनल: सेल, स्टडीज इन लिंग्विस्टिक एनेलिसिस	डा० डब्ल्यू.एस एलन.
५. कम्पेरेटिव ग्रेमर ऑफ मॉडर्न इंडियन लैंग्वेजेज	बीम्स
६. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया	ग्रियर्सन
७. लैक्चर इन लिंग्विस्टिक्स	ऑस्करलुइस चैवेरिया एगुलर
८. सैन्सस ऑव इंडिया पेपर १	
९. संस्कृत इंगलिश डिक्शनेरी	वामन शिवराम आप्टे
१०. एस्टडी आफ दी गुजराती लैंग्वेज इन सिक्सटीन्थ सेंचुरी	टी. एन. दवे
११. हिन्दी ग्रामर	कैलाग